

्र्रे मुनि भ्रो ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला पुष्प ३

वीरोदय काव्य

(महाबीर-चरित)

विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद-सहित

W W

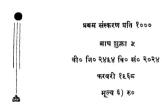
रचयिता

श्री १०८ मुनि ज्ञानसागरजी महाराज

सम्पादक:

होरालाल सिद्धान्तशास्त्रो सिद्धान्तालङ्कार, न्यायतीर्घ

श्रकाशक— श्रकाश्वनद्र जैन संज्ञा— मुनि श्री ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला



पुस्तक मिलने का पता गणेकीलाल रतनलाल कटारिया कपड़ा बाजार, व्यावर (राजस्थान)

> मुद्रक— धीकृष्ण भारद्वाज कृष्णा ऋार्ट प्रेस, नरसिंह गली, ब्यावर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

बीरोदय को पाठकों के हाथों में देते हुए मुक्ते श्रह्यन्त हुई हो रहा है। प्रन्थमाला को स्थापित हुए ग्रमी दो वर्ष ही हुए हैं। इस ग्रह्प ग्रविष मे यह तीयरा ग्रन्थ प्रकाणित हो रहा है।

मनि श्री १०८ ज्ञानसागरजी महाराज के क्रतित्व ग्रीर व्यक्तित्व का विस्तत परिचय ग्रन्थ-माला के प्रथम पृष्प दयोदय की प्रस्तावणा में दिया गया है। यहा सक्षेप में इतना कहना ही उचित है कि आयका जन्म वि० स० १६४८ में हुआ। स्याद्वादमहाविद्यालय काशी में शिक्षण प्राप्त किया। धर श्राने पर स्वतंत्र व्यवसाय करते हुए पठन-पाठन करते रहे । विवाह नहीं किया और ग्रन्थ-निर्माण में सलग्न रहे। फलस्वरूप बीरोदय और जयोदय जैसे महाकाव्यो का संस्कृत भाषा में निर्माण किया। इनके प्रतिरिक्त लगमग २० ग्रन्थ ग्रन्थों की भी संस्कृत ग्रीर हिन्दी में रचना की । विरुसं० २००४ में ब्रह्मचर्य प्रतिमा घारण की । वि० स० २०१२ में क्षल्लक-दीक्षा ली । वि. स० २०१४ में मृति-दीक्षा ग्रहण की । तब से बराबर निर्दोष मृनिवृत पालन करते हुए शास्त्रों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन में संलग्न रहते है धीर इस जरा-जीसं अवस्था मे आखो का कष्ट रहते हुए भी नव-माहित्य का निर्माण करते रहते है । जैन समाज आपके असीम अनुग्रह का मदा आभारी रहेगा ।

ग्रन्थ-माला मे ग्रन्थों के प्रकाणनार्थ सघ-सचालक श्री १०८ क्षल्लक सन्मतिसागर जी का पर्ण साहास्य प्राप्त है। उनकी ही प्रोरणा से ग्राधिक महायना प्राप्त होती रहती है। इसके लिए हम उनके बहुन आभारी हैं।

प्रस्तृत ग्रन्थ का सम्पादन भी पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री ने किया है। प्रस्तावना में जिन विषयों की चर्चा की गई है, उससे पाठकी को ग्रनेक नवीन बातो का परिज्ञान होगा। ग्रन्थमाला इसके लिए पंडितजी की ग्रामारी है।

कृष्णा बार्ट प्रेस के मालिक, व्यवस्थापक ग्रीर कार्यकर्तांग्री का ग्रन्थ मुद्रण-काल मे सौजन्य-पूर्ण व्यवहार रहा है, इसके लिए उन्हे धन्यवाद है। च्यावर

4-2-925=

-- प्रकाशचन्द जैत

संत्री-श्री ज्ञानसागर प्रन्थसाला

सम्पादकीय---

भ । महाबीर के चरित्र का बाध्य लेकर मुनि श्री ने इस काव्य की रचना की है, जिस पर 'बामुक्य' बोर प्रस्तावना मे नयांन्य श्रकाश बाला गया है। मुनि श्रीने हो इनकी दुरानी भाषा में बिस्तुत हिन्दी व्याक्या भी लिखी है। हमने उसका संक्षित्र नवा क्यान्तर मात्र किया है।

प्रस्तावना तिस्तत समय यह उनित समझा गया कि उपलब्ध वि० जीर बेट उपयो की प्र० महावीर में सम्बन्धित सभी आवस्यक सामयी भी संक्षेप में दे दो जाय। अतर मुक्त मुक्त बातों में मत-भेर-सम्बन्धों सभी जानकारी प्रस्तावना में दी गई है। प्र० महावीर के विविध सन्ति जो संस्कृत, प्राकृत अपभांता और हिन्दी में धनेक विद्वानों ने लिखे है धौर जिनके निकट भविष्य में प्रकाशन भी कोई आशा नहीं है उनकी भी प्रनेक जातक्य बातों का संकलन प्रस्तावना में किया गया है। कुछ विविध्ट सामग्री तो विस्तार के साथ यी गई है जिससे कि जिजासु पाठकों को मर्च आवश्यक जानकारी एक माथ प्रास्त हो सके। प्राचा है हमारा यह प्रयक्ष पाठकों को स्वि-कर एवं जान-वर्षन विद्व होगा।

विशेष आगम-विषत स्थलों हे परामर्श में हमारे स्तेही मित्र श्री पं-ग्रांभावस्त्री भारिश्त से पर्याप्त सहयोग मिला है, श्री पं- रघुपरवस्त्री ग्रांभावस्त्री भारिश्त से पर्याप्त स्थाप मिला है, श्री पं-माल्या लायकेंगे के ज्यवस्थान्त श्री हुनामन्त्री मंदिया में समय-समय पर आवश्यव पुस्तके प्राप्त होती गही हैं। ऐन पदालाल दिन जैन सरस्त्रती भवन के प्रथों का मस्यादन और प्रस्तावना-लेखन में भर-पुर उपयोग किया है, श्री पं- महेन्द्रकृषाण्यों प टनी जियानपात ने गुद्धियत्र सैयार करके मेजा है और प्रथमाला के मंत्री श्री पं- प्रशानवन्त्री का सदैव सन्द्राव सुलम ग्रा है। इस्तिएस में इन सबका आभागी हैं।

मुद्रण-काल के बीच-बीच में मेरे बाहिर रहने से तथा दृष्टि-दोष से रह गई अञ्चित्यों के लिए मुफ्ते लेद है। पाठकों से निवेदन है कि वे पड़ने से पर्व छाद्विषय से पाठ का संबोधन कर लेवें।

ब्यावर —हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री ४-२-१६६⊏ ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन,

यामुखम

मया कविवर्ण्यं -श्री १०६ श्रीमुनिक्षानसागरसहागञ्ज-विरचितं द्वाविकानिसगोसकं 'थोरोदय' नाम महाकाव्यसवकोकितम् । तेन से सनमि सहार सम्मदः समजनि । यदाःशक्षालिकः कविवर-कालिदास- भारपि-माप-श्रीक्षणीदिभिर्दकोनि काव्य-नाटकसीनि विरचितानिसनित, किन्यु तदनन्तर कश्चिदयि कविदेनाहरू सकलगुणालङ्कारमूचितं महाकाव्यमगोरचित्ति न से हण्टिययं समायाति । एताह्याङ्क तमहा-काव्यसगोरचिताः श्रीविवर्ण्याः समस्तसंस्कृतविचक्षणानां धन्यवादाही इति निस्वप्रचा ।

निब्बिलरसभावगुणालङ्गारालङ्कुतमेतन्महाकाव्यं कुष्टिजनगर-वास्तव्य – क्षत्रियनुपमुकुटमणि – श्रीसिद्धार्थराजकुमारं श्रीमहावीरं नायकीकृत्य सम्रधितं विद्वत्तल्यः श्रीकविकुलालङ्कारमूर्तेमुँ निवर्ष्यः । श्रयमेन श्रीमहावीरः स्त्रीयाद्भु नवस्यम्बस्यम सहाकाव्यस्य धीरोदात्तः, वयावीरः, धर्मधीरस्य नायकायते । 'सर्गवन्यो' महाकाव्यस्य धीरोदात्तः, वयावीरः, धर्मधीरस्य नायकायते । 'सर्गवन्यो' महाकाव्यस्य स्वर्धमन्

द्यारधानुशीलंनन प्रत्यकर्तुः प्रगल्यपाधिहत्यं कवित्वज्ञाकिश्व स्पट्मनुमीयो । एतद्रश्ययनेत प्राक्तकवयोऽञ्येत्रणां स्ट्रतिपयमा-यानित । नथाहि - एताशन् प्रौडपास्हित्यमन्पन्नोऽपि कविः प्रयमसर्गस्य सप्तमे पर्यो - 'पीगेदयं यं विद्यानुमेन न ज्ञाकिमान् श्रीगणराजदेवः' इति वर्णयन् स्वीयविनीतनामाविष्करोति । खनेत 'क सूर्यप्रभन्नो बंशः क चाल्यविषया मतिः' इति निगदन् कालिदामः स्वर्थते ।

शान्तरसप्रधानमपीदं महाकाव्यं प्रायोऽनेकरसभामावगुणाल-क्कारान् विभर्ति । नायकजन्मसमये श्रीदेवीनामागमनं, तासां मानुपरि- चर्या, रस्तवृष्टिः, इन्द्रादिसुरगणानुष्टितः प्रभुरमोदभारसासुरो सहाभिषेक-इत्यादि वर्णनानि नायकस्य सर्वेश्वयैसम्पन्नत्वसाधिर्देविक- वेभवक्य प्रकट्यिन । द्विनीयमर्गे जम्बूद्वीगादिवर्णने श्रीहर्षस्य विदर्भ- नगरवर्णनं स्मारयित । एवमेच किवना सहक्षव्येऽसिन्नायकजीवन-चरिनं वर्णयना स्थाने स्थाने किवसम्प्रदावानुसार नगरवर्णन, ऋतुव-र्णनं, सन्व्यावर्णनीसत्यादि सुलिनगीवर्णवास्य। मिन्नवद् कस्य काव्यक्रलारिमकसङ्कद्वयस्य मानमं नाह्यद्वित ।

नैपवीयचिरते यथा श्रीहर्षमहाव विना प्रतिसर्गान्तं तत्तस्यगीवयय-वर्णन-पुरस्तरं स्वीयप्रशस्तिपदामुद्वान्ति नर्धयास्मिन् महाकाव्येऽपि महाकविस्नुनिवर्धः सन्द्रव्यप् । तथा तृतीयमर्गस्य ३० तसे पर्थे महाकवेः, 'क्योतिबोधाचरणप्रचारः' इति वर्णनं नैवधीयचित्रस्य प्रयमसर्गे चतुर्षपद्ये 'क्यभीतिबोधाचरणप्रचारणद्वाश्यावस्य प्रणयकाु-पाविसः' इति स्मारयनि।

प्यमेव द्वितीयसर्गे जम्बूद्वीपवर्णने, 'हिमाळवोल्लासिगुण स् प्य डीपाधिपस्थेव धतुर्विरोषः' पत्रस्तवा महाकविश्रीकाळिदासविद-विन-कुमारमश्रीयमः 'अस्युक्तस्यां दिश्चि देवतास्या हिमाळ्यो नाम नगाधिराजः' इति पयं 'स्वस्तुक्तस्यां दिश्चि देवतास्या हिमाळ्यो साम स्वाधित्याः' इति पयं स्वाधित्य अक्षित्यस्य तु केवळ पूर्वीपरसमुद्धा-वगाडी हिमाळ्यः वृधिव्या मानदरळ्ळपेणवास्यक्षितः। किन्तु महाका-स्वागत एव तस्य वंत्र-दर्ग्छः। इस्यमेनद् भारत्यावे जम्बूदीपे अनुरूष् विज्ञयमिति नेवामित्रयाः। अनेनास्य देशस्य विश्वष्टक्षाञ्चीयसम्बन्नस्य प्रतीवते। अन्वपासिक्या देशे वृद्यमादि-बीरास्तवीष्ट्रसादस्यक्षा कोक्षान्या सहावीराः पुरुषपुक्तः माजवाबन्त, सञ्ज्ञायन्ते, सञ्ज्ञिन-प्रयन्ते चेति प्रतीयमानार्षः सङ्क्तयुम्लवाः माजवाबन्त, सञ्ज्ञावन्ते, सञ्ज्ञिन-

इत्यमेव महिकाव्ये ४६ तमे पद्ये यथा श्रीमहिकविना, धन

तक्तळ यम्न सुचानपङ्कम्' इत्यादि पद्ममेकावल्यळङ्काराळेळतं केवळं प्राकृतिकसीन्दर्यवर्णनमात्रमुद्दिश्य सन्तिबद्धः । तथेवात्र महाकाव्ये द्वितीयसर्गस्य ३८ तमे पद्मेऽपि महामुनिभिः, 'नासी तरो यो न विभाति भोगी' इत्यादि वर्णितम् । परमेतङाभिकभावनाभाविनमा-कळिलासिस्यपि प्रेम्नावतासद्भुतत्तमस्कारकरं प्रतीयते ।

श्चस्य महाकाव्यस्य तृतीयसमें २८ तमे रह्णोकं 'प्रबाखता मुख्यंघरे करे च, मुखेऽडजाऽस्यारचरणे गले च। मुद्दतता जानुगुगे चरित्रे रसाखताऽभूकुचयोः कटित्रे॥' इस्यत्र प्रबाखता, श्चव्जता, मुद्दत्तते, रसाखताऽभूकुचयोः कटित्रे॥' इस्यत्र प्रबाखता, श्चव्जता, मुद्दत्तते, रसाखताउदेपु विचक्षणक्तेचचमस्कारः कस्य काव्यकखाकोविदस्य हृदयं न चमस्काति॥

कार्यत्र सुनीयमर्गे २६ तमे पद्ये, 'पूर्व' विनिर्माय विशु' विरोप-यस्ताद्विधिसन्धुत्रमेवमेष ' इत्यादिवर्णनं कुमान्यस्मवे सहाध्वि-काळिदासस्य 'रोपाङ्गनिर्माणविधे' विश्वातुर्कोवरस्य उत्पादः इत्यास्य यस्तः । 'होन पार्वनीरूपवर्णनिमित्र सहदयहदयान्याह्याद्वातितरागः ।

्वभेवास्य चतुर्थसर्गं वर्षावर्णने वर्षती रसायनाधीरवरादिभा-रूप्यं रिलग्रेटाक्क्षालङ्कारचमरकारः श्रीमहाकवे-मीघस्य वर्षावर्णनमप्यति-कास्यति । उत्थमेव पत्रुचर्गे, 'निह पलाझतरोमुं कुलोद्गतिवेनभुगं नव्यक्षतसन्धाः । इति वर्णन कालिदासीयकुमारसम्भव-वस्थन्यण-नमि विभाति । जिल्ला मावस्य 'नवपलाझपलाझवनं पुर' इत्यपि स्था-रयति ।

्वमेवाभे कवे: शिशिरतु वर्णनमिए विविधाळंकारसमित्वतं पाठकाननुरकवयि । संमारभोगभंगुरतामवळोक्य तथाऽज्ञानितिम-राच्छमस्य मानवसमाजस्य दुष्कृत्वज्ञानितभूरिदुःसान्याळक्ष्य सच्जात-वर्गयेण नायकेन पिकृक्तं परिणयाभद्दं विविध्युक्तिभः प्रत्याक्ष्य स्वीयछोकोत्तरमहामानवताप्रदर्शनमतीय हृदयहारि शिक्षाप्रदच्चिति नात्र सन्वेहकोताः।

श्चर्याध्ययनेतेदमि बायते यत्तास्मन्दाले देशेऽस्मिन् धूर्तयाञ्चिक्षंत्रेषु शर्माव्ययनेतेदमि बायते यत्तास्मिन्दाले देशेऽस्मिन् धूर्तयाञ्चित्रकार्य । तद्वलाध्या त्याहिसाऽक्रियत । तद्वलाध्या नायक्रम्य चेतिस सहद् :स्वस्मून् । एवञ्च तदा समाजेऽनेकेऽजाचारा कृरीतयश्च प्रविक्ता श्चास्मन् तेनापि व्याद्वद्वययय नायक्स्य परस-कारूप-पूर्व्पृतेऽतःकरणे स्वभोगसुखायेश्वया सामाजिकोद्धारः समुचितोऽन्वभूयत । एतद्वसम्ब सहामनस्यी परसद्यालुनीयकः लोकोद्धार्यकरीव्ययः सक्तराजुनोपमोगसामभी विहाथ परसक्ष्य-साध्यां शमदमातिसहितां प्रत्रक्षमान्त्रभावक्षाः । प्रत्रक्ष्य केवस्यं प्राप्य स्व वीवेश्यो सम्कराज्यमान्नीचकार । प्रत्रक्ष्य केवस्यं प्राप्य स्व वीवेश्यो धर्मोगदेशं विधाय समाजस्य विशेषतोऽ-

इत्थं महाकवेरस्य विविधरत्रभावगुणालंकारालंकता कविना कस्य सहदयस्य मानसं न हरिन । विशेषतः समस्तेऽपि वाज्येऽन्त्यानु-

प्रामस्तु प्रत्यकर्तु रद्भुतं वदुष्यमाविष्कुरुते ।

्रवयमहाक विभिन्नं निवयं अस्मिन् महाकाव्ये गोमृत्रिकादि-निववन्यवा न्यवकलाया अपि चमस्कार कितय-एगं पु संवदिकारः। तथाहि— हाव्यस्थास्यानिमे सर्गं 'स्मयन् गमयय्ये' इत्यादि सहित् इत्या प्रशिक्ष प्रशिक्ष विभाव स्थानिक स्थान्य स्थान्य स्थान्य स्थान्य स्थान्य प्रशिक्ष स्थान्य स्थान्य स्थान्य प्रशिक्ष स्थान्य सहा स्थान्य प्रशिक्ष स्थान्य सहा सामा भावि इत्यादि प्रशादि स्थान्य प्रशादि प्रशादि प्रशादि स्थान्य स्

अत्यव वयमेनादृशमदाकाव्यरचिष्ठभ्यो महाकविश्रीमुनियर्थेभ्यो वर्धापनं विनरन्तस्तेपामुत्तरोत्तराभिवृद्धयं परमास्मानं प्रार्थयामः।

बसन पत्रमा २०२४ **रधुनरदत्तरास्त्रो**, साहित्याचार्य ।

प्रस्तावना

कविता का जनता के हृदय पर जैसा चमत्कारी प्रभाव पड़ता है, चैसा सामान्य वाणी का नहीं। कविता एक चित्त-चमत्कारी वस्तु है जो जोताकों के हृदयों में एक क्षानिवेजीय क्यानन्द अराम्न करती है। साधारण मानुष्य अधिक समय तक बोकर पर भी क्याने आब को स्पष्ट रूप से अभिक्यक नहीं कर पाता। परन्तु कि उसे क्यानी सरस कविता के ह्यारा अरुप समय में ही अपने मनोग्रास भाव को स्पष्ट रूप से अभिक्यक नहीं कर वाता।

कविता करने की और अपने आवों को सुन्दर शब्दों में आधिकवर करने की कका हर एक मतुष्य में नहीं होती। जिसे पूर्व मन के संस्कारों से जम्म-जात प्रतिमा प्राप्त होती है और जो इस जन्म में ब्वावरण, साहित्य आदि शास्त्रों का आध्ययन करके खुदरिय प्राप्त करता है, ऐसा व्यक्ति ही किता करने में सफळ होता है। यही कारण है कि बिद्धानों ने किंव का लक्षण "प्रतिसा-क्युत्यक्तिमांक्र कृति" इन शब्दों में किया है।

साहित्यद्रपंण-कारने 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहा है'। इसी का सपटीकरण करने हुए खळहारपिन्तामणि-कार कहते हैं कि जो बाक्य शब्दालहार और अध्योजहार से उक्त हों, तो रसी छे समिवत हों, रीति, भाव श्वादि के अभिगम हों, क्यंत्र्य आदि के द्वारा अभियेवक कवन करने वाले हों, दोप-सित और गुण-समूह से संयुक्त हों तेना या कथा-नाथक का उक्तम चरित्र वर्णन करने वाले हों और दोनों लोकों में उपकारक हों, ते ही वाक्य काटक कहळाने

१. वाक्य रसारमक कान्यम् । (साहित्यदर्पण १,३)

के शोख हैं और ऐसे काव्य मय प्रचन्ध का रचिता ही किन कहा जाता है।

काव्य के पठन पाठन से न केवल जन मन-रजन ही होता है, अपितु उससे धर्म-जिज्ञासुख्यों को धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक ज्ञान का शिक्षण, कायर जनों को साहन, बीर जनों को उत्साह, तथा श्रोक-सन्तम जनों को ढाढस और धर्य प्राप्त होता है। धर्मशास्त्र तो कड़वी औपियें के समान अविद्या रूप व्याधि का नाशक है, किंतु काव्य आरहार्द्य-जनक अमृत के समान अविद्येक रूप रोग का अपहारक हैं?।

काव्य साहित्य समेक विद्वानों ने काव्य-रचना के छिए स्नाव-रचक सामग्री का निर्देश करते हुए बनलाया है कि काव्य-क्या का नायक धीरोदात्त हो, कथा-बस्तु सामकारिक हो उसमें यथा स्थान पढ़ ऋतुर्को एवं नव रसों का वर्णन किया गया हो और वह नाना स्नलहारों से स्नलस्कृत हो।

इस भूमिका के आधार पर हम देखते हैं कि बीरोदय-कार ने भ० महावीर जैसे सर्वश्रेष्ठ महापुरुष को अध्यनी कथा का नायक

बाल्हाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ॥

(वकौक्ति जीवित)

शाब्दायांतंकृतीद्धं नवरसकितं रीतिभावाभिरामं,
 श्रव्हायादार्वं विदोयं गुणगणकितं नेतृतदृष्णंनाद्यम् ।
 लोकद्वतीपकारि स्कृतिमृत तन्तास्ताध्यमम्यं सुकार्थां
 नाताशास्त्रप्रयोणः कविरतुलमितः पुण्यममिकेत्तृतुम् ॥।
 (अलक्कृरिचन्तामणि १,७)
 र. कट्कीयस्यक्रशस्त्रमिवद्याध्याविनाश्चम् ।

चुना है, जिनका चरित्र उत्तरोत्तर चमकारी है। किन ने यथा स्थान सर्व खुड़कों का वर्णन किया है, तथा करुण श्रद्धार और शान्त रस-का मुख्यना सें प्रतिपादन किया है। वस्तुनः ये तीन रस ही नवः रसों से श्रेष्ठ माने गये हैं।

, दश सर्गों से श्रिषिक सर्गवाले काव्य को महाकाव्य कहा जाता हैं। महाकाव्य के लिए शावश्यक है कि प्रत्येक सर्ग के श्रान्त में कुक-पद्म विभिन्न छन्दों के हों और व्यास्थान, देश, नगर, माम, दशान, बाजार, राजा, रानी लेजादिक का लिल पत्यों में वर्णन किया गया हो। इस परिप्रेट्य में 'वीरोदय' एक महाकाव्य मिद्ध होता है।

काज्य शास्त्र में खलङ्कार के दो भेद माने गये हैं—शादालङ्कार और खबीलङ्कार । मस्तुत काज्य प्राय: सर्वत्र दुकारत पददित्यास होने से अन्य अनुग्रासालङ्कार से खोत-श्रोत है । सस्कृत
काज्यों में इन प्रकार की तुकारत रचना वाली बहुत कम इत्तर्या
सिलती हैं। वीरोदय-कार की यह विशेषता उनके द्वारा रचे गये प्राय:
सभी काज्यों में पाई जाती हैं। यमक भी यथा स्थान हिंदिगोचर
होता है। अवीलङ्कार के अनेक भेद-भेद साहित्यदर्गणादि में बतलाये गये हैं। वीरोदय-कार ने रत्ये, उपमा, उत्तेक्षा, वक्तीकि,
अपकृति, परिसल्या, मालोपमा, अन्योक्ति, समामोक्ति खातश्रयोक्ति, खतिहरूत, समन्यय, रूपक हण्टान्त. व्यातस्तृति, सन्देह,
दिराधोभास, भातिनमदादि अनेक अर्थालङ्कारों के द्वारा अपने काज्य
को खलङ्कृत किया है।

इस काञ्य के चौथे सर्ग में वर्षा ऋतु, क्षठे सर्ग में वसन्त ऋतु, बारहवें सर्ग में प्रीप्म ऋतु और इक्कीसवें सर्ग में दारद ऋतु का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है, जो कि किसी भी प्रसिद्ध सहाकाज्य के समकछ दी नहीं, बल्कि कुछ स्थलों पर तो उनसे भी श्रेष्ठ है। समें शयम और नवम में करण रस, दशम और एकादश सर्ग में शान्त रस, तथा प्रथम और १कासवें सर्ग में शृह्मार रस दृष्टियोचर होता है।

प्रस्तुत काव्य में उर्दू-कारसी के भी सेवा, मीर, कसीर, नेक, भीका कादि कुछ शस्द दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें से कुछ शस्दों की तो द्वीका में निक्षिक देकर उन्हें संस्कृत रूप दे दिया गया है कीर कुछ कब्द क्षिक प्रविक्त होने के कारण स्वीकार कर किए गये हैं, इस प्रकार कि ने संस्कृत भागा को कीर भी समृद्ध करने का मार्ग-दर्शन किया है।

प्रारम्भ के छह सर्ग कुछ किप्ट हैं, बात विशायिंगें और जिक्कापुओं के मुखावबोधार्थ बीरोदय-कार ने खबं ही उनकी संस्कृत टीका भी लिख दी है, जो कि परिशिष्ट के प्रारम्भ में दे दी गई है। टीका में हलोक गत रतिब ब्राह्म का बर्थ तो ज्यक्त किया है। गया है, साथ ही कहां कीनसा ब्राह्म हो, यह भी बता दिया गया है।

प्रस्तुन रचना का जब विद्वान छोग तुछनात्मक धाध्ययन करेंगे तो बन्दें यह सहजा में ही झान हो जायगा कि इस रचना पर धर्म-झमांभ्यून्य, चन्द्रमभ चरित, युनिसुमन काव्य धरीर नैषध काव्य खादि का प्रभाव है। फिर भी बीरोह्य की रचना धापना स्वतन्त्र कीर मीळिक खान रखती है।

इस प्रकार यह वीरोदय एक महाकाव्य तो है ही। पर इसके भीतर जैन इतिहास और पुरातस्व का भी दर्शन होता है, खतः इसे इतिहास और पुराण भी कह सकते हैं। धर्म के स्वरूप का वर्णन होने से यह धर्मशास्त्र भी है, तथा स्वादाद, सर्वव्रता और छनेकान्तवाद का वर्णन होने से यह न्याय-शास्त्र भी है। धनेकों शब्दों का संग्रह होने से यह शब्द-कोष भी है।

संक्षेप में कहा जाय तो इस एक काल्य के पढ़ने पर ही अक सहायिर के परित के साथ ही जैन वर्ष और जैन दर्शन का भी परिचय प्राप्त होगा और काल्य-सुधा का पान तो सहज में होगा हो। इसीलिए कवि ने स्वयं ही काल्य को 'त्रिविष्टप' काल्यमुपेन्यहंन्तु' कहकर (सर्ग १ रलो० २३) साक्षान् स्वयं साना है।

वीरोदय काव्य की कुछ विशेषलाएं

कावय-साहित्य की दृष्टि से ऊपर इस प्रस्तुत काव्य की सहत्ता पर कुछ प्रकाश डाला गया हैं। यहां वसकी कुछ खन्य बिशेष-ताओं का उत्तेख किया जाता है, जिससे पाठकगण इसके सहस्व को पूर्ण रूप से समझ सकीं। प्रथम सर्ग में स्लोठ २० से लेकर १६ तक काव्य-य्यिया ने भ० महावीर के जन्म होने से पूर्व के भारत वर्ष की धार्मिक कौर सामाजिक दुर्वशा का जो चित्र अफित किया है, वह पठनीय है।

पूर्वकाल में देश, नगर और प्राम आदिक कैसे होते थे, वहां के मार्ग और बाजार कैसे सजे रहते थे, इसका सुन्दर धर्णन इसरे सर्ग में किया गया है।

राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला देवी के रूप में किव में एक आदर्श राजा-रानी का स्वरूप तीसरे सर्ग में वतलाया है। चौथे सर्ग में महारानी त्रिशला देवी को दिखे सोछह स्वप्त भीर उनके फल का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है, जिससे तीर्ब कर के जन्म की महता चित्त में सहज ही श्रांकित हो जाती है।

तीर्षंकर के गर्भ में आने पर कुमारिका देवियां किस प्रकार सनकी माता की सेवा-टहक करती हैं और कैसे केरी प्रश्न पूछ कर चनका मनोरंजन और अपने हान का संवर्धन करती हैं, यह बात पांचवें सर्ग में बच्ची अच्छी रीति से प्रकट की गई है।

छठे सर्ग में त्रिशस्य देवी के गर्भ-कालिक दशा के वर्णन के साथ ही कवि ने बसन्त ऋतु का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि जिस से उसके ऋतुराज होने में कोई सन्देह नहीं रहता।

सातवें सर्ग में भ० महाधीर के जन्माभिषेक के लिए आने वाले देव और इन्द्रादिक का तो सुन्दर वर्णन है ही, किव ने शबी इन्द्राणी के कार्यों का, वथा सुमेरु पर्वत और श्लीर सागर आदि का जो सजीव वर्णन किया है, वह तात्कालिक टरयों को आयंकों के सम्प्राल अपिथात कर देता है।

आठवं सर्ग में महाबीर की बाल-कीलाओं और कुमार-किहाओं का वर्णन करते हुए उनके मानस पटल पर धमरेन बाले उच्च विचारों का कवि ने बहुत ही मुम्दर वर्णन किशा है। इसी सर्ग में महाराज सिखार्थ के द्वारा विवाह का प्रस्ताव उपख्लित किये जाने पर जिन मुन्दर और सुटइ युक्तियों के द्वारा भगवान् महाबीर ने चसे असीतार किया है, उससे उनकी जन्म-जात लोकोद्वारक मनोष्ट्रीय का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

इसमें बतलाया गया है कि संसार के जितने भी बन्धन हैं, वे

सब आ के बन्धन से उर्पन होते हैं। आ के निमित्त से इन्द्रियां प्रमत्त होती हैं, मनुष्य की आखं सदा आ के रूप रेखने को उद्युक्त बनी रहती हैं। उसे प्रसन्न रखने के लिए वह सदा उबरून, अंतिक उन्हर्सन प्रमाण के लिए बात स्वार डेबीर श्रीर शरीर-पोषण के लिए बातीकरण औषध्यों का निस्नत उपयोग करता है। कि अन महाबार के मुख से कहलाते हैं कि ओ इन्द्रियों का दास है, वह समस्त जगन का दास हैं। अतः इन इन्द्रियों को जीत करके ही मनुष्य जगजेना बन सकता है।

इसक्ष्मकार अपना अभिपाय प्रकट कर उन्होंने पिता से अपने आजीवन अविवाहित रहने की ही बात नहीं कहीं. प्रस्तुत भविष्य में अपने द्वारा किये जाने वाले कार्यों की खोर भी संकेत कर दियां। यह सारा वर्णन बडा ही हरवस्पर्शी हैं।

विवाह का प्रस्ताव अध्योकार कर देने के परचात् म० महावीर के हृद्य में जगज्जनों की तात्कालिक स्थिति को देखकर जो विचार चरत्न होते हैं, वे वड़े ही मार्मिक एवं हृदय-द्वावक हैं।

भगवान संनार की स्वार्थ-परता को देखकर विचारते हैं—कहो ये संसारी छोग किनने स्वार्थी हैं ? वे सोचते हैं कि में ही सुस्ते रहूँ, भले ही दूसरा हु:स-कृप में गिरता है, तो गिरे। हमें उससे क्या प्रयोजन है ?

छोगों की मांस खाने की दुष्प्रवृत्ति को देखकर महावीर विचा-रते हैं — आज छोग दूसरे के खुन से खपनी व्यास खुझाना चाहते हैं और दूसरों का मांस खाकर खपनी भूख शान्त करना चाहते हैं। खाहो यह कितनी दयनीय स्थिति है। देवी-देवताओं के ऊपर की जाने वाली पशु-बाँछ को देवकर भगवान विवादते हैं—'अबही, जगदम्बा कहलाने वाली माना ही यदि अपने दुखों के शुन की पत्नी हो जाय, नो समझो कि सूर्य का वदव हो राम्नि में होने लगा।''

"बहो, यह देवतास्वजी जो कि देव-मन्दिरों की पावन भूमि कहलाती है, वह पशु-बाल होने संकताई-पर बनकर यमस्वजी हो रही हैं ? होग पशुक्षों को मारकर और उनके मांस को स्ना-साकर अपने पेट को किसतान बना रहे हैं।"

इस प्रकार के कानेक दारुण इथ्यों का चित्रण करके कवि ने नर्ने सर्ग में बड़ा ही कारुणिक, मर्मस्पर्शी एवं उद्बोधक वर्णन किया है।

जगत् की विकट परिश्वितयों को देखते हुए सहाबीर की बैराय भावनाएं उत्तरीतर बढ़ती जाती हैं और अन्त में एक दिन वे भरी जवानी में पर बार छोड़कर और बन में जाकर प्रप्रजित हो जाते हैं और सिंद के समाम एकाकी हम भूनल पर बिहार करते हुए विचरने छगते हैं। उनके इस छड़ान्य कालिक विहार करते हुए विचरने छगते हैं। उनके इस छड़ान्य कालिक विहार को समय की किसी भी परीपद और उपसर्ग रूप घटना का व्यपि किस के कोई उन्लेख नहीं किया है, तथापि उनना सफट रूप से कहा है कि ''वीर प्रभु के इस तपश्यपण काल में ऐसे अनंत प्रसंग आये हैं, कि तनकी कथा भी धीर बीर जानों के गोगटे खड़े कर देती हैं।'' इस प्रशिव और उपसर्गों का विगत वार वर्णन दि० और रवेण प्रत्यों के आक्षय से आगे किया गया है। इस प्रकार दसवें सर्गे में भ० महावीर की आन्तरिक भावनाओं का बहुत सुग्यर वर्णन कि वे किया है।

स्वारहर्षे समा में कवि ने एक बानपम होग से भ० महाबीर के पूर्व भवों का वर्णन किया है। सगवान ध्यानावस्था में ही अवधि-ज्ञान से अपने पूर्व भवों को देखते हैं और विचार करते हैं कि हाय. हाय ? आज समार में जो मिध्या आचार देख रहा है, उनका मैं ही तो क्वीजभत हैं, क्योंकि पर्व भवों में मैंने ही मिथ्या मार्ग का प्रचार एवं प्रसार किया है। वे ही मत-मतान्तर आज नाना प्रकार के असदाचारों के रूप में बक्ष बन कर फल फल रहे हैं। इसलिए जगत की चिकित्सा करने के पहिले मुझे अपनी ही चिकित्सा करनी चाहिए। जब तक मैं स्वयं शुद्ध (नीरोग एवं नीराग) न हो जाऊ, तब तक दसरों की चिकित्सा करना कैसे उचित मानी जा सकती है। इसलिए समे बाहिरी परिव्रहादि से और आस्तरिक सद-सत्स-रादि दर्भावों से असहयोग करना ही चाहिए। भगवान विचारते हैं कि मुक्ते स्व-राज्य अर्थात आत्मीय स्वरूप की प्राप्ति के लिए पर-जनों से असहयोग ही नहीं, बल्कि दर्भावों का बहिच्कार भी करना चाहिए, तभी मेरा स्व-राज्य-प्राप्ति के लिए किया गया यह सत्याप्रह सफल होगा ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जब कि अपने इस काव्य की रचना कर रहे थे, उस समय महास्मा गांधी ने स्वराज्य प्राप्ति के िकए सत्यामह संप्राम और असहथोग आन्दोलन छेड़ा हुआ। बा उससे प्रभावित होकर कि ने उसका उपयोग अध्यास्म रूप स्वराज्य प्राप्ति के लिट किया है।

भ० महाबीर के पूर्व भवों की विस्तृत चर्चा इसी प्रस्तावना में आगो की गई है।

बारहवें सर्ग में किन ने बीध्म ऋतुका विस्तार से वर्णन करते हुए बतलाया कि जब साग संसार सूर्य की गर्मी से त्रस्त होकर श्चीतलता पाने के लिए प्रथलहील हो रहा था. तब भ० महाबीर झरीर से समता छोड़कर पबंत के शिखरों पर महान् श्वातापन योग से खपने कमों की निर्जर। करने में संलग्न हो रहे थे। वर्षाकाल में वे बुद्धों के नीचे खड़े रह कर कमें मल गालो रहे और शीतकाल में वीराहों पर शत रात भर खड़े रह कर प्यान किया करते थे। इस प्रकार कभी एक मास के, कभी दो भान के, कभी चार मास के खीर कभी छह सास के लिए प्रतिमा योग धारण कर एक स्थान पर ऋबिश्वत हत सास के लिए प्रतिमा योग धारण कर एक स्थान पर ऋबिश्वत हत हत खात थ्या मान रहने थे। भ० महाबीर के इस छद्याब्य कालीन महान् वरएचरण का विवरण खाने वितावार दिया याथा है, जिससे पाठक जान सकेंगे कि उन्होंने पूर्व भव-संचित कमों का विनाश कितनी उन तरएचा के द्वारा किया था।

इस प्रकार की उम्र तपस्या करते हुए पूरे साहे बारह वर्ष व्यनीन होने पर भ० महाबीर को वैशास्य शुक्छा दशमी के दिन कैवल्य विभूति की प्राप्ति हुई। उसके पति ही भगवान के केवल-ज्ञान जनित दश इ्रातिशय प्राप्त हुए। तभी इन्द्र ने अपने देव परिवार कं साय आकर उस सभा स्थल का निर्माण कराया, जो कि समव-शरण के नाम से प्रख्यात है।

तरहवें भर्ग में उस समवज्ञरण की रचना का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन स्मवज्ञरण के मध्य भाग में स्थित कसका सन पर भगवान वार अगुळ अन्तरीक्ष विराजमान हुए, उनके समीप आठ आहे आहे हुए। भ० महाबीर के इस समवज्ञरण में स्थर्ग से आते हुए देवों को तथा नगर निवासियों को जाने देख कर गीतम प्रथम तो आप्यर्थ कित हांत हैं और विचारने हैं कि क्या मेरे से भी बढ़ा कोई ज्ञानी हो। प्रशान के ५० नहांबीर के पास आपी हो। इतने हों हैं स्थान हो। प्रशान के भ० नहांबीर के पास आपी हो। इतने

श्चिथिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उनका शिष्यत्व ही स्त्रीकार कर छिया श्वीर तभी उनके निभित्त से भगवान् की दिव्य देशना प्रकट हुईं।

इस सन्दर्भ में भ० महावीर ने इन्द्रभूति शौतम को छक्ष्य करके जो उपदेश दिया है, वह पठनीय ही नहीं, बल्कि मननीय भी है।

डन्द्रभूति गौतम को भ० महाबीर का शिष्प बना देखकर उनके भाई क्षिप्रभूति और वायुभूति भी अपने अपने शिष्य परिवार के साथ भगवान् के शिष्प बन गये और उनके देखा देखी अपने आप महा विद्वान् भी अपने शिष्य परिवार के साथ दीक्षित हो गये।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि ये सभी बाह्मण बिद्वान् एक महान् यह समारोह में एकत्रिन हुए थे। उसी समय मण्यहांचीर को बंच हाना हुआ था और बातकस्याणक मनाने के लिए देवनण आ रहे थे। इस सुयोग ने महा मिण्यांची इन्द्रभूति आदि बाह्मण विद्वानों को क्षण भर में सम्यक्त्वी और संथमी बना दिया और वे सभी विद्यान् भगवान् के सुनक्त उपदेश के महान् व्याख्यात बनकर गणवर के कर में प्रसिद्ध हुए और उसी भव से मुक्त भी हुए। चौदहुं समो में इन ग्यारहां ही गणधरों के लग्भ स्थान, माता-पिता और शिष्ट परिवार का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रस्तावा मं अप्राण्या के स्था पर्का ने स्थान भा माता प्रसा और अधेर भी कई बातों के विवरण के साथ एक चित्र दिया गया है, जिससे कि गणधरों की आयु, दीक्षा-काल आदि स्थान महत्त्व पूर्ण बातें झात हो सक्तिंग।

पन्द्रहवें सर्ग में भ० महावीर के उपरेश की कुछ रूप-रेखा रेकर बतछाया गया है कि गौतम गणधर ने किस प्रकार उनकी वाणी को द्वारशाङ्ग रूप में विभाजित किया और मागध जाति के देवों ने किस प्रकार उसे दूर-दूर तक फेंडाया। इसी सगै में भगवान् के विदार करते हुए सबेज धर्मोपटेश देने का भी वर्णन किया गया है और बतडाया गया है कि किस-किस देश के कौन-कौन से राज-परिवार भगवान् के दिव्य उपदेश से प्रभावित होकर उनके धर्म के अनुयायी बन गये थे।

भ० महाबीर ने जिन सर्बङोक-कल्याणकारी उपनेशों को दिया, उनमें से साम्धवाद, झहिंसा, स्याद्वाद और सर्वज्ञता ये चार सुख्य मानकर चार सर्गों में प्रत्यकार ने उनका बहुत ही सुन्दर एवं सरख हैंग से वर्णन किया है।

साम्यवाद का वर्णन करते हुए कहा गया है—हे आसम्, यदि तुम यहां मुख से रहना चाहते हो, तो औरों को भी सुख से रहने वो। यदि तुम स्वयं दुखी नहीं होना चाहते, तो औरों को भी दुख से दो। अन्य स्वर्णिक को आपित्त में पड़ा देखकर तुम चुप म केंद्र रही, किन्तु उसके संकट को दूर करने का शिक मर प्रयत्न करों। दूसरों का जहां पसीना वह रहा हो, वहां पर तुम अपना स्वृत्न सहाने के छिए तैयार रही। दूसरों के छिए किया गया सुरा कार्य स्वयं अपने ही छिए तुरा फल देता है, इसिलए दूसरों के साथ सदा भड़ा ही स्वयहार करना चाहिए।

अहिंसा का वर्णन करते हुए कहा गया है—जो दूसरों को मारता है वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारा जाता है और जो दूसरों की रक्षा करता है, वह दूसरों से रक्षित रहता हुआ जाना-पूज्य बनता हैं। आस्वयें है कि मृत्य अपने स्वां के वहा में होकर दूसरों मारने और कट पहुँचाने के छिए तर्पर रहता है और नाना प्रकार के छठों का आश्रय लेकर दूसरों को घोखा देता है। पर वह यह

नहीं सोचता कि दूसरों को घोखा देना वस्तुतः श्वपने आपको घोखा देना है।

यहाँ में की बाने वाली हिंसा को लक्ष्य करके कहा गया है— "दसे सबसे पेक रहे हैं" ऐसा कहका जो लोग कहरे मेंस आदि के गक्षे पर तल्वार का बार करते हैं, वे अपने स्तेही जनों को बसी प्रकार क्यों क्यों नहीं जेवते ?

इस प्रकार भनेक युक्तियों से आईसा का समर्बन करते हुए कवि ने कहा है कि भगवनी आईसा ही सारे जनान की भाता है और दिसा ही डाकिनी भीर पिशाचिनी है, इसलिए सनुष्य को हिंसा-बाकिनी से चचते हुए भगवनी आईसा देवी की ही शरण लेना चाहिए।

श्राहिसा के सन्दर्भ में और भी श्रानेक प्रमाद-जानित कावों का उन्होंस कर उनके त्याग का विधान किया गया है श्रीर श्रान्त से बत-लावा गया है कि श्राहिसा-भाव की रक्षा श्रीर हृद्धि के लिए मनुष्य को मांस स्वाने का सर्ववा त्याग करना बाहिए। जो लोगा हाक-पत्र, कलादिक को भी एकेन्द्रिय जीव का श्रांग मान कर उसे भी मांस स्वाने को भी एकेन्द्रिय जीव का श्रांग मान कर उसे भी मांस स्वाने जैसा बनलाते हैं, उन्हें श्रांनक ग्रुणियों से सिद्ध कर यह बन-लाया गया है कि शाक-पत्र कलादिक में श्रीर मांस में श्राकाश पाताल जेसा श्रान्तर है। यथि होनों ही प्राणियों के श्रंग है, तथाि शाक-फलादिक भक्ष्य है और मांस स्वभक्ष है। जेसे कि दूध श्रीर गोवर एक ही गाय-भीम के श्रांग प्रवाच हैं, तो भी दूध ही भक्ष्य हैं, गोवर नहीं।

इस प्रकार इस सोलहवें सर्ग में साम्यवाद श्रीर श्रविंसावाद का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। सस्प्रहृष्ठे समें में मतुष्यता या मानवता की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि जो मतुष्य दूसरे का सन्मान करता है जीर इसकी छोटी सी भी बात को बड़ी समझता है, बास्तव में बड़ी मतुष्यता को धारण करता है। किन्तु जो बहुंकार-वक् बीरों को तुच्छ समझता है जीर उनका अपमान करता है, यह मतुष्य की सबसे बड़ी नीचता है। आत्महित के अतुक्छ आपयण का नाम मतुष्यता है, केळ कपने साथ-साथन का नाम मतुष्यता नहीं है। अत: प्राणिमात्र के लिए हितकारक प्रवृत्ति करना चाहिए।

आगे बताया गया है कि पापाचरण को छोड़ने पर ही मनुष्य उच्च कहला सकता है, केवल उच्च कुछ में जन्म लोने से ही कोई उच्च नहीं कहा जा सकता। इसिल्ए पाप से खुणा करना चाहिए, किन्तु पापियों से नहां।

मानव कर्च ज्यों को बतलाते हुए खागे कहा गया है कि दूसरों के दोगों को कभी प्रकट न करे, उनके विषय में सर्वया मीन ही धारण करे। जहां तक बते, दूसरों का पालन पोषणा ही करे। दूसरे के गुणों को सादर स्वीकार करे, उनका खानुसरण करे। आपर्ति आते पर हाय-हाच न करे खोर न्याय-मार्ग से कभी च्युत न होवे।

इस सन्दर्भ में एक बहु मूल्य बात कही गई है कि स्वार्थ (आस-प्रयोजन) से च्युत होना आस्म-विनाश का कारण है और परार्थ से च्युत होना सम्प्रदाय के विरुद्ध है। इसिंछए मनुष्य को चाहिए कि अपने स्वार्थ को संभावते हुए दूसरों का उपकार अवश्य करें। यही सारमृत मनुष्यवा है।

आगे जाति, कुल आदि के आहंकार को निद्य एवं वर्जनीय

बतलाते हुए ब्रन्तेक आख्यानकों का उल्लेख करके यह बतलाया गया है कि उच कुल में जन्म लेते वाले ब्रन्तेक व्यक्ति नीच कार्य करते हुए रेखे जाते हैं और ब्रन्तेक पुरुष नीच कुल में उत्तरक होकर के भी उच्च कार्य करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। ब्रतएव उच्च और तीच का व्यवहार जाति और कुलान्नित न मानकर गुण और कमीन्नित मानना चाहिए।

इस विषय में इतना विशेष ज्ञातव्य है कि कितने ही लोग जाति और कुल को अमिट और अटल सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की कल्पनाएं करते हैं। कोई तो कहते हैं कि ये बाह्मणादि वर्ण ब्रह्मा के द्वारा सच्टि के ब्यादि में बनाये गये हैं व्यीर युगान्त तक रहेंगे। कितन ही लोग इनसे भी आगे बढकर कहते हैं कि सभी जातियां अनादि से हैं और अनन्त काल तक रहेंगी। कितने ही लोग जातियों को नाशवान कहकर वर्णों को नित्य कहते हैं, तो कितने ही छोग वर्णों को अमिल्य मानकर जातियों को नित्य कहते हैं। कुछ लोग जाति ऋौर वर्ण का भेद मनुष्यों में ही मानते हैं, तो कुछ लोग पर्य, पक्षी और बक्षादिक में भी उनका सद्भाव बतलाते हैं। परन्तु ये सब कोरी श्रीर निराधार कल्पनाएं ही हैं। कर्म सिद्धांत के अप्रतसार गति की अपपेक्षा जीवों के सनुष्य देव, नारकी अपीर निर्यंच ये चार भेद हैं आपीर जाति की अपपेक्षा एकेन्द्रिय, दीन्द्रियादि पांच भेद हैं। यद्यपि एकेन्द्रियादि की उत्तर जातियाँ अनेक है, तथापि उनमें उपयुक्त प्रकार से जाति या वर्ण का भेद मानना न आगम-संगत है और न युक्ति-संगत हो । वस्तुतः वर्ण-व्यवस्या आजीविका की विभिन्नता पर की गई थी। वर्तमान में प्रचलित जाति-व्यवस्था तो देश-काल-जनित नाना प्रकार की परिस्थितियों का फल है। यही कारण है कि इन जातियों के विषय में थोड़ा-बहुत जो इतिहास उप-लब्ध है, वह उन्हें बहुत आधुनिक सिद्ध करता है।

जातिबाद को बहुत ऋषिक महत्त्व देने वाले हिन्दुओं के महान् अन्य महाभारत में छिला है—

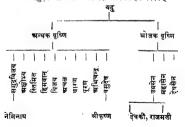
कैवर्ती-गर्भसम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः । तपसा माञ्चलो जातससमाज्ञातिरकारणम् ॥१॥ चर्वसी-गर्भसम्भूतो बिक्षः सुमहासुनिः । तपसा माञ्चलो जातससमाज्ञातिरकारणम् ॥२॥ स्वपाकि-गर्भसम्भूतः पाराशरमहासुनिः । तपसा माञ्चलो जातससमाज्ञातिरकारणम् ॥३॥ वाषद्वाळी-गर्भसम्भूतो विस्वामित्रो महासुनिः । तपसा माञ्चलो जातससमाञ्जातिरकारणम् ॥॥॥

ध्यर्थान्—धीवरी के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्यास महामुनि तप के प्रभाव से जाइएग हो गये, उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न हुए विशव महामुनि तप के प्रभाव से जाइएग कहलाये, स्वगाकी (कुने का प्रभाव कोने वाहिए अपने से इस्ति क्षांते वाली) के गर्भ से उत्पन्न हुए पाराकार महामुनि तपके प्रभाव से जाइएग हो गये और चारवाओं के गर्भ से उत्पन्न हुए विश्वासित्र महामुनि तप के प्रभाव से जाइएग हो गये। इसलिए उच कहलाने के लिए जाति कोई कारण नहीं है, किन्तु व्यावरण ही प्रधान कराय है।

सारांद्रा यह है कि वर्तमान में प्रचलित जाति और वर्णों को धनादि और धनन्त कालीन बतलाना सर्ववा ध्यस्य है। हां, यह ठीक है कि साधारणतः उच धीर नीच कुल में जन्म केने वाले जीवों पर उनके परम्परागत उच या नीच खावरण का प्रमाद क्षवस्य पहता है, पर धपवाद सर्वत्र दृष्टियोचर होते हैं। कहीं उच कुलीन लोगों में भी दीनाचरण की प्रवृत्ति देशी जाती है। खोर कहीं नीच कुलीन लोगों में भी सनाचार की प्रवृत्ति देशी जाती है। इसिक्ट्रिय एकान्त से सर्वया ऐमा ही नहीं मान क्षेना चाहिए कि उन्न कुछ में जन्म लेने वाले छोगों के ही सराचारपना पाया जायगा, हीन कुछ में जन्म लेने वालें के नहीं। उन्न या नीच कुछ में जन्म होना पूर्व जन्म-सचित संस्कारों का फड है, अयोत देवाधीन है। किन्तु वर्तमान में उन्न या नीच कार्य करना अपने एकार्य के अधीन है।

इसी मंदर्भ में प्रस्कार ने खाज के प्रचलित विवाह-बन्धनों की ज्ञार संकेन करने हुए बताया है कि देखों — बसुदेव ने खपने चचेर भाई की पुत्री खर्षान् खाज के बाव्हों में खपनी भतीजी देवकी से विवाह किया और उस से जान्य प्रसिद्ध श्री कृष्ण नारायण का जन्म हुआ। इसके साथ ही यहां यह भी उन्लेखनीय है कि भठ निमताय का विवाह भी उन्हीं उपसेन की लड़की राजमती से होने जा गहा था। जो श्री कृष्ण के पहुर्थंत्र से वन्धन-बद्ध रघुओं को देख कर नेमिनाय के संसार से विरुक्त हो जाने से संभव नहीं हो सका। नेमिनाय और राजमती परस्कर चचेर भाई बहित थे।

वसदेव और उपसेन का वश परिचय इस प्रकार है-



डक्त बंश-परिचय से बिल्कुल स्पष्ट है कि चतुर्थ काल में श्राज के समान कोई बैवाहिक बन्धन नहीं या श्रीर योग्य लड़के लड़कियों का विवाह-सम्बन्ध कर दिया जाता था।

इसी सर्ग के २१ वें ख्लोक में वेद के संकल्पिता जिन ज्यास ऋषि का उल्लेख किया गया है, वे स्वयं ही धीवरी (कहारिन) से खरणज्ञ हुए थे, जिसका प्रमाण अप्रभी ऊपर दिया जा चुका है।

आगो इसी सर्ग के ३६ वें रहोक में हिपिण कथा कोव के एक कथानक का उल्लेख कर बनाया गया है कि गंवा ने यसपाश ब्याद्धाल के साथ उसकी आहिसक प्रवृत्ति से हर्षित होकर अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था।

यहाँ पर विवाह के इस प्रकरण की, नथा इसी प्रकार के कुछ इस्य उल्लेखों की चर्चों का भी यह असिप्राय है कि साधारणत: राजमाने तो यही रहा है कि समुख्य अपने कुछ, गुण, भीछ, रूप और विवाह आदि के अनुरूप ही योग्य कन्या से विवाह करने ये और आज भी करना चाहिए। परन्तु अपवाद सदा रहे हैं। इसलिए इस विषय में भी सबंधा प्रकार सामें का आअश्व नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार इस समी में जाति और कुळ की यथार्थना को बता कर अपन से कहा नया है कि "धर्म-धारण करने से या आस्त-विकास करने में किसी एक व्यक्ति या जाति का ही आधिरार नहीं है। किन्तु जो उत्तम धर्म का अनुष्ठान करना है, वह सबका आदर-णीय बन जाना है।

श्राठारहवें सर्ग में काल की महत्ता बतलाते हुए इस श्रावस-पिणी काल के प्रारम्भिक तीन कालों को हिन्दू-मान्यतानुसार सत् युग बताया गया है, जिनमें कि भोग भूमि की रचना रहती है। जब तीसरे काळ के बाता में करगढ़क्क तर्घड़ होने छंगे और कुळकरों का जम्म हुआ, तब से जेतायुग का प्रारम्भ हुआ। उस समय अतिका कुळकर तास्तराय से खादि तीबकर भ० कृष्णभरेव का जन्म हुआ। के कल्पवृक्षों के छोप हो जाने पर भूख-त्यास से पीड़ित प्रजा को जीवन के उपाय बतळावे। प्रजा का संरक्षण करने वालों को ख्रिय कहा अधिर अज्ञा का संग्रमण करने वालों को व्यय कहा ख्रीय संज्ञा ही, प्रजा का भगण-पोषण करने वालों को व्यय कहा ख्रीर प्रजा की सेवा-सुकृषा करने वालों को शूर्य कहा । उन्हीं भ० ख्रायनेव ने पुन्तों की एर कलाओं को सिखाया। विट्टी के बर्तन बनाना भी उन्होंने मिखाया। जिसके कल्प स्कूप कुम्भार छोग ख्राज भी 'परजापत' (प्रजापति) कहलाते हैं। आव स्वाधा स्वासी समस्तम्भ ने क्ष्यमंद्र की स्वित करने हुए उन्हों भावापति के नाम से उल्लेख करके कहा कि उन्होंने ही जीन की इच्छुक प्रजा को कृष्णि, गोपालन खादि कार्यों की सर्व प्रथम शिक्षा दी। '।

भ० ऋषभ देव के दीक्षित होने पर उनके साथ दीक्षित होने बाले लोग कुछ दिन तक तो भूव-प्यास को सहते रहे। अन्त में भ्रष्ट होकर यद्वा-नद्वा आवरण करने लगे। म० ऋपभ देव ने क्रीवल्य-प्राप्त के बाद उन्हें संबोध। जिससे किनने ही लोगों ने तो वापिस सुमार्ग स्वीकार कर लिया। पर मरीचि और उनके अनुयायियों ने ने अपना येथ नहीं लोड़ हो हो बलते दे । इसका विस्तृत विवेचन आगों किया गया है.

इस सन्दर्भ में किन ने सुनिचयी श्रीर गृहस्य धर्म का जैमा सुन्दर वर्णन भ० ऋषभ देव के द्वारा कराया है, वह मननीय है।

१, प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कमसु प्रजा । (स्वस्पूरनोत्र, क्लो० २)

आपो कवि ने भान चकी दास बाह्यणों की सरपनि का वर्णन किया है च्योर बनलाया है कि से बाह्मण २० जीनलनाथ के समय तक तो अपने धर्म पर स्थिर रहे। पीछे उससे परान्मख होकर अपने को धर्म का श्राधिकारी बताकर मन-माने कियाकारत का प्रचार करने स्रो। धीरे-धीरे यहां तक नौबत आई कि 'ऋजैर्यष्ट्रयं' इस बाक्य के आर्थ पर एक ही श्लीर-कदस्य गुरु से पढ़ हुई पर्वत आरीर नारत में चम्र विवाद खड़ा हो गया। जब ये दोनों विवाद करते हुए अपने सहाध्यायी वसराजा के पास पहुँचे, तो गुराणी के अनुरोध-वज्ञ बसराजा ने गुरू-पत्र पर्वत का कथन सत्य कह कर यथार्थ सत्य की हत्या करदी और तभी से तीन वर्ष प्राने-नवीन अंकरोत्पादन के आयोग्य धान्य के स्थान पर बकरों का यज्ञ में हवन किया जाने लगा. जिसकी परस्परा भ० महाबीर और महात्मा बद्ध के समय तक उत्तरीत्तर बढती गई। इस यज्ञ-बिल के विरोध में उक्त दोनों महान् श्चारमाओं ने जो प्रबल विरोध किया, उसके फलस्वरूप आज पश-यज हिट्योचर नहीं हो रहे हैं। इतना ही नहीं, उनकी अहिसामयी धर्म-देशना का प्रभाव तात्कालिक वैदिक विद्वानों पर भी पड़ा और उन्होंने भी हिसक यहाँ एवं बाहिरी किया-काएडों के स्थान पर ब्रात्स-यह और ज्ञानमय क्रियाकारह का विधान अपने उपनिषदी च्यीर ब्राह्मण-सत्रों में किया। तथा इसी जताब्दी के प्रारम्भ में उत्पन्न हए प्रसिद्ध आर्थ-समाजी नेता स्वामी द्यानन्द सरस्वती ने भी उन हिसा-परक वेद-संत्रों का अहिंसा-परक अर्थ करके अहिसा की ध्वजाको फहराया।

किव ने खबसर्पिणीकाल के चौथे भाग को डापर युग के नाम से उल्लिखिन कर खपनी समन्वय-दृष्टि प्रकट की हैं। तद्नुसार खाज का युग कलिकाल है. यह स्वत सिख हो जाना है। खनेक जैनाचार्यों ने 'काले कड़ी चले चित्ते ⁹⁷ श्रीर 'काल कलिर्वा कलुषाशयो वा²⁷ इत्यादि:बाक्यों से श्राज के युग को कलिकाल कहा ही है ।

उन्नीसवें सगें में किन ने बहुन ही सरल ढंग से भानेकान्तवाद, स्वाहाद और उसके मान भंगों का वर्णन किया है। दाझीनिक वर्णन साधारणन: कठिन होने से पाठकों को सहज-आहा नहीं होता। पर यह प्रन्यकार की महान् कुशकता और भुविवता ही समझना वाहिए कि उनके इस प्रकरण को पढ़ने पर सबें साधारण पाठक भी स्वाहाद और भ्रानेकान्तवाद के गृह रहस्य से पिरिचन हो सकेंगे।

पूड्य का लक्ष्मण 'सत्त' (अस्तित्व) रूप माना गया है और 'सन्' को करवाद-जयय और प्रीज्य रूप कहा गया है' जिसका अधि-प्राय यह है कि प्रत्येक वस्तु प्रति समय अपने पूर्व रूप को छोड़िश्ची रहती है, नवीन रूप तो धारण करती है। फिर भी उसका मूख अस्तित्व बना रहता है। पूर्व रूप या आकार के परित्याग को ज्यय, नवीन रूप के धारण करने को उत्पाद और मूल रूप के बने रहने को प्रीज्य कहते हैं। स्वामी समन्त भद्र ने एक एट्टान्त देकर बतलाया है कि जब सोने के घट को मिटाकर उसका मुक्कट बनाया जाता है, तब घट के इच्छुक को शोक होता है, मुक्कट से अभिलायों को हथे होता है, किन्तु सुवर्णाधी के मध्यस्थ भाव रहता है। घटार्यी को शोक घटके विनाश के कारण हुआ, मुक्कटार्यों को हथे सुक्कट के करवाद के कारण हुआ। किन्तु सुवर्णाधी का मध्यस्थ भाव दोनों ही

सोमदेवसूरिने यशस्तिलकमें । २. समन्तभद्राचार्यने युक्तयनुशासनमें ।

३. सद्-द्रव्यलक्षणम् । उत्पादव्ययध्नौव्ययुक्तं मत् ।

⁽तत्वार्थसूत्र, अ०५, सू० २९-३०)

है कि वस्तु उत्पाद-स्थय और भ्रीध्य रूप से त्रयात्मक है'। जैनदर्शन के इस रहस्य को पत खिल ने अपने पात खल भाष्य में और इसा-रिख भट्ट ने अपने मीमामास्कोकवालक में स्वीकर हमा है, ऐसा निर्देश इस सर्ग के १७ वें रुठोक में मन्यकार ने किया है। पाठकों की स्नामकारी के खिए उक्त दोनों मन्यों के यहाँ उद्धरण दिये जाते हैं—

"दृत्यं हि तित्यमाकृतिरनित्या। सुवर्णं कथाचिदाकृत्या युक्तं पिएडो भवति, पिएडोकृतिमुपसृत्य स्वस्निकाः क्रियन्ते, रुचका-कृतिसुपसृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिसुपसृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनराङ्गः सुवर्णिएष्डः, पुनरपत्य आकृत्या गुक्तः खदिराङ्गारसदृशे क्रुप्डले भवतः। आकृतिरनित्या अन्या च भवति, द्रव्य पुनस्तदृव। आकृत्युपसर्वेन द्रव्यमेवाक्षित्रस्यते।"

(पात अल महाभाष्य शशर, योगभाष्य शशरे)

अर्थान्-प्रव्य नित्य है और आइति अनित्य है। मोना किसी आइति-विशेष से युक्त होने पर पिरव्ह कहळाता है। पिरव्ह रूप आइति का विनाश कर रुवक बनाये जाते हैं और रुवक्हर आइति का उपमर्ट्न कर कटक बनाये जाते हैं। पुनः उच्च क्रूप आइति का विनाश कर श्वस्तिक बनाये जाते हैं। पुनः उच्चे भी मिटा कर सुवर्ण पिरव्ह बना दिया जाता है। पुनः नयी आइति से वही खिर के अंगार-सट्श चमकते हुए कुल्ळ बन ताते हैं। इस प्रकार आइति ती अनित्य है, क्योंकि वह नये नये हुए धारण करती रहती है, किन्तु सुवर्ण कर प्रट्य ज्यों का त्यों बना रहता है।

मीमांसारलोकवार्त्तिककार कुमारिल भट्ट ने स्वामी समन्तभद्र

१. चट-मौल-सुवर्णार्थीः नाशोत्पादस्थितिष्वयम् । शोक-प्रमोद-माध्यस्य्यं जनां याति सहेतुकम् ॥ (आप्तमीमांसा क्लो० ५६)

का अपनुसरण करते हुए वस्तु का स्वरूप विनाश-उत्पाद अपीर स्थिति रूप से त्रयात्मक ही माना है। यथा---

वर्धमानकभङ्गे च रूचक क्रियते यदा । तदा पुर्विचिन होकः भीतिरचाप्युत्तार्थिनः ॥ हेमार्थिनस्तु माध्यस्य्यं तस्माद् वस्तु त्रवासकम् । (भीमासारखेकवार्तिक पु० ६९६)

अर्थात् जब सोने के वर्षमानक का विनाश करके रुचक बनावा जाता है, तब वर्षमानक के इच्छुक को तो शोक होता है और रुच-कार्थी को प्रसन्नता होती है। किन्तु स्वर्णार्थी के तो माध्यरूय भाव बना गहता है। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक वस्तु उत्पाद-ज्यय-प्रीठ्य हुए से प्रथानक है।

इस प्रकार वस्तु की निस्थानिस्थासम्कता और अनेक्श्यमीस्मकता को मिल करके जनदर्शनानुसार उसके चेतन और अचेतन ये दो भेद कर उनके भी उनर भेदों का वर्णन किया गया है। साथ ही का अस्तिस्य भी मशुक्तिक मिछ किया गया है। विस्तार के भय से यहाँ उसकी एची नहीं की जा रही है।

कामे बताया गया है कि यत: प्रत्येक वस्तु श्रामादि-निधन है और खपने खपने कारण-कलापों से उत्पन्न होती है, श्रात: उसका कोई कत्ती. सुच्टा या नियन्ता ईश्वरादिक भी नहीं है।

इस प्रकार इस सर्ग में अपनेक दार्शनिक तक्त्वों की चर्चा की गई है।

नीसर्वे सर्ग में अनेक सरल युक्तियों से अतीन्द्रिय ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध करके उसके घारक सर्वज्ञ की सिद्धि की गई है। इक्कीसर्वे सर्ग में शरद् ऋतु का साहित्यक दृष्टि से सुन्दर वर्णन करके झन्त में बताया गया है कि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के खन्तिम भाग में भ० महाबीर ने पावा नगरी के षपवन से सुक्ति-लक्ष्मी को प्राप्त किया।

बाईसवें सर्ग में बताया गया है कि भ० महावीर ने जिस विज्ञान-सन्तिलन धर्म का जगत के कल्याण के लिए उपदेश दिया था काल के प्रभाव से अपेर विस्मरण आदि से उसकी जो शोचनीय दशा आज हो रही है, उसपर यहां कुछ विचार किया जाता है। भ० महावीर के परवात् और अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाह स्वामी के समय तक तो जैन धर्म की गंगा एक प्रवाह रूप से ही बहती रही। किन्तु भद्रबाह स्वामी के समय में पड़े १२ वर्ष के महान दुर्भिष्ठ के परचात वह घारा दो रूप में विभक्त हो गई। उस समय जैन श्रमण संघ में २४ हजार साधु थे। सबको भद्रबाहु ने सुचित किया कि उत्तर भारत में १२ वर्ष के दुर्भिक्ष पड़ने की संभावना है, **अ**तः सर्व साधुक्षों को दक्षिण देश की कोर विहार कर देना चाहिए। उनकी घोषणा सुनते ही आधा संघ तो उनके साथ ्क्षिण देश की क्योर विहार कर गया। किन्तु आधा सब श्रावकों के कानुरोध पर स्थलभद्राचार्यके नेतल्यमें उत्तर भारत में रह गया। धीरे-धीरे दर्भिक्ष का प्रकोप बढ़ने लगा और साधव्यों को बाहार मिलने में कठिनाई अनुभव होने लगी। तब आवकों के अनुरोध पर माध्यों ने पात्र रख कर श्रावकों के घर से ऋाहार छाकर ऋपने निवास-स्थल पर जा करके खाना प्रारंभ किया। इसी के साथ ही उन्हाने वस्त्र और दरहा-दिक भी श्रात्म-रक्षा के लिए स्वीकार कर लिए खौर इस प्रकार निर्प्रत्य साधुत्रों में धीरे धीरे शिविखाचार का प्रवेश हो गया। जब १२ वर्ष के उपरान्त दुर्भिक्ष का प्रकोप शान्त दुव्या और दक्षिण की श्रोर गये हुए मुनि जन उत्तर भारत को छौटे, तो उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि इधर रहे हुए साधुर्कों में जो जिविलाचार का गया है, वह दूर कर वे लोग हमारे साव पूर्ववत् मिलकर एक संव के रूप में रहें। पर यह संभव नहीं हो सका। यनः वत्तर भारत में रहें साधुजन स्वेत-वस्त्र धारण करने लगे थे, अतः वे रवेनाम्बर साधुर्कों के नाम से कहें जाने लगे और जो नम्न निर्मन्य वेष के ही धारक रहे, वे दिगम्बर साधुर्कों के नाम से पुकारे जाने लगे।

यहां यह विशेष ज्ञातन्य है कि द्वेठ आचाराङ्ग सूत्र में भी साधु के लिए आचेलक्य ही परम धर्म बनाया गया है और अचेलक का मुख्य कर्ष पूर्ण नसता ही हैं। दिंठ शास्त्रों में राजा उदयन, ऋषभद्य आदि के भी नम्म मुनि होने का उन्लेश चसता हैं। स्वेठ स्थानाङ्ग सूत्र में भी माधुओं के अन्य कर्तन्यों के साथ नमता का विथान उपटब्ध हैं। भर नहावीर स्थय नम्म रहे थे।

बैदिक साहित्य 'म्हक् संहिता' (१०।१३६-२) में 'मुनयो बातरसनाः' का उल्लेख है। 'जाबाळोपनियद्' सूत्र ६ में 'यबाजानरून-यरो निर्मन्यो निष्परिमहः का उल्लेख सिळता है। महाभारत के स्वादिपत्रं रुळो० २२६-२७ में जैन सुनि को 'नम्न क्षपणक' कहा है। विद्यापुराण में 'नतो दिगम्बरो सुख्डो' (हनीयाँझ स्र० १७-१८) कहा

ते अचेने परिवृतिए तस्स गं निक्युस्स गो एव … (आचारांग १४१) तं वोतेञ्ज बल्यमण्यारे … … … (आचाराग २१०)

२. अस्सद्वाए कीरइ नग्गभावो जाव तमट्टं ब्रारीहेइ । (भगवतो सत्र. शतक ६ उटेशक ३३)

गया है और पद्मपुराण में भी 'दिगम्बरेण '.... जंन घर्मोपदेश.'
(प्रथम खण्ड रहो० १३) आदि रूप से दिगम्बर सुनियों का वर्णन किया गया है। भर्न हिर्द ने अपने बेराग्यशनक में जेन सुनि की 'पाणिपात्रो दिगम्बर.' लिखा है'। वाराहमिहिर-सहिता में जंन सुनियों को 'नगन' और आई-तदेव को 'दिग्वास' लिखा '। ज्योतिष प्रत्य गोलाध्याय में भी जैन माधुआँ के नग्न रहने का वल्लेख हैं'। सुद्वाराक्षस में भी इसी प्रकार का वल्लेख पाया जाता है।

बौढों के जातक घटकबा, जुल्खवमा (माश्मान) महावमा (माश्मा में अनुकार (माश्मान) सिंद्य मिकाय (राहाशा) हिक्याबदान (पुट १६४) क्यार दाठावसी (पुट १४) इत्यादि प्रत्यों में निर्मन्यों की नम्रता का क्ललेख है। चीनी यात्री किहियान कीर कुरनस्तांग ने भी अपने यात्रा-विवरणों में जैन मुनियों को नम्न खिखा है।

मधुरा का वर्णन करते हुए फाहियान ने लिखा है— ''सारे देश में कोई ऋधिवासी न जीवहिसा करता है, न मद्य पीता है और

१. एकाकी नि:स्पत्तः शान्तः, पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिम् लनक्षम: ॥

मतुँहरि वैराग्यशतके इली० ७० ।

२. नम्तान जिनाताँ विद: १९।६१॥

दिग्वासस्तरणो रूपवाश्च कार्योऽईता देव: ॥४५,५६॥

(बाराहमिडिर-संहिता)

नम्नीकृना मुण्डिता:। तत्र ४-५। (गोलाध्याय ३।८-१०)

४. देखो फाहियान यात्रा-विवरण पु॰ ४६, ६३ आदि ।

५ देखों—हुएनस्साम का मारत-भ्रमण पृ० १४३, ३२०, ५२६, ५३३, ५४४, ५७०, ५७३ आदि) न उद्युत प्याज खाता है, सिवाय चारहाल के। जनषद में न कहीं स्तागार (कसाईचर) है और न मद्य की दुकानें हैं। (काहिखान पु०२१)

यहां यह बात जातव्य है कि फाड़ियान ने ईसा की जौबी शती के अन्त में और हुएनत्सांग ने ईसा की सातवीं शती के प्रारम्भ में भारत की यात्रा की थी।

श्वेतास्वर साधु जब नगराधित उपाश्रयों में रहने छगे, ती उनका प्रभाव दिगस्वर साधुकों पर भी पड़ा ब्लीर उनमें से कितने ही बाचाओं ने कहना प्रास्थ्य कर दिया कि साधुकों को इस किल-काल में वन में नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार जब साधुकों में शियालाचार ने प्रवेश कर लिया, तो गृहस्थ आवकों के ब्याचार में भी शियालता क्या गई।

यद्यपि भद्रबाहु कं समय सक्ताटु चन्द्रगुप्त ने, उनकं पुत्र बिन्दु-सार ने और पौत्र खाशोक ने, तथा सम्प्रति खादि खानेक राजाओं ने अपने समय में जैन पर्यो को राज्याकथ दिया. उसका प्रमार किया और विक्रमादित्य कं समय तक उसका प्रभाव सार्थे भारत वर्ष पर रहा, तथापि इस खावि के सम्य ही बैदिक-सम्प्रदाय-मान्य स्नान् खाचसन खादि बाह्य कियाकाएड ने जैनधर्म में प्रवेश पा लिया और जैनों में खानि की उपासना. यद्धादिक ज्यन्तर देवों की पूजा, एवं पंचास्तासियेक खादि का प्रचार प्रारस्थ हो गया। जैनों का भी प्रभाव हिन्दुकों पर पड़ा और उनमें से यज्ञ-हिसा ने विदाई के की।

धीरे-धीरे दि० भौर खे० दोनों ही सायु-परम्पराभों में जरा-जरा से मतभेदों के कारण भानेक गण-गच्छ भादि के भेद उठ खड़े हुए,जिससे भाज सारा जैन समाज भानेक उपभेदों में दिभक्त हो रहा है। इन तथीन उपभेदों के प्रवर्तकों ने तो सदा से चली आई जिन-बिन्य-पूजन का भी गृहस्थों के लिए तिथेष करना प्रारम्भ कर दिया और कितनों ने वीतराग मूर्ति को भी वस्त्राभूणण पिराना प्रारम्भ कर दिया। कितन ही लोग जनता को पीने का पानी सुल्भ करने के लिए कुंखा, बावहां के खुदवाने आदि पुष्य कार्यों के करने से भी गृहस्थों को मना करने लगे और किसी स्थान पर लगी खाग में चिरे कीवां को बचाने के लिए उसे बुझाने को भी जल-अग्नि खादि की विराजना का नाम लेकर पाप बताने लगे।

इस स्थळ पर प्रन्थकार कहते है जो धर्म प्राणि मात्र पर मंत्री और कहणा भाव रखते का उपरेश रेता है, उसी के अनुवायी कुछ जैत लोग कहें कि साधु के सिवाय अग्य किसी भी प्राणी की ग्रहा करना पाप है. तो यह वड़े ही आश्यर्थ और दु:स्त्र की ही बात है। यथार्थ बात यह है कि जो जो च भी उत्तम श्रत्रिय राजाओं के द्वारा धारण करने योग्य था और अपनी सर्व कल्याण कारिणी निर्दोष प्रवृत्ति के कारण सबका हितकारी था, वही जैत धर्म आज व्यापार करने वाले उन वेश्यों के हाथ में आ ग्राया है जितका कि धन्या ही अपने माल को खरा और अग्न्य के माल को खोटा बताकर अपनी दुकान चलाना है।

इस प्रकार अपने हा।दक दु:ख पूर्ण चद्गारों को प्रकट करने हुए प्रन्यकार ने इस सर्ग के साथ ही अपने प्रन्य को समाप्त किया है।

अवतार-वाद नहीं, उत्तार-वाद

संमार में यह प्रया प्रचलित रही है कि जो कोई भी महापुरुष यहां पैदा हुआ, उसे ईश्वर का पूर्णावतार या अंझावतार कह दिवा गया है। भ० महावीर ने अपने उपदेशों में कभी अपने आपको ईश्वर का पूर्णया आरंशिक अवतार नहीं कहा. प्रत्युत अवतार वाले ईश्वर का निराकरण ही किया है। उन्होंने कहा-ईश्वर तो आपत्मा की शह अवस्था का नाम है। एक बार आत्मा के शह हो जाने पर फिर उसकी मंसार में अवतार लेने वाली अश्रद दशा नहीं हो सकती। जैसे धान्य के छिलके से अलग हए चावल का पुनः उत्पन्न हाना असंभव है, उसी प्रकार कर्म-मळ से रहित हुए शुद्ध जीव का संसार में मनुष्यादि के रूप से जन्म लेकर अशुद्ध दशा को प्राप्त करना भी अपसंभव है। जैन धर्म अवतारवादी नहीं. प्रत्युत उत्तारवादी है। ईश्वर का सनुष्य के रूप में अवतरण तो उसके हास या अवनित का चोतक है, विकास का नहीं, क्योंकि अवतार का अर्थ है नीचे उतरना। किन्तु उत्तार का अर्थ है—अपर चढना, अर्थात् आत्म-विकास करना। अवतारवादी परम्परा में ईश्वर या परमात्मा नीचे उतरता है, मनुष्य बनकर फिर सर्व साधा-रण संसारी पुरुषों के समान राग-द्वेष मयी हीन प्रवृत्ति करने लगता है। किन्तु उत्तारवादी परम्परा में मनुष्य अपना विकास करते हुए ऊपर चढ़कर ईश्वर, भगवान या परमात्मा बनता है। जैन धर्मने पूर्ण रूप से विकास को प्राप्त आत्माको ही भगवान या परमात्मा कहा है, सांमारिक प्रपच करने वाले व्यक्ति को नहीं।

भाग महावीर ने स्वयं ही बतलाया कि सर्व साधारण के समान में भी अमादि से संसार में जन्म-मरण के वरूकर रुगाता हुआ का रहा था। इस पुरा के ब्यादि में में ब्यादि सहापुरुष ख्रध्यभदेव का पीत्र और खादि समाद का पुत्र था। किन्तु अभिमान के वश्च में होकर मेंने अपनी उस सानव-पर्याय का दुरुपयोग किया और किर उत्थान-पत्र की अनेक अवव्याओं का प्राप्त हुआ। पुतः अनेक भवा से उत्तरोत्तर आस्त-विकास करते हुए आत इस अवव्या को प्राप्त का ही अते सका हैं। क्या से से समाव ही स्वार में स्वाप्त कर के हुए से जैसे बन सकते हैं। यही कारण है कि जैनवर्ष ने जान का कर्ता-

धर्ता ईश्वर को नहीं माता है, किन्तु उद्धर्ता पुरुष को ही ईश्वर माना है। जैन पर्म का कसंबाद सिद्धान्त यही उपदेश देता है कि— ''आस्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता है। सुमार्ग पर चलने वाला आस्मा अपना मित्र है और कुमार्ग पर चलने वाला आस्मा अपना शत्रु है '।

भ० महावीर के पूर्व भव

भगवान् महाबीर का भिल्छ गाज के भव से लेकर अनितम भव तक का जीवन-काल उत्थान पतन की अनेक विसमय-कारक करण कहानियों से भरा हुझा है। वर्तमान काल्कि समस्त तीर्थहुरों में से केवल भ० महाबीर के ही मबसे अधिक पूर्व भवीं का वर्णन जंन शास्त्रों में टेखने को मिलता है। दिगम्बर और रवेताम्बर दोनों ही सम्बद्धायों में उनके पूर्व भव का श्री गरीक पिस्छराज के भव से ही पाया जाता है। संक्षेप में भगवान् का यह सर्व जीवन-कथानक इस मकार है:—

भ० ऋषभदेव के पौत्र और भरत चक्की के पुत्र सरीचि होने से दो भव पूर्व भ० महाबीर का जीव हमी जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह चेत्र में भीना नदी के उत्तर किनादे पर पुरुकटावती देश की पुरव्ही-किणी नगरी के समीपत्रती वन में पुरूष्ता नामक का भीछ था। गन्नव्य मार्ग भूछ जाने के कारण एक दिगम्बर मुनिराज उस वन में विचर रहे थे कि पुरूष। भीछ ने दूर से उन्हें जाना हुआ। देखकर

१ अप्पाकत्तां विकत्ताय दुहाण व सुहाण व । श्रप्पा मित्तर्गमतं च दूष्पद्रिम सूर्ष्याद्रको ॥

डरीर हिरिण समझ कर मारने के लिए ज्यों ही धनुष-बाण संभाला कि उसकी नंत्री ने यह कह कर उसे मारने से रोक दिया कि पिने ने वन के देवता धूम रहे हैं, इन्हें मत मारो।' भील ने समीप जाकर देवा, तो उसका अम दूर हुआ डीर अपनी मूल पर परचा-ताप करते हुए उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार कर उनसे आला-कल्याण का उपाय पूछा। मुनिराज ने उसे मया, मांस और मधु-सेवन के त्याग रूप प्रत का उपदेश दिया, जिसे उसने जीवन-पर्यन्त पालन किया और आयु के समाप्त होने पर वह सीधर्म सर्वो में एक सागर की आयु का धारक देव हुआ। वहां के दिव्य मुख्यं को भोग कर वह इसी भरत चेत्र की अपनेश्या नगरी में भ० ऋषभदेव का पीत्र और आयु का धारक देव हुआ। वहां के दिव्य मुख्यं को भोग कर वह इसी भरत चेत्र की सराम सराम स्वा प्रत हुआ। जिसका नाम मरीवि रखा। या।

जब अ० ऋषभदेव संसार, रेह और भोगों से विश्क होकर दीक्षित हुए, नव अन्य चार हजार महापुरुषों के साथ मरीचि ने भी भगवान की भिन्न-वाब जित-रीक्षा को घारण कर लिया। अ० ऋषभ-देन ने दीक्षा लेने के साथ ही छह सास के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर भीन घारण कर लिया। इतके दीक्षित हुए ये सभी छोग उनका अनुकरण करते हुए कुछ दिन तक तो भूख-प्यास की बाधा सहत करते रहे, किन्तु जब उतसे भूख-प्यास का कछ नहीं महा गया, तो वे लोग वन के फळ फूळ खान लगे। यन-देवताओं ने उत होगों से कहा कि दिगम्बर येच धारण करने वाल मुनियां का यह सागे नहीं है। यदि तुम छोग मुनि धर्म के कठिन साग पर नहीं चल सकते, तो वापिस घर चले जाखा, या अस्य येच धारण कर लो, पर दिगम्बर वंच सं रह कर एमी जन्माग-प्रमुचि करना ठीक नहीं है। ये लोग भरत चली के भय से अपरा चर तो नहीं गये, किन्तु नाना वेगों को भय से अपरा चर तो नहीं गये, किन्तु नाना वेगों को

धारण करके वन में रहते हुए ही अपना जीवन-यापन करने लगे।

जब भ० ऋपभरेव को केवल जान प्रगट हो गया, तब उन्होंने उन भ्रष्ट हुए तपिख्यों को सम्बोधन कर मुनि-मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। जिससे कानेक तपिख्यों ने पुनः दीक्षा महण कर लो। किन्तु तब तक सीचि कार्यने कानेक शिष्य बना कर उनका मुखिया बन चुका था, खतः उसने जिन-दीक्षा को खंगीकार नहीं किया खौर जब उसे भरत के प्रश्न करने पर ऋपभरेव की दिव्यव्यनि से यह ज्ञात हुआ। कि में ही खागे चलकर इस गुग का व्यन्तिम तीर्षहुर होने वाला हूँ, नव तो बह और भी उन्मन होकर विषयने लगा और स्व-मत-गढ़नत तन्त्रों का उपदेश देकर एक नये हो मत का प्रचार करने लगा, जो कि कार्ग जाकर कपिल-शिष्य के नाम पर काणिल या सांख्य मत के नाम से संसार में क्याज तक प्रसिद्ध है। सरीचि का यह भ भ० महाबीर के ज्ञात पूर्व भवों की दृष्टि से

ययपि मरीचि जीवन-भर उत्मार्ग का प्रवर्तन करता रहा, तथापि कुनप के प्रभाव से भर कर वह पांचवे जहा स्वर्ग में जाकर देव उत्कर हुआ। यह भर महाबीर का चौधा भव है। वहां से चल कर पांचवे अब में वह इसी मण्य लोक में जिटल नाम का जाहण हुआ।। पूर्व भव के हद संस्कारों से इस भव में भी वह अपने पूर्व-प्रचारित कपिल मत का ही साधु बनकर तपस्या करने हुए उसका प्रचार करता रहा और छाटे भव में पुतः सीचमें स्वर्ग में उत्पक्त होकर देवपद पाया। वहां से चयकर सातवें भव में पुस्पमित्र नाम का जाहण हुआ और परिजाक बनकर उसी मिन्या-मत का प्रचार करता रहा। जीवन के अन्त में मर कर आठवें भव में पुतः सौचमें स्वर्ग का देव हुआ। नवें भव में वहां से चयकर सुतः इसी मृतः स्वर्ग महावा हुआ और परिजाक बनकर उसी मिन्या-मत का प्रचार करता रहा। जीवन के अन्त में मर कर आठवें भव में पुतः सौचमें स्वर्ग का देव हुआ। नवें भव में वहां से चयक कर पुतः इसी मृत्रल पर अवतीण हुआ और जाहण कुल में जन्म लेकर अग्निसह नाम का धारक उस परिस्ति हुआ। इस भव में भी उसने उसी कपिल सत

का प्रचार किया और भर कर दशवें भव में सनत्कुमार स्वर्ग का देव हुआ। ग्यारहवें भव में वह पुन: इसी भूतल पर जन्म लेकर अप्रि-भित्र नाम का ब्राह्मण हुआ और पिब्राजक बनकर उसी कपिछ भत का प्रचार कर जीवन के अन्त में मरा और बारहवें भव में माहेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ। वहां से चय कर तेरहवें भव में भारद्वाज नाम का ब्राह्मण हुआ और उसी कपिल मत का प्रचार करता हुआ। मर कर चौदहवें भव में पुन: माहेन्द्र स्वर्ग का देव हुआ।

इस प्रकार मरीचि का जीव लगातार आगे के पांचों मनुष्य-भवों में ऋपने पूर्व हुढ संस्कारों से प्रेरित होकर उत्तरोत्तर मिध्यात्वका प्रचार करते हुए दर्मीच दर्शनमोहनीय के साथ सभी पाप कर्मी का उत्कृष्ट बन्ध करता रहा, जिसके फलस्वरूप चौदहवें भव वाले स्वर्ग से चयकर मनुष्य हो तिर्यग्योनि के असंख्यात भवों में छगभग कल कम एक कोडाकोडी सागरोपम काल तक परिश्रमण करता रहा। अतः इन भवों की गणना प्रमुख भवों में नहीं की गई है। तत्प्रश्चात कर्म-भार के इलके होने पर मरीचिका जीव गणनीय पन्टहवें अब में स्थावर नाम का बाह्मण हुआ। इस भव में भी तापसी बनकर आरे भिथ्यासत काप्रचार करते हुए मरण कर सोलहवें भव में माहेन्द्र स्वर्गका देव हुआ। यहां से चय कर सत्तरहवें भव में इसी भरत चेत्र के मगध-देशान्तर्गत राजगृह नगर में विश्वभूति राजा की जैनी नामक स्त्री से विपुल पराक्रम का धारक विश्वनन्दी नाम का पत्र हक्या। इसी राजा विश्वभृति का विशास्त्रभृति नामक एक छोटा भाई या, उसकी लक्ष्मणा स्त्री से विशाखनन्दी नाम का एक मूर्ख पुत्र उत्पन्न हुआ। किसी निमित्त से विरक्त होकर राजा विश्वभूति ने अपना राज्य छोटे भाई को और युवराज पद अपने पुत्र विश्व-नन्दी को देकर जिन-दीक्षा भारण कर ली।

तदनन्तर किसी समय, युवराज विश्वनन्दी नन्दन-वन के

समान मनोहर अपने उद्यान में अपनी सियों के साथ कीडा कर रहा था। उसे देख कर ईर्ष्या से सन्तम चित्त हए विशासनन्दी ने अपने पिता के पास जाकर कहा कि उक्त उद्यान समे दिया जाय. अधन्यथा मैं घर छोड़कर चला जाऊंगा। पुत्र-मोह से प्रेरित होकर राजाने उसे देने का आध्वासन दिया और एक पहयन्त्र रचकर विश्वनन्दी को एक शत्रु-राजा को जीतने के लिए बाहिर भेज दिया श्रीर वह उद्यान अपने पुत्र को दे दिया। विश्वनन्दी जब शत्र को जीत कर वापिस ऋाया और उक्त घडयन्त्र का उसे पता चला, तो वड आग-वब्रुला हो गया और विशासनन्दी को मारने के लिये उद्यत हुआ। भय के मारे अपने प्राण बचाने के लिए विशाखनन्दी एक कैंग्र के पेड पर चढ गया। विश्वनन्दी ने हिला-हिलाकर उस कैंय के पेड़ को जड़ से उखाड़ ढाला और विशाखनन्दी को मारने के लिए ज्यों ही उद्यत हुआ। कि विशाखनन्दी वहांसे भागा और एक पाषाण-स्तम्भ के पीछे छित्र गया। विश्वनन्त्री ने उसे भी बसाड फेंका और विशासनन्दी अपने प्राण बचाने के लिए वहां से भी भागा। उसे भागते हुए देखकर विश्वनन्दी को करुणा के साथ विरक्ति-भाव जागत हुआ। ऋौर राज-भवन में न जाकर वन में जा सम्भूत गुरु के पास जिन-दीक्षा धारण कर ली।

दीक्षा-प्रदाण करने के प्रचान वे उस तप करते हुए विचरने छगे और विद्वार करते हुए किसी समय वे गोचरी के लिए नगर में ब्यों ही प्रविच्छ हुए कि एक सदा: प्रमुता गाय ने थका देकर विश्व-त्रम्दी ग्रुति को गिरा दिया। उन्हें गिरता हुआ देख. कर अप्वानक सामने आये हुए विशाखनन्दी ने ट्यंग-पूबंक कहा—'शुन्हारा वह पेड़ और खन्मे को उद्याइ फेंक्रने काला पराक्रस अब कहां गया?' उसका यह ज्यंग बाण मुनि के हृदय में प्रविष्ट हो गया और निदान किया कि यदि मेरी तपस्या का कुछ कक्ष हो—तो मैं इसे अगले भ्रव में मारू । तपस्या के प्रभाव से मुनि का बीव अठारहवें अब में महा-मुक्त स्वर्ग में देव हुआ। आयु के पूर्ण होने पर वह वहां से आकर इसी भरत चेत्र में उन्नीसवें भव में त्रिष्ट नाम का प्रथम नारायण कुआ और विशास्त्रन्दी का जीव अगेक कुशीनयों में परिभ्रमण कर अश्वप्रीव नाम का प्रथम प्रतिनारायण हुआ। पूर्व अब के बैर भाव के संकार से एक की का निमित्त पाकर होनों में प्रमासान युद्ध हुआ और त्रिष्ट ने अश्वप्रीय को मारकर एक छत्र त्रिक्त राज्य-सुक्त और त्रिष्ट ने अश्वप्रीय को मारकर एक छत्र त्रिक्त राज्य-सुक्त सीरा। आयु के अन्त में सरकर बीसवें अब में त्रिष्ट का जीव सातवें नरक का नारकी हुआ।

बहांसे निकल कर बहु इकीसबें भव में सिंह हुआ। और हिंसा-जिनत पाप के फल से पुनः बाईसबें भव में प्रथम नरक का नारकी उत्पन्न हुआ।। बहांसे निकल कर तेईसबें भव में फिर भी सिंह हुआ।।

इस सिंह के अब में वह किसी दिन भूख से पीहित होकर एक दिएंग को पकड़कर जब खा रहा था. तभी आयबश हो चारण पुति चाला पात्री का हात्र अप के सम्बोधन किया— हे कथ्य, तने जो जिपुद्धनारायण के अब में राज्यासिक से पोर पाप उपार्वन किया, उसके फळ से नरकों में पोर यातनाएं सही हैं और अब भी तू इस हम हमें का शाणियों को सार-मार कर छोर पाप उपार्वन कर रहा हैं ? प्रतिगत के बचन सुनकर सिंह को जाति-समण हो गया और वह अपने पूर्व अबों को याद करके हरिल को छोड़कर असों से आंस् कहाते हुए निश्च कर बहा हो गया। उन जारण मुनियों ने बसे निकट अब्ब खीर लानिया तीई कर होनेबाळा देख कर पासे का उपदेश दिया। उनके बचनों को सिंह ने शानिय पूर्वक सुना और प्रदुष्ठ होकर उनकी तीन परिस्तुणा हैकर उनके पूर्व हुता और प्रदुष्ठ होकर उनकी तीन परिस्तुणा हैकर उनके

चरणों में ज्यपना शिर रखकर बैठ गया। मुनिराज ने उसे पशु मारने जीर सास खाने का त्याग कराया जीर उसके योग्य आवक अनों का उपदेश दिया। उन मुनिराजों के चले जाने पर सिंह की प्रश्नुत्ति एक इस बदल गई। उसने जीवों का मारना जीर मांस का खाना डोव विषय जीर अपन्य आहार का मिलना सम्भव नहीं या, अतः वह विया जीर अपन्य आहार का मिलना सम्भव नहीं या, अतः वह निराहार रह कर विचरने लगा। अन्त में संन्यास-पूर्वक प्राण छोड़ कर प्रथम स्वर्ग का देव हुआ। यह भ० महावीर का गणनीय चीवीस-वांभव है। तेईसवें सिंह भव तक उनका उत्तरोत्त रातन होता गया और सुनि-समागम के परचान उनके उत्थान का श्री गरोज़ हुआ।

सौधर्म स्वर्ग से चयकर वह देव इस भूतल पर अवतीर्ण हन्ना क्योर पद्मीसवें भव में कनकोज्ज्वल नाम का राजा हुआ।। किसी समय वह सुमेरु पर्वत की बन्दना को गया। वहां पर उसने एक मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना श्रीर संसार से विरक्त होकर मुनि बन गया। अन्त में समाधि-पूर्वक प्राण-त्याग करके छव्वीसवें भव में लान्तव स्वर्ग का देव हुआ। वहां से चयकर सत्ताईसवें भव में इसी भरत क्षेत्र के सार्कत नगर में हरिषेण नाम का राजा हन्ना। राज्य सल भोग कर और जिन-दीक्षा प्रहण करके अहाईसर्वे भव में वह महाञ्चक स्वर्गका देव हुआ। वहांसे चय कर उनतीसवें भव में धातकी खरहस्य पूर्व दिशा-सम्बन्धी विदंह चेत्र के पूर्व भाग-स्थित पुरुद्दरीकिणी नगरी में प्रियमित्र नामका चकवर्ती हुआ। अन्त में जित-दीक्षा लेकर वह तीसवें भव में सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ। वहां से चयकर इकतीसने भन में इसी भूमएडल पर नन्दन नाम का राजा हका। इस भव में उसने प्रोध्ठिल मुनिराज के पास धर्म का स्बह्म सना और जिन-दीक्षा धारण कर छी । तदनन्तर बोहज कारण भावनात्रों का चिन्तवन करते हुए उसने तीर्थ कर प्रकृति का बन्ध किया और जीवन के अन्त में समाधि-पर्वक प्राण छोड़कर बत्तीसर्वे भव में अच्यत स्वर्ग का वह इन्द्र हुआ। बाईस सागरोपम काल तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जीवन के समाप्त होने पर वहां से चयकर वह देव अन्तिम तीर्थक्रर महावीर के नाम से इस वस्था पर अवतीर्ण हन्ना। यह महावीर का गणनीय वेतीसकां ਮਰ है।

इस प्रकार दिगम्बर-परम्परा के अनुसार भ० महावीर 🕏 अन्तिम ३३ भवों का बत्तान्त मिलता है। खेतान्वर-परम्परा में भग-वान के २० ही भवों का वर्णन देखने को मिलता है। उनमें प्रारम्भ के २२ भव कळ नाम-परिवर्तनादि के साथ वे ही हैं जो कि दि० परम्परा में बतलाये गये हैं। शेष भवों में से कुछ को नहीं माना है। यहां पर स्पष्ट जानकारी के लिए दोनों परस्पराओं के अनसार सक महावीर के भव दिये जाते हैं :---

दिगम्बर-मान्यतानुसार-

१. पुरूरवा भील

२. सीधर्म देव

3. महीचि

४. ब्रह्मस्वर्गकादेव

४. जटिल बाह्यण

६. सीधमं स्वर्ग का देव

७. पच्यमित्र ब्राह्मण प. सीधर्म स्वर्ग का देव

६. अग्निसह त्राह्मण

१०. सनत्कुमार स्वर्ग का देव

११. अग्निमित्र ब्राह्मण

श्वेताम्बर-मान्यतानुसार-

१. नयसार भिल्लराज

२. सौधर्म देव ३ सरीचि

८. ब्रह्म स्वर्गका देव

४. कौशिक ब्राह्मण

६. ईशान खर्ग का देव

७. पुष्यमित्र बाह्मण

 सौधर्म देव ६. अम्युद्योत ब्राह्मण

१०. ईशान स्वर्गका देव

११. अग्निभृति ब्राह्मण

१२. माहेन्द्र स्वर्गका देव	१२. सनलुमार स्वर्ग का देव		
१ ३. भारद्वाज ब्राह्मण	१३. भारद्वाज ब्राह्मण		
१४. माहेन्द्र स्वर्ग का देव	१४. माहेन्द्र स्वर्ग का देव		
त्रस-स्थावर योतिके श्रमंख्यात भव श्रन्य श्रनेक भव			
१४. स्थावर जाह्मण	१४. स्थावर ब्राह्मण		
१६. माहेन्द्र स्वर्गका देव	१६. ब्रह्म स्वर्गका देव		
)१७. विश्वभृति (मुनिपद्में निदान)		
१८. महाशक स्वर्ग का देव	१६. महाश्रक स्वर्गका देव		
१६ त्रिप्रष्ठ नारायण	१६ त्रिपुष्ठ नारायण		
२०, सातवें नरक का नारकी	२०. सातवें नरक का नारकी		
२१ सिंह	२१. सिंह		
२२. प्रथम नरक का नारकी	२२. प्रथम नरक का नारकी		
२३. सिंह (सृग-भक्षण के समय			
चारण मुनि द्वारा संबोधन)	×		
२४. प्रथम स्वर्गका देव	×		
२४, कनकोज्ज्वल राजा	×		
२६. लान्तव स्वर्गका देव	×		
२७. हरियेण राजा	×		
२८. महाशुक स्वर्गका देव	×		
२६ प्रियमित्र चक्रवर्ती	२३ पोट्टिल या प्रियमित्र चक्रवर्ती		
३ ०. सहस्रार स्वर्ग का देव	२४. महाशुक्र स्वर्ग का देव		
३१. नन्द राजा (तीर्थङ्करप्रकृति-	२४. नन्दन राजा (तीर्थङ्करप्रकृति-		
काबन्घ)	काबन्ध)		
३२. भाच्युत स्वर्गका इन्द्र	२६. प्राणत स्वर्गका देव		
३३. स॰ महावीर	२७. भ० सहावीर		

दोनों परम्पराच्यों के अनुसार भ० महावीर के पूर्व भवों में

छह भवों का अन्तर कैंसे पड़ा ? इस प्रश्न के समाधानार्थ दीनों परम्पराज्या के ज्ञागमों की छान-बीन करने पर जो निष्कर्ष निकला, वह इस प्रकार है—

भः महाबीर दोनों परस्पराओं के अनुसार बाईसवें अब में प्रथम नरक के नारवी थे। खेन परस्परा के अनुसार वे वहां से निकल कर पोट्टिल या प्रियमित्र चक्रवर्ती हुए। दिन परस्परा के अनु-सार नरक से निकल कर चक्रवर्ती, बल्टेब, वासुदेव और प्रतिवासु-देव नहीं हो सकते हैं। छक्खडागमसुत्त की गति-आगति चूळिका में स्पष्ट रूप से कहा है—

तिसु उबरिमासु पृढवीसु ऐरस्या णिरयादो उबहिद समाणा किंद गादीको आगण्डति (सू० २९७) दुवे गदीको आगण्डति (सू० २९७) सुवे गदीको आगण्डति-तिरिक्तार्य मामुस्मादि चेव (सू० २९०) । मामुस्सु उववरणण्डति-तिरिक्तार्य मामुस्सु अद्योगित । केद्रसामिणिकोद्दियणाणुदुप्पारति, केद्र सुदणाणुदुप्पार्थति, केद्र सुदणाणुदुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थति, केद्र सम्मामिण्डलमुप्पार्थित। वा बळटेवचं णो वासुटेवच्युप्पार्थित। यो चक्रविच्चाप्पार्थति। वेद्र तिव्ययस्मपुप्पार्थित, केद्रमत्यवद्य होद्रूप्प सिक्कवित बुज्जवि सुन्चिति परिणिज्वाणयति सञ्बदुक्खाण संत परिविजाणिति। (सू०२९०)

इसका ऋषं इस प्रकार है— प्रश्न—ऊपर की तीन पृथिवियों के नारकी वहां से निकल कर कितनी गतियों में खाते हैं ? क्या-ते गतियों में खाते हैं — तिर्वगति में खीर महुख्याति में। महुख्य गति में महुच्यों के उत्पन्न होने वाले महुख्य खारह पदों को उत्पन्न करते हैं —कोई खाभिनिवोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्वतल्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मन-पर्यवज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवळ्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यम्पिययात्व उत्पन्न करते हैं, कोई समय उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, कोई सयम उत्पन्न करने हैं। किन्तु वे जीव न बळदेवत्व को उत्पन्न करते हैं। वासुदेवत्व को और न चक्र-बर्तित्व को उत्पन्न करते हैं। कोई तीर्थङ्कर उत्पन्न होते हैं, कोई अनक्कुम होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, पिनिवीण को प्राप्त होते हैं और सर्व हु खो के अन्त होने का अनुभव करते हैं। (वद्यवहाराम प० ६ प० ४६२)

इस आगम-प्रमाण के अनुसार नरक से निकला हुआ जीव चक्रवर्ती नहीं हो सकता है और न वासुदेव, बलदेव ही। किन्तु ये तीनों पदवी-धारी जीव स्वर्ग से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

अतएव दि० परम्परा के अनुसार वाई मवें भव के बाद भ० महाबीर का जीव सिंह पर्याय में उराज होता है और उस भव में चारण मुनियों के हिए पर्याय को प्रताप होता है जोर उस भव में चारण मुनियों के हुए उनतीसने भव में चकन में होता है, यह कवन सर्वया युक्ति संतत है। किन्तु खे० परम्परा में प्रयम नरक से निकळ कर एक दम चक्रवर्ती होने का वर्णन एक आश्चर्यकारी ही है। सास कर उस दशा में—जब कि उससे भी पूर्व भव में बह सिंह था, और उससे भी पूर्व बीसवें भव में वह सप्तम नरक का नारही था। तब कहां से उस जीव ने चक्रवर्ती होने योग पूर्य का उपांजन कर खिया ? खेताच्यर परम्परा में सिंह को किसी साधु-हारा सम्बोधित कर सम्मार्ग की और उसाय एगा याग होता, तो उसके नरक जात का अवस्था ही नहीं आता। खेल आगमों की छोन-बीन करने पर भगवती

सूत्र के १२ वें शतक के ६ वें उद्देश के अनुसार प्रथम नरक का नारकी वहांसे निकल कर चक्रवर्ती हो सकता है। उसका आधार इस प्रकार है—

(प्र०) के नरदेवा ? (उ०) गोयमा, जे रायाक्रो चाउरंत-चक्कवट्टी उपपरणसम्बन्ध-रयणपटाणा नविनिहिष्डणो समिद्धकोसा बत्तीसं रायवरसहस्सागुयातममा सागर-वरमेहङाहिब्दणो मसु-सिस्दा से णरदेवा । (प्र०) णरदेवा णं भंने कक्षोहिंतो जववज्जति ? किंठ ग्रेपडए० पुच्छा । (उ०) गोयमा, ग्रेपडणुटितो वि जववज्जति, णो तिरि० णो मस्गु० देवेहिंतो वि जवज्जति । (प्र०) जइ नेरइए-हिंतो उववज्जति . कि रयणपद-पुडिस्गेएडएर्डितो जववज्जति, जाव क्राहे सत्तमपुडिवरोएडएर्डितो जववज्जति ? (उ०) गोयमा, रयणप्य-हापुडिवरोएडएर्डितो जववज्जति । (प्रग्वति क्षाव नो क्राहे सत्तम-पुडिव-सुरह्युद्धिवरो जववज्जति । (भगवतीसुज, भा० ३, पु० २६६)

इसका अर्थ इस प्रकार है— प्रश्न—तर-देव कीन कहलाते हैं ? उत्तर—गीतम, जो राजा चातुरन्त-चक्रवर्ती हैं, जिन्हें चक्ररन्त प्राप्त हुआ है, जो नव निधियों के स्वामी हैं, जिनका कोय (खजाना) समृद्ध है, बत्तीस हजार राजा जिनके पीछे चल्यों के इन्द्र तर-देव कहलाते हैं। प्रश्न—सगवन, ये नरदेव कहां से आकर उत्तम होते हैं हैं जर-गीतम, ये नर-देव नरक से भी आकर उत्तम होते हैं और देवगित से भी आकर के उत्तम होते हैं। किन्तु तिर्वमित और मतुष्यगित से आकर उत्तम नहीं हैं। प्रश्न—सगवन, यदि नरक से आकर उत्तम होते हैं, तो या रतन्त्रमा पृथिवी के नार-कियों से आकर उत्तम होते हैं, क्या शकीश वावन अध्यक्तन सप्तम पृथिवी के नार-कियों से आकर उत्तम होते हैं। इत्तर—गीतम, रत्नप्रमा पृथिवी के नार- नारिकयों से आकर उत्पन्न होते हैं, शेष नीचे की छह पृथिवियों के नारिकयों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

भगवती सुत्र के उक्त आधार पर प्रथम नरक से निकला जीव चक्रवती हो सकता है, ऐसी रवे० मान्यता भले ही प्रमाणित हो जाय, किन्तु, जब नारायण, बल्देव जंसे अर्धचिकयों की ल्यांच देवगति से ही बतलाई गई है, तब पूर्ण चक्रवर्ती सम्राट् की उत्पत्ति नरक से निकलने बाले जीव के कैस सम्भव है ?

हात होता है कि श्वेताम्बर परम्परा के आवायों ने अपने आताम की मान्यता के अनुसार ही उक्त अवों का निर्धारण किया है। यहां इतनी बात भ्यान देने के योग्य है कि पट्साइताम पुस्तकारुह होने के भी छनअग तीन सी वर्ष बाद भगवती सुत्र आदि एक अगम तीन सी वर्ष बाद भगवती सुत्र आदि एक अगम तीन सी वर्ष बाद भगवती सुत्र आदि एक अगम तीन सी वर्ष बाद भगवती सुत्र आदि सं अहार के स्वराध के प्रधान का प्राचीन बात की स्थान पुस्तकारुह हुए हैं। अतः यह्र खरडामम का प्राचीन बात विचार की पर स्वराध में एक बात आदि मां की किया की उत्ति विचार की स्वराध में पर बात आदि की सामती है, जबकि स्वराध की उत्ति विचार की स्वराध की स्वरा

प्रस्तुत काव्य में भ० महाबीर के पूर्व भवों का वर्णन बहुत ही

सुन्दर ढंग से स्वारइवें सर्गे में किया गया है। उहां नक मेरा क्यनु-मान है कि यह पूर्व भवों का वर्णन गुणभद्राचाये-रिचत उत्तरपुराण के आधार पर किया गया है। इसके परवर्ती सभी दि० प्रन्यों में उसी का अध्युत्तरण इंप्टिगोचर होता है।

सिद्धानन प्रत्यों में श्वायोपशिमिक सम्यक्त का उत्कृष्ट काल ख्यासठ सागरोपम बतलाया गया है। सिंह के जिस अब में चारण मुनियों ने उसे संबोधन करके सम्यक्त को महण कराया, वह बरा-बर अितम सहावीर के भव तक बता रहा। अर्थात् छगातार १० मव तक रहा ब्येर इस प्रकार छायोगशामिक सम्यक्त की उत्कृष्ट स्थित पूरी करके वह धायिक सम्यक्त रूप से परिणत हो उसी मब से प्रज्ये मिक-ग्रीम का कारण बना।

पूर्व भवों के इस वर्णन से यह सहज ही झात हो जाता है कि आभ्यात्मिक विकास की पराकाष्ट्रा पर पहुँचना किसी एक ही भव की साधना का परिणाम नहीं है किन्तु उसके छिए छगातार अनेक भवों में साधना करनी पकती है।

भ॰ महावीर के जन्म समय भारत की स्थिति

भ० महावीर के जन्म से पूर्व अर्थान् आज से श्रद्धाई हजार वर्ष के पहिले भारत वर्ष की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति कैसी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन प्रसुत काठ्य के प्रथम मन्ने के उत्परार्ध में किया गया है। उत्पर्साम आक्षणों का बोछ बाछ। था, सारी धार्मिक सामाजिक और आर्थिक ट्यवस्था की बागडोर उन्हीं के हाथों में थी। उस समय उन्होंने यह प्रसिद्ध कर रखा था कि 'यज्ञार्थमेते प्रश्चो हि सुण्डा. ", और बेदिकी हिंसा हिंसा न सविन " अशीन ये सभी पछु यक के लिए आजा ने रचे हैं, और वेद-विधान से की गई हिंसा हिंसा नहीं है, बर्पर वेद-विधान से की गई हिंसा हिंसा नहीं है, बर्पर वुस्तर्ग-प्राप्ति का कारण होने से पुष्य है। वनकी इंस जिंक का लोगों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा, कि लोग यहां में केवल बकरों का ही होम नहीं करते थे, वरन मेंसा, घोड़ा और गाय तक का होम करते लगे थे। यही कारण है कि वेदों में अश्वसेध, मोमेव आदि नामवाले यहां का विधान आज भी देखने में आजात है। अमें के नाम पर यह हिंसा का नाएडवन्ट्य अपनी चरम सीमा पर पहुँग गाया था, जिसके कलसक्त न तरोब यह तक होने लगे थे-जितमें के रूपने मान साम पढ़िया जाता है। अपने के उत्तेख आजहीं वना दिया जाता ॥ । इस विधय के उत्तेख आने मन्त्रों माने में पाये जाते हैं। गीताइह्य जैसे प्रस्त के हे लिये असंस्थ पड़ा हिंसा होती थी,इसके प्रमाण मेचदूत काव्य आदि बनेक प्रमुक्त होती थी,इसके प्रमाण मेचदूत काव्य आदि बनेक प्रमोध मिलते हैं।"

भ० महाबीर ने इस हिंसा को दूर करने के लिए महान् प्रयत्न किया खौर उसी का यह सुफल है कि भारत वर्ष से याझिकी हिंसा सदा के लिए बन्द हो गई। स्वयं लोक-मान्य निलक ने स्वीकार

(मनुस्मृति ५। २२-३६-४४)

१. यजार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । यज्ञस्य मृत्यं सर्वस्य तस्माद यज्ञे वजोऽवधः ॥

यज्ञार्षं बाह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृग-पक्षिणः ।

२. या वेदविहिता हिंसा नियताऽस्मिश्चराचरे । अहिंसामेव तां विद्याहे दाहमों हि निवंभी ॥

देखो-यशस्तिलकचम्पू, पूबार्ध।

किया है कि 'इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से बिटाई छे जाने का श्रेय जैन धर्म के ही हिस्से में है। प्रस्तुत काव्य में इस विषय पर उत्तम प्रकाश हाला गया है. जिसे पाठक इसका स्वाध्याय करने पर स्वयं ही अनुभव करेंगे।

भ० महाबीर के पर्वसारे भारत की सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो रही थी। ब्राह्मण सारी समाज में सर्वश्रेष समझा जाता था। उसके लिए ब्राह्मण-प्रन्थों में कहा गया था 'कि दःशील बाह्मण भी पत्र्य है ऋौर जिनेन्द्रिय शह भी पत्र्य नहीं है । बाह्मण विद्वान हो, या मुर्ख, वह महान देवता है 3 । स्वीर सर्वया पज्य है । तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये यहां तक विधान किया गया कि श्राद्ध के समय उसके लिए महान बैल को भी मार कर उसका मांस ओत्रिय बाह्यण को स्विलावेश। इसके विपरीत अन्न महाबीर ने वर्णाश्रम भीर जातिबाद के विरुद्ध अपनी देशना दी और कहा-मांस को खाने वाला बाह्यण निन्दा है और सदाचारी शद बन्दा है।

उस समय ब्राह्मणों ने यहां तक कानन बना दिये थे कि 'श द को ज्ञान नहीं देना चाहिए, न यह का उच्छिष्ट स्पीर हवन से बचा

सर्वया ब्राह्मणाः प्रज्याः परमं दैवत हि तत् ॥ -- मनुस्मृति । ९।३१६। ५. महाजंबा महोक्षंबा श्रोत्रियाय प्रकल्पयेत ।

वीरोदय १७।१७

१ देखो-सर्ग १६ आदि ।

२ (द बोलोडिप दिज: पञ्ची न शही विजितेन्द्रिय: ।

[—]पाराशर स्मृति ≰।३२।

३. अविद्वारुचंद विदारच बाह्यणी दैवतं महत ।

⁻ मनुस्मृति १।३१७।

४. एवं यद्यप्यनिष्टेष वर्तन्ते सर्वेकमंस् ।

६, बिप्रोऽपि चेन्मांसभगस्ति निद्यः, सद-बृत्तभाबाद बृषलोऽपि बन्द्यः ।

हुआ भाग, और न उसे धर्म का उपटेश ही देना चाहिए। यदि कोई शुद्ध को धर्मोपदेश और व्रत का चादेश देता है, तो वह शुद्ध के साथ असंबुत नामक अञ्चकारमय नरक में जाता है'।

शुद्धों के लिए वेदादि धर्म प्रत्यों के पढ़ने का ऋषिकार तो बा ही नहीं, प्रश्तुत यहां तक व्यवस्था का विधान आग्रणों ने कर रखा बा कि जिस गांव में शुद्ध निवास करता हो, वहां वेद शा पठ भी न किया जाहे। यदि वेद-अनि शुद्ध के कातों में पड़ जाय. तो उमके कानों में गर्म शोशा और लाज भर दी जाय. वेद बाक्य का उच्चारण करने पर उसकी जिह्ना का छेद कर दिया जाय और वेद-मंत्र याद कर लेने पर उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिये जायें?। उम समय

१. न शूद्राय मित दद्यान्नोच्छिष्टं न हिबच्कृतम् ।

न चास्योपदिशेद्धमं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ यदचास्योपदिशेद्धमं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥

सोऽसंवृतं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ।। (विभिष्ठ स्मृति १८।१२-१३)

२ अथ हाम्य वेदमुपश्चण्यतम्त्रपु- जतुभ्यां श्रोत्र-प्रतिपूरण-मुदाहरणे जिल्लाच्छेदो धारणे शरीर-भेद: ।

टीका-प्रय हेति बाक्यालङ्कारे । उपशृत्य बुद्धिपूर्वकमक्षर-प्रहणमुप्रवणम् । प्रस्य शुद्धस्य वेदमुपप्रण्वतम्त्रपु-जनु-धा त्रपुणा (शीसकेन) जनुना च द्रवीकृतेन श्लोक प्रतिपूरियतक्ये । स चेद् द्विजातिभिः सह वेदाक्षराण्युदाहरेदुच्चरेत्, तस्य जिल्ला छेखा । ष्राप्ते सति यदाज्यत्र गतोजि स्वयमुच्चारियतुं शक्नोति, ततः परस्वादिना शरीरमस्य भेखम

(गौतम धर्म सूत्र, अ०३. सू० ४ टीका

पृ० ८६-६० पुना संस्करण, वर्ष १६३१)

शुद्रों को नीच, अध्य एवं अध्युर्ध समझ कर उनकी छावा तक से परहेज किया जाता था। आचार के स्थान पर जातीय अंच्छता का ही बोळ-बाळा था। पग-पग पर रूदियां, कुपबाएं और कुरीतियों का बहुत्य था। स्वायं-ठोलुयना कामुकना और दिलानिता ही सर्वत्र हिन्दगोचर होनी थी। यहां में होने वाली पशु-हिंसा ने मनुष्यों के हृदय निर्वेशी और कटोर बना दिये थे।

बौदों के 'चित्तमन्भून जातक' में लिखा है कि एक समय ब्राइण और बेर्य कुलीन दो तियां नगर के एक महा-हार से निकल रही थों, मार्ग में उन्हें दो चारहाल मिले। चारहालों के देखने को उन्होंने अपशक्त नसमझा। अतः पर आगे पर उन्होंने ग्रुद्ध दोने के लिए अपनी आंखें को धोया, घर के लोगों से उन चारहालों को खूब पिटवाया और उनकी दुर्गीत कराई। मार्तग जातक और मदसं जातक बौद्ध मन्यों से भी अब्दूतों के प्रति किये जाने वाले हुणत ज्यवहार का पता चलता है।

अक्षणों ने जाति ज्यवस्था को जन्म के आधार पर प्रतिष्ठित कर रखा था, अतएव वे अपने को सर्व अष्ठ मानते थे। अरत चक-वर्ती ने जब आक्षण वर्ण की स्थापना की, तब इनकी धार्मिक प्रयु-स्तियों को रेसकर ही उन्हें उत्तम कड़ा था। किन्तु धीरे-धीरे उनकीं गुण-कृत महत्ता ने जाति या जन्म का स्थान के छिया और उन्होंने स्थान के धर्म का अधिकारी ही नहीं, आणि तु ठेकेदार तक होने की घोषणा कर दी थी। इस प्रकार की उस समय बार्मिक ज्यवस्था थी।

चार्षिक व्यवस्था की दृष्टि से उस समय का समाज साधारणतः सुखी था, किन्तु दासी-दास की बड़ी ही भयानक प्रथा प्रचलित थी। कभी-कभी तो दास-दासियां पर कामानुषिक घोर कायाचार होते थे। विजेता राजा विजित राज्य के क्ली-पुरुषों को बन्दी बनाकर अपने राज्य में ले आता था और उनमें से अधिकांशों को जीराहों पर खड़ा करके नीलाम कर दिया जाता था। अधिक बोली लगाने वाला उन्हें अपने पर ले जाता और वक्त-भोजन देकर रात-दिन उनसे परेल् कार्यों को कराया करना था। दामी-दास की यह प्रशा आभी-अभी तक रजवाड़ों में चलती रही है।

इस प्रकार की धार्मिक, मामाजिक एवं आर्थिक विषम परि-रिखितियों के समय अ० महाचीर ने जन्म लिया। वाल-काल के ठ्य-तीत होते ही उन्होंने अपनी हरिट चारों और ग्रेंड्डाई और तारका-किक समाज का अच्छी तरह अप्ययन करके इस निर्णय पर पहुँचे कि मैं अपना जीवन लोगों के उद्धार में ही लगाऊंगा और उन्हें उनके सहान कटों से विमुक्त करूंगा। फलस्क्स उन्होंने विवाह करने और राज्य सम्भालने से इनकार कर दिया और रख्यं प्रजिति होकर एक छन्ये समय तक कठोर साधना की। पुनः फेवन्य-प्राप्ति के पश्चान् अपने लक्ष्यानुमार जीवन-पर्यन्त उन्होंने जगन् को सुमार्ग दिलाकर उसका कल्याण किया, दुःख-संत्रस्त जीवों का दुःखां से दिलाकर उसका कल्याण किया, दुःख-संत्रस्त जीवों का दुःखां से उन्हें अपसर किया।

प्रस्तुन कान्य में भ० महाबीर के मुख्य उपदेशों को चार भागों में त्रिभाजित किया गया है – १. साम्यवाद, २. ऋहिंसाबाद, ३. स्था-द्वाद कीर सर्वकताचाद। इन चारों ही बादों का प्रत्यकार ने बहुत हो सरळ कीर सर्वुक्तिक रीत से प्रत्य के खनितम कान्यायों में वर्णन किया है, जिसे पढ़कर पाठकाण सगवान महावीर की सर्वहित-कारिणी देशना से परिचित होकर खपूर्ग खानन्द का खनुभव करेंगे।

भ० महाबीर ने 'कर्मवाद' सिद्धान्त का भी बहुत विशद उप-

हेश दिया था, जिसका प्रस्तुत काठव में यथाल्यान 'स्वकर्मतोऽङ्गी परि-पाकभर्ता' (सर्ग १६ २०)० १०) स्त्रादि के रूप में वर्णन किया ही गया है।

भ० महाबीर का गर्भ-कल्याणक

जैन मान्यता है कि जब किसी भी तीर्थं कर का जन्म होता है. तब उसके गर्भ में आने के छह मास पूर्व ही इन्द्र की आज्ञा से कुनेर आकर जिस नगरी में जन्म होने वाला है, उसे सन्दर और सब्यव-स्थित बनाताहै और शीही आदि ४६ कमारिका देवियां आ कर होने वाले भगवान की माना की सेवा करती हैं। उनमें से कितनी ही देवियां माता के गर्भ का शोधन करती हैं. जिसका अभिप्राय यह है कि जिस कक्षि में एक महापर्य जन्म लेने वाला है. उस कक्षि में यदि कोई रोग आदि होगा, तो उत्पन्न होने वाले पुत्र पर उसका प्रभाव अवस्य पडेगा। आज की भाषा में ऐसी देवियों को लेही डाक्टर्स या नसेंज कह सकते हैं। यत बाहिरी वातावरण का गर्भस्य शिशु पर प्रभाव पड़ता है, अपतः वे कुमारिका देवियां भगवान के जन्म होने तक माता के चारों अपोर का बाताबरण ऐसा सन्दर आयेर नयन-मन-हारी बनाती हैं कि जिससे किसी भी प्रकार का क्षांभ या संक्लोश माता के मन में उत्पन्न न होने पावे। इसी सब सावधानी का यह सुफल होता है कि उस माता के गर्भ से उत्पन्न होने बाला बालक अतुल बली, तीन झान का धारक और महा प्रतिभाशाली होता है।

साधारणत यह नियम है कि किसी भी महापुरुव के जन्म लेने के पूर्व उसकी माता को कुछ विशिष्ट स्वप्न ब्याते हैं, जो कि किसी महापुरुव के जन्म लेने की सूचना देते हैं। स्वप्न शास्त्रों में ३० विशिष्ट स्वप्न माने गये हैं। जैन शास्त्रों के उल्लेखानुसार तीर्बह्नर की माता उनमें से १६, चकवर्ती की माता १४; बासुरेव की माता ७ और चलदेव की माता ४ स्वप्न रेखनी हैं। यहां यह झातब्ब है कि १३० परम्परा में तीर्यङ्कर की माता के १४ ही स्वप्न देखने का उल्लेख मिळता है'।

दोनों परम्पराओं के अनुसार खन्नावली इस प्रकार है-

दिगम	बर परम्परा	श्वेताम्बर परम्परा	
۶	गज	8	गज
ą	वृषभ	2	वृषभ
3	सिंह	3	सिंह
8	लक्ष्मी	8	श्री अधियोक
×	माल्यद्विक	Ł	दाम (माला)
Ę	হাহি	Ę	शशि
ů,	सूर्य	u	दिनकर
=	कुम्भद्रिक	5	कुम्भ
	झ बयुगल	3	झय (ध्वजा)
१०	सागर	१०	सागर
88		88	पद्मसर
१ ९	सिंहासन	×	

१. सुनिणसस्य वायातीसं सुनिणा, तीसं महासुनिणा, वास्तरि सज्जसुनिणा दिट्टा। तत्व णे देवाणुन्यिया, अरहेतमायरो वा चक्कवंट्टिमायरो वा x x x चत्रदस महासुनिर्णा पासिता णं पष्टिबुञ्जति । x x x बासुदेवमायरो वा महासुनिणाणं मण्णयरे तरा महासुनिर्णे । वलदेवमायरो वा महासुनिणाणं अण्णयरे चत्तारि ।

(भगवनी सूत्र शनक १६, उद्देश ६ सूत्र ४८१)

१३ देव-विमान १२ विमान १४ नाग-विसान ×

१४ रत-शक्ति १३ रत-उचय

१६ निधूम अग्रि जिलि (अग्रि)

दोनो परम्पराओं से तेरह स्वप्त तो एक से ही हैं। किन्तु दि० परम्परा में जहा झप (मीन) का उन्जेख है, वहां स्वे० परम्परा में झप (भज) का उन्जेख है। जात होता है कि किमी समय प्राकृत के भूसते के स्थान पर भूष्य या भूष्य के स्थान पर आप गठ के मिळने से यह मत भेद हो गया। इन चौरह स्वप्तों के आतिरिक्त दि० परम्परा में स्वाप्त आहे आधिक पर स्वप्ता के साम के स्वाप्त से स्वप्ता की स्वप्ता के साम के सिंहासन सीर दूसरा है भवनवामी देवों का नाग-मिन्दर या नाग-विमान।

रवे० परस्परा के भगवती सूत्र झादि में माता के जीदह स्वर्भों का स्पट्ट उन्लेख होने से उनके यहां १४ स्वर्भों की मान्यता स्वीकार की गई। पर भारवर्थ तो यह है कि उन जीवह स्वर्भों के लिए र्पतंब्रही—कह कर जो गाया दो गई है, उसमें १४ स्वर्भों का स्पट्ट निर्देश है। वह गाया इस प्रकार है— गय'-वसह'-मीह '-बासियर'-दास '-सिप '-विणवर' क्रायं कुन्भं । पउसमर '-सार'-'वसागर'-'वसागर'-'वसागर'-'वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-'-वसागर'-

इस गाथोक स्त्रप्रों के ऊपर दिये गये कार्कों से स्वप्नों की संख्या १४ सिद्ध होती है। विभल्लपृरि के पत्रमचरित्र में दी गई गाथा में भी स्वामों की सख्या १४ ही प्रमाणित होती है। वह गाथा इस प्रकार है—

बसह $^{\circ}$ गय $^{\circ}$ सीह $^{\circ}$ वरसिरि $^{\circ}$ दाम $^{\circ}$ सिसं $^{\circ}$ दिव $^{\circ}$ झायं $^{\circ}$ व कलसं च $^{\circ}$ । सर $^{\circ}$ 'सायर $^{\circ}$ विमाण $^{\circ}$ वरभवण $^{\circ}$ कूहमी $^{\circ}$ ।।

(पडमचरिंड, तृठं उद्देश, गा० ६२)

समझ में नहीं आता कि जब दोनों ही गाथाओं में 'भवन' या 'वर भवन' का स्पष्ट उल्लेख गाया जाता है, तब खे० आजाओं ने उसे क्यों छोड़ दिया। ऐसा प्रतीत होता है, कि भगवती सूत्र आदि में १४ खप्नों के देखने का स्पष्ट विधान ही इसका प्रमुख कारण रहा है | भ्रे

मेरे विचार से। दि० परम्परा में १६ स्वप्न-सूचक गाया इस प्रकार रही होगी—

ब सह '-गय '-नीह ' वरसिरि'-दाम ' सिस ' रिव ' झसं ' च कुम्भजुगं ' सर ' सागर ' ' सिंघासण 5 ' विमाण ' ' भवण ' ' रिवण 5 ' ऋहम्भी ' श्

गावा के पदों पर दिये गये श्रांकों के श्रानुसार तीर्थं कर की माना को दीखने वाले स्वप्नों की संख्या १६ सिद्ध हो जाती है।

चक्रवर्सी से तीर्थंकर का पद दोनों ही सम्प्रदायों में बहुत उच माना गया है, ऐसी स्थिति में चक्रवर्ती के गर्भोगम-काल में दिखाई देने बाते १४ स्वप्नी से नीर्थं कर की माता को दीखने वाले स्वप्नां की संख्या अधिक होनी ही चाहिए। जैसे कि चलदेव की माता को दिखने वाले ४ स्वप्नों की अपेक्षा वासुदेव की माता को ७ स्वप्न दिखाई देते हैं।

¥स्वे० झास्त्रों के विशिष्ट क्यस्थासी श्री प० झोसाचन्द्र जी भारिक से झात हुका है कि गाया-पिठन १४ स्वर्मों में से तीर्घ कर की माता केवळ १४ ही स्वप्न देखती है। स्वग से क्याने वाल तीर्घ कर की माता को देव-सिमान क्या में दिखता है, नाग-भयन नहीं। इसी फहार तरक से आने वाले तीर्घ कर की माता को स्वप्न में नाग-भयन दिखता है, देव-किमान नहीं। उक्त दोनों का समुख्य उक्त गाया में दि० मान्यतानुसार सिद्धार्ष राजा की रानी त्रिक्तला देवी ने ही १६ स्वप्न देखे जोर भ० महाबीर उनके ही गर्भ में जावे। छण्ड कुमारिका देखियों ने त्रिक्तला की ही सेवा की। इन्द्रादिक ने भी भणवान का गर्भावतरण जानकर सिद्धार्थ और त्रिक्तला की ही पूजा की। इन्हों के घर पर पन्द्रह मास तक रत्न-युवणींदिक की वर्षो हुई। किन्तु रवे० मान्यता है कि भ० महाबीर बाह्यण-कुण्ड नामक प्राप्त के कोडाल गोजीय खरभरत्त बाह्यण की जालंबर गोजीया पत्नी देवानन्दा की कृषि में अवतरित हुए। वे तिम रात्रि को गर्भ में आयो, उसी रात्रि के मन्तिम पहर में देवानन्दा ने वीदह स्वप्त रेखे। उसने वे स्वप्त अपने पति से कहे। उसके पति ने स्वप्तों का फल कहा—

''हे देवानुप्रिये, तुमने बदार, कल्याण-रूप, शिव-रूप, मंगळमय स्रोर शोआ-पुक स्वर्गा को देखा है। ये स्वप्त स्वारोय-दायक, कल्याण-कर स्त्री मंगळकारी हैं। तुम्हें छङ्भी का, भोग का, पुत्र का स्त्रीर सुख का छाभ होगा। ६ मास स्त्रीर ७॥ दिवस-रात्रि बीतने पर तुम पुत्र को जन्म दोगी।"

देवानन्द के गर्भ बदने लगा और ८२ दिन तक अ० महाबोर भी उसी के गर्भ में बृद्धिंगत हुए। तब अचानक इन्द्र के मन में विचार आया कि नीर्षहर, चक्रवर्ती, बडदेव, वासुदेव आदि शलाका पुरुष शुद्र, अथम, तुच्छ, अल्य, निर्धन, हृपण, भिद्धक वा बाह्यण

किया गबा है। पर दि० परस्परानुसार देव-विसान अर्ध्व छोक के ऋषिपतित्व का, सिंहासन मध्यलोक के स्वामिस्व का और नाग-विसान या भवन अपोलोक के स्वाधिपत्य का सूचक है। जिसकी अभिप्राय है कि गर्भ में स्वाने वाला जीव तीनों लोकों के स्विपतियां हारा पुत्रव होगा।

सस्यादक

कुछ में जम्म नहीं लेते, वरन राजन्य कुछ में, ज्ञातृ वंश में. क्षत्रिय वंदा में, इक्ष्याक वंदा में और हरिवंदा में ही जन्म लेते हैं। अत: बसने हिरशोगमेंसी देव को गर्भ-परिवर्तन की आजा दी और कहा कि 'तम इसी समय भरत क्षेत्र के बाह्मण-कुरह धाम में जाइयो और वहां देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में से भावी तीर्धकर महावीर के क्षीय को निकाल कर अत्रिय-कएड के राजवंशी अत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में जाकर रख दो। तथा विकास के गर्भ में जो सबकी है, इसे बार्स से जिकाल कर देवानन्दा के गर्भ में ले जाकर रख दो। इन्द्र की ब्याक्रातसार हिस्सोरामेसी देव ने देवानन्दा के गर्भ से अ० सहावीर को निकालकर त्रिज्ञलारेवी के गर्भ में रख दिया और उसके गर्भ से कत्या को निकाल कर देवानन्दा के गर्भ में रख दिया। जिस रात्रि को यह गर्भापहरण किया गया और भ० महावीर त्रिशाला के गर्भ में पहेंचे. उसी अप्रासीज कब्ला १३ की रात्रि के अपनितस पहर में त्रिकाला ने १४ स्वप्न देखे। प्रात:काल उसने जाकर अपने पति सिदार्थ राजा में सब स्वप्न कहे। उन्होंने स्वप्न-शास्त्र के कशल विदानों को बलाकर उन स्वप्नों का फल पूछा और स्वप्न शास्त्र-वेत्ताओं ने कहा कि इन महा स्वप्नों के फल से तुम्हारे तीन लोक का स्वामी खीर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तक तीर्थद्वर पुत्र जन्म लेगाक ।

इस गर्भापहरण पर कानेक प्रश्न उठते हैं, जिनका कोई समुचित समाचान प्राप्त नहीं होता है। प्रश्न तो यह बात बड़ी क्षटपटी छग्नवी है कि पिहले देवानन्दा ब्राह्मणी उन्हों स्वप्तों को देखती है, और उनका फल उसे बताया जाता है, कि तेरे एक भग्नयशाली प्रश्नित है। होगा। पीछे पर दिन के बाद त्रिशला उन्हों स्वप्तों को देखती है। स्वप्ताशास-वैत्ता जिन स्वप्तों का फल ख्रवस्त्रभावों और उत्तम

अक्ष समवायाग सूत्र, भगवती सूत्र धौर कल्पसूत्र के आधार पर । -स≠पादक

बतलाते हैं, वह देवानन्दा को कहां प्राप्त हुआ। १ दूसरे पर दिन तक इन्द्र कहां सोना रहा १ जो बात उसे इतन दिनों के बाद याद आई. वह गर्भावतरण के समय ही क्यों याद नहीं आई १

तीसरे यह बात भी ऋटपटी लगेनी है कि ग्राभैकल्याणक कहीं अन्यत्र हो और जन्मकल्याणक कहीं अन्यत्र हो। ग्राभैकल्याणक के समय ऋष्यभद्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी की पूजा इन्द्रादिक करें और जन्म कल्याणक के समय वे ही मिद्धार्थ और त्रिशला रानी की पूजा करें।

भीथे यह बान विचारणीय है कि गर्भ-झोबनादि किसी और का किया जाय और समानान का जरूम किसी और के गर्भे से होषे। पांचवं — कुवेर-द्वारा रस्त-सुवर्ण की वृष्टि प्रारम्भ में मास २२ दिन तक किसी और के घर पर हो, पीछे दे मास और प्रदिक्त किसी और के यहां हो, तथा छप्पन कुमारिका देवियां भी इसी प्रकार प्रारम्भ में किसी और की सेवा करें और पीछे किसी कीर की।

इन सभी वातों से भी ऋधिक अनुचित बात तो यह है कि भले ही ब्राह्मण के या क कुछ से गर्भापहरण करके क्षृत्रियाणी के गर्भ में भ० महाबीर का रख दिया गया हो, पर बस्तुत: उनके शरीर का निर्माण तो ब्राह्मण-ब्राह्मणी के रज और बीर्य से ही प्रास्भ हुआ कहलायगा। यह बात तो तीर्यें इर जैसे महापुरुष के लिए अस्वन्त ही अपमानजनक है।

इस सन्दर्भ में एक बात स्वास तौर से विचारणीय है कि जब तीर्यक्करों के गर्भादि पांचों ही कल्याणकों में देव-देवेन्द्रादिकों के आसन कम्पायमान होते हैं और दि० खे० दोनों ही परम्पराओं के अनुसार वे अपना अपना नियोग पूरा करने आते हैं, तब वि० परम्परासें एक स्वरूप से स्वीकत कमारिका देवियों के गर्भावतरण से पूर्व ही आने के नियोग का खें परम्परा में क्यों उल्लेख नहीं मिलता है ? यदि खे परम्परा की स्रोर से कहा जाय कि उन कमारिका देवियों का कार्य जन्मकालीन क्रियाओं को करना मात्र है। तो यह बत्तर कोई महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि भगवान के जन्म होने से पूर्व अर्थात गर्भकाल में आकर माना की नौ मास तक सेवा करना चौर उनके चारों चोर के वातावरण को ज्यानन्दसय बनाना ऋधिक सहस्त रखना है और यही कारण है कि दि० परस्परा में उन देवियों का कार्य गर्भागम के पूर्व से लेकर जन्म होने तक बत-साबा गया है। इस विषय में गहराई से विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि यत: श्वे० परस्परा में जब भगवान महाबीर का पहिले देवानन्दा बाह्मणी के गर्भ में आने और पीछे गर्भापहरण करा के त्रिशला देवी के गर्भ में पहुँचाने की मान्यता स्वीकार करली गई, तो उससे कमारिका देवियों के शर्भागम-समय में आने की बात असंगत हो जाती है कि पहिले वे देवानन्दा की सेवा-टहल करें और स्पीर पीछे त्रिज्ञाला देवी की सेवा को जावें। ऋत: यही उचित समग्रा गया कि उन कमारिका देवियों के गर्भ-कल्याणक के समय आने का उल्लेख ही न किया जाय। जिससे कि उक्त प्रकार की कोई विसंगति नहीं रहने पाने।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय ब्राह्मणों का प्रभाव बहुत खिक वा और जैनों के साथ उनका भय कर संधर्य चल रहा था। अवरण ब्राह्मणों को नीचा दिग्याने के लिए यह गर्भापहरण की कथा कल्पत की गई है। यचिए आज का शल्य-चिक्त्सा विज्ञान गर्भ-परिवर्तन के कार्य प्रत्यक्ष करता हुआ दिखाई हे रहा है, तथापि तीर्थक्कर जैसे महापुरुष का किसी अन्य श्ली के गर्भ में आजा और किमी अन्य श्ली के डदर से जन्म लेना एक अपमान-जनक एवं अशोभनीय ही है।

भ० महावीर का जन्म

भ० महाबीर का जन्म ईसवी सन् से ४६६ वर्ष पूर्व चेत्र हुक्ता त्रयोदवी के अपनाह में हुजा। उस समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था, एवं रोष यहाँ की उच्चता कल्पसूत्र की टीका के अनुसार इस प्रकार थी—

मेषे सूर्यः १०। यृषे सोमः ३ । सृगे मंगलः २⊏ । कन्यायां बुधः १४ । कर्के गुरुः ४ । मीने शुक्रः २०। तुलायां इतिः २०।

तदनुसार भ० महाबीर की जन्मकुण्डली यह है-



भ० महाबीर का जन्म होते ही सौधर्मेन्द्र का श्वासन कम्पाय-मान हुआ। शेष कल्पवासी देवों के वहाँ घंटा बजने छगे, ज्योतिषी देवों के यहां सिहनाइ होने छगा। भवनवासी देवों के यहां झंख-नाद और ज्यान भे भावनाद का जन्म हो गया है, खात थे मब अपने-अपने परिवार के साथ कुण्डनपुर पहुँची इन्द्राणी ने प्रसृति-गृह में जाकर माता की तीन प्रविख्णा की और उन्हें नमस्कार कर तथा श्रवस्वापिनी निद्रा से सुला कर खौर एक मायामयी बालक को उनके समीप रख कर मगवान को उठा खाई खौर इन्द्र को माँग दिया। वह सर्व देवों के साथ सुमेर पर्वत पर पहुँचा और ज्यों ही १००६ करकों स्नान कराने को उचन हुखा कि उसके मन में यह शंका उठी—'यह बालक इतने जल का प्रवाह कैसे सहन कर करेगा⁷⁷ ? भगवान ने खविंघ क्षान से इन्द्र के मन की शंका जान ली और उसके निवार-लाई अपने बायें पांच के खंगूठे से मरू-पर्वत को जरा सा दवाया कि सारा मेरु पर्वत हिल उठा रें। इन्द्र को इसका कारण खविंध ज्ञान से ब्रात हुखा कि मेरे मन की शंका को दूर करने के लिए ही भगवन् ने पांच के खंगूठे से इसे दवाया है, तब उसे भगवान के खतुल परा-कमी होने का भान हुखा और उसने मन ही मन भगवान से हमा मांगी रें।

इस सन्दर्भ में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं — जिम प्रकार दि०

१ पादाङ्गाठेन यो मेरुमनायासेन कम्पयन् ।
 लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात् ।।

(पद्मपुराण, पर्व २, ब्लो० १)

२ लहुग्रसरीग्त्तणग्रो कहेस तित्थेमरो जलुप्पील । सहिही सुरसत्थेण समकालमहो खिनिज्जते ॥१॥

इय एव कयसकं क्रोहीए जिणवरी णाउ । चालड मेरु चलणंगुलीए बल-दंसणदाए ॥३॥

(महाबीर-चरिउ, पत्र १२०)

३ नम्रो दिब्बनःण-मुणिय जिणचलण-चपणुङ्कापय मेरुवहयरो नक्ष्मण महरियकोत्रुगमो निदियनियकुवियप्यो लामिङण बहुप्पार जिणेसर भगवंतं " भणिजमाडसो ।

(महाबीर-चरिज, पत्र १२१)

परम्परा में तीर्थं कर के गर्भ में खाने के भी छह मात पूर्व से नगरी की रचना, रत्न-पुत्रणें की वर्षा और छप्पन कुमारिका देवियों का खाकर भगवान भी माता की सेवा आदि का विधान पाया जाता है, वैसा रेवे परम्परा में नहीं निळता। उनके जाओं के अनुसार चक्र सकार्य तीर्थं कुर के जन्म लेने पर ही प्रारम्भ होने हैं दससे पूर्व नहीं। दिन परम्परा के खानुसार विश्वंहर के जन्म लेने पर ही प्रारम्भ होने हैं दससे पूर्व नहीं। दिन परम्परा के खानुसार तीर्थं कुर की माता की दिवाई देने बाले स्वग्नों का कर तीर्थं कुर के पिता ही उसे बनलाते हैं हैं, किन्तु स्थे •

 सुराः समंज्ञमाः सद्यः पाकशासन-शासनात् । तां पुरी परमानदृष्ट् ब्युः सुर-पुरीमित्र ॥ ७० ॥ विश्वदर्श्वत्योः पुत्रो जनिति शासकतुः । तयोः पूजां व्ययजोच्चरिभिकेष्ठपुरस्तम् ॥ मरे ॥ यद्यभिमीसेथ्वैनिधम्म स्थर्गीद्यनरिष्यति । रस्तपुष्टि दिवो देवाः पातयामासुरादशत् ॥ मरु ॥ ययमासानिति सापत्रम् पुत्रचे नाभिकृपाव्ये । स्यागिवतरणाद् भर्तुः शास्तरा श्रु क्ससन्तितः ॥ ६६ ॥ पश्चाव नवसासेषु वसुचारा तद्या सत्त । स्रद्या महान्यभावेश्वतिष्ठस्यस्य भाविनः ॥ ६७ ॥ तदा भश्चति सुवाशसासनात्ताः तिषेविरे । दिककुमार्योऽपुवारिययस्तकाळोचितकर्मभिः ॥ १९६ ॥ (सहापुराण, पर्व १२)
 स्रवाऽपोळोक-वासिन्यः सद्यः प्रचळितानना ।

. श्रथाऽघोलोक-वासिन्यः सर्गः प्रचलितामना । दिक्कुमार्यः समाजग्रुरस्टौ नत्सृतिवेश्मनि ॥ २७३ ॥इत्यादि । (त्रिपस्टिजलका-पुरुष-चरित, पूर्व १, सर्ग ३)

मङ्गर्लश्च प्रबुद्धनाशु स्नात्वा पुरुष-प्रसाधना ।

सा सिद्धार्थ-महाराजमुपागम्य कृतानति: ॥ २४५ ॥ सम्प्राप्तार्थासना स्वप्नान यथाकममुदाहरत् ।

सोऽपि तेषां फलं भावि यथाक्रममयुबुधन् ॥ २४६ ॥ (उत्तर पुराण, पर्व ७४) परम्परा में दो मत पाये जाते हैं—कल्प सूत्र के अनुसार तो स्वप्नों का फल स्वप्रशास्त्र के वेत्ता ज्योतियी लोग कहते हैं^त। किन्तु हेमचन्द्रा-चार्य के मतानुसार इन्द्र श्वाकर उनका फल कहते हैं^त।

इसी प्रकार एक बात और भी ज्ञानत्य है कि दि० परस्परा के आपनुसार सौयेर्सन्द्र ऐगतव हाथी पर चड़ कर तीर्थं हुनों के जन्माभि-वेक के समय आपता हैं। किनु रेबे० परस्परा के अनुसार वह पाळक विसान पर मेंट कर आपता हैं।

 तए णं ते: सुविण-रुक्सण-पाइगा सिद्धत्वस्य स्वत्तियस्य श्रीतप् एयमङ्क सुन्ना निसम्ब हङ्घ तुझ्ठ जाल दिवया ते सुमिर्णे सम्मे श्रीमि-यहंति, श्रीगिषहत्ता × × सुमिणसत्थाडं उच्चारेमाणा २ सिद्धत्वं स्वत्तियं युं वयासी ॥ ७२ ॥ ५ कल्यन्त्र ग

 तत्काळं भगवन्मातुः स्वन्नार्थमिभञ्चसितुम् । सुद्वदः कृतसङ्के ता इवेन्द्रास्तुल्यमाययुः ॥ २३२ ॥ ततस्ते विनयान्सृष्टिन घटिता श्वलिकुङ्मलाः । स्वन्नार्थं स्कृटयामासुः सूत्रं वृत्तिकृतो यथा ॥ २३३ ॥

(त्रियच्टिशलाका-पुरुषचरित, पर्व १, सर्ग २) १. श्रय सीयमंकल्पेशो महैरावतदन्तिनम् । समारुष्ठ समं शच्या प्रतस्थे विवुधेर्युत: ॥ १७ ॥

(झादि पुराण, पर्व १३)

 श्रादिश्चरगळकं नाम वासवोऽप्याभियोगिकम्। असम्भाज्य-प्रतिमानं विभानं क्रियतामिति ॥ २४३ ॥ पञ्चयोजनशरपुण्यं विस्तारे छक्षयोजनम् । इच्छानुसानगमनं विभानं पाछकं व्यथान् ॥ २४६ ॥ विक्रुसुलप्रनिकिलनैर्वा दास्यदिवाऽभितः । सौधर्ममध्यतोऽचाळीतृ तद्-विमानं इरीच्छ्या ॥ ३६२ ॥

(त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित, पर्व १, सर्ग २)

इस सन्दर्भ में एक बात और भी ज्ञातक्य है कि दि० परस्परा के अनुसार सीथमेंन्द्र की इन्द्राणी ही अस्ति स्थान में जाकर और माथामथी बालक को रसकर भगवान को बाहिर लाती है और अपने पित इन्द्र को सें 'पती है'। किन्तु खे० सान्यता है कि स्वयं सीयमेंन्द्र ही प्रस्ति गृह में जाकर, माता की स्तृति कर और उन्हें निद्वित कर के साथामयी शिशु को रसकर भगवान को बाहिर ले आता है'।

माता के अनूति-गृह में इन्द्र का जाना एक लोक-विरुद्ध बात है, खास कर तरकाल ही जन्म के समय। किन्तु इन्द्राणी का स्त्री होने के नाने प्रमूति-गृह में जाना खीर भगवान् को बाहिर लाना खादि कार्य लोक-मशीर के अनुकूल ही हैं। येल शाखों में इस समय इन्द्राणी के कार्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

श असवागारभिन्द्राणी ततः आविशादुत्सवान् ।
तत्रापरयन् कुमारेण साथै तां जितमातरम् ॥ २७ ॥
इस्वभिष्ठुत्व गृद्धाङ्गी तां मायानिद्रवाऽपुत्रन् ।
पुरो विधाय सा तस्या मायाशिद्धामवापरम् ॥ ३१ ॥
तत कुमारमादाय श्रतनी सा बभी कुमम ।
ग्रीरिवार्कमभिन्यागतभसं भासुरांद्धीभः ॥ ३४ ॥
ततः करतले देवी देवराजस्य तं न्यधान् ।
बाळाकंमीदये सानी प्राचीव प्रस्टुरन्मणी । ३६ ॥
(खादि पुराण, पर्व १३)

ततो विमानादुत्तीर्थं मानादिव सहामुनिः।
 प्रतक्रमानसः शको जगाम स्वामिसिक्राभौ।। ४०७।।
 प्रदक्षमानसः शको
 प्रतिकृतिकरो दिवि त्यानु-जन्मनः।
 प्रदिक्षो जन्मपिसिक्षये कर्तुं मिहाऽऽगम्।। ४१४।।
 भवत्या नैव भेववयिसपुदीर्थं दिवश्यतिः।

बीर का बाल-काल

भ० सहाबीर के गर्भ में आने के पूर्व छह मास से लेकर जन्म होने तक की विशेष किशाओं एवं घटनाओं का वर्णन, तथा भगवान् की बाल-क्रीड़ाओं का उल्लेख प्रस्तुत काव्य में चौथे सम्में से लेकर आठवें समें तक किया गया है, अता उनकी चर्चा करने की यहां आवश्यकता नहीं है। प्रकृत में इनना ही ज्ञानव्य है कि इन्द्र ने जन्मा-सियेक के समय भगवान् का 'थीर' यह नाम रखा। भगवान् के गर्भ में के के समर भगवान् का 'थीर' यह नाम रखा। भगवान् के गर्भ कही, अता उन्होंने उनका नाम 'श्री वर्धमान' रखा।

भगवान् जब बालक ये और अपने साथियों के साथ एक समय आमलकी-कीड़ा कर रहे थे, उस समय एक संगमक देव ने आकर उनके पीर-वीर पने की परीक्षा के लिए उस बुक्ष के तन को सर्प का रूप भारण कर थेर लिया, तब सभी साथी बालक तो भय से भाग खड़े हुए. किन्तु बालक बीर कुमार निर्भय होकर उसके मस्तक पर पैर रखने हुए युद्ध पर से नीचे उतरे और उसे हाथ से पकड़कर दूर कैंक आये।

तत्परचान् बाळकों ने घुड़-सवारी का खेळ खेळना प्रारंभ किया। इस खेळ में हारने वाला बाळक घोड़ा बनना खोर जीतने बाळा सथार बनकर उसकी पीठ पर चढ़कर उसे इघर-उधर दौड़ाता। वह देव भी सर्प का रूप छोड़कर जोर एक बाळक का रूप रखकर उनके खेळ

खबस्त्रापतिकां देश्यां मस्तेश्यां विनिर्मम ।। ४१४ ॥ नाभिस्नोः प्रतिन्छान्तं विदये सम्बा ततः । देश्याः श्री मस्देशयाः गर्भवे च न्यवेशयन् ।। ४१६ ॥ (विषष्टिशकाकाका-पुरुष्यरित पर्व १, सर्ग २) मं जा मिला। देव के खेल में हार जाने पर उसे घोड़ा बनने का आवसर आया। यन: बीर कुमार विजयी हुए थे, असर ते ही उसर पर मवार हुए। वेन से निर्माण कीर पर मवार हुए। वेन से मागा कीर दीहे हुए ही उसने मागा कीर दीहे हुए ही उसने विकास से अपने जारीर को उत्तरीत्ता बढ़ाना हुइ कर दिया। बीर कुमार उस देव की चालाकी को समझ गये। इस उस देव की चालाकी को समझ गये। इस उस उस होने उससे उस अवस्वित कीर गये। उसने अपना स्प मंकुचित किया। बीर कुमार नीचे उतरे और उस छक्कवेषी ने अपना ययार्थ इस एकट कर, उससे छुमा-वाचना कर तथा उनका नाम 'महाचीर' रखकर उनकी मुति की और अपने स्थान को चला गया। तब से अगवान का वह नाम सर्वंत्र प्रचित्त हो गया है।

वीर का विद्यालय-प्रवेश

रवे० शास्त्रों के अनुसार वीर कुमार को आठ वर्ष का होने पर उनके पिता ने विद्याभ्ययन के लिए एक विद्यालय में भेजा। अध्यापक जो कुछ उन्हें याद करने के लिए देने, उससे अधिक पाठ वीर कुमार तुरन्त सुना देवें। आश्चर्य-चिका होकर अध्यापक ने प्रति दिन विना नवीन नवीय पदाये और उन्होंने तत्काल ही सर्व पठित विषयों को उयों का त्यों ही नहीं सुनाया, विल्क अध्यापक को भी अझात-ऐसी विरोधताओं के साथ सुना दिया। यथार्थ बात यह धी कि वीर कुमार तो जन्म से ही मति, अत और अविध इन तीन झान के धारी थे। पर भगवान के पिता को यह पता नहीं था। जब कुछ दिनों के भीतर ही अध्यापक वीर कुमार को तेकर राजा सिद्धार्थ के पास पहुँचा और उनसे निवेदन किया—महाराज, ये राजकुमार तो इनने प्रस्तर बुद्धि और अपुल झाती हैं कि उनके सामने मैं स्वयं भी इनने प्रसर बुद्धि और अपुल झाती हैं कि उनके सामने मैं स्वयं भी

१ यह कथानक इवे० ग्रन्थों में पाया जाता है। — सम्पादक

नगरय हूँ, महाराज सिद्धार्थ यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अध्यापक को यथोचिन पारितोषिक देकर विदा किया। दि० मान्यता के अनुसार तीर्थहर किसी गुरु के पास पढ़ने को नहीं जाते हैं।

बीर के सम्मुख विवाह-प्रस्ताव

जब बीर कुमार ने यौबन अवस्था में पदार्पण किया, तो चारों कोर से उनके विवाह के लिए मस्ताब आने लेगे। कहा जाता है कि साझ सिद्धां की महाराजी प्रिकारिण कोर उनकी बहिन क्योर मा जो कि किलंग-रेश के महाराज जितशत्र को व्याही थी—एक साथ ही गर्भवती हुई । दानों साले-बहनांई महाराजों में यह तय हुआ कि यदि एक के गर्भ से कन्या और दूसरे के गर्भ पुत्र उरक्ष हो, तो उनका परस्थर में विवाह कर देंग। यथा समय सिद्धांथ के यहां वीर कुमार ने जन्म लिया और जितशत्र के बहु का लिया जितशत्र के विवाह के प्रस्ताब साथ। जब वीर कुमार के विवाह के प्रस्ताब आने लेगे, तब भर महाबीर की वर्ष गांठ के अवसर पर जितशत्र आ माने कन्या नो लेकर राज-परिवार के साथ कुण्डनगर आये और महाराज सिद्धांथ को पूर्व प्रतिज्ञा की बाद दिलाकर यशोदा के साथ वीर कुमार के विवाह का प्रस्ताब रहता।

भवाल कि श्रीणक वेल्ल भूपति गृपेन्द्रसिद्धार्थकनीयसीयतिम् ।
 इसं प्रसिद्धं त्रितशृष्ट्रमास्थ्या प्रतायवन्तं जितशृष्ट्रण्टलम् ।।
 जितन्द्रशिष्ट्य समुद्ध्यतिस्त तदाऽऽततः कृष्टपुरं मृद्द्रपरः ।
 सूर्प्ततः कृष्टपुरस्य प्रभूता निप्तप्रधानक्ष्यतुरुविकमः ।।
 यद्योदयायां सुतया वशोदया विकत्यः वीरविवाह्यक्कतम् ।
 अनेककन्यायरिकारसारमास्त्रितं नुष्ट्रमार्थतं तरः ।।
 हरिकंश पुराण, सर्ग ६६, नको०६६-६।

महाराज मिद्धार्थ और रानी त्रिज्ञाला राजकुमारी यशोदा के कर-लाववय्य, सीन्दर्थ करिंद गुणों को देलकर उसे क्यापनी पुत्र-वयू बनाने के लिए उत्तुक हुए और उन्होंने क्यापने हृदय की बात राज-कुमार महावीर में कही। पिजार्थ के इस विवाह-प्रश्ताव को महावीर ने बड़ी ही युक्तियों के साथ क्यांश्रीकार कर दिया।

किन्तु रथे० मान्यता है कि महाबीर का विवाह यहोदा के साथ हुआ और उससे एक लड़की भी उत्पन्न हुई, जिसका नाम प्रिय-दर्शना रसा गया और उसका विवाह महाबीर की बढ़ित सुदर्शना के पुत्र जमालि से हुआ।

दि० परस्परा में पांच तीर्थंकर बाल-जड़ाचारी और कुमार-काल में दीक्षित हुए माने गये हैं १ वासुप्रया, २ मल्लिनाय, ३ ऋरिष्ट-नेसि, ४ पारबंनाय और ४ महावीर । यदे परस्परा में भी इन पांचों को कुमार-अमण और ऋविवाहित माना गया है, जिसका प्रमाण आवरयक-निर्मं कि की निस्त लिखत गायार हैं—

> बीर ष्रारिट्टनेर्मि गासं मलिंठ च बासुपुरजं च। एते मोनू ण जिले श्रवसेसा श्रासि रावाणो ॥ २२१ ॥ रावकुलेसु वि जाया विसुद्धबंसेसु स्वत्तिवकुलेसु। न य इत्थियाभिमेया कुनार-वासम्मि पत्रबद्ध्या॥ २२२॥

आगमोदय सिगित से प्रकाशित आवश्यक निर्यु कि में 'इलि-याभिसेया' ही पाठ है जिसके कि मन्यादक सागरानन्द सूरि हैं। टीकाकारों ने इसके स्थान पर 'इन्छियाभिसेया' पाठ सानकर 'हैप्सि-ताभियेका.' अर्थ किया है और उमके आधार पर देशे जिहाम' कहते हैं कि इस होनों गायाओं में उक्त पांची तीर्थकरों के विना राज्य-सुख भोगे ही कुमारकाल में दीक्षा लेने का उन्लेख हैं,। स्विश्वह से क्लका संबंध नही है। यदि ऐसा है, तो वे उन प्रमाणों को प्रकट करें-जिनमें कि आदि के चार तीर्थं क्रुगों का बाल-ज्ञद्वाचारी रहना बतलाया गया हो। वास्तव में ये होनों ही गावाएं पांचों ही नीर्थं क्रुगों के बाल-ज्ञद्वा-चारी श्रीर कुमार-दिक्षितपने का ही प्रतिपादन करती हैं। किन्तु पीक्षे से जब महावीर के विवाह की बात श्वीकार कर लो गई, तो उक्त गावार-पिठत 'इत्थायाभिसेया' पाठ को 'इन्टियाभिसेया' मानकर 'ईप्सिमाभिषेका' अर्थं किया जांन लगा।

श्रीकल्याण विजयजी अपने दारा लिखित 'श्रमण सगवान सहाबीर' नामक परनक में महाबीर के विवाह के बारे में सदिख्ध हैं। चन्होंने लिखा है कि-"कल्पसूत्र के पूर्वतर्नी किसी सूत्र में भहाबीर के गहस्याश्रम का अथवा उनकी भार्या यशोदा का वर्णन हमारे दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। (अमण भगवान महावीर, प्र०१२) दसरे एक बान खास तौर से विचारणीय है कि जब महावीर घर त्याग कर दीक्षित होने के लिए चले. तो श्वेश शास्त्रों में कहीं भी तो यशोदा के साध महाबीर के मिलते ऋौर मंसार के छोड़ने की बात का उल्लेख होना चाहिए था। नेमिनाथ के प्रवृत्तित हो जाने पर राजल के दीक्षित होने का जैसा उल्लेख मिछता है, वैसा उल्लेख यशोदा के बीक्षित होने यान होने आदि का कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके विपरीत दि॰ प्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि महाबीर के द्वारा विवाह प्रस्ताव अस्त्रीकार कर दिये जाने पर यशोदा और उसके पिता को बहुत आधात पहुँचा और वे दोनों ही दीक्षित होकर तप करते चले गर्ब । जितारि तो कलिंग (वर्तमान चढ़ीसा) देश-स्थित सबबागिर पर्वत से मुक्ति की प्राप्त हुए और बशीदा जिस पर्वत पर

दीर्घकाल तक तपस्या करके स्वर्ग को गई, वह पर्वत ही 'कुमारी पर्वत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। खारवेल के शिलालेख में इस कुमारी पर्वत का उल्लेख हैं ।

सन्मति-नाम

विजय और संजय नामक दो चारण मुनियों को किसी सूक्ष्म-तत्त्व के विषय में कोई सन्देट उत्पन्न हो गया, पर उसका समाधान नहीं हो रहा था। भ० महावीर के क्या के कुछ दिन बाद ही वे उनके समीप आये कि दूर में हो उनके दहाँन मात्र से उनका सन्देह दूर हो गया और वे उनका 'सम्मित देव' नाम रखते हुए चले गये'।

भ० महाबीर का छबस्थ या तपस्या-काल

भ० महाबीर ने तीस वर्ष की कावस्था में मार्गजीर्थ १० के दिन जिन-दीक्षा ली और उम तपरचरण में संलग्न हो गये। दि० प्रन्थों उनके इस जीवन-काल की घटनाओं का बहुत कम उन्लेख पाया जाता है। किन्तु स्वे० मन्यों मे इन १२ वर्ष के लग्नास्थ और तपरच-रण काल का विस्तृत विवरण मिलता है। यहां पर उपयोगी जानकर इसे दिया जाता है।

१ तेरसमे च वसे सुपवत विजय चकं कुमारी पवते **अरह**यते.... । (सारवेळ किळालेख पंक्ति १४)

स जयस्यार्थ-सम्देदे स जाते विजयस्य च । जम्मानन्तरमेवनाम्थरेयाळोकमात्रदः ॥ रदर ।। तस्सन्देदे गते ताम्यां चारणाथ्यां स्वभक्तितः ।। धास्त्रेय सम्मतिर्देवो भावीति समुवाहतः ॥ २८२ ॥ (जत्तर पुराण, पर्व ७४)

प्रथम वर्ष

भ० महाबीर ने झातंत्वरहवन में दीक्षा लेने के बाद आगे की विद्वार किया। एक मुहर्तदिन के शेष रहने पर वे कर्मार गांव जा गहुँ चौर कायोत्सर्ग वाग्ण कर ध्यान में मंलग्न हो गये। इसी समय कोई स्थाला जंगल से अपने बेलों को लेकर घर लौट रहाधा। बह उन्हें चरते के लिए भ० महाबीर के पास छोड कर गायें दहने के लिए घर चला गया। बैल घान चरते हुए अंगल में दर निकल गये। खाला ने घर से वापिस आपकर देखा कि मैं जहां बैळ छोड गया था वे वहां नहीं है, तब उसने भगवान से पूछा कि मेरे बैल कहां गये ? जब भगवान की खोर से कोई उत्तर नहीं मिला, तो वह समझा कि इन्हें मालम नहीं है, अत: उन्हें ढंढने के लिए जगल की आरे चल दिया। रात भर बह तंत्रता रहा, पर बेळ उसे नहीं मिले। प्रात:काळ छीटने पर उसने बेलों को भगवान के पास बेठा हुआ पाया। खाला ने क्रोधित होकर कहा-बैठों की जानकारी होते हुए भी आपने सभे नहीं बतलाया ? स्पीर यह कह कर हाथ में ली हुई रस्मी से उन्हें मारने को झपटा। तभी किसी भद्र पुरुष ने आपकर स्वाले को रोका कि श्चरे, यह क्या कर रहा है ? क्या नुमेत माल्स नहीं, कि कल ही जिन्होंने दीक्षा ली है ये वे ही सिखार्थ राजा के पुत्र महावीर हैं, यह सन कर ग्याला नत-मस्तक होकर चला गया।

दूसरे दिन महावीर ने कमीर प्राम से विहार किया और कोल्लागमनिवेझ पहुँचे। वहां पारणा करके वे मोराक-मन्तिवेझ की और चल दिये। मार्ग में उन्हें एक नापसालम मिला। उनके कुल-पति ने उनसे ठहरने और श्रिम वर्णामा करने के प्रार्थना की। मगवान उसकी बात को सुनते हुए आगे चल दिये। इस प्रकार अनेक नगर, प्राम और वनादिक में लगभग ७ माम परिश्रमण के परचान वर्षाकाल प्रारम्भ हो गया। जय महावीर ने अध्यामा में ्रे•छडमत्योबि परक्षपमाणो छउमत्यकाले विरहतेर्ण भगवता जयंतेण धुवंतेणं परक्षमतेणं ण कयाइ पमाश्रो कश्रो । श्रविसहा णवर्र एकस्सि एको अंतोमुहुत्तं श्रह्वियगामे सयुमेव श्रीभसमागाए ।

(श्राचारांग चूर्णि, रतखाम प्रति, पत्र ३२४) तत्र च तत्क्रतां कदर्थनां सहमानः प्रतिमाखा एव स्वरूपं निदाणो

भगवान् दश स्वप्नानवछोक्य जजागार ।

(कल्पसूत्रार्थप्रवोधिनी टीका पृ० १३७) किन्तु मगवती सूत्र के अनुसार उक्त १० स्वप्त म० महावीर ने

छद्माध्यकाल के अन्तिम रात्रि में, अर्थान् केवलोत्पत्ति के पूर्व देखे। यथा--

समणे भगवं महावीरे छउमत्यकालियाए श्रांतिमराइयंखि इमें इस महासुमिणे पासित्ता णं पहिबुद्धे ।

(भगवती सूत्र० शतक १६ उद्देशक ६, सू० १६)

अपने इस प्रथम चातुर्मास में भगवान् ने १४-१४ दिन के आह अर्धभासी उपवास किये और पारणा के लिए केवल आठ आर उठे।

कहा जाता है कि अगवान सहावीर अपर नाम वर्षमान के के द्वारा इस असम्र उपसमें को जीतने और शुरूपाणि यक्ष का सदा के लिए झान्त हो जाने के कारण ही आखि-माम का नाम 'वर्षमान नगर' रख दिया गया, जो कि आज 'वर्दवान' नाम से परिचमी बंगाळ का एक प्रसिद्ध नगर है।

द्वितीय वर्ष

प्रथम चातुर्मास समाप्त करके महावीर ने अध्यिष्राम से विहार किया और मोराक सन्निवेश पहुँचे । वहां कुछ दिन ठहर कर बाचालाकी आयेर विहार किया। आयो बढने पर लोगों ने उनसे कहा—'आर्थ, यह मार्गठीक नहीं है, इसमें एक भयानक भूजंग रहता है, जो अपनी हव्दि के विष-द्वारा ही पथिकों को भस्म कर देता है. अतः आप इधर से न जाकर अन्य मार्गं से जावें।' महावीर ने इन छोगों की बात सनकर भी उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया और वे इसी मार्ग से चलकर एक यक्ष-मन्दिर में जाकर ध्यानास्ट हो गये। वहां रहने बाळा सांप जब इघर उघर घम कर आपने स्थान को वापिस स्त्रीट रहा था. तो उसकी रुद्धि ध्यानारूट महाबीर पर ज्योंही पडी त्यों ही वह कोचित होकर फ़ुंकार करते हुए महावीर की खोर बढ़ा और इसने महावीर के पांच में काट खाया। पांच में उक्त के स्थान पर इस की भारा वह निकली। यह विभिन्न बात देख कर पहले तो वह स्तव्ध रह गया। पर जब उसने देखा कि इन पर तो मेरे काटने का कुछ भी असर नहीं हुआ। तो उसने दो बार और भी काटा ! मगर सद भी विष का कोई असर न देखकर सर्प का रोष ज्ञान्त हो गया। तब भ० महावीर ने उसके पूर्व भव का नाम लेते हुए कहा— चयड-कौशिक, झान्त होच्चो। अपना नाम सुनते ही उसे जातिसमरण हो गया और सदा के लिए उसने जीवों को काटना छोड़ दिया।

भ० महावीर यहां से विहार करते हुए ऋमशः श्वेताम्बी नगरी पहुँचे। यहां राजा प्रदेशी ने भगवान की अगवानी की और अत्यन्त भक्ति से उनके चरणों की वन्दना की। वहां से भगवान ने सर्भिन पुर की स्रोर विहार किया। स्रागे जाने पर उन्हें गंगा नदी मिली। उसे पार करने के लिए महाबीर को नाव पर बठना पड़ा। नाव जब नदी के मध्य में पहुँची, तब एक भयंकर तुकान आया, नाव भंबर में पडकर चक्कर काटने लगी। यात्री प्राण-रक्षा के लिए त्राहि-त्राहि करने लगे। पर महावीर नाव के एक कोने में सुमेरवत् ध्यानस्थ रहे। अन्त में अगवान के पुरुयोदय से कुछ देर बाद तुफान शान्त हो गया और नाय किनारे जा लगी। सब यात्रियों ने अपना-अपना मार्ग पकडा और महाबीर भी नाव से उतर कर गंगा के किनारे चलते हुए थुणाक पहुँचे। मार्ग में अवंकित पद-चिह्नों को देखकर एक सामुद्रिक-वेत्ता आश्चर्य में हुब गया और सोचने लगा कि मे पद-चिद्र नो किसी चक्रवर्ती के होना चाहिए। अतः वह पद-चिद्रां को देखता हुआ वहां पहुँचा, जहां पर भगवान अक्षोक वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ खड़े थे। उनके सर्वाङ्ग में ही चक्रवर्ती के चिह्न देखकर वह बड़ी चिन्ता में पड़ा कि सभी राज-चिह्नों से विभूषित वह पुरुष साधु बनकर जगलों में क्यों धूम रहा है ? जब उसे किसी भट्ट पुरुष से ज्ञात हुआ कि ये तो अपरिमित लक्षण-वाले धर्म-चक्रवर्ती भ० महावीर हैं. तब वह उनकी वन्द्रना कर अपने स्थान की -बला गया।

थूणाक-सन्निवेश से विहार करते हुए भ० महाबीर नालंदा

पहेंचें। वर्षीकाल प्रारंभ ही जाने से उन्होंने वहीं चातुर्मास विताने का निश्चय किया और एक मास का उपवास अंगीकार कर ध्यान में अवस्थित हो गये। इस चातुर्मास में संखली-पुत्र गोशाला की भगवान से भेंट हुई और वह भी चातर्मास वितान के विचार से वहीं ठहर गया। एक मास का उपवास पर्ण होने पर महावीर गोचरी के लिए निकले चौर वहां के एक विजय सेट के यहां उनका निरन्त-राय आहार हुआ। दान के प्रभाव से हुए पंच' आश्चर्यों को देखकर गोशाला ने सोचा- के कोई चमत्कारी साध प्रतीत होते हैं, अतः मैं इनका ही शिष्य बनकर इनके साथ रहेगा। गोचरी से छीटने पर उसने भगवान से प्रार्थना की कि आप मके अपना जिन्य बना लेवें। किन्तु भगवान ने कोई उत्तर नहीं दिया और पन: एक मास के उपवास का नियम करके ध्यानारूढ हो गये। एक मास के बाद पारणा के लिए वे नगर में गये और आनन्द श्रावक के यहां पारणा हुई। पुनः वापिस आयाकर एक माम का उपवास लेकर ध्यानारूढ हो गये। तीसरी पारणा सनन्द आवक के यहां हुई। पन. एक मास के उपवास का नियम कर भगवान ध्यानारूद हो गये।

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन चीयो पारणा के लिए जाने समय गोझाला ने भगवान् से पृष्ठा कि ऋाज सुक्ते भिक्षा में क्या मिलेगा ? भगवान् ने उत्तर दिया—'कोरों का बासा भाग, बस्ते हो लंड दक्षिणा में एक स्त्रोटा क्रया।' भगवान के जचनो को मिथ्या करने के ज़द्देश्य से वह क्यानेक घनिकों के घर भिक्षा के लिए गया, किन्तु

दिल्य गंबोधक वृद्धि, पुष्प वृद्धि, सुर्गाभ बायु-सत्त्रार, देव-दुःदुभि-बादन और अहो दान की ध्वनि, इन पाच आश्वर्य-कारी वार्तो को 'पंच आष्वर्य' कहते हैं । —सम्पादक

कहीं पर भी उसे भिक्षान मिली। अपना में एक लुहार के यहां से बही कोदों का बासा भान, लट्टी छांछ और एक लोटा रुपया मिला। इस पटना का गोशाला के मन पर बढ़ा भारी प्रभाव पड़ा। वह 'नियनिवाद' का पका समर्थक हो गया। उसकी यह टढ़ धारणा हो गई कि जो कुछ जिम समय होने वाला है, वह उस समय होकर के ही रहेगा।

चातुर्माम पूर्ण होते ही महाबीर ने नालन्दा से विहार किया और कोल्लाग सिन्नवेश पहुँचे । नालंदा से भगवान ने जब विहार किया, तब गोशाला भिक्षा लेने के लिए गया हुआ था । वापिस साने पर जब उसे महाबीर के विहार कर जाने का पता चला, तो वह भी दू दने-कूंटते कोल्लाग-मनिवेश जा पहुँचा । इसके प्रश्नान् वह लगा-तार छह चातमीसों तक भगवान के साथ रहा।

तीसरा वर्ष

कोल्लाग सिन्नवेश से भगवान ने सुवर्णव्यक्त की कोर विहास किया। मार्ग में उन्हें कुळ माने मिले, जो मिही की एक हांडी में विशे रका रहे थे। गोशाला ने भगवान से कहा — जरा ठहरिये, इस खोर को खाकर फिर खाने गोशाला ने भगवान ने कहा—वर खोर परेगी ही नहीं। बीच में ही हांडी फूट जावगी और सब खीर नीचे लुड़क जावगी। वह उड़कर भगवान तो कांगे चल दिये। किन्तु खीर खाने के लोभ में गोशाला वही ठहर गया। हांडी दूध से भरी हुई थी और उसमें चावक भी क्रांधिक हाल दिये गये थे। क्यां जाव चावल दूते नो हांडी फट गई और सब खीर नीचे लुड़क गई। ग्वांखे की आआ पर पानी फिर गया खीर गोशाला अपना सुख नीचा किये हुए वहां से चल दिया। अब वनको यह धारणा और भी हड़ हा गई कि 'जी लुक होने वाल' है, वह अन्या नहीं हो सकता।'

कोल्छाग सिलवेश से विहार करते हुए अगवान् ब्राह्मण गांव पहुँचे। यहाँ पर अगवान् की पारणा तो निरन्तराय हुईं। किन्यु गोशाला को गोचनी में बासा आत मिला, जिसे लेते से उसने इनकार कर दिया और देने वाली की से बोला—तुम्हें बासा आत देते लब्बा नहीं खाती। यह कह कर और शाप देकर विना ही भिद्या लिए वह वापिस लौट खाया।

ब्राह्मण गांव से भगवान् चन्पा नगरी गए और तीसरा चातु-मीस यहीं पर व्यतीत किया। इसमें भगवान् ने दो-दो मास के उपवास किये।

चौथा वर्ष

चन्पानगरी से भगवान ने कालायम मिलवेश की और बिहार किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक खंडदर में ध्वानावस्थित होकर रात्रि विताह । एकान समझ कर गांव के मुनिया का व्यक्तियारी पुत्र किसी दासी को लेकर वहाँ व्यक्तियार करने के लिए स्वाया और व्यक्तियार करके वापिस जाने लगा। तो गोशाला ने औ का हाय पकड़ लिया। यह देखकर उस मनुष्य ने गोशाला की खूब पिटाई की। दूमरे दिन भगवान ने प्रश्वात किया और पत्रकालय पहुँचे। भगवान वहाँ किसी एकान स्थान में ध्यानाहढ़ हो गये। दुभोय से पूर्व दिन जेसी घटना यहां भी घटी स्थीर यहां पर भी गोशाला पीता गया।

पत्रकालय से भगवान् ने कुमाराक सिम्नवेश की छोर विहार किया। वहाँ पर चप्पक रमणीय उद्यान में पार्श्वक माधुओं को रेखा, जो वस्त्र और पात्रादिक रसे हुए:थे। गोशाला ने पूछा —खाप किस प्रकार के साधु हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—हम निर्मेख हैं। गोशाळा ने कहा— 'श्वाप केंसे निर्मन्य हैं, जो इतना परिमह रख करकें भी अपने श्वापको निर्मन्य बनळाते हैं। बात होता है कि श्वपनी श्वाजीविका चलाने के लिए श्वाप लोगों ने होंग रच रखा है। सच्चे निर्मन्य तो हमारे धर्माचार्य हैं, जिनके पास एक भी बन्न श्रीर पात्र नहीं हैं श्वीर वे ही त्याग और तपसना करके गोशाळा हीं, '।' इस प्रकार उन समन्यी सायुष्में की भत्सेना करके गोशाळा वापिस भगवान के पास श्वा गया श्वीर उनसे सर्व बृत्तान्त कहा।

कुमाराक-सिविवा से चलकर भगवान् चोराक सिविवेश गये। यहां के पहरेदार चोरों के भय से बहे सतक रहते थे और वे किसी कपरिनित व्यक्ति को गांव में नहीं खाने देते थे। जब भगवान् गांव में पहुँचे. तो पहरेदारों ने भगवान् से उनका परिचय पूछा। किन्तु भगवान् ने कोई उत्तर नहीं दिया। पहरेदारों ने उन्हें गुप्तपर समझ कर पकड़ लिया और बहुत सताया। जब सोमा और जयन्ती नामक परिवार्तिकाओं से भगवान् का परिचय मिला, तब उन्होंने उन्हें छोड़ा और अपने दुष्कृत्य के लिए क्षमा मांगी।

चोराक से भगवान ने गृष्ठचन्या की छोर बिहार किया छौर यहीं पर चौदा चातुमांस व्यतीत किया। इस चतुमांस से भगवान ने पूरे चार मास का उपसास रखा छौर छनेक योगासनों से तपस्था करते रहे। चातुमांस समाप्त होते ही नगर के बाहिर पारणा करके भगवान ने क्यांग्डा सान्नियेश की छोर बिहार किया।

गोशाला का श्वे० शास्त्रोल्लिखित यह कथन सिद्ध करता
 क म० महावीर वस्त्र और पात्रों से रहित पूर्ण निर्मन्य थे।

पांचवां वर्ष

कर्यगला में अर्थ महावीर ने नगर के बाहिरी आग के एक क्यान में बने देवालं में निवास किया। वे उसके एक कोने में कारोलसर्ग कर क्यान-सम्र हो गये। उस दिन देवालय में रात्र-जागरण कारते हुए कोई धार्मिक उत्तव मनाया जाने वालाया, क्या-रात्रि प्रारम्भ होते ही नगर से स्त्री और पुरुष एक प्रिलकर नाचने लगे। क्याने के साथ ही धीरे धीरे स्त्री और पुरुष प्रिलकर नाचने लगे। गोशाला को यह सब कुळ अच्छा नहीं लगा और वह उन लोगों की गिशा करने कथा। अपनी निंदा सुनकर गांव वालों ने उसे मन्दिर से बाहिर निकाल दिया। वह गत अर बाहिर ठंड में ठिठुरता रहा।

प्रात: काल होने पर भगवान ने वहां से श्रावश्ती की स्रोर विहार कर दिया। गोचरी का समय होने पर गोशाला ने नगर में चलने को कहा। गोचरी में यहां एक ऐसी घटना घटी कि जिससे गोशाला को विश्वास हो गया कि 'होनहार दुनिवार है'

श्रावस्ती से भगवान् हांहुद्य गांव की खोर गये। वे तगर के बाहिर एक हुछ के नीचे ध्यान-स्थित हो गये। रात में वहां कुछ यात्री उद्दरें खीर उद्दें से बचने के लिए उन्होंने धाग जलाई। प्रातः काल होने के पूर्व ही यात्री लंगा ते चल दिये, पर खाग बदती हुई भग-बान् के पास जा पहुँची, जिससे उनके पर मुलस गये। भगवान् ने यह वेदना शानि-पूर्वक सहत की खीर खाग के बुझ जाने पर उन्होंने तमाला गांव की खोर विदार किया। वहां गांव के बाहिर भगवान् वे बाहुदेव के मन्दिर में ध्यान-स्थित हो गये, किन्तु वहां खेलने वाले छड़कों को गोझाला ने खांख दिखाकर दरा दिया। जड़के गिरने-पड़ते यर को भागे और उनके खांभावा को आंकर गोझाला को स्वच पीटा।

नंगला से विहार कर सगवान आवर्त गांव पहुंचे और वहां नगर से बाद्दिर बने बल्टेव के मन्दिर में गत सर ध्वान-स्थित नहें। दूसरे दिन वहां से चल्टकर चोगक-सौज्येल पहुंचे और वहां भी वे नगर से बादिर ही किसी एवान स्थान में ध्यान-स्थित रहे। पर गोशाला गोचरी के लिए नगर की और चला और लोगों ने उसे गुप्तचर समझकर पकड़ लिया और लुव पीटा।

चोराक-सन्नियेश से भगवान जब कलंबुका-सन्निवेश की कोर जा रहे थे तो मार्ग में मोमा-स्कृतां ने उनसे पूछा कि तुम लाग कीन हो ? उत्तर न सिल्ले पर होना को पीटा गया और पकड कर वहां के स्वामी के पास भेज दिया गया। उसने भगवान् को पहिचान लिया और उन्हें मुक्त कर अपनी भूल के लिए खमा मांगी।

यहां से भगवान ने लाद देश की खोर विहार किया । वहां उन्हें उद्दरने योग्य स्थान भी नहीं मिलना था, खादा जहां कहीं कंक- रीली-पश्यीली विषय भूमि पर ठहरना पहला था । वहां के लोग मावान को माग्ने खीर उन पर कुत्ते छोड़ देते थे। वहां खाहार भी जब कभी कई-कई दिनों के बाद रूला-सूखा मिलना था । पर भगवान, ने उम देश में परिभमण करते हुए इन सब कहां की बड़ी शानित से सहन किया जब भगवान बढ़ां से लीट रहे थे, तब सीमा पर मिले हर दो बोरों ने उन्हें बड़ा कहा पहुँ खोता वर सीमा पर मिले हर दो बोरों ने उन्हें बड़ा कहा पहुँ खाया।

वहां से ब्राक्ट भगवान ने भरिया नगरी में पांचवां चाहुमीस किया। यहां पूरे चार मास का उपवास ऋगीकार कर विविध श्रासनों से ध्यान स्थित रहे और क्यास्म-चित्रन करने रहे। चाहु-मास समाम होते ही नगर के काहिर पारणा करके स्थावाच ने करकी समागम की श्रीर विहार किया।

छठा वर्षे

कदछी-समागम से भगवान् जम्नूखंड गये चौर वहां से तम्बाय सित्रवेश गये चौर गांव के बाहिर ध्यान-ध्यित हो गये। यहां पार्यव-स्त्वानीय नित्वेण क्षाचार्य गांत्र में किसी चौराहे पर ध्यान-ध्यित ये, तब वहां के कोट्टपाठ के पुत्र ने उन्हें चोर समझ कर भाले से मार हाल। गोशाला ने इसकी सूचना नगर में दी छौर बापिस भगवान् के पास धा गया।

तम्बाय-सन्निवेश से भगवान् कृषिय-सन्निवेश गये। यहां के लोगों ने नहीं गुमवर समझ कर पकड़ दिया और खूब पीटा। बाद में उन्हें कर करके कारागृह में डाल दिया। इस बार की स्वया जब पार्यनाय-सन्तानीय विजया चीर प्रगन्मा माध्यियों को सिली, तो उन्होंने कारागृह के खपिकारियों से जाकर कहा - 'ब्यूरे यह क्या किया | क्या तुम लोग सिला तो पहि-चानने हो ! इन्हें शीध मुक्त करो। मगवान् का परिचय पाकर ज्वाने तुमल हुत्य का पश्चाचाप किया, भगवान् से क्षमा सांगी चीर उन्हें केंद्र से मुक्त कर दिया।

कृपिय-सिज़्विझ से भगवान ने वैद्याली की आरे विहार किया। इस समय गोशाला ने भगवान से कहा — भगवन, जा न तो आप भेरी रक्षा करते हैं और न आपके साथ रहने में मुक्ते कोई सुख है। अलुत कर है भोगाना पहते हैं और भोजन की भी विन्ना बनी रहती है।' यह कहकर गोशाला राजगृह की खोर चला गया। भगवान बेशाली पहुँच कर एक कम्मारशाला में प्यान-स्थित हो गये। दूसरे दिन जब उसका स्थानी खाया और उसने भगवान को वहां स्वहा हैया तो होती हो। तो हो किसी भन्न प्रति हो। तह किसी भन्न पुरुष ने खाकर कहें बचाया।

वैशाली से विहार कर भगवान ग्रामक-सन्निवेश आये और गांव के वाहिरी यक्ष-मन्दिर में ध्यान-स्थित रहे। वहां से चलकर भगवान आलीओर्थ आये खौर यहां पर भी नगर के बाहिर ही किसी उद्यान में ध्यान-स्थित हो गये। साथ का महीना था. कढाके की ठंड पड़ रही थी और भगवान तो नम्र थे ही। ऐसी अति भयंकर शीत-वेदना को सहने समय ही वहां की अधिप्रात्री कोई व्यन्तरी आई और संन्यामिनी का रूप बनाकर अपनी बिखरी हुई जटाओं में जल भर कर भगवान के ऊपर छिड़कने लगी और उनके कन्धे पर चढ कर अपनी जटाका से हवा करने लगी। इस भयंकर जीत-वेदना को भगवान ने गत भर परम शान्ति से महा। प्रातः होते ही वह अपनी हार मान कर वहां से चली गई ऋौर उपसर्गदर होने पर भगवान ने वहां से भहिया नगरी की आरंग विहार किया। छठा चातमांस भगवान ने भहिया में ही विताया। इस चौमासे भर भी भगवान न उपवास ही किया और अखरह रूप से आत्म-चिन्तन में निरा रहे। इधर गोजाला लह माम तक इयर-उधर घम कर और श्चनेक कच्ट सहन करके भगवान के पास पन: आ। गया।

चातुर्मीय समाप्त होने पर पारणा करके भगवान ने मगध देश

सातवां वर्ष

भगवान शीन और प्रीष्म ऋतु के पूरे काठ मास तक सगध के क्रानेक प्रामों में विचरते रहे। गोशाला भी साथ रहा। वर्षो-काल समीप क्षाने पर चातुर्मास के लिए भगवान कालंभिया पुरी काथे। यहां पर भी उन्होंने चार मास का उपनास क्राक्नीकार किया और क्षास-विच्तन में निरत रहे। चौमासा पूर्ण होने पर पारणा करके भगवान ने कुंडाक-सन्नियेश की चोर विहार किया।

आठवां वर्ष

कुंडाक-सिन्नियं में भगवान वासुरेव के मन्दिर में कुछ समय तक रहे। पुन. वहां से विहार क सहन-निन्नियं के वल्ट्र-मन्दिर में ठहरे। पश्चान् वहां से चल कर बहुमालग गांव में पहुँचे और हाल-कम को चली गाँव में पहुँचे और हाल-कम को चली गाँव। ये पा पर भी पह उदगरी ने भगवाम के ऊपर घोरातिघोर उपसर्ग किये और अन्त में हार कर वह अपने स्थान को चली गाँव। उपसर्ग हुर होने पर भगवान् ने भी वहां से बिहार किया और लोहार्गल। पहुँचे। वहां के पहरेदारों ने इनका परिचय पूछा, कुछ उत्तर न मिलने पर उन्हें ने पुत्र कर जानकर उन्हें पकक् लिया और राजा के पास लें गये। वहां पर भगवान् का पूर्व परिचय उपाये जी साथा में से से परिचय के प्रतिचत उत्तर के स्थान को से होता है। उठ सहर हुआ और भगवान् को नमहार कर राजा में बोला— राजन् ये तो राजा सिद्धार्थ के पुत्र धर्म-चकवर्ती तीर्थ पुत्र भगवान् महाबीर हैं, गुनवर नहीं हैं। तब राजा ने उनके बन्धन लुलवाये और क्षमा मांग कर उनका आदर-सस्कार किया।

छोहार्मछा से भगवान् ने पुरिमतालपुर की खोर विहार किया और नगर के बाहिरी उद्यान में कुछ समय नक ठहरे। पुरिमताल से भगवान् उन्नाग खोर गोभूमि होकर राजगृह पहुँचे खोर वहीं झाठवां चानुमीम किया। इस चीमासे भर भी भगवान् ने उपवास हो रखकर खास-चिनन किया। चानुमीम के नमान्न होने पर पारणा करके भगवान् ने वहां से विहार कर दिया।

नवां वर्ष

राजगृह से भगवान ने पुनः लाढ देश की आये विहार किया और वहां के वज-भूमि, सुम्ब-भूमि जैसे अस्त्रयं बहेका में पहुँचे। यहां पर ठहरते योग्य स्थान न सिलने से वे कभी किसी बृक्ष के नीचे श्रीर कभी किसी खबहर म ठहरते हुए विचरने लगे। यहां के लोग भगवान की हसी बढ़ार उन पर घृलि और पत्थर केंक्रने, गालियां देते और उन पर विकास किसी किसी किसी किसी किसी मिकार कोई का रोष सहते हुए कभी भी भगवान के मन में किसी प्रकार कोई का रोष या आवेश नहीं श्राया।

चातुर्मास आ जाने पर भी भगवान को ठहरने योग्य कोई स्थान नहीं मिळा, अतः पूरा चौमासा उन्होंने युक्षों के नीचे या खंड-हरों में रहकर ही बिताया। चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान स्त्र से बिहार कर दिया। यहां यह झानच्य है कि भगवान इस आनार्य देश में छह मास तक विचरण करते हुए रहे, पर एक भी दिन आहार नहीं िळया, अर्थान छह माम के छगातार वयनास किये।

दशवांवर्ष

अनार्य देश से निक्छ कर भगवान ने सिद्धार्थपुर की और विदार किया और क्रमश विचरते हुए वैशाछी गहुँचे। एक दिन नगर के वाहिर आप कायोर्क्स से ध्यानावस्थित थे कि वहां के छड़कों ने आपको पिशाव समझ कर बहुत परेशान किया। जब वहां के राजा को इस बात का पता चछा, तो वह भगवान के पास आया और पहिचान कर उनसे छड़कों के दुष्कृत्यों की क्षमा मांगी और वन्दना की।

वैशाली से भगवान ने वाणिज्य प्राप्त की कोर विद्वार किया। मार्गों में गएडकी नदी सिली। भगवान ने नाब-द्वारा उसे पार किया। नदी के उस पार पहुँचन पर नाविक ने उत्पाद मंगी। बाव कुछ उत्तर या उनगाई नहीं मिली, तो उसने भगवान को रोक छिया। भाग्य से एक परिचित व्यक्ति तभी वहां श्राया । उसने भगवान् को पहिचान कर नाविक को उत्तराई दी और भगवान् को मुक्त कराया ।

वहां से विहार कर भगवान वाणिज्यकाम के बाहिर ध्यान में खित हो गये। जब वहां के निवासी अमणोपासक ज्ञानन्द को भग-बान के पदारनं का पता चला, तो उसने आकर भगवान् की बन्दना की। वहां से विहार कर भगवान् आवस्ती पघारे खीर दशवां चानु-मोस खापने वहीं पर विताय।

यहां यह ज्ञातच्य है कि गोशाला ने चातुर्मास के पूर्व ही अग-वान् का साथ छोड़ दिया था और तेजोलेश्या की साधना कर स्वयं निश्चतिवाद का प्रचारक वन गया था।

ग्यारहवां वर्ष

श्रावस्ती से भगवान ने सानुरुद्धिय सिलवेश की जोर विहार किया।
इस समय जापने भद्र, महाभद्र जीर सर्वनोभद्र नपरवाज्ञों को करते
हुए सोछह उपवास किये। तपका पारणा भगवान ने कानन्द उपासक के वहां किया और टहुम्मि की जोर विहार कर दिया। मार्ग
में पेढ़ाल-उवान के जैस्य में जाकर तेखा का उपवास महण कर एक
शिखा पर ही ध्यान-स्थित हो गये। एक रात्रि को जब भगवान्
ध्यानास्त्र के, तब संगमक देव ने रात भर भयंकर से अपकर नाना
प्रकार के उपसर्ग किये। पर वह भगवान् को ध्यान से विचित्त न
कर सका। प्रातःकाळ होने पर वह अन्वयोन हो गया और भगवान्
ने बालुका की बोर विहार किया। वहां से सुयोग, सुच्छेता. मळय
और हस्तिशीर्ष आदि गांवों में बिचरते हुए तोसाळ गांव पहुँचे।
मार्ग में बह संगमक देव हुछ न कुळ वपह्र करता ही रहा, सगर
स्थावान निविकार रहते हुए स्वकृत विजय पर रहे।

तोसिक गांव से मगवान् बोर्काल गांव पहुँचे और वहां के उदाान में कायोस्तरी लगाकर ध्यान-स्थित हो गये। यहां संगमक ने उपट्रव करवा। प्रापंभ किया क्षेर चोर कह कर राज्याविकारियों से पकड़वा रिवा। वहां के राजा ने आपसे कई प्रस्त पूछे। पर जब कोई उत्तर नहीं मिखा, तब उत्तने कोध में आकर आपको कांसी लगाने का हुक्स दे दिया। मगवान् के गले में कांसी का करा लगाया गया और उयां ही नीता असे तकता हटाया गया, त्यां ही फेरा टूट गया। इस प्रकार सात वार कांसी लगायी गयी और सातां ही वार करा हटाया गया यह देख कर सभी अधिकारी आएवये-चिकत होकर गांवा के पास पहुँचे। राजा इस घटना से वह प्रभावित हुआ और उसने मगवान् के पास जाकर क्षमा मांगी और उन्हें वन्यन से मुक्त कर दिया। मांगी और उन्हें वन्यन से मुक्त कर दिया।

मोसलिशाम से भगवान् सिद्धार्थपुर गये। वहां पर भी आगे-वान् को चोर समझ कर पकड़ लिया गया। किन्तु एक परिचित व्यक्ति ने उन्हें खुइवा दिया। वहां से भगवान् व स्त्रप्रास गये। जब वे पारणा के लिए नगर में विचर रहे थे, तो वहां भी संत्रसक के खाहार में अन्तराय किया। तब भगवान् श्राहार लिए विना ही वापिस चले आये। इस प्रवास में पूरे लह मात्र के प्रसान् भगवान् की पारणा वअनाम में एक वृद्धा के यहां हुई।

व जन्नाम से अगवान् आलंभिया, सेवविया आदि प्रामों में विवरते हुए आवस्ती पहुँचे और नगर के बाहरी उद्यान में व्यात-स्थित हो गये। पुनः वहां से विहार कर कौज्ञाच्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला खादि नगरों में विहार करते हुए वैज्ञाली पहुँचे और ग्यारहवां चातुर्मास कारने यहीं पर व्यक्तीत किया और पूरै चातुर्मास मर अगवान् ने वर्षसस किये।

बारहवां वर्ष

वैशाली से भगवान् ने सुसुमारपुर की खोर विकार किया खौर कमशः भोगपुर और नन्दमाम होने हुए मेडियमाम पघारे। यहां पर भी एक गोपालक ने भगवान् को कच्ट देने का प्रयास किया।

मेडियमाम से भगवान कौजास्बी गये और पौप कृष्णा प्रतिपदा के दिन भगवान ने गोचरी को जाते समय यह अभिग्रह लिया कि "यदि शिर से मुंडित, पैरों में बेड़ी, तीन दिन की उपासी, पके हए उद्भव के बाकुल सुप के कोने में लेकर द्वार के बीच में खई। हई. दासीपने को प्राप्त हुई किसी राजकमारी के हाथ से भिक्षा मिलेगी. सो प्रहण करू गा. अन्यथा नहीं।" ऐसे अटपटे अभिग्रह को लेकर अभगवान लगातार चार माम तक नगर में गोचरी को जाते रहे। सगर ऋभिन्नहपूरानही हुआ। सारे नगर में चर्चा फैल गई कि भगवान भिक्षा के लिए आते तो हैं, परन्त विना कुछ लिए ही लीट उत्तरे हैं। वहां के निवासियों ने और राजा ने भी अभिष्रह जानने के लिए अनेक प्रयत्न किये. पर कोई सफलता नहीं मिली। इस प्रकार पांच दिन कम छह सास बीत गये। इस दिन सदा की भांति भगवान गोचरी को आये कि अभिन्नह के अनुसार चन्दना को पिंडगाहते हुए देखा और अपना अभिमह पूरा होता देखकर उसके हाथ से ब्याहार ले लिया। भगवान के ब्याहार प्रहण करते ही चन्दना की सब बेडियां खल गई और आकाश में जय जय कार ध्वनि गंजने लगी। भगवान आहार करके इधर वापिस चले आये और उधर राजा शतानिक को जब यह बात ज्ञात हुई, तो वह चन्दना के समीप पहुँचे। चन्द्रना का देखते ही रानी मृगावती ने उसे पहिचान लिया ख्यीर बोली - 'अरे यह तो मेरी बहिन हैं' ऐसा कह कर उसे वहां से राज-भवन ले आई। पनः उसने अपमें पिता के यहां यह समाचार

भेजा और राजा चेटक वैझाली से चन्दना को ऋपने घर लिवा सेगये । कालान्तर में यही चन्दना भगवान् के संघ की प्रथम साध्वी हुई।

कीशान्त्री से विद्वार कर भगवान् सुमंगळ, सुन्छेता, पाळकं प्रामों में विचरते हुए चन्यापुरी गहुँचे और चार मास के उपवास का, नियम लेकर वहीं चौमासा पूर्ण किया। चातुर्मास के परचात् विद्वार करके जॉमियामा गये।

तेरहवां वर्ष

जंभियमाम में कुछ दिन रहने के परचान् भगवान् वहां से मेडियमाम होने हुए छन्माणि गये और गांव के बाहिर ही प्यान में खित हो गये। रात के समय कोई राज्ञाला भगवान् के पास बैंक छोड़कर गांव में चला गया और जब वापिस आया तो उसे बैंक वहां नहीं मिले। उसने भगवान् से पृष्ठा—देवार्य, मेरे बैंक कहां गये ? भगवान् की ओर से कोई उत्तर नहीं मिलने पर क्रोचित होकर उसने कांस की शलाकाएं दोनों कानों में युसेड़ दी और पत्थर से ऐसा ठोका कि कान के भीतर वे आपस में मिल गई। कान से बाहिर निकली शलाकाओं को उसने तोड़ दिया, ताकि कोई उनको देख न सके।

रवे० आस्त्रों में इस उपसर्ग का कारण यह बतलाया गया है कि जब महाबीर का जीव त्रिष्टुत नारायण के भव में था, तब एक दिन रात्रि के समय वह सुल से अपनी अच्छा एते हों वे और उनके सामने अनेक संगीतज्ञ सुन्दर संगीत-गान कर रहे थे। नारायण के शब्दा-गाल से कहा कि जब मुक्ते नोंद आ जाय, तो इन गायकों को विदा कर देना। संगीत की सुरीली तान के सुनने में वह शब्दा-गाल हे इतता तनम्य हो गया कि नारायण के सो जाने पर भी गायकी विदा करना मुल गया हो गया कि नारायण के सो जाने पर भी गायकी विदा करना मुल गया आहेर सारी रात गायक गावे रहे। नारायण

हाने और गायकों को माते हुए बेसकर शच्या-पाळ पर आगा-बबूछा होकर बससे पूछा कि गायकों को अभी तक विदा क्यों नहीं किया ? बसते वित्तन होकर उत्तर दिया- महाराज, मैं संगीत सुनते में तत्त्वय हो गया और आपका आर्ट्स भूळ गया। राज्या-पाळ के उत्तर से नारायण और भी कृद्ध हुए और अधिकारियों को आर्ट्स दिया कि हसके दोनों कानों में पिचला हुआ गर्भ शीशा भर दिया जाय। बेचारा शब्या-पाळ गर्म शीरों के कानों में पढ़ते ही छटपटा कर मर गया। उस समय का बद्ध यह निकाचित कमें महावीर के इस समय बद्ध में आया और अनेक योनियों में परिभ्रमण के बाद उसी शब्या-पाछ का जीव गुवाला बना और पूर्व भव के वैर से बेंछों का निमित्त पाइत उसका रोय इतना बदा कि उसने महावीर के दोनों कानों में

छम्माणि से विहार करते हुए अगवान मध्यमणवा पथारे और गोचरी के डिए धूमते हुए सिद्धार्थ वेश्य के घर पहुँचे। आहार करते समय वहां उपिथत स्वरक वैद्य ने भांपा कि अगवान के हारीर में कोई हाव्य है। आहार कर अगवान गांव के बाहिर चले गये और उचान में पहुँच कर प्यानास्त्र हो गये। सिद्धार्थ भी वैद्य को क्रेक्ट वहां पहुँचा और हारीर की परीक्षा करने पर उसे कान में डोकी हुई की कें दिखाई दीं। तब उसने संद्वासी से पकड़ कर दोनों इक्काकाएं कानों से खींचकर बाहिर निकाल दी और कानों में चाव अपने वादी औषधि हाली। पुनः वन्दान करके वे दोनों वापिस गांव में कोट आहे।

इस प्रकार भयानक वपसर्ग और परीयह सहन करते हुए, सचा नाना प्रकार के तपश्चरण करते हुए भगवान् ने साहे बारह वर्ष स्वतीत किये। इस छद्यस्य काल में भगवान् के द्वारा किये गये तपश्चरण का विवरण इस प्रकार है—

छह मासी अन्जन तप १ प्रश्लोपवास જુ ર पांच दिन कम छह मासी तप भद्र प्रतिमा २ दिन चातुर्मासिक महाभदप्रतिमा ४ दिन नेया विक २ सर्वतोभद्रप्रतिमा१० दिन ş अवाई मासिक षष्ठोपवास (वेला) २२६ वो मामी ६ बाब्टमभक्त (तेला) १२ •• हेद मामी पारणा के दिन SXE 11 रक मामी १२ दीक्षाकादिन 8

इस उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भ० महावीर ने अपने उद्याख जीवन के इत १२ वर्ष ६ मास और १४ दिन के तपरचरण- — काल में केवल ३४० दिन ही भोजन किया और रोष दिनों में कहोंने निजंल ही उपवास किये हैं।

१ जो ख तवो खगुजिन्नो वीर-वरेणं महागुभावेणं।
छ उमत्य-काल्याए खहकमां कित्तहस्सामि ॥ १ ॥
नव किर चाउम्मासं छ किर दो मासिए कोषासी छ।
बारम य मासियाइं वावत्तरि खद्धसासाई॥ २ ॥
इक्कं किर छम्मासं दो किर तेमासिए उवासी छ।
खहाइडाइं दुवे दो चे वर दिवहुमासाइं॥ ३ ॥
महं च महाभइं पढिमं तत्तो छा सक्वछो भइं।
दो चत्तारि दसेव य दिवसे ठासी यमगुबद्धं॥ ४ ॥
गोक्षरसिमगहजुकां खमणं छम्मासियं च कासी छ।
पंच दिवसेहिं ऊणं खम्बहिको वच्छनयरीए॥ ४॥

अ० महाबीर के छद्यस्थकाल के तपन्नरण और उपसर्ग आदि का उक्त बर्णन स्वे० आगमों के आगार पर दिया है। इससे पाठक जान सकेंगे कि साढ़े बारह वर्ष के लम्बे समय में कंटो-कंटी उपसर्ग और कच्ट भ० महाबीर को सहन करना पड़े थे। दि० जैन पुराणों में एक और उपसर्ग का बर्णन मिलता है। यह इस प्रकार है—

पक समय भगवान् विहार करते हुए उच्जयिनी नगरी पहुँचे भौर वहां के भितमुक्तक नामक स्मशान भूमि में रात्रि के समय प्रतिमा योग भारण करके खड़े हो गये। अपनी क्षी के साथ यूमता हुआ भव नामक कड़ वहां आया और भगवान् को ध्यानस्य टेखकर स्थान-बब्हा हो गया। उसने रात भर खनेक प्रवार के उपनी विये, भयावने हुए बना कर भगवान् को डराना चाहा, उन्हें ध्यान से विव-खित करने के खिए अपसराभ्यो का जृत्य दिखाया गया। इस प्रकार

दस दो किर महप्पा ठाइ मुणी एगराइयं पिडमं। सहम-भत्तेण जई इकिक चरमाई छं ॥ ३ ॥ दो दो चेव च च्छ्रहसर घरणानीसे उ वासिको भयवा। न कदाइ निकारणं चरकारों से अधि ॥ ७ ॥ वारस वासे छाहिए छट्ट भरां जहलयं छामि ॥ ७ ॥ सम्बंध च तथों क्ष्माणणं छासि बीरस ॥ म ॥ तिहि सप दिवसाणं घरणापत्रे थ पारणाकालो ॥ उक्कुडुष निस्त्रकाए ठिव पिडमण सप बहुए ॥ ६ ॥ पळ्ळाडुष्ठ निस्त्रकाए ठिव पिडमण सप बहुए ॥ ६ ॥ पळ्ळाडुष्ठ निस्त्रकाए ठिव पिडमण सप बहुए ॥ ६ ॥ पळ्ळाडुष्ठ निस्त्रकाए ठिव पिडमण सप बहुए ॥ ६ ॥ पळ्ळाडा दिवसं पढमं इत्यं तु पिक्सिकाणं । संकिष्टियम्म उ संतं जं छढं ते निसामेह ॥ १०॥ वारस चेव च वासा मासा छन्नेच च्छासासो य । वीर-वरस्स भगवको एसो छन्नमल-परियाषो ॥ ११॥

(खावश्यक-नियु क्ति पु० १००-१०१)

सारी रात्रि भर उपद्रव करने पर भी जब भगवान् विचलित नहीं हुए फीर सुमेरुवन् घडील-घक्ष्म वने रहे, तब वह भी भगवान् के वरणों में नत-मरुक हो गया। उसने खपने दुरुक्ट्यों के लिए भगवान् से क्षमा मंगी, नाता प्रकार के स्तोत्रों से उनका गुण-मात किया और 'खातिवीर या महति महावीर 'कहकर उनके नाम का जयघोष किया।

भगवान् के चार नामां की चर्चा पहिले कर आये हैं। यह भगवान् का पांचवां नाम रखा गया। इस प्रकार भगवान् के है नाम तभी ले प्रचलिन हैं—चीर, श्रीवर्शनान, महाबीर, श्रातिशेर महिन महाबीर कीर सन्मति। प्रसिद्ध दाशितिक विद्वान् श्री सिद्ध-सेनाचार्य को 'सन्मति' यह नाम बहुत प्रिय रहा और इसी से उन्होंने अपने दार्शनिक प्रन्य का नाम ही सन्मति सूत्र रखा। खाभी समन्त-भद्र और अकलंकर्ट्व ने श्रीवर्धमान नाम से ही भगवान् की स्तुति की है। बीर और महाबीर नाम से तो सब साधारण जन मली-भाति परिचित ही हैं।

भ० महावीर के केवल ज्ञान की उत्पत्ति और गणधर-समागम

बँशाख शुक्छा दशमी के दिन भ० महावीर को जंभिय प्राम के बाहिर ऋजुवालुका नदी के उत्तर तटपर श्यामाक नामक किसानके

१ किरात-सँन्यह्रपाणि पापोपार्जन-परिजनः।

विद्या-प्रभावसम्भावितोपसर्गैर्मयावहै: ॥ ३३४ ॥ स्वयं स्वळितुः चेतः समाधेरसमर्थक ॥ स महति-महावीरास्त्र्यां क्रत्वा विविधाः स्तुतीः ॥ ३३६ ॥ उमया सममास्त्राय नर्तित्वागादमस्सरः ॥ ३३७ पूर्वार्षे ॥ (उक्तपुराण, पर्वे ७४) स्तेत वर्ती शालश्क्ष के नीचे चौथे पहर में केवल्कान उत्पन्न हुचा। उस समय इन्द्र का खासन करणायमान हुच्या। उसने खावधि ज्ञान से ज्ञाना कि भ० महाबीर को केवल्कान उत्पन्न हुच्या है, खतएव वुरन्त ही सब देवों के साथ भगवान् दी वन्दना के लिए खाया। इन्द्र के खादेश से कुवेर ने एक विशाल सभा-मरहप रचा, जिसे कि जैन शालों की परिभाषा में समयसरण या समयशरण कहते हैं। इम पद का खर्ष है सर्व छोर से खाने वाले लोगों को समान रूप से शरण देने वाला स्थान।

जिस दिन अ० महाबीर को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसके हुल समय पूर्व से ही मध्यम पावापुरी में सोमिल नाम के ब्राह्मण ने अपनी यज्ञशाला में एक बहुत बड़े यह का आयोजन किया या और उसमें सम्मिलित होने के लिए उसने उस समय के प्राय: सभी प्रमुख एवं प्रधान ब्राह्मण विद्वानों को अपनी शिष्य-मण्डली के साव आमन्त्रित किया था।

उस यह में भाग लोने के लिए इन्द्रभूति, श्राप्तिभूति श्रीर वायुभूति यें तीनों ही गीतनागीत्री विद्वान् — जो कि समे भाई थे — इपनेअपने पांच-पांचती शिष्यों के साथ आये हुए थे। ये मग्य देश के
गोवर मास के निवासी थे श्रीर इसके पिता वा नाम वसुभूति श्रीर
माता का नाम पृथ्वी था। यश्यि ये तीनों ही विद्वान् वेद-वेदांगादि
पांचह विशाखां के झाता थे, तथापि इन्द्रभूति को जीव के विषय में,
श्रीप्रभूति को कर्म के विषय में श्रीर वायुभूति को जीव श्रीर शरीर
के विषय में श्रोम श्री देश में

वसी यक्ष-समारोह में कोल्लाग-सिक्रविश-वासी आर्थव्यक्त नाम के विद्वान भी सम्मिलित हुए थे। इनके पिता नाम धनमित्र और माता का नाम वारुणी था। इनका गोत्र भारद्वाज था। इन्हें पंचमूर्तों के विषय में शंका थी, अर्थात् ये जीव की उत्पत्ति पृथ्वी, बाक, छान्नि, वाबु और बाकारा इन पंच भूतों से ही मानते थे। जीब की स्वतन्त्र सत्ता है कि नहीं, इम विषय में इन्हें झका बी। इनके भी पांचसी शिष्य थे। उनके साथ ये यह में खाबे थे।

यदी कोल्लाग-सिविश के सुपमां नाम के विद्वान् भी यज्ञ में आये थे, जो अमिन्नेश्यायनगोत्री थे। इनके पिता का नाम अस्मिल बा चौर माना का नाम भरित्या था। इनका विश्वाय था कि वर्तमान में जो जीव जिस पर्याय (अवश्या) में है, वह मर कर भी उसी पर्याय में उत्पन्न होता है। पर आगाम-प्रमाण न मिलने से ये अपने अत में सिन्दाय थे। इनके भी पांचसी शिष्य उनके साम यज्ञ-समारोह में शामिल हर थे।

उसी यक्ष में मौथे-सिन्निदेश के निवासी मण्डिक और मौथे-पुत्र नामक विद्वान् भी अपने साढ़े तीन-तीनसी शिष्यों के साथ सम्मिलित हुए। मण्डिक विशिष्टगोत्री थे, इनके पिता का नाम धन-देव और माना का नाम विजया था। इन्हें बन्ध और मोक्ष के विषय में शंका थी। मौथ-पुत्र करवपगोत्री थे। इनके पिता का नाम मौथे और माता का नाम विजया था, इन्हें देवों के अस्तित्व के विषय मैं शंका थी।

वस यह में भाग लेने के लिए अकस्पित, अवलक्षाता, मेतार्य, और प्रभास नाम के चार अन्य बिद्वान् भी आये थे, (इनके रिता-मातादि के नाम जीरहवें समें में दिये हुए हैं।) इनमें से प्रस्केक का हिष्य-परिवार तीन सी शिष्यों का था। अकस्पित को नरक के विषय में, अवल्लाक का स्वाच में, अवल्लाक के स्वच्य में, अवल्लाक के स्वच्य में, अवल्लाक के प्रस्का की पुरुष के सम्बन्ध में और प्रभास को मुक्ति के सम्बन्ध में श्रांत थी। अकस्पित मिबिला के ये और उनका गीतम गोत्र था। अचल आता कीशक के में और उनका गीत मो मेतार्व जीशास्त्र के समीपवर्ती तुर्गिक्ष के में और उनका गीत बी हिष्य था। प्रभास राजगृह के ये, उनका गीत्र कीरिकट्य था। प्रभास राजगृह के ये, उनका

भी गोत्र कौरिडन्य था। वे सभी विद्वान् ब्राह्मण थे और वेद-वेदाङ्ग के पारगामी थे। परन्तु क्राभिमान-वश ये व्यपनी शंकाओं को किसी अन्य के सम्मुख प्रकट नहीं करते थे।

जिस समय इधर समवज्ञरण में खाकाश से देवगण खा रहे थे जमी समय उधर सोमिल बाह्मण के यहां यहां भी हो रहा था खीर उपर्यं क विद्वान अपने-अपने शिष्य परिवार के साथ वहां उपस्थित थे. अतः उन्होंने उपस्थित लोगों से कहा—देखो हमारे मत्रों के प्रभाव से देवगण भी यज्ञ में जामिल होकर खापना हत्य-खांज लेने के लिए ह्या रहे हैं। पर जब उन्होंने देखा कि से देवगण तो उनके सबस्थल पर न आकर दसरी ही ओर जा रहे हैं, तो उन्हें बढ़ा आश्चर्य हुआ। मनुष्यों को भी जब उसी छोर को जाने हुए देखा, तो उनके विस्मय काठिकानान रहा और जाते हुए छोगों से पूछा कि तुम छोग कहां जा रहे हो ? लोगों ने बताया कि महाबीर, सर्वेज तीर्थं कर यहां आये हुए हैं, उनका धर्मोंपदेश सुनने के लिए हम लोग जा रहे हैं और हम ही क्या, ये देव लोग भी स्वर्ग से उतर कर उनका उपदेश सुनने के लिए जा रहे हैं। उनका यह उत्तर सनकर इन्द्रभृति गौतम विचारने लगा- क्या वेदार्थ से शत्य यह महावीर सर्वज्ञ हो सकता है ? जब मैं इतना बड़ा विद्वान होने पर भी आज तक सवेज़ नहीं हो सका, तो यह वेद-बाह्य महाबीर कैसे सर्वज हो सकता है ? चलकर इसकी परीक्षा करना चाहिए और ऐसा सोच कर वह भी उसी और चल दिया जिस श्रोर कि सभी नगर-निवासी जा रहे थे।

अ० महाबीर के समवजरण में गौतम इन्द्रभृति और उनके कान्य सी बिद्धान् किस पकार पहुँचे, इसका ऊपर जो उन्लेख किया गया है, वह रहे० शास्त्रों के ब्याचार पर किया गया है। दि२ आस्त्रों के ब्याचार पर किया गया है। दि२ आस्त्रों के ब्याचार पर किया गया है। दि२ आस्त्रों के ब्याचार पर किया तो के पश्चान् समय- इरण की रचना तो इन्द्र की ब्याज्ञा से कुबेर ने वैशास्त्र खुळता १० के

दिन ही कर दी। सपरिवार चतुर्निकाय देवां के साथ आकर के इन्द्र ने केवल-कल्याणक भी मनाया और भगवान् की पुजा करके अपने प्रकोश में जा बंदा नवा भगवान् के सुवारिवन्द से धर्मोग्रेश पुनने की प्रनीक्षा करने का। । त्रनीक्षा करने-करने दिन पर दिन बीतने लगे। ति कुछ के भगवान् के उपदेश नहीं देने का क्या कारण है ? जब उसने अपने अवधिज्ञान से जाना कि 'गणपर' के न होने से भगवान् का उपदेश नहीं हो रहा है. तब वह राणपर के बोग्य व्यक्ति के आन्वेषण में तरार हुआ :- और उस समय के सब श्रेष्ठ विद्वान एवं वेद-वेदांग के पारगामी इन्द्रभूति गौतम के पास एक शिष्य का हर बना कर पहुँ वा और बोल्ड कि एक गावा' का अर्थ पूछने को आयक पास एक शिष्य का हर बना कर पहुँ वा और बोल कि एक गावा' का अर्थ पूछने को आपके पास आर्थ हुं हा इन्द्रभूति इस हार्त पर

 पट्खरडागमकी अवला टीका में वह गाथा इस प्रकार दी है— पंचेब ऋषिकाया, छःजीवणिकाया महत्वया पंच । ऋह य पवयणमादा, सहेब श्रो बंध-मोक्खो य ॥

(षट्खंडागम, पु० ६, पृ० १२६)

संस्कृत प्रन्थों में उक्त गाथा के स्थान प∢ यह श्लोक पाया जाताहै—

त्रकाल्यं द्रव्यप्टकं नवपदमहितं जीवपटकायलेखाः पञ्जान्ये चारितकाया ज्ञवसमितिगतिज्ञातचारिक्रमेदाः । इत्येतनमोक्षमूकं त्रिभुवनमहितैः श्रोक्तमहिद्वरीक्षेत्रः, प्रत्येति अक्ष्याति स्पृत्रति च मतिमान् यःसः वे झुद्धहर्टिटः ॥ (तक्ष्वाध्वसूत्र, भूतमक्तिः)

कुछ ऋत्य प्रत्यों में यही श्लोक कुछ पाठ- ंके साथ भी मिलना है। ं ं ं ं ं ं ं स्मिन्स गाया का अर्थ बताने के लिए राजी हुए कि अर्थ जानने के बाद वह जनका शिष्य बन जाया। जब इन्द्रभूति गौतम ने उससे पूछा कि वह गाया नूने कहां से सीखी है ? तब उसने उत्तर दिया—कि वह आपता नूने कहां से सीखी है. किन्तु उन्होंने कई दिनों से सीन भीत कारण कर लिया हैं', अतः उसका अर्थ जानने के लिए मैं आप पर पास आया हूं। वे गाया सुनकर बहुत चकराये। और समझ स सके कि एंच अस्तिकाय क्या है, छह जीव के और समझ स सके कि एंच अस्तिकाय क्या है, छह जीव के अस्तित्य के विषय में स्वय ही शंकित थें', अतः और भी असमंजस में पड़कर उससे बोले-चय हों शा कि पास पड़ेंच असमंजस में पड़कर उससे बोले-चय होंगे हो सामने उसका अर्थ बनाइंगा। यह कह कर इन्द्रभूति उत्तर छग्नस्पर-पारी शिष्य के साथ भ० महावीर के पास पड़ेंच ! भगवान ने आते ही उनका नाम लेकर कहा— 'आहो इन्द्रभूति गुन्हारे हृदय में जो यह शंका है कि जीव है, या नहीं ? सो जो ऐसा विचार कर रहा है, निश्चय से वही जीव है,

१ ब्राहुणा गुरू सो मउणे संदित, कहइ ण किंपि उक्षाणपरिद्वितः । यड्वाहिं तुम्ह पयहमइं णिमुणिय सत्वस्थहं ब्राइ कुसल वियाणिय। तहो कञ्चहु अत्वत्वित आयत्र, कहहु तपि महु वियल्पिय मायत्र।। (स्ययुक्तन-महावीर चरित-पत्र ४६)

युझ गुरु मोंन ळीयुं, वर्षमान तेह नाम। तेह भणी तुझ पूछिवा, आय्युं आर्थ गुणमाम।। (सहावीर रास, पत्र १२० A)

सञ्जोबसमजणिद-चनरमञ्जुद्धिसंपरलेण बन्हलेण गोदसगो-

देण सबल्डुस्सुदिपारएण जीवाजीव - विसयसंरेह - विणासणह-सुवगय-बहुमाणपादमूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

⁽ षट्खरडागम, पुस्तक १, पु० ६४)

उसका सर्वेषा अभाव न कभी हुआ है और न होगा। 'मगवान् के ह्यारा अपनी मनोगन शका का उल्लेख और उसका समाधान सुनकर इंट्रियूनि ने भक्ति से विद्वल होकर तरहाल उनका शिष्यव्ह संजीकार कर लिया और दीक्षा लेकर दिगन्वर साधु बन गये। गौतम इंट्रयूनि का निमित्त पावर इस प्रवार देव दिनके बाद श्रावण-कृष्णा प्रनिपदा को भगवान् का प्रथम धर्मोपदेश हुआ ।

वीरसेन।चार्य ने जयधवला टीका में इम विषय पर कुछ रोचक प्रकाश डाला है, जो इस प्रकार है—

हांका-केवल झानोरानि के बाद ६६ दिन तक दिज्यध्वनि क्यों प्रकट नहीं हुई १

समाधान-गणधर के द्यभाव से।

शंका - सीधर्म इन्द्र ने तत्काल ही गणधर को क्यों नहीं ढूं दा ?

ममाधान — काल-लब्धि के विना श्रमहाय देवेन्द्र भी गणधर को ढूंढने में श्रममर्थ रहा।

हांका—अध्यत पादमूल में आकर महाव्रतों को स्वीकार करने वाले पुरुष को छोड़ कर अध्य के निमित्त से दिब्बध्वनि क्यों नहीं प्रवत होती है।

प्रहुत हाता ह। समाधान—ऐसा ही स्वभाव हैं और स्वभाव में प्रश्न नहीं किया जा सकता है अन्यया किर कोई ब्यवस्था ही नहीं बन सकेगी री

वासस्स पढममासे सावणणामिन्म बहुङ पहिवाए ।
 श्रमिजीणकवन्तिम य उपात्ती घम्मतिखस्स ।) (विछोयप०, १६८)

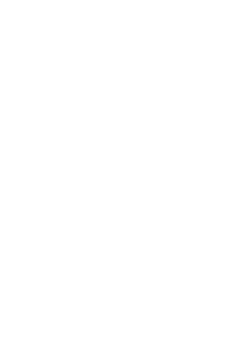
२. केवलणास्त्रे समुप्तरस्यो वि दिक्वक्षुणीए किसह तस्वापकती १ गणिदासावादी। सोहम्मिट्ण तस्वयस्य चेव गणिवो किरण ढोइदो १ ण, काललढीए विष्णा ध्यसहेक्यस्य, देविंदस्स तङ्कोयण-

महाबीर-कालिक मत-मतान्तर

भ० महावीर के समय श्राजनकंज कंवल, प्रकुष कात्यायन, संबाल गोशाल, प्रण काश्यप, गौतम बुद्ध और संजय बेलिट्ट-पुन, ये अपने को तीर्थं कर कह कर अपने श्रापने मतों का प्रचार कर रहे थे।

इनके अप्तिरिक्त स्वेश्वीपपातिक सुत्र की टीका में तथा अन्य झास्त्रों में भश्म महात्रीर के समय में निम्न छिखित तापसों का चल्लेख मिळता है—

- १ होत्तिय-अग्निहोत्र करने वाले
- २ पोत्तिय-वस्त्रधारी नापस
- ३ कोत्तिय-भूमि पर सोने वाले
- ४ जल्लाई —यज्ञ करने वाले
- 🗴 सहुई श्रद्धा श्यने वाल
- ६ सार्छेई ऋपना सामान साथ लेकर घूमने वाले
- ७ हुँबउट्टा-कुरिटक साथ में लेकर भ्रमण करने बाले
- म दंतुक्लिखा —फल खाकर रहने वाले
- ६ उम्मव्यका उन्मव्यत मात्र से स्नान करने वाले
- १० सम्मज्जका कई बार गोता लगाकर स्नान करने बाले
- ११ निम्मज्जका क्षण मात्र में स्नान कर लेने वाले
- १२ संपक्खळा-मिट्टी घिस कर स्नान करने वाले
- १३ दक्षिण-कूलगा-गंगा के दक्षिण किनारे पर रहने वाले
- १४ उत्तर-कूलगा-गंगा के उत्तर किनारे पर रहने वाले
 - १४ संख-धम्मका--शंख वजाकर मोजन करने वाले
 - १६ कूल-धम्मका--तट पर शब्द करने के भोजन करने वाले
 - १७ मिगलुद्धका पशुकां की शिकार करने बाले
 - १८ इत्थितावसा—हाबी मारकर अनेक दिनों तक उसके मांस-भोजी



१६ वहरहका -- दरह ऊपर करके चलने वाले

२० दिमापोक्खिणा—चारों दिशाओं में जल छिड़क कर फल-फूल-एकत करने बाले

२१ वाकवासिण-बल्कलधारी

२२ ऋंबबासिण - जल में रहने वाले

२३ बिळवासिण - विल-गुफादि में रहने वाले

२४ जलबासिण — जल में इव कर रहने वाले

२४ बेळवासिण -समुद्र-नट पर रहने वाले

२६ स्क्लमलिया - बुक्षों के भीचे गहने वाले

२७ ऋांब्रुमिक्खण — क्रेबल जल पीकर गहने वाले

रूप वायुभक्तिला—पत्रन भक्षण कर रहने त्राले

२६ सेवालभक्तिलण—सेवाल (काई) स्वाकर रहने वाले

३० मुलाहारा —कंबल मूल खान वाले

३१ कंदाहारा—केवल करद स्वाने वाले

३२ तयाहारा — केवल यक्ष की छाल खाने वाले

३३ पत्ताहारा--केवल पत्र खाने वाले

३४ पुष्फाहारा - फेंबल पुष्प स्नाने वाले ३४ बीयाहारा - केंबल बीज स्नाने वाले

३६ परिसक्षियकंदमूलनयण्तपुष्ककलाहाग—कद, मूल, छाल, पन्न, पुरुष, कल-भोजी

३७ जलाभिसेयकदिणगायमूया--विना स्नान के भोजन न करने वाले

२७ जळा।मसयकाढणगायमूया—।वनास्नानक भाजन न करन वा ३८ च्यायावणार्ठि— थोडाच्याताप सहन करने वाले

२६ पंचरिंगताबेहिं--पंचामि तपने वाले

४० इंगालसोल्लिया अंगार पर सेंक कर खाने वाले

४१ कंडसोल्ळिया—तवे पर सेंक कर खाने वाले

४२ कट्टमोल्लिया — लक्की पर पकाकर भोजन करने वाले

्र ३ अत् कोसिया—आस्मा मे ही उत्कर्ष मानने वाले

४४ भूइकस्मिया-ज्वर आदि के दूर करने के छिए भूति (राख, भस्म) देने वाले

VV को उसकारया -- कौतक करने वाले

४६ धरमचितका- धर्म-शास्त्र को पढ़ा कर भिक्षा लेने वाले

४७ गोठवड्या--गोव्रत-धारक, गाय के पालने वाले

Vs गोक्रमा--छोटे बँळों का चलना सिखा कर भिक्षा मांगने वाले

८६ जीतरई-जानाकर लोगों को मोहने वाले

४० चंडिरेवगा -चक को धारण करने वाले, चडी देवी के भक्त

४१ दगसोयारिय-पानी से भूमि को सींच कर चलने वाले

५२ कम्मारभिक्ल-देवताओं की द्रोणी जेकर भिक्षा सांगने वाले

¥3 कडबीए—डाडी रखने वाले

४४ पिंडोल्डवा-भिक्षा-पिएड पर जीवन-निर्वाह करने वाले

४४ ससरक्ला-शरीर का पुछि छगाने वाले

v६ वणीमग — याचक, घर घर से चटकी आगटा आहि सांगने वाले ४७ वारिभद्रक — सदा ही जल से हाथ-पैर आदि के धोने में कल्याण मानने वाले

४८ वारिखल--मिट्टी से बार-बार मार्जन कर पात्रादि की शुद्धि करते वाले।

इनके अतिरिक्त बौद्ध-भिज्ञ, वैदिक, वेदान्ती, आजीवक, काया-लिक, गैरुक, परिजाजक, पांडरग, रक्तपट, बनवासी, भगवी खादि अनेक प्रकार के अन्य भी साधुओं के होने का उल्लेख मिलता है।

दि० और खे॰ दोनों ही परम्पराश्रों के शास्त्रों में ३६३ मिध्या-वादियों का भी सेद-प्रसेद लहित वणन सिलता है, जो कि इस प्रकार है -

(१) कियावादियों के १८० मेद-जो किया-कारह में ही धर्म मानते थे।

- (२) व्यक्तियानावियां के ८४ भेद जो क्रिया-काय्ह को व्यर्थ मानते थे।
- (३) द्यज्ञानवादियों के ६७ भेद—जो कि द्यज्ञानी बने रहने में दर्भ मानते थे।

(४) विनयवादियों के ३२ भेद — जो कि हर एक देवी-देवता की विनय करने को धर्म मानने थे।

इत सब का विगतवार वर्णन दोनों परस्पराश्चीं के शास्त्रों में खपळच्या है।

भ्राप्त महावीर के समय में अपनेक प्रकार के सिध्यास्त्र-वर्धक भास्त्रस्त्री पूजा-पाठ भी प्रचलित थे। यहां पर उनमें से कुछ का विस्तर्जात इस प्रकार है—

- (१) इन्द्रमह-इन्द्र को प्रसन्न करने वाली पूजन
- (२) रुद्रमह-महारेव को प्रसन्न करने वाली पूजन
 - (३) स्कन्दमह-महादेव के पुत्र गर्गेश की पूजन
- (४) मुकुन्दमह, या वासुरेषमह-श्रीकृष्ण की पूजन
- (४) नागमह-सर्पें की पूजन
- (६) वैश्रमणमह-कुत्रेर की पूजन
- (७) यक्षमह-यक्ष देवताओं की पूजन
- (म) भूतमह-भूत पिशाचों की पूजन।

भ० भहाबीर को इन सैंकड़ों प्रकार के पाखरहों और पाख-रिख्यों के मतों का सामना करना पड़ा और खपनी दिव्य देशना के द्वारा उन्होंने इन सबका निरसन करके और शुद्ध भर्म का उपदेश देकर भूते-भटके असंख्य प्राणियों को सन्त्रामें पर खगाया।

म० महावीर और महात्मा बुद्ध

भ० सहाबीर के समकालीन प्रसिद्ध पुरुषों में शाक्य असका गौतम बुद्ध का नाम उल्लेखनीय है। आज संसार में बीठ वर्मा-तुवाियों की संख्या अस्विक हो ने सहालमा बुद्ध का तामा विश्व-विश्वात है। चीन, जापान, श्रीलंका आदि अनेक देश आज उनके भक्त हैं। किन्तु एक समय या जब भ० नहावीर का भक्त भी अगणित जन-समुदाय या। आज चीनी और जापानी बीढ़ होते हुए भी आमिय-(मांस-) भोजी हैं। बीढ़ धर्म की खापना तो ज्ञाक्य पुत्र गीतम बुद्ध ने की, प्रग्लु जैन धर्म तो युग के आदि काल से ही चला आ दरा है।

दि० जंन शाशों के उल्लेलों के अनुसार बुद्ध का जन्म महाचीर से कुछ पहिले करिक-चलु के महागळ छुवोदन के दहां हुआ वा। जब उनका जन्म हुआ, उस समय भारत में सब्देन झाडाणों का बोळ बाळा था और वे सबीपिर माने जा रहे थे, तथा वे ही सर्व परिस्थितियां थी, जिनका कि पहिले उल्लेल किया जा चुका है। बुद्ध का हृरय करहे देखकर द्रवित हो उठा और एक इद्ध पुरुष की जरा-जर्जीरत दशा को देखकर वे संसार से विश्वक हो गये। उस समय भ० पारवेनाथ का तीर्थ चळ रहा था, ज्वार पिहताश्रव नामक गुरु के पास पछास नगर में सर्यू नदी के ,वीर पर जाकर उन्होंने दैग-च्यरी रीश्रा ले छी और बहुत दिनों तक कन्होंने जैन साचुकों के कठिन आचार का पालन किया। उन्होंने एक स्वख पर स्वयं ही कहा है—

सिरिपासणाह-तिस्थे सरयूतीरे पळासणबरत्यो ।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुद्धकित्तिमुणी ॥ ६ ॥
(दर्शनसार)

"में क्ल-रिहेत होकर नग्न रहा, मैंने अपने हाथों में भोजन किया, मैं अपने लिए बना हुआ। उदिष्ट भोजन नहीं करता था, मिमन्त्रण पर नहीं जाना था। मैं लिए और दाढ़ी के बालों का छोंच करता था। मैं आगे भी केशलुंच करता रहा। मैं एक जल-बिच्हु पर भी द्या करता था। मैं मावधान रहता था कि सुक्स बीवों का भी दात न होने पावें।"

"इस प्रकार में भयानक बन में खकेला गर्भी और सर्दी में भी नंगा रहता था। आग से नहीं तापता था और मुनि-चर्या में लीन रहता था।"

लगभग छह वर्ष तक घोर तपश्चरण करने और परीषह-उप-सर्गों को सहने पर भी जब उन्हें न कैवल्य की प्राप्ति न हुई और न कोई ऋदि-सिद्धि ही हुई, तब वे उप तपश्चरण छोड़ कर और रक्ता-स्वर धारण करके मध्यम मार्ग का उपदेश देने लगे। यद्यपि वे जीव-वात को पाण कथी उसके स्थान का उपदेश दें थे। तथापि स्वयं मरे हुए प्राणी का मांस साने को बुरा नहीं समझने थे। मांस को वे दुध-पृही की श्रेणी में और मयादिक को जल की श्रेणी में

(महासीहनादसुत्त)

श्राचेळको होमिः " स्थायलेखनो होमिः नाभिहितं न डिह्स्सकतं न निमचण सादि यामि, केस-मस्युळोचकोवि होमि, केसमस्युळोचनात्रुयोगं ब्रत्युण्कं। यात उद्-विन्दुस्मि पिये द्या पच्च पट्टिता होमि, याहं लुदके पाणे विसमगते संघात ब्रायदिस्सति।

२ सो तत्तो सो सो ना एको तिंसतके बने। नग्गोन च अप्रिकासीनो एसनापसुत्तो सुनीति॥

मानने छने ऋौर उनका उपयोग स्वयं भी करने छने '। फल यह हुआ कि उनके घर्म का ऋतुयायी वर्ग भी धीरे धीरे मद्य-पायी ऋौर मांस-भोजी हो गया।

खान-पान की शिषिलता रखने पर भी उन्होंने लोगों में मिची (सैनी) मुदिना (प्रमोद) कम्मा और मध्यस्वता रूप चार प्रकार की धार्मिक भावनाएं रखने का उपदेश दिया। उस समय को ब्राह्मण का प्रावश्य वा खोर जिसके कामा वे स्वयं हीनाचारी पापी जीवन विताते हुए अपने को मबोंच मानने थे, उसके विरुद्ध वहें जीर-शोर के माथ अपनी आवाज बुलन्द की। उनके इन धार्मिक प्रवच्नां का संपद 'ध्यमपद' (धर्मपद) के नाम से प्रसिद्ध है और जिसे खाज बुल-गीता भी कहा जाता है। यह ध्यमपद बुद्ध की वाणों के रूप में प्रस्वात है। उसमें के ब्राह्मण-वर्ग का यहां उद्धरण दिया जाता है। जाला का उस्प करके बुद्ध कहते हैं—

हे बाह्मण, विषय-विकार के प्रवाह को बीरता से रोक और कामनाओं को दूर भगा । जब तुम्हें बलक हुई नाम रूप बाळी वस्तुओं के नाश का कारण समझ में आ जायगा, तब तुम अनुस्वन्न बस्तु को जान लोगे ॥१॥

१ निमित्रणासस्पेहि ऋहिगय-पवजाको परिक्मट्टो । रत्तं वरं घरिता पवट्टियं तेण एयतं ॥७॥ मंसरस पार्थि जीवो चहा फ्लो दिहिय-दुद्ध-सक्करए । तम्हा तं वंडिता त अम्बर्ते गो पासिट्टो ॥॥॥ मज्जं ण वजणिकां दवदक्वं जह जलं तहा एदं । इति ठोए चोसिता पवट्टियं सक्व सावज्जे ॥३॥ (वर्डीनसार)

२. छिन्द सोतं परक्रम्म काये पनुद ब्राह्मण । सखारानं खयं ञत्वा श्वकतञ्जूसि ब्राह्मण ॥१॥

जिस समय ब्राह्मण ध्यान खौर संयम इन दो मार्गो में उपुराक हो जाता है, उस समय उस ज्ञान-सम्पन्न पुरुष के सब बन्धन कट बाते हैं ॥२॥

जिस पुरुष के लिए आर-पार कुछ भी नहीं रहा, अर्थीत् भीतरी और बाडिरी इन्द्रियों से उत्पन्न हुए सुख-दुस्त्र से राग-द्रेष नहीं है, उस निर्भय और विसुक्त पुरुष का मैं ब्राह्मण कहना हूँ ॥३॥

जो विचारजील, निर्दोष, स्थिर-चिन्न, करोड्य-परायण एवं छूत-फुरय है, विषय-विकार से रहित है और जिसने उच्चतम आदर्श की मानि कर की है, उसे मैं अद्धाण कहता है।।।।।

जिसने पाप का त्याग कर दिया है, वह ब्राह्मण है। जो समभाव से चळता है. यह श्रमण है और जिसने अपनी मल्पिनता को दूर कर दिया है यह प्रवृक्ति कहळाता है।।।।।

मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूँ जो शरीर, वाणी और मन से किसी का जी नहीं दुखाता और जो इन तीनों ही बातों में संयमी है ॥६॥

यदा ह्रयेसु धम्मेसु पारग् होति त्राह्मणो । स्वयस्स सन्वे सयोगा आत्यं गण्डति जातानो । रा। स्वस्स पारं क्रवारं वा पारापारं न विश्वति । सीतहरं विस्तुनं तसह त्रृष्टि त्राह्मणा । रा। ह्यावि विराजमासीनं कर्ताकरणं क्रवामयं । उत्तमस्यमनुष्यतं नमहं त्रूष्टि त्राह्मणा । रा। चाहितपापी ति त्राह्मणो समयरिया समणो त्रि बुक्ति । रा। स्वाजसम्मनो मर्ड तस्मा पव्यज्ञिती ति बुक्ति ॥ रा। स्वस्त कोयेन वाचा य समसा निख बुक्ति ॥ रा। स्वस्त कोयेन वाचा य समसा निख बुक्कित । रा। स्वस्त कोयेन वाचा य समसा निख बुक्कित । रा। संवुतं तीहि डानेहि तमहं त्रूष्टि श्राह्मणा ॥ रा।

मनुष्य अपने जटा-जूट, जम्म और गोत्र के कारण ब्राह्मण नहीं बन जाता, किन्तु जिसमें सत्य और घर्म है, वही पवित्र है, और वहीं बाह्मण है।।।।।

को मूर्ख, जटा-जूट स्वतं से कौर मृग-वर्म धारण करने से क्या छाम ? भीतर तो तेरे तृष्णारूपी गहन वन है। किन्तु तृबाहिरी शदि करना है।।।।

जिसने धूमिल वस्त्र पहिते हैं, शरीर की कुशना से जिसकी नसें दिखाई पड़ती हैं स्त्रीर वन में एकाकी ध्यान करता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं।।६।

असुक माता-पिता से अरबज़ होने के कारण पुरुष ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु चाहे वह व्यक्तिचन (इरिद्र हो या सक्तिचन (चित्रक), पर् जो, सर्च प्रकार की मोह-माया से रहित हो, मैं उसे ही ब्राह्मण कहता हैं। 2011

जिसने सर्व प्रकार के बन्धन काट दिये हैं, जो निर्भय है, जो स्वाधीन है ऋौर बन्धन-रहित है मैं उसी को ब्राह्मण कहना हूँ ॥११॥

न जटाहि न गोशेन न जरूबा होति ब्राह्मणो ।
यहिंद भरूब च धम्मां च मो सुची मो च ब्राह्मणो ॥७॥
कि ते जटाहि दुस्सेघ कि ते च्यांजनाटिया ।
क्याःमन्यरं ते गहनं बाहिरं परिमञ्जसि ॥=॥
पंसु कुळवरं जन्तु किसं घमनिसम्बर्गः ।
एकं बनिस्सं झायन्त तमहं बृमि ब्राह्मणं ॥६ः।
न चाह ब्राह्मणं ब्राह्मचं वीनिज मचित्रस्यं ।
सावादी नाम सो होति स चे होति सर्किचनो ।
च्यांकिचनं ब्यानात्तं तसहं बृमि ब्राह्मणं ॥१०॥
सहवसंजीयनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
संगातिमं विसंगुचं तमहं बृमि ब्राह्मणं ॥११॥

जिसने देवरूपी. रागरूपी डोरी, अबदारूपी जंतीर, और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली अन्य वस्तुओं को एवं अज्ञानरूपी अर्गला (मांकल) को तोड़ डाला है, मैं उमे बाह्मण कहना हूँ।।१२॥

जो स्नाकोश (गाली-गलीज) वध स्त्रीर बन्धन को द्वेघ किये बिना मैत्री-भाव से सहन करता है, क्षमा के बलवाली ही जिसकी सेना है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं ॥१३॥

जो क्रोध-रहित है, अनवान् है, शीलवान् है, रूष्णा-रहित है, संयमी है ऋौर जो ऋन्तिम शरीर-धारी है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हैं॥१४॥

जैसे कमल-पत्र पर जल-बिन्दु नहीं ठहरता और सूई की नोक पर सरसों का दाना नहीं टिकता, उसी प्रकार जो कास-भोगों में लिप्न नहीं होता है, मैं उसे ही बाह्यण कहता हैं ॥१४॥

जो यहांपर ही ऋपने दुःख का ऋस्त जानता है, ऐसे भार-विमुक्त और विरक्त पुरुष को मैं बाह्यण कहता हूं।।१६॥

छेखा निध्य वस्तं च सस्यान सहतुकमा।
उद्गिवत्यरिक्षं बुद्धं तमहं त्रूमि त्राक्षण ॥१२॥
अफोसं वध वधं च अदुद्धों यो तितिक्वति ।
स्वंतीवळ वळानीक तमह त्रूमि त्राक्षणं ॥१३॥
अफाधनं वतवतं सीळवंतं अतुसम्ब ।
दतं अतिम सारीरं तमहं त्रूमि त्राक्षणं ॥१४॥
वारि पोक्खर-पचे च आरगीरिव सासणे ।
यो न ळिंपित कामेसु तमहं त्रूमि त्राक्षणं ॥१४॥
यो दुक्वस्म प्वानाति इधेव स्वयमत्ततो ।
पन्नभार विसंशुकं तमहं त्रूमि त्राक्षणं ॥१६॥

जिसका झान गम्भीर है, जो मेधावी है, सुमार्ग और कुमार्ग को जानता है और जिमने उत्तमार्थ को प्राप्त कर लिया है, मैं उसे बाझण कहता हूँ ॥१७॥

जो गृहस्य और अनगार भिज्ञुओं से अलग रहता है, जो घर-घर भीख नहीं मांगता, अलप इच्छा वाला है, उमी की मैं बाह्मण कहता हैं ॥१६॥

जो विरोधियों पर भी अविरोध-भाव रखता है, जो दण्ड-धारियों में भी दण्ड-रहित है और जो महण करने वालों में भी आदान-रहित है मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूँ॥१६॥

जो त्रस च्यौर स्थायर प्राणियों पर डडे से प्रहार नहीं करता, न स्वयं मारता है च्यौर न दूसरों से घान करता है, मैं उसी को ब्राह्मण कहता हैं॥२०॥

कहता हूं । रजा जिसके राग, देव, मान और मस्सर भाव इस प्रकार से नष्ट हो गये हैं जिस प्रकार से कि सुई की नोक से सरसों का दाना सर्वया दर हो जाता है. मैं उभी को जाडाण कहता हैं ॥२१॥

गंभीरपञ्जं मेथावी सम्गामगस्स कोविदं। उत्तसत्यं अनुपत्यं तसह बूसि आद्यार्थ। ११९॥ असस्य गहर कि अनामगरिद वूपयं। अनोकसादि अपियन्द्रं तसह बूपयं। अनोकसादि अपियन्द्रं तसह बूपयं। अनिकस्य विकर्त कि अनुस्य । सादानेसु अनादानं तसह बूसि आद्यार्थ। ११८॥ निवाय दंढं भूतेसु तसेसु वावरेसु च। यो न हित न घातित तसह बूसि आद्यार्थ। १२०॥ सस्य रागो च दोसो च सानो मक्को च पातितो। सासपोरिव आरम्मा तसह बूमि आद्यार्थ। १२॥ सासपोरिव आरम्मा तसह बूमि आद्यार्थ। १२॥ सासपोरिव आरम्मा तसह बूमि आद्यार्थ। १२॥

जो कठोरता-रहिन, सत्य एवं हिनकारी मधुर वचन बोलना है. और किसी का अपने कटु सत्य से जी भी नहीं दुखाना है, मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूँ ॥२२॥

जो इस संसार में बड़ी या छोटी, सूक्स या ख्यूछ, और शुभ या खशुभ किसी भी प्रकार की पर वस्तु को बिना दिये नहीं लेता है, मैं उसी को बाह्यण कहना हूँ ॥२२॥

जिसे इस लोक या परलोक-सम्बन्धी किसी भी प्रकार की खालसा नहीं रही है, ऐसे वासना-रहित विरक्त पुरुष को ही मैं बाझण कहता हूँ ॥२४॥

जिसके पास रहने को घर-मकान आदि किसी भी प्रकार का आखब नहीं हैं. जो स्त्रियों की क्या भी नहीं कहता है, जिसे सन्ताब रूप असून प्राप्त हैं और हिसे किसी भी प्रकार की इच्छा एच्या करका नहीं होती हैं, मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूँ। (२४॥

जो पुष्य और पाप इन दोनों के संग से रहित है, शोक-रहित कर्म-रज से रहित और शुद्ध है, मैं ऐसे ही पुरुष को आहरण कहता हैं ॥२६॥

स्रक्षस विष्कापित गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाम्सिके किंचि तमह स्नृति माह्यण ॥२२॥
योध दीधं रहस्सं वा स्वरणु खुळं छुआसुस्र ॥
छोकं स्रदिन्नं नादियति तमहं स्नृति माह्यणं ॥२३॥
स्रासा यस्स न विज्वेति स्नास्य छोकं परिष्ठ च ॥
निरासयं विसयुत्तं तमहं स्नृति माह्यणं ॥२४॥
यस्साल्या न विज्वेति स्नात्राय स्वरूपं स्वरूपं ॥
स्मतोगद स्नुत्यसं नमहं स्नृति माह्यणं ॥२४॥
स्वात्रेगद स्नुत्यसं नमहं स्नृति माह्यणं ॥२४॥
स्वात्रेगद स्नुत्यसं तमहं स्नृति माह्यणं ॥२४॥
स्वात्रेगद स्वत्यस्य संसं उपच्चमा ॥
स्वशोकं विर्वा सुद्धं तमहं स्नृति माह्यणं ॥२६॥

जो चन्द्रमा के समान विमल है, शुद्ध है, सुपसन्न है और कलंक-रहित है, जिसकी सांसारिक तृष्णाएं बिलकुल नष्ट हो गई हैं, मैं ऐसे ही पुरुव को बाह्यण कहना हूँ ।।२७।।

मोह से रहित होकर जिसने तृष्णा-रूपी कीचढ़ से लथपथ, दुर्गम संसार समुद्र को तिर कर पार कर लिया है, जो झारम-ध्यानी है, पाप-रहित है, इन इन्टर है, जो कर्मी के उपादान (प्रहण) से रहित होकर निहुश (सुन) हो चुका है, मैं ऐसे ही मतुष्य को ब्राह्मण कहता हैं। शन्मा

जो काम-भोगों को परित्याग करके स्वतगार बनकर परिस्रस्तित हो गया है, ऐसे काम-विजयी मनुष्य को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२६॥ जो कृष्णा का परिहार करके गृह-रहिन होकर परिवाजक सन गया है, ऐसे कृष्णा-विजयी पुरुष को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥३०॥ जो मानवीय बन्धनों का स्थाप कर सौर दिवर पित-सन्वस्त्री। भोगों के संयोग को भो स्थाप कर सर्व प्रकार के सभी सोसारिक

चंदं व विमळं सुद्धं विष्यसम्ममाविळं। नंदी भवपरिक्खोण तमहं मूमि माह्मणं।। रेश। यो मं पछिपध दुःगं संसारं मोहस्म्या।। तिरुणो पारमतो झामी भाने कर्यक्रयी। स्वत्यो पारमतो झामी भाने कर्यक्रयी। स्वत्यो तमहं मूमि माह्मणं।।रेस। योध कामे पहस्तान अनगारो परिक्वने। काम-मचपरिक्खीणं तमहं मूमि माह्मणं।।रेश। योध तप्हः पहस्तान अमगारो परिक्वने। नरहाभवपरिक्खीणं तमहं मूमि माह्मणं।। रेश। हिस्स माह्मल्यां विद्यास माह्मल्यां स्वत्यामां परिक्वने। नरहाभवपरिक्खीणं नमहं मूमि माह्मणं। रेश। हिस्स माह्मल्यां योध दिख्यं योग उपक्यां।

बन्बनों से विमुक्त हो गया है, मैं उसी पुरुष को **माग्रण** कहता हूँ ॥३१॥

जो रित (राग) और श्रमित (हेप) भाव को त्याग कर परम झान्त दशा को प्राप्त हो गया है, सर्व प्रकार की उपाधियों से रहित है, ऐसे सर्व छोत्र-विजयी वीर पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूँ। ३२।।

जो सर्व रुश्वे (प्राणियों) के च्युनि (सरण) और उत्पत्ति की जानता है, जो सर्व पदार्थों की खासकि से रहिन है, ऐसे सुगति और बोधिको प्राप्त सुरान बुद्ध पुरुष को ही मैं ब्राह्मण कहना हूँ ॥३३॥

जिसकी गति (ज्ञानरूप दशा) को देव, गन्धर्व श्रीर मनुष्य नहीं जान सकते, ऐसे क्षीण-श्रास्त्रव वाले श्रग्हन्त को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ। देश।

जिसके खाने, पीछे या मध्य में (वर्तमान में, सामने) कुछ भी नहीं है, ऐसे खांकचन खौर खनादान खामकि-रहित होकर कुछ भी प्रहण नहीं करने वाले) पुरुष को ही में बाझण कहना हूँ ॥२४॥

हिस्ता रितं च खर्गतं च सीतीभृतं निरूपिं। सन्त्रवोक्षाभमुं बीरं नमहं ब्रुप्ति ब्राह्मण ॥३२॥ चुति यो बेदि मसान उपपत्ति च सन्द्रमो । असर्त्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रुप्ति ब्राह्मणं ॥३२॥ यस्स गति न जानंति नेवा गवन्न-सानुसा। सीणासनं खरहत तमहं ब्रूप्ति ब्राह्मणं ॥३२॥ जस्स पुरं च पश्छा च मन्त्रमं न निख कंचन। अस्ति नत्ता नात्ता नृष्ति ब्राह्मणं ॥३२॥ अस्ति पुरं च पश्छा च मन्त्रमं जाह्मणं ॥३२॥ अस्ति पुरं च पश्छा च मन्त्रमं जाह्मणं ॥३२॥

जो वृषम (धर्म का घारक) है, सर्व श्रेष्ठ है, वीर है, महर्षि है, विजेता है, निष्कम्प है, निष्पाप है, स्नातक है, बुद्ध है, ऐसे पुरुष को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ 1125॥

जो पूर्व निवास अध्यांत् पूर्व-जन्मों को जानता है, जो स्वर्ग आरोत नरक को देखना है, जो जन्म-मरण के चक्र का क्षय कर चुका है, जो पूर्ण ज्ञानवान् है. ध्यानी है, सुनि है और ध्येय को प्राप्त कर सर्व प्रकार मे परिपूर्ण है, ऐसे पुरुष को ही मैं श्राक्षण कहता हूँ ॥३७॥

श्वेतास्वारी उत्तराध्यवन सूत्र में भी पच्चीसवें 'जलहरूज' अध्य-यन के अन्तर्गात 'ब्राह्मण' के स्वरूप पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है, उससे भी यह सिंछ होता है कि भ० महाचीर के समय में ययि ब्राह्मणों का बहुत प्रभाव था. तथापि वे यथाये ब्राह्मणस्य से गिरे हुए थे। श्वे० मान्यता के अनुनार उत्तराध्ययन में भ० महाचीर के अन्तिम समय के प्रवचनों का संग्रह है। भ० महाचीर ब्राह्मणों को लक्ष्य करके कहते हैं—

जो अपने वाले स्तेडी जनों में आत्मासिक नहीं रखता, प्रज्ञजित होता हुआ। शोक नहीं करता और आर्थ पुरुषों के वचनों में सदा आरानद पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥१॥

उनमं पबर बीरं महेसि विज्ञिताविनं। स्वनेजं न्द्रानक बुद्धं तमहं क्रूपे ब्राह्मणं।।३६॥ पुत्र्वनिवास यो वेदि सम्गापायं च पस्सति। स्रयो जानिक्खयं पत्तो स्वभिज्ञा वोसितो सुनी। सन्त्र-बोसिन-बोसानं तमहं क्रूमि ब्राह्मणं॥२७॥ (धन्मवप्द, ब्राह्मण-वर्गं)

जो त सब्जइ द्यागंतुं पटवयंतो न सोयई। रमइ द्यादन-वनणस्मि तं वयं बूम माहणं॥१॥ जो यथाजात-रूप का धारक है, जो ऋषि में डाल कर शुद्ध किये हुए और केसीटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, हुए और अय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहने हैं ॥२॥

जो तपस्वी है, जो झरीर संकृश (दुवला-पतला) है, जो इन्द्रिय-निम्म्द्री है, उम्र तपःसाधना के कारण जिसका रक्त और मांस भी सूका गया है, जो जुद्ध त्रती है, जिसने व्यारम-झान्ति रूप निर्वाण पा लिया है, जे हम शाहण कहते हैं ।13।।

जो त्रस और स्थावर सभी प्राणियों को भली भांति जानकर उनकी मन, यचन और काय से कभी हिंमा नहीं करता; उसे हम जाक्रण कहते हैं ॥४॥

जाक्रण कहत ह ॥४॥ जो क्रोध से, हास्य से, लोभ से अध्यवाभय से असस्य नहीं कोलता है. उसे हम जाह्मण कहते हैं ॥४॥

जो ऋल्प या बहुत, सचित्त या ऋचित्त वस्तु को मालिक के दिए विना चोरी से नहीं लेता, उसे हम बाझण कहते हैं ॥६॥

जासहबं जहामङ्क निक्क तमल्यावयां । राग-दोस-भवाई तं वर्ष वृद्ध माहणं । रा। तवसिसयं किसं दंश अविषय-मंस-सोणियं । सुल्यं पंतिन्ववाणं तं वय वृद्ध माहणं ।। रा। तस पाणे विवाणित्ता संगहेण य यावरे । जो न दिसद निविदेणं तं वय वृद्ध माहणं ।। प्रा। कंहा वा जह वा हासा लोहा वा जह वा अया । मुसं न वयई जो उ तं वय वृद्ध माहणं ।। रा। वित्तमेतमिल्यं वा अप्यं वा जह वा बहु । न गिएदह अदत्त जे तं वयं वृद्ध माहणं ॥ दा। ।

जो देव, मतुष्य एवं तिर्यक्त-स्म्बन्धी सभी प्रकार के मेंशुन का मन यचन ऋौर काय से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।। ७।।

जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार जो संसार में रहकर भी काम-भोगों से सर्वथा खालार रहता है, उसे हम बाह्मण कहते हैं।। म।।

जो कालालुप है, क्रातामक जीवी है, क्रातास (गृह-रहित) है, क्राक्षियन है कीर गृहस्थों से क्रालिय रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। १।।

जो स्त्री-पुत्रादि के स्तेद-वर्धक पूर्व सम्बन्धों को, जाति-बिराइरी के मेरू-जील को, तथा बन्धुजनों को स्थाग कर देने के बाद किर बनमें किसी प्रकार की ख्रासिक नहीं रखता और पुतः काम-भोगों में नहीं कुतना है. उसे हम जालण कहते हैं।। १०।।

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, 'स्रोम्' का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन में रहने

दिव्य-मासुन्द-निरुद्धं जो न सेवइ मेहुण ।
मणसा काय-वर्षकेण तं वर्य वृम माहणं ॥ ७ ॥
जहां पोस्म जले जायं नोविक्तपद वारिणा ।
जहां चित्रपं कामेहिं तं वर्य वृम माहणं ॥ ६ ॥
अज्ञेलुत्यं मुहाजीविं व्यापारां कार्किचणं ।
अम्मेसरं गिहत्येषु तं वर्य वृम माहणं ॥ ६ ॥
जहित्ता पुत्रसंजीगं नाइसंगे य वर्षवे।
जो न सज्जद भोगेहुं तं वर्य वृम माहणं ॥ १० ॥
न सुर्विष्ण समणो न क्योंकारेण बंभणो ।
न सुणी रहणवासेण कुमचीरेण ण तावसो ॥ ११ ॥

सात्र से कोई सुनि नहीं होता, व्यौर न कुशा से बने वस्त्र पहिन सेते सात्र से कोई तपस्त्री ही हो सकता है।। ११।।

किन्तु समता को घारण करने सं श्रमण डोता है, ब्रह्मचर्य को धारण करने से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से सुनि होता है ऋौर तपश्च-रण से तपश्ची बनता है।। १२॥

सनुष्य उत्तम कर्म करने से ही ब्राइसण होता है, कर्म से ही अत्रिय होता है, कर्म से ही वेदय होता है और श्रूप्र भी कर्म से ही होता है। अध्योत वर्ण भेर जन्म से नहीं होता है, हिन्सु जो सनुष्य जैसा अच्छा या युग्र कार्य करता है, वह बैसा ही ऊंच या नीच कहुछाता है।। १३।।

इस भांति पत्रित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ बाह्मण) हैं, बाह्मब में वे ही अपना तथा दूमरों का खढ़ार कर सकते में समर्थ होते हैं।। १४।।

भ० महावीर ऋौर महात्मा बुद्ध के द्वारा निरूपित उक्त ब्राह्मण के स्वरूप में से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ण प्रकट होते हैं। यथा—

(१) जैन शास्त्रों की मान्यना है कि पच याम (महाव्रत) का उपदेश स्त्रादि स्त्रौर ऋन्तिम तीर्थकरों ने ही दिया है। शेप मध्यवर्ती

समयाए समणी होइ बभचेरेण बंभणी।
नार्योन मुणी होइ तबेण होड ताबसो॥ १२॥
कम्पुणा बभणो होइ कम्पुणा होइ खिन्छो।
बहुनो कम्पुणा होइ सुढो हबइ कम्पुणा।। १२॥
एवं गुण-समावना जे भगेति दिवन्तमा।
ते समत्या समुद्धनु परमप्पाणमेन य॥ १४॥
(कन्तराज्यवनसुत, छ० १४)

बाईस तीर्बंकरों ने तो चातुर्योव का ही उपदेश दिवा है। तब्रुसार भ० पार्खनाय ने भी बहिंसा, सत्य, खानी में और अपरिष्कृ हन चार यस क्षा वा उन्होंने स्त्री को परिषकृ सानक्ष क्षार्यस्व महान्नत में ही उत्का अन्तर्भाव किया है। यतः जैन सान्यता के अनुसार जुद ने पहिले बतला आने हैं। यतः जैन सान्यता के अनुसार जुद ने पहिले वतला आने हैं। अतः वे स्वयं भी चातुर्योम के धारक प्रारम्भ में रहे हैं। यह बान वनके द्वारा निक्षित नालाण वर्ग में भी हिंगोचर होती है। उत्यर जो नालाण कर सक्त वतलाय है, वतमें मांबाइ २० में मालाण कर स्वरूप वतलाय है, वतमें भावाइ २० में मालाण कर स्वरूप वतलाय है, वतमें भावाइ २० में मालाण कर स्वरूप वतलाय है, वतमें भावाइ रें में सि हिंस महान विधान किया गया है। इसके आतो गा० २२ में सत्य महान का, गा० २२ के साव यह ने सि स्वरूप के स्वरूप के स्वरूप है। कहने का भाव यह ने कि यहां पर नक्षवर्ष माहनन का विधान की प्रवास नहीं । कहने का भाव यह कि यहां पर नक्षवर्ष माहनन का कीई उन्लेख नहीं है।

किन्तु भ० महावीर ने बहावर्य को एक स्वतंत्र यमरूप महाब्रत कहा और पांचवें यमरूप से उसका प्रतिपादन किया। ऊपर उत्तरा-ध्ययन की जो बाह्मण-स्वरुप-वाळी गाथाएं दी हैं उनमें यह स्पष्ट दिखाई रना है। वहा गाथाड़ ६ में अपीर्य महाब्रत का तिर्देश कर गा० ७ में बहावर्य नाम के एक यमंत्रत या महाब्रन का स्तष्ट विधान किया गया है।

- (२) एक निष्कर्ष से बुद्ध का पाश्वेनाथ की परम्परा में दीक्षित होना और चातुर्याम धर्म से प्रभाविन रहना भी सिद्ध होता है।
- (३) महावीर की झाझाण-स्वरूप प्रतिपादन करने वाळी केवळ १४ ही गाथाएं उत्तराध्ययन में मिळती हैं, किन्तु धन्मपद में वैसी गाथाएं ४१ हैं। उनमें से केवळ ३७ ही ऊपर दी गई हैं। गाथाओं

की यह अधिकता दो बार्ते सिद्ध करती है एक-उस समय श्राद्याणवाद बहुत जोर पर था। दो-श्राद्धाण ऋपने पवित्र कर्तव्य से गिरकर हीना-चरणी हो गये थे।

(४) डक चातुर्योमवाली गायाग दोनों ही प्रत्यों में प्राय: शब्द स्वीर सर्ये की दृष्टि से तो समान है ही, किन्तु खन्य गायागं भी दोनों की बहुत कुछ शब्द स्वीर स्रयं की दृष्टि से समानता रखती हैं। स्वा-

१. धम्मपदः—बाहित-पापो ति ब्राह्मणो समचरिया समणोत्ति बुद्यति ।। पञ्जाजयमत्त्रनो मऌं तस्मा पञ्जजितो त्ति बुद्यति ।।४॥

उत्तराध्ययन—समयाए समणो होइ वंभचेरेण वंभणो। नारोण मुणी होइ तवेण होइ तापसो ॥१२॥

२. धम्मपद—वारि पोक्खर-परी व आरमोरिव सासपो । यो न छिपति कम्मेसु तमहं वृमि बाह्यणं ॥१४॥

उत्तराध्ययन-जहा पोम्मं जले जायं नोविल्पइ वारिणा । एवं ऋलितं कम्मेहिं तं वयं वृम माहण ॥८॥

३. धम्मपद—छेत्वा नन्धि वश्रां च सन्दानं सहनुक्कमं । उक्खित पिछचं बुद्धं तमहं ब्रुमि ब्राह्मणं ॥१२॥

उत्तराध्ययन-जहित्ता पुत्र्वसंजोगं नाइसंगे व वधवे । जो न सज्जइ भोगेसु तं वयं वृम माहण ॥ १०॥

४ धम्मपद--श्रसंमद्वं गहरे हि श्रणागारेहि चूभयं। श्रनोकसारि श्रप्पिच्छ तमहं ब्रुमि बाह्यणं॥१८॥

उत्तराध्ययन-श्रालोलुयं मुहाजीविं श्राणगारं श्राकेंचणं। श्रासंमत्तं गिहत्थेसु तं वयं युम माहणं॥॥॥ ४. ब्राह्मणों के हीनाचारी जीवन को देखकर बुद और महा-बीर ने अपनी उक्त देशनाएं की. यह बात दोनों के उक्क प्रवचनों से स्पष्ट ज्ञात होती है। किर भी जुढ़ के ब्राह्मण-सन्दर्भ में किये गये प्रवचनों से एक बात भछी-भांति परिछक्कित होती है कि वे ब्राह्मण को एक ब्रह्म-निच्छ, जुद्धास-स्वरूप को शाप्त और राग-द्वेष-अयातीव वीतराग, सर्वज्ञ और पुरव-पाप-द्वयातीत नीरज, छुद्ध, जुद्ध, सिद्ध परमास्मा के ब्राद्श कप को प्राप्त आस्मा को ही ब्राह्मण कहना परमास्मा के ब्राद्श कप को प्राप्त आस्मा को ही ब्राह्मण इहना सिक्त कि से ब्राह्मण छुद्धास-सक्से निस्तो ब्राह्मण: इस निक्त कि से अप्ये प्रकट होता है। दिखो उत्पर दी गई खम्मपद की २१, २६, २८, ३१, ३३ ब्राद्मितनस्मर वाली गाथाएं।)

सहावीर ब्राह्मणवाद के विगोध में बुद्ध के साब रहते हुए भी श्राहिसाबाद में उनसे अनेक कदम आगे वह जाते हैं। यथि बुद्ध ने प्रस-ध्यावर के घात का निषेष ब्राह्मण के लिए आवश्यक बतावा है, तथापि सबसे मेरे हुए पशु के मांस खाने को आहिंसक बतला कर आहिंसा के आदिशे से वेश्य गिरा गये हैं, और उनकी बस जरा-सी खुट रेने का वह फल हुआ है कि आज सभी बौल्डभमीतुथाथी मांस-मोजी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। किन्तु महावीर की आहिंसा-ज्याख्या इतनी विशव और करणामय थी कि आज एक भी अपने को जैन-या महावीर का अनुवायी कही सोला।

महाभारत के शान्ति पर्वमें आक्षण का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है---

"जो सदा अपने सर्वव्यापी स्वरूप से स्थित होने के कारण अकेले ही सम्पूर्ण आकाश में परिपूर्ण-सा हो रहा है और जो असंग

येन पूर्णमिवाऽऽकाशं भवत्येकेन सर्वदा । शून्यं येन जनाकीणं तं देवा बाह्यणं विदुः ॥१॥ होने के कारण छोगों से भरे हुए स्थान को भी सूमा समझता है, उसे ही देव-गण ब्राह्मण मानते हैं। १८।

जो जिस किसी भी (वस्त्र-वरुकल) खादि वस्तु से खपना दारीर इक लेता है, समय पर जो भी रूखा-सखा मिळ जाय, उसी से भूख मित तता है और जहां कहां कहीं भी सो जाता है, उसे ही देवता कोंग बाहण कहते हैं ॥२॥

जो जन-समुदाय को सर्प-सा समझकर उसके निकट जाने से इरता है, स्वादिण्ट भोजन-जनित तृति को नरक सा मानकर उससे दूर रहता है, और निवयों को मुद्दों के समान समझकर उनसे विरक्त रहता है, उसे ही देवता लोग शाक्षण यहते हैं।।३॥

जो सम्मान प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होता, खपमानित होने पर कुपित नहीं होता, और जिसने सर्व प्राणियों को खभयदान दिया है, उसे ही देवता छोग ब्राह्मण कहते हैं ॥४॥

जो सर्व प्रकार के परिमृह से त्रिमुक्त मुनि-स्वह्प है, आकाश के समान मिळेंप कीर स्विर है, किसी भी बस्तु को अपनी नहीं नाताना सिळेंप कीर स्वर है, किसी भी बस्तु को अपनी नहीं नाताना, एकाकी विचरण करता हुआ झानन भाव से रहता है, उसे ही वैवता लोग जाइला कहते हैं।।।

येन फेनचिदा-छम्नो येन फेनचिदाशित:।
यत्र क्षन्त शायी च ते देवा त्राद्धण 'विदु:।।२॥
यत्र क्षन्त शायी च ते देवा त्राद्धण 'विदु:।।२॥
क्ष्रहेरित गाया सीत: सीहित्यात्मरकादिव ।
क्षुपणादिव च स्त्रीध्यस्ते देवा त्राद्धण विदु: ॥३॥
न क्रुप्येल प्रदृष्टपेच्च गानितोऽमानितरच यः।
सर्वभूगेच्यभयदस्तं देवा त्राद्धणं विदु:॥४॥
विसुक्तं सर्वसङ्गभ्यो सुनिमाकाशवत् स्वितम्।
क्षरसमेकचरं शान्तं ते देवा त्राद्धणं विदु:॥४॥

जिसका जीवन धर्म के लिए है और धर्म-सेवन भी भगवद्-भक्ति के लिए है, जिसके दिन और रात धर्म पालन में ही ज्यतीत होते हैं, उसे ही देवता लोग बाह्यण कहते हैं।।६।

जो कामनाश्चां से रहित है, सर्व प्रकार के श्चारम्भ से रहित है, नमस्कार श्रीर स्तुति से दूर रहता है, तथा सभी जाति के बन्धनों से निर्मुक्त है, उसे देवना लोग बाझण कहते हैं।।७।

जो पत्रित्र ऋ।चार का पालन करता है, सबै प्रकार से शुद्ध सार्ष्टिक भोजन को करता है, गुरुवानों का प्यारा है, निस्थ इत का पालन करता है और सस्य-परायण है, वही निश्चय से ब्राह्मण कहलाता है ।=।।

जिस पुरुष में सत्य निवास करता है, दान देने की प्रवृत्ति है, द्रोह-भाव का खभाव है, कूरता नहीं है, तथा रूजना, दयालुता और तप ये गुण विद्यमान हैं, वही ब्राह्मण माना गया है।।६॥

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मों हर्ययमेव च । ऋहोरात्रारच पृष्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदु: ।,६॥ तिराशिवमनारम्भं निर्तमस्कारमस्तुतिम् । निर्मुक्तं बन्धनं मर्वेस्तं देवा ब्राह्मणं विदु: ॥७.।

(महाभारत, ज्ञान्तिपर्व, अ० २४४, रखो० १०-१४, २२-२४)

शौचाचारस्थित सम्यग्वियसाशी गुरुप्रियः। नित्यत्रनी सत्यपरः स वै त्राह्मण उच्यते॥द्या सत्यं दानमथाद्रोहः श्रानुसंस्यं त्रपा घृणा। तपञ्च हरयते यत्र स त्राह्मणं इति स्मृतः॥ ६॥ हे माझण, जिसके सभी कार्य खाशाओं के बन्धनों से रहित हैं, जिसने त्याग की खाग में खपने सभी बाहिरी खौर भीतरी परिग्रह खौर विकार होम दिये हैं, वही सच्चा त्यागी और बुद्धिमान् माझण है॥१०॥

महाभारत के उपर्युक्त उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि इक्त गुण-सम्पन्न त्राह्मण को एक आदर्श पुरुष के रूप में माना जाता था। किन्तु जब उनमें आचरण-होनता ने प्रवेश कर लिया, तब भ० महावीर और म० बुद्ध को उनके विरुद्ध अपना धार्मिक अभियान प्रास्भ करना पड़ा।

भ० महाबीर का निर्वाण

इस प्रकार अ० महाबीर काहिंसा-मूलक परम धर्म का उपदेश सर्व-संव-सहित सारे भारत वर्ष में बिहार करते हुए अपने जीवन के क्षित्म दिनों तक देते रहें। उनके लगभग तीय वर्ष के इतने दीर्घ काल कक के उपदेशों का यह प्रभाव हुआ कि हिंसा-प्रधात यह-यागादि का होना सदा के लिए चन्द हां गया। देती-देवताओं के नाम पर होने वाली पशु-बिल की कुपथा भी अनेरा देशों से उठ गई, मूहताओं एवं पाक्षरहां से लोगों को लुटकाग मिला और लेगों सत्य धर्म के अनुवायी बने।

जब भ० महावीर के जीवन के कंत्रल दो दिन शेप रह गये, तब उन्होंने बिहार-इप काय-योग की और धर्मोरटेश-इप वचन-

यस्य सर्वे समारम्मा निराशीर्षन्यना द्वित्त । त्यागे यस्य हुतं सर्वे स त्यागी च स बुद्धिमान् ॥ १० ॥ (महाभारत, ज्ञान्तिपर्वे, ऋ० १५१, रहो० ३,%, ११) योग की क्रियाओं का निरोधकर पाशपुर के बाहिर अवस्थित सरोबर के मध्यवती जब स्थान पर पहुँच कर प्रतिमा-योग धारण कर लिया और कार्निक अक्कणा जुदेगी की रात्रिक के अन्तिम और अमावस्या के प्रभान काल में निर्वाण प्राप्त किया ।

किन्तु रवे० मान्यता है कि भ० महाबीर पावा-नगरी के राजा हरितपाळ के रज्जुग सभा-भवन में अप्रमावस्था की सारी रात धर्म-देशना करते हुए मोश्च पदारे ।

कुछ अप्रकाशित ग्रन्थों का परिचय

यहां पर भ० महाबीर का चित्र-चित्रण करते वाले कुछ आपका-फित संस्कृत, आपभंग और हिन्दी भाषा में रचे गये प्रन्यों का परिचय देकर तद्-गत विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है. जिससे कि पाठक उनसे परिचित हो सकें।

(?)

असग-कवि-विरचित- श्री वर्षमान-चरित

जहां तक मेरा अनुसन्धान है, भगवद्-गुणभद्राचार्य के पश्चान् भ० महाशीर का चरित-वित्रण करने वालों में अपनग-कवि का १. 'पट्टेन निष्टितकृतिर्जिनवर्षमानः'। टीका-पट्टेन दिनद्रयेन परि-

- संख्याते आयुपि सति निष्ठितक्रतिः निष्ठिता विनष्टा कृतिः द्रव्य-मनोवाकायक्रिया यथ्यामौ निष्ठितक्रति, जिनवर्षमानः । (पज्यपादकत सं० निर्वाण-भक्ति श्लो० २६)
- २ पात्रापुरस्य बहिरुन्नतभूमिहेश पद्मीत्मकालुळातां सरसां हि मध्ये । श्रीवर्धमानजितहेव इतिप्रतीतो निर्वाणमात्र भगवान् प्रविधूत्पाप्ता ।। (सं० निर्वाणभक्तिः स्ळो० २४)
- देखो—पं० कल्याणविजयगणि-ल्रिखित 'श्रमण अगवान महावीर' (पृ० २०६-२०७)

प्रथम स्थान है। इन्होंने श्री वर्धमान चरित के अप्तत में अपना जो बहुत सींकार परिचय दिया है, उससे जान होना है कि इसकी रचना सं ६ १० में भावकी सिं मुनि-नायक के पादमूल में बैठ र वीड है। अप का परिमाण लगभग तीन हजार स्थोक नियम्भाण हों। प्रशस्ति के अनितम स्थोक के अनितम चरण से यह भी झात होता है कि उन्होंने आठ अपना की रचना की है। दुःख है कि आज उनके रोय सात प्रयों का कोई पता नहीं है। उसकी अपन के अपन में से राम हों है। इसकी अपन अपन से सात हों है। उसकी अपन के अपन में सी गई प्रशस्ति इस प्रकार है—

वर्षभान चरित्रं यः प्रव्याख्याति शृगोति च । तस्येह परलोकस्य सौख्यं संज्ञायते तराम् ॥ १ ॥

संबरसरे दशनवोत्तरः वर्षयुक्ते भावादिकीर्त्तिमुनितायक-गादमूले । सौद्रुल्यपर्वतनिवासवक्तश्यसम्परसङ्घाविकाप्रज्ञनिते सति वा ममस्ये ॥२ विद्या मया प्रश्वितेत्यसगाङ्कहेन श्रीनाथराज्यमखिले जनतोपकारि । प्राप्येत्र चौडविषये विग्गालानगर्यो प्रस्थाष्टक च समकारि जिनोपदिष्टम्॥३

इत्यसगक्कते वर्धमानचिति महापुराणोपनिपदि भगवन्निर्वाण-गमनो नामाञ्चादकः सर्ग समाप्तः ॥ १८ ॥

अनिम पुष्पिका के 'महापुराणंपनिपिद' पद से यह स्वस्ट है कि सं २६१० में चरित की रचता महापुराण के उत्तर खरड हर उत्तर पुराण के आवार पर की गई है। उत्तर पुराण में भ० महापीर के कि तर का विज्ञा पुरूरवा भीछ के भव से लेकर अनिम भव कर कही सांत (सर्ग) में किथा गया है। वह वर्णन गुद्ध चरितहर ही है। पर असग न अपना वर्णन एक महाकात्र्य के हर में किया है। यही कारण है कि इसमें चरित चित्रण की अपेक्षा घटना-चकों के वर्णन का आधिक्य दिख्योचर होता है। इसका आलोइन करने पर यह भी प्रतीत होता है कि इस पर आशा वीरनिद् के चन्द्रभभचरित का प्रभाव है।

श्रासग ने महावीर के पूर्वभवों का वर्णन पुरूरवा भील से प्रारम्भ न करके इकतीसवें नन्दन कुमार के भव से प्रारम्भ किया है।

नन्दन कुमार के पिना जगन से विरक्त होकर जिन-दीक्षा प्रहण करने के लिये उगन होने हैं और पुत्र का गज्याभिष्मेंक कर गृह-स्थाग की बात उससे कहते हैं, तब वह कहना है कि जिस कारण से आप संसार को बुरा जानकर उसका त्याग कर रहे हैं, उसे मैं भी नहीं लेना बाहना और आपके साथ ही संबम धारण करूंगा। इस स्थल पर पिना-पुत्र की बात-चीन का किन बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। अन्त में पिना के यह कहने पर कि नू अपने उत्तराधिना की जन्म देकर और उसे राज्य भार मींप कर दीक्षा ले लेना। इस समय तेरे भी मेरे साथ दीक्षा लेने पर कुलस्थित नहीं रहेगी और प्रजा निराम्य हो जायगी। बहु राज्य-भाग स्वीकार करता है। पुन आवार्य के पास जाकर धर्म का स्वरूप सुनता है और गृहस्थ धर्म की स्वरूप सुनता है स्वरूप सुनता है।

किसी समय नगर के उद्यान में एक श्वावि-ज्ञानी साधु के खाने का समाचार मुनकर राजा नन्द पुर-वासियों के साथ दर्शनार्थ जाता है खीर धर्म का उपरेश मुनकर उनमें अपने पूर्व मेंव पूछता है। मुनिया कहते हैं कि हे राजेन्द्र, तू आज से पूर्व नवें भव में एक खाति भयानक सिंह था। एक दिन किमी जंगकी हाथी को मार कर जब तू पर्वन की गुका में पड़ा हुआ था, तो खाकाश-सार्ग से विहार करते दो चारण मुनि जथर से निकले। उन्होंने तुम्के प्रशोधित करते के लिए मुगु ध्वान से पाठ करना प्रारम्भ किया। जिसे मुन कर तू अपनी भयानक कू रता छोड़कर शान्त हो उनके सभीय खाती हो।। तुमें ठक्टप करके कहती वा की का तास्थिक उपरेश देकर पुहरवा भीज के भव से लेकर सिंह तक के भवों का वर्णन किया।

जिसे सुनकर तुक्ते जाति-स्मरण हो गया और खपने पूर्व भवों की मूळों पर खांसू बहात हुआ। सुनि-युगळ के चरण-कमळों की एकाम हो देखने खगा। उन्होंने तुक्ते निकट भव्य जानकर धर्म का उपदेश हे सम्बन्ध और आवक-म्रनों की ग्रहण कराया। शेष कथानक उत्तर पुराण के समान ही है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि असग कि वि ने सिंह के पूर्व भवों का वर्णत सर्गे ३ से ११ वें तक पूरे ६ सर्गों में किया है। उसमें भी केवल त्रिष्टुन गरायण के भवका वर्णन ५ सर्गों में किया गया है। पच्चें सर्गे में बिद्धा नारायण का जन्म, छठे में प्रतिनारायण की सभा का खोभ, सातवें में युद्ध के लिए दोनों की सेनाओं का सिल्वें का आठवें में दोनों का दिव्यास्त्रों से युद्ध और नवें में त्रिप्रष्ट की विजय, अर्थेचिक्त्य का वर्णन और सर कर नरक जाने तक की विजय, अर्थेचिक्त्य का वर्णन और सर कर नरक जाने तक की वरनाओं का वर्णन है। असमा ने समग्र चरित के १०० पत्रों में से केवल त्रिप्रक के वर्णन में ४० पत्र लिखे हैं।

त्रिष्ठष्ठ के भव से लेकर तीर्थंडर प्रकृति का बन्य करने वाले नन्द के भव तक का वर्णन आयो के ४ मर्गों में किया गया है, इसमें भी पन्द्रवें सर्ग में घमें का विस्तृत वर्णन प्रन्य के १२ पत्रों में किया गया द्वी कि तस्वार्थ सूत्र के आध्याय ६ से लेकर १० तक के सूत्रों पर आधारित है।

सत्तरहर्षे सर्ग में भ० महाबीर के गर्भ जन्म, दीक्षा कल्याणक का वर्षेत, कर उनके केवल झान-उदाचि तक का वर्षन है। दीक्षार्थ उटते हुए महाबीर के सात पग पैदल चलने का उल्लेख भी किं ने किया है।

श्राठारहवें सर्ग में समवशरण का विस्तृत वर्णन कर उनके धर्मी-परेश, विद्वार संघ-संख्या श्रीर निर्वाण का वर्णन कर प्रन्य समाप्त होता है। असग कि ने भ० महाबीर के पांचों ही कल्याणों का वर्णन यग्नप बहुन ही संचेष में दिगम्बर-परस्परा के अनुसार ही किया है, तथापि दो-एक घटनाओं के वर्णन पर खेनास्वर-परस्परा का भी प्रभाव दृष्टियोचर होता है। यथा—

(१) जन्म कल्याणक कं लिए खाता हुआ सीयमेंन्द्र माता के प्रस्तित्नृह में जाकर उन्हें मायामधी नींद से मुलाकर खौर मायामधी नींद से मुलाकर खौर मायामधी नींद से सुलाकर खौर मायामधी नींद से स्वाद र स्वाद र स्वाद है खौर इन्द्राणी को सौंपता है:—

सायाभेकः प्रथमकल्यपितिविधाय

सायु पुरोड्य जननाभिषविक्रयायै ।
वाउं जहार जिन मात्मरूना स्कृरन्त

कार्योः राजनु वृत्योऽपि करोत्यकार्यम् ॥७२॥
शच्या धृतं करदुगे ननसङ्गभासा

निन्ये सुरैरनुगतो नभसा सुरेन्द्रः।
स्कृत्ये निजाय शरदभसमानमूर्तेरंगवनस्य मर्गण्यहृतािजपकः । ॥७३॥

(सर्ते १७, पत्र ६० В)

(२) जन्माभिषेक के समय सुमेरु के किन्पत होने का उल्लेख भी कवि ने किया है। यथा—

तिस्तित्व । जुबति किन्तिमैलराजे
योणाप्रविष्टसिक्तित्वपुर्वेऽप्यजन्म ।
इन्द्रा जरन्नणियँकपदे निपेतुवीर्यैनिसर्गजपन्तनस्को जिनानाम् ॥६२॥
(सर्गे १७, एव ६० B)

दि० परम्परा में पद्मचरित के सिवाय अन्यत्र कहीं सुमेर के कम्पित होने का यह दूसरा उल्लेख है जो कि विसल्हारि के साकुत पत्रमचरित का अनुकरण प्रतीत होता है। पीछे के अपन्ने अ चरित-स्परिताओं में से भी कुळ ने इनका ही अनुकरण किया है।

प्रत्य के श्वन्त से उपसहार करते हुए श्वसग कवि कहते हैं— इतं सद्दावीरचरित्रमेनन्सया परस्य प्रतिबोधनाय। सप्ताधिकत्रिक्षसवप्रवन्य पुरूरवाद्यं निसवीरताथम् ॥१०२॥

जांधन पुरुरवा भील के जादि भव से लेकर बीरनाथ के जनितम भव तक के सैंनीस भवों का वर्णन करने वाला यह महावीर चित्र मैंने ज्यपने जाँग पर के प्रतिबोध के लिए बनाया।

इस उन्लेख में महावीर के सैंतीस भवों के उल्लेख वाली चात विचारणीय है। कारण कि स्वयं द्यागत उन्हीं तेतीस ही भवों का वर्णन किया है। तिर्दें कि उत्तर पुराणकार स्वादि क्यन्य दि० सान्यता ने भी लिखा है। सैंतीस भव तो होते ही नहीं हैं। श्वे० मान्यता के स्वनुसार २७ भव होते हैं, परन्तु जब स्वस्ता ने ३३ भव गिनाये है, तो २० भवों की संभावना ही नहीं उठगी है। उपलब्ध पाठ को कुछ परिवर्तन करकें 'सप्ताधिक-विंडाभवप्रवस्थ' मानकर २० भवों की कल्पना की जाय, तो उनके कथन में पूर्वापर-विरोध स्वाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्रसगते भवां को एक-एक करके गिना नहीं है स्वीर श्वेतान्यर सम्प्रदाय की प्रचलित मान्यता को ध्यान में रख कर सैसा उल्लेख कर दिया है। जो कुछ भी हो, पर यह बात विचार-णीय स्वस्थ है।

(?)

भट्टारक श्री सकलकी चिंने सस्क्रत आपा में 'वीर-वर्घमान चरित्र' की रचना की है। ये त्रिक्रम की १४ वीं जनाटरी के ऋाजार्य हैं। इनका समय विश्सं∘ १४४३ से १४६६ तक रहा है। इन्होंने संस्कृत में २८ ब्योर इिन्दी में ७ मन्दांकी रचनाकी है। यहां उनमें से उनके 'वर्षमान चरित्र का कुछ परिचय दिया जाता है।

इस चिनित्र में कुछ १६ अध्याय हैं। प्रयम अध्याय में सब्दें तीर्थकरों को प्रयक्ष-प्रयक् रहोकों में नमस्कार कर, त्रिकाल-दर्गी तीर्थकरों और विदेहस्य तीर्थकरों को भी नमस्कार कर गौनम् गणपर से लगाकर सभी अग-पृथंशारियों को उनके नामोल्लेख-पृथंक नमस्कार किया है। अन्त में कुन्दकुन्दादि सुनीरवरों को और सरस्वती देवी को नमस्कार कर वक्ता और श्रोता के लक्ष्य वतलाकर योग्य ओताओं को सम्बोधित करते हुए सस्कथा सुनने की प्रेरणा की है।

दूबरे अध्याय में भगवान् महावीर के पूर्व भवों में पुरूरवा भील से लेकर विश्वनन्दी तक के अयों का वर्णन है। इस सर्ग में देवों का जन्म होने पर वे क्या क्या विवार और कार्य करते हैं, यह विस्थार के साथ बताया गया है। मरीचि के जीव ने चौदहवें भक्त कं बाद मिध्यत्व कर्म के परिपाक से जिन असंख्य बोनियों में परि-अमण किया उन्हें लक्ष्य में रखकर प्रत्यकार अपना दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं—

वरं हुनाशने पातो वर हालाहल।शनम् । श्रद्धो वा मञ्जनं श्रेष्ठं मिथ्याःवाज्ञच जीवितम् ॥ ३२ ॥

अप्रांत् - श्राग्न में गिरना अच्छा है, हालाहल विष का खाना उत्तम है और समुद्र में दूब मरना श्रेष्ठ है। परन्तु मिध्याल के साथ जीवित ग्हना अच्छा नहीं है।

इससे आगे अनेक दुःखदायी प्राणियों के संगम से भी भयानक दु खदायी मिध्यात्य को बतलाते हुए कहते हैं :— एकतः सकलं पाप मिश्यालमेकतस्तयोः । वदन्त्यत्रान्तरं दक्षा मेरु-सर्षपयोग्वि ॥ ३४ ॥

आ आरोत्— एक और सर्व पापों को रखा जाय और दूसरी कोर आ केले मिध्यात्व को रखा जाय, नो दक्ष पुरुष इन दोनों का अपन्तर मेरू पर्वत और सरसों के दाने के समान वतलाते हैं। भावार्थ-मिध्यात का पाप मेरू-तूल्य महाव हैं।

तीसरे काच्याय में अ० महावीर के बीमवें अब तक का वर्णन है, जहां पर कि त्रिपुट्ट नारायण का जीव मानवें नरक का नारकी बनकर महान् दु:खों को सहता है। इस भर्गे में नरकों के दु:खों का का बिस्तृत लगेन किया गया है। मध्यवर्गी अवों का वर्णन भी कितनी ही विशेषताओं को लिए हुए है।

चौथे ष्रध्याय में अ० महाबीर के हरिषेण वाले सताईसर्वें अब तक का वर्णन है। इसमें तेईसर्वें अब वाले ग्रा-अफ्रण करते हुए सिंह को सम्बोधन करके जारण मुनियों के द्वारा दिया गया चरदेश बहुत ही उद्-बोधक है। उनके उपरोध को मुतने हुए सिंह को जाति-समरण हो जाता है और वह ष्यांकों से अधुधारा बहाना हुआ मुनियां की और देखता है, उस का प्रत्यकार ने बड़ा ही सजीव वर्णन विद्या है। व्यान

गल्द्वाध्पजलोऽतीवशान्तिचित्तो भवत्तराम् । श्रश्चुपातं शुचा कुर्वेन् पश्चात्तापमयेन च ॥२४॥ पुनर्मु निह र्हि वीक्ष्य स्वस्मिन् बद्धनिरीक्षणम् । शान्तान्तरंगमध्येत्य कुपर्यवसभावत् ॥२४॥

पुनः मुनि के दिये गये धर्मो ग्देश को सिंह हृदय में धारण करता है और मिथ्याल को महान् अनर्थका करने वाला जानकर उसका परित्याग करता है। कवि कहते हैं—

मिध्यात्वेन समं पापं न भूतं न भविष्यति ।

न विचने त्रिलोकेऽपि त्रिश्वानर्थनिबन्धनम् ॥४४॥

ष्मन्त में निराहार रहकर सिंह संन्यास के साथ मरकर दस्तें स्वां में उत्पन्न होता है और वहां से चय कर प्रियमित्र राजा का भव धारण करता है। यांचनें खान्या में भ० महाविर के नन्द नामक इक्तीसवें भव तक का वर्णन है। इस में भगवान के उन्तीसवें भव बाले प्रियमित्र चक्रवर्ती की विभूति का बड़े विस्तार से वर्णने हिया गया है। जब चक्रवर्ती की विभूति का बड़े विस्तार से वर्णने हिया गया है। जब चक्रवर्ती की वभूति का बड़े विस्तार से वर्णने हिया गया है। जब चक्रवर्ती का पाने वैभव का परिस्थान करके मुनि वनकर मुनिधमें का विधिवत् पाठन करते हैं, तब किंब कहते हैं—

सुखिना विधिना धर्मः कार्यः स्वसुख-बृद्धये । दु:खिना दुःख-घाताय सर्वधा वेतर्रः जनैः ॥६०॥

अर्थात् सुखी जनों को अपने सुख की और भी वृद्धि के लिए, दुखी जनों को दुःख दूर करने के लिए, तथा सर्व साधारण जनों को दोनों ही उदेश्यों से धर्मका पालन करना चाहिए।

चक्रवर्ती द्वाराकिये गये दुर्धर तपश्चरण काभी बहुत सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया गया है।

छठे अध्याय में भगवान के उपान्य भव तक का वर्णन किया गया है। भगवान का जीव इकतीसवें भव में दशन-विश्वद्धि आदि बोइडा कारण भावनाच्यों का चिन्तवन करके तीर्थकर मकृति का बन्ध करता है। इस सन्दर्भ में बोडरा भावनाच्यों का, साथ दी सोछ-इदें दश्में में उराज होने पर वहां के सुख, वेभव आदि का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। सातर्वे अध्याय में भ० महाबीर के गर्भावतार का वर्णन है। गर्भ में आने के छह सास पूर्व ही सौधर्मेन्द्र मगवान् के गर्भावतरण को जानकर कुवेर को आज्ञा देता है—

श्रथ सौधर्म कल्पेशो ज्ञास्त्राऽच्युत सुरेशितः। षरमासावधिरोषायुः प्राहेति धनदं प्रति ॥४२॥ श्रीदात्र भारते केत्रे सिद्धार्थनुप-मन्दिरे । शीवधंमानानीवेशव्यार्थनेज्वति ॥ ४३॥ श्रातो गस्त्रा विधिष्ट स्वं वस्त्रवृत्तिकत्वास्त्रवे ॥ श्रोतो गस्त्रा विधिष्ट स्वं वस्त्रवृत्तिकत्वास्त्रवे ॥ ४४॥ श्रोतो स्वार्थित्वास्त्रवे स्वार्थकर्माकराणि च ॥ ४४॥

ख्यवीत — अन्युनेन्द्र की छह मास खायु के रोय रह जाने की सात जानकर सीमेमेन्द्र ने कुनैं को आदेश दिया कि भरन क्षेत्र में जाकर सिद्धार्थ राजा के भवन में रत्नशुक्ति खादि सभी खाआर्थकारी अपने ककीचर्यों को करो, न्यों कि खन्तिम तीर्थक्कर बहां जन्म क्षेत्रे बाले हैं।

कुनेर को आहा देकर इन्द्र पुनः माता की संवा के लिए दिक्कु-मारिका देवियों को भेजना है जीर वे जाकर त्रिशला देवी की अली-आति सेवा करने में संक्ष्य ही जाती है। इसी समय विश्वला देवी सोलह स्वाग्नें की प्वानि के साथ जिन शब्दों का प्रयोग करते हुए माता को जगाते हैं, वह समम प्रकरण तो पड़ने के योग्य ही है। माता जाग कर शीग्र प्रामातिक कियाओं को करती है, पति के पास जाती है जीर स्वान कर हिण क्षा प्रमान पति के पुत्र से फल सुने कर परम हर्षित हो अपने मन्दिर में आती है। तथीं स्वामीय से चार्तिकाव के देव काकर गर्म-कल्याणक महोस्सक करते हैं और भगवान् के माता-पिता का क्षियक कर एव एवर्ड दिख्ल स्वामरण देकर उनकी पूजा कर तथा सर्भस्थ अगवान् को नमस्कार कर अपने अपने स्थान को वापिस चले जाते हैं—

जिनेन्द्र-पितरी भत्तया ह्यारोप्य इरिविध्टिरे। श्रिमिष्ट्य कनत्काञ्चनकुम्भैः परमोत्सवैः ॥ २० ॥ प्रपूष्य दिव्यभूषामुन्धवैः शकाः सहामरः । गर्भान्तव्यं जिने ध्युत्या प्रषेपुन्तिपरीत्य ते ॥ २१ ॥ इत्याद्यं गर्भकल्याण हत्वा संयोज्य सद्-गुरोः ॥ २२ ॥ श्रम्बाद्यः परिवर्षोयं दिनकुमारीरनेकज्ञः ॥ २२ ॥ श्राद्विकव्यापिपो देवैः समं शक्त रुपार्चं स्वप्तायं पर पुष्यं सुवेष्टाभिनोक्तोकं सुदा यथौ ॥ २३ ॥ पर पुष्यं सुवेष्टाभिनोक्तोकं सुदा यथौ ॥ २३ ॥

आठवें अध्याय में दिक्कुमारिका देवियों द्वारा सगवान् की माता की विविध प्रकारों से की गई सेवा-सुन्नृषा का और उसके द्वारा पृक्षे गये अनेकों ज्ञास्त्रीय प्रस्तों के उत्तरों का बहुत ही सुन्दर और विस्तृत वर्णन है। पाठकों की जानकारों के छिए चाहते हुए भी विस्तार के भाय संबद्ध उसे नहीं दिवा जा रहा है। इस विषय अ जातने की इच्छा रखने वाले पाठकों से निवेदन है कि वे इस अख को संकतना विद्वानों से अवस्थ सनने या पदने का प्रयक्त करें।

क्रमशः गर्भ-काल पूर्ण होने पर चैत सुदी १३ के दिन भगवान् का जर्म होता है, चारों जाति के देवों के आसन कम्पित होते हैं, अविश्वान से भगवान् का जन्म हुआ जानकर वे सपरिवार आते हैं और ज्ञाची प्रसूति गृह में जाकर माना की खुलि करके माता को मायावी नित्रा से सुलाकर एवं मातामयी बालक को रखकर और भगवान् को लाकर इन्द्र को सौंप देती है। इस प्रसंग में मन्यकार ने अची के प्रच्छक रहते हुए ही सब कार्य करने का वर्णन किया है। यथा — ं " इस्यभिस्तुत्य गृहाङ्की तां मायानिष्ठयान्विताम् । कृत्वा मायामय बार्खं निधाय तत्पुरोद्ध्रुरम् ॥ ५० ॥

जब इन्द्राणी भगवान को प्रसूति-गृह से लाती हैं, तो दिक्क मा-रियां क्षम्ट संगल ठठ्यों को धारण करके कागे आगे जलती हैं। इन्द्र भगवान को देखते ही भक्ति से गद्द-गद होकर स्तृति कर अपने हावों में सेता है और ऐंगवत पर बंठकर मब देंगे के साथ सुमेर क्षंत पर पहुँचता है। इस खल पर सकलकी तिने देवी-वेबाओं के आतन्दोर के का और सुमेर पर्वत का बड़ा विस्तृत वर्णन स्थि। है।

नवें सध्याय में भगवान् के स्वभिषेक का वर्णन है। यहां बताया गया है कि भगवान् के स्वभिषेक-समय उन्द्र के स्वादेश से सर्व विश्वाल स्वपनी-स्वपनी दिशा में बैठने हैं। पुनः क्षित सागर से जल मरक्त लाये हुए १००६ कलशों को उन्द्र स्वपनी तरकाल ही विकिया निर्मित १००८ सुजाओं में सारण करके भगवान् के शिर पर जल-बारा छोड़ता है। पुनः रोष देव भी भगवान् के मस्तक पर जलधारा करते हैं। इस ब्यल पर सकलकीर्ति ने गन्य, चन्द्रन पत्र स्वम्य प्रगन्धित दृष्यों से युक्त जल भरे कलशों से भगवान् का स्वभिषेक कराया है। क्या-

पुतः श्रीतीर्षकर्वारमभ्यसिख्यच्छताध्वरः । गन्धान्त्रुचन्दनार्धं रच विभृत्याऽमा महोत्सवं ॥ २६ ॥ सुगन्धिद्रव्यसन्मश्रमुगन्धजलपृत्तिः । गन्धोदकमहाकुन्मेमीणकाञ्चननिर्मितैः ॥ २० ॥

यहां यह बात फिर भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने दही-घी चादि से भगवान का अभिषेक नहीं कराया है। यहां पर सकलकीर्त ने भगवान के इस अभिषेक की लल्कास का कई श्लोकों में माहात्म्य वर्णन किया है और भावना की है कि वह पवित्र जल्लारा हमारे मन को भी तुरुकमों के मेल से खुलास्त्र पित्र करे । पुतः सबे देवों ने जगन की शानि के लिए शानित पाठ पढ़ा। पुतः इन्द्राणी ने भगवान को वन्त्रामूचण पहिनाये। किय ने इन वस्त्र और सभी आभूचणों का काल्यमय विस्तृत आल्ड्डारिक वर्णन किया है। तस्त्रआत् इन्द्र ने भगवान की सुति की, जिसका वर्णन किया है। तस्त्रआत् इन्द्र ने भगवान की सुति की, जिसका वर्णन किया है। तस्त्रआत् इन्द्र ने भगवान की स्वान का नाम संस्कार कर वीर और श्ली वर्धमान नाम स्वकर जय-जयकार करते हुए मर्व देव इन्द्र के साथ कुरुडनपुर आये और भगवान माता-पिता को सींप कर तथा उनकी स्वित कर और आनन्द नाटक करके अपने स्थान को चले गये। किव ने इस आनन्द नाटक का बड़ा विस्तृत एवं चमस्कारी वर्णन किया है।

द्रशबं अध्याय में भगवान की बाल-कीड़ा का सुन्दर बर्णन किया है। जब महाबीर कुमाराबस्था को प्राप्त हुए, तो उनके जन्म-जात मति, श्रुत और अवधिज्ञान सहज में ही उरकर्ष को प्राप्त हो गये। उस समय उन्हें सभी विशाएं और कलाएं स्वयं ही प्राप्त हो गई, क्योंकि तीयंह्नर का कोई गुरु या अध्यापन कराने वाला नहीं होता है। सक्तककीर्ति लिखते हैं—

तेन विश्वपरिक्षानकला-विद्यादयोऽखिलाः। गुणा धर्मा विचाराद्याखागुः परिणति स्वयम् ॥ १४ ॥ ततोऽयं नृसुरादीनां बभूव गुरुक्जिनः। नापरो जातु देवस्य गुरुक्जिन्यापकोऽस्त्यहो ॥ १४ ॥

आठ वर्ष के होने पर महाबीर ने स्वयं ही आवक के अत प्रहण कर लिये। महाबीर के क्रीड़ा-काल में संगमक देव के द्वारा सपहरण वनाकर काने और अगवान् के निअंथपने को देखकर 'महावीर' नाम रखकर स्तुति करके जाने का भी उल्लेख है।

इस स्थल पर गत्थकार ने भगवान के झरीर में प्रकट हुए १०८ छक्षणों के भी नास गिताये हैं। पुन: कुमार-कालीन की बाओं का वर्णन कर बताया गया है कि भगवान का हृदय जगन की स्थिति को देख- स्थल उत्तरी स्थान देखा को कोर बदने लगा और अन्त में श्री सुबंद की भी-पूरी युवाबस्था में वे घर-परिचाग को उचत हो गयें। युद्धों माता-पिता के विवाह-अस्ताव आदि की कोई चर्चा नहीं है।

ग्यार्चे बाध्याय में १२४ श्लोकों के द्वारा बारह भावनाओं का विद्याद वर्णाने किया गया है, इनका चिन्तवन करते हुए महावीर का वैराग्य और टेंट्रवर हो गया।

बारहवें अध्याय में बताया गया है कि महाबीर के संसार, देह कीर भोगों से बिरक होने की बात को जानते ही छौकान्तिक देव आंखे और सवननमस्कार करके अगवाद के दीन की बात कर अंपने क्या को ज्वेत गये। तभी घरटा आदि के बजने से अग-वाद के दिख्य के स्वाप्त के सिरक जानकर सभी छुर और अधुर अपने-अपने वाहतों पर बढ़कंद कुरवन्तुर आये और भगवाद के दीख्य करणाणक करने के उच्च आवश्यक तैयारी करने छो। इस समय अगवाद ने वैराय करणावक महुर-संबापण से अपने दीख्य किने का भाव माता, पिता और कुटुन्बी जनों को अवगत कराया। इस अवसर पर छिखा है—

तदा स मातरं स्वस्य महामोहात्तमानसाम्। बन्ध्ं ऋ पितरं दक्षं महाकट्टेन तीर्थकृत्॥ छे१॥ विश्विक मेंबुरावापैरुपदेककृतादिभिः। बेराग्यजनकेवीक्वैः स्वदीक्षाये कृषोधयन्॥ ४२॥ इधर तो भगवान् ने घर-बार छोड़कर देव-समूह के साथ वन को गमन किया और उघर माना प्रियकारिणी पुत्र-वियोग से पीड़ित होकर रोती-विछाप करती हुई वन की कीर भागी। इस खरू पर किय ने साता के करूण विछाप का जो चित्र खींचा है, उसे पढ़ कर प्रस्येक माना रोये बिना नहीं रहेगी। माना का ऐसां करूण खाकन्दनं सुन कर महत्तर देवों ने किसी प्रकार समझा बुझा करके उन्हें राज-भवन वापिस भेजा।

भगवान ने नगर के वाहिर पहुँच कर खंका नामक उद्यान में पूर्व से ही देवों द्वारा तैयार किये गये मरहप में मधेक किया और बन्नाभूवण उतार कर, पांच सुद्धियों के द्वारा सर्व केक्रों को डखाइ कर एव निद्धां को नमस्कार करके जिन-दीक्षा महण कर छी। देव-इन्द्रादिक अपना-अपना नियोग पूरा करके यथा-खानं चली गये।

इस स्थल पर भगवाम के दीक्षा ग्रहण कर खेने पर इन्द्र बे जिन सुभेरहन प्राप्तक शब्दों में बनकी खुति की है, वह चसके ही योग्य है। कि ने पूरे ३२ ऋोकों में इस का ज्याज-खुति रूप खे वर्णन किया है।

तरहवें डाध्याय में भगवान की तपस्या का, उनके अध्या पारणा का, प्रामातुष्राम विहार का और सदा काल जायरूक रहने का बढ़ा ही मार्भिक एवं विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रकार विश्वरते हुए भगवान उडजीयनी के रमशान में पहुँचे। यथा—

> विश्वोत्तरगुणैः सार्वं सर्वात् मूलगुणात्र सुधीः। श्रतन्द्रितो नयन्त्रैव स्वप्नेऽपि मलसन्निधिम्॥ ४८॥ इत्यादिपरमाचाराऽङङ् इन्हों विहृरस् महीम्। जजविन्याः रमञ्जानं देवोऽतिसुकास्यमागमन्॥ ४८॥॥

बहां पहुँच कर अगवाम् रात्रि में प्रतिभायोग घारण करके ध्यानावस्थित हो गये। तास्कालिक अन्तिम रुद्र को उथों ही इसका पता चला-कि वह ध्यान से विचलित करने के लिए अपनी प्रिया के साथ जा पहुँचा और उसने जो नाना प्रकार के उपद्रव रात्रि अस्त्रवे जाते करें , बह यदापि वर्णनातीत हैं, तथापि सकल की तिं न उनका बहुत कुछ वर्णन ११ शलोकों में किया है। रात्रि के बीत जाने पर और पोरातिघोर उपद्रवों के करने पर भी जब रुद्र ने अगवान् को अधिवाद देखा, तो लिजत होकर अपनी खों के साथ उनकी रुत्रति करके तथा आप महाति महावीर हैं। ऐसा नाम कह कर अपने स्थान करें चला आप महाति महावीर हैं। ऐसा नाम कह कर अपने स्थान करें चला आप महाति महावीर हैं। ऐसा नाम कह कर अपने स्थान करें। चला गाया।

पुनः सगवान् उञ्जयिनी से विहार करते हुए क्रमशः कौशान्धी पहुँचे और दुवंर अभिमह के पूरे होते ही चन्दना के द्वारा प्रदक्त आहार से पारणा की, जिससे वह बन्धन-मुक्त दुई। चन्दना की विशोष कथा दि० सेव शास्त्रों में विस्तार से वर्णित है, विशेष जिज्ञासु पाठकों को वहां से जानना चाहिए।

पुनः विहार करते हुए भगवान् जुन्सिका प्राप्त के वाहिर बहने बाली ऋजुकूला नदी के किनारे पद्योपवाम का नियम लेकर एक सिला पर व्यानस्व हो गये और वैशास शुक्ता दशमी के अपराह्न में क्षपक लेणी मांडकर और अन्तर्युहर्त में घानिया कर्मों का विनाश कर केवल बात को प्राप्त किया।

चौदहर्षे कथ्याव में समवान के ज्ञान करवाण क का ठीक वैसा ही वर्णन किया गया है, बैसा कि पुराणों में प्रत्येक तीर्यक्टर का किया गया है। किन्तु सक्क कार्ति ने कुछ नवीन बातों का भी इस प्रकरण में चल्लेख किया है— (१) भगवान् के झान कल्याणक को मनाने के छिए जाते समय इन्द्र के आदेश से बलाहक देव ने जम्बू द्वीप प्रमाण एक लाख योजन विस्तार वाला विमान बनाया। यथा —

तदा बलाहकाकारं विभानं कामकाभिधमः। जम्बूद्वीपप्रमं रम्यं मुक्तालम्बनशोभितम्।।१३॥ नानारत्नमयं दिञ्यं तेजसा ज्याम दिग्मुल्यम्। किङ्किणीस्वनवाचाल अके देवो बलाहकः।।१४॥

इसी प्रकार के पालक विमान का विस्तृत वर्णन रवेश आहत जन्मुद्वीप प्रज्ञानि और संकृत त्रिविष्ठाका पुरुष चरित में मिलता है, जिल पर किंवेठ करके सपरिवार इन्द्र भगवान् के जन्म कल्या-णावि के करने को आधाता है। यथा—

श्वारित्तराक्ष्यं नाम वास्त्रोऽप्याभियोगिकम् । श्वसम्भाव्यप्रतिमानं विमानं कियतामिति ॥३४३॥ तरकार्ष्यं पाळकोऽपीशानिदेशपरिपाळकः । रत्नततम्भसहस्रांशुद्रपरकार्यताम्बरम् ॥३४४॥ ग्रावार्त्तरिक्षमार्थेव वीवैटीम्परिकः चर्ततः । वेदीभिद्रेन्तुरमित्र कुम्यं. पुळकभागित्र ॥३४४॥ पञ्चयोजनशस्त्रुच्चं विस्तारे ळक्षयोजनम् । इच्छानुमानगमनं विमानं पाळकं व्यथात् ॥३४६॥ (विषष्टि पुरुवदितं पर्व १, सर्ग १)

जहां तक मेरा ऋष्ययन है, किसी कान्य दि० शन्य में मुक्ते इस प्रकार के पालक या बलाहक विमान के बनाने और उस पर इन्द्र के खाने का उल्लेख रुष्टिगोचर नहीं हुंचा है। ये पालक या चलाहक बान तो नहीं, वस्तुतः एक ही हैं, यह उद्घृत रखोकों से पालक स्वयं ही समझ जायंगे।

- (२) रवे॰ शास्त्रों के अनुसार सौधर्मेन्द्र उस विभान में अपनी सभी परिपदों के देवों, देवियों और अन्य परिजनों के साथ बैठकर आता है। किन्तु सकलकीर्तिने इसका कुछ उल्लेख नहीं किया है।
- (३) सकलकी तिने यह भी वर्णन किया है कि कौनसा इन्द्र किस बाहन पर सवार होकर च्याता है। यथा—
- (१) औधर्मेन्द्र—ऐरावत गजेन्द्र पर। (२) ईशानेद्र—धश्व-बाइन पर। (३) सनत्कुमारेन्द्र—शगेन्द्र वाइन पर। (४) माहेन्द्र— कृष्य बाइन पर। (४) अझेन्द्र—सारस वाइन पर। (६) छानवेन्द्र— ईस वाइन पर। (७) आनेनेन्द्र—पुरुषक विमान पर। (१०) प्राण-तेन्द्र—पुरुषक विमान पर। (११) आनरेगेन्द्र—पुरुषक विमान पर। (१२) अध्युतेन्द्र—पुरुषक विमान पर।

इस प्रकार इस अध्याय में देवों के अपने का और समवशरण की रचनाका विस्तार से वर्णन किया गया है।

पन्द्रहवें कथ्याय में बताया गया है कि सभी देव-देवियां, मनुष्य क्यीर तिर्वंच समवक्षरण के मध्यवर्गी १२ कोठों में यथा स्थान बैठे। इन्द्र ने भगवान की पूजा-क्यचों कर विस्तार थे स्तृति की क्यीर वह भी अपने स्थान पर जा बैठा। सभी छोग भगवान का उपदेश सुनने के लिए उस्सुक बैठे थे, फिर भी दिज्य ध्वनि प्रकट नहीं हुई। धीरे धीरे तीन पहर बीत गये, तब इन्द्र चिन्तित हुआ। अवधिक्षान से दमने जाना कि गणधर के अभाव से भगवान् की दिज्यध्वनि

हेतुना केन जायेतादीन्द्रो हृदीत्यविन्तयत् ॥ ७ ॥

(श्री वर्धमान चरित्त, अप०१४)

१ वामत्रये गतेऽप्यस्याईतो न ध्वनिविर्गमः।

नहीं प्रकट हो रही है। तब वह दूद विष्ठ का रूप बना कर गीतम के पास गया और वही प्रसिद्ध रखोक कह कर कार्य पूछा। रोष कथानक बही है, जिस्ते पहले खिला जा जुका है। क्यन में गीतम काते हैं, मानस्तम्भ देखते ही मान-भग होता है। क्येर मगवान के समीप पहुँच कर बहे भूति भाव से भगवान की स्तृति करते हैं। मकछ कीचिने इस स्तुति को १०६ नामों के उल्लेख पूर्वक ४० रखोकों में रचा है।

सोलहव काध्याय में गौतम के पूछने पर भगवान के द्वारा पट्-द्रब्य, पंचास्तिकाय, साम तस्व कौर नव पदार्थों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

सत्रहवें ऋध्याय में गौतम-द्वारा पूछे गये पुरव-पाप विपाक-सम्बन्धी अपनेकों प्रश्नों का उत्तर दिया गया है, जो कि मनन के योग्य है।

क्षठारहवें कथ्याय में भगवान् के द्वारा दिखेगये गृहस्थ-धर्म, मुनिधर्म, लोक-विभाग, काल-विभाग क्यादि उपदेश का वर्णन है। गीतम भगवान् के इस प्रकार के दिल्य उपदेश को हुनकर चहुत प्रभावित होते हैं, जीर क्यपनी निन्दा करते हुए कहते हैं हमार, हाथ । आज तक का समय भीने निज्याद का सेवन करते हुए कर्यं गवा विया। किर भगवान् के मुख्य कमल को देखने हुए कहते हैं—क्याज में धन्य हुआ, भेरा जन्म सफल हुआ, क्यांकि महान् पुरुष से मुक्क जाद-गुरु प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार परम विशुद्धि को प्राप्त होते हुए गौतम ने अपने दोनों भाइयों और जिल्यों के साथ जिन दीक्षा प्रस्था कर ली। यथा—

बाह्रो मिध्यात्वभागोंऽयं विश्वपापाकरोऽशुभः । चिरं वृथा मया निंचः सेवितो मृहचेतसा ॥ १३३हुं॥ अधाहमेन धन्योऽहं सफ्छं जन्म मेऽखिलम् । यतो मयातिपुरवेन प्राप्तो देवो जगद्-गुरुः ॥ १४४ ॥ प्रिज्ञुद्धया परवा भक्त्याऽऽहंती सुद्रां जगन्तुताम् । आतुःत्र्यां सह जमाह तस्क्षणं च द्विजोत्तमः ॥ १४६ ॥

गौतम के दीक्षित होते ही इन्द्र ने उनकी पूजा की और उनके गणपर होने की नामीन्लेख-पूर्वक घोषणा की। तभी गौतम को सम खिद्धां प्राप्त हुई। उन्होंने भगवान् के उपदेशों को—को आवार कब्जा प्रतिकृति के प्रतःकाल आर्थ क्य से प्रकट हुए ये—उसी दिन अपराह्म संग्र-पूर्व क्य से विभाजित कर प्रन्य क्य से रचना की।

डक्रीसडों खध्याय में सीयमेंन्द्र ने मगवान् की खर्य-गम्मीर और विस्तृत न्तुति करके भव्यलोकों के उद्धारार्थ विद्दार करने का प्रस्ताव किया और भव्यों के पुष्य से प्रेरित भगवान् का सर्व आर्थे देशों में विद्दार हुखा। खरत में वे विपुलाचल पर पहुँचे। राजा श्रेणिक ने खाकर बन्दना-खर्यना करके धर्मीरदेश सुना और खपने पूर्व भव पूछे, साथ ही खपने प्रतादि-महण के भाव न होने का कारण भी पूछा। भगवान् के द्वारा सभी प्रश्ले का उत्तर सुनकर श्रेणिक ने सम्बन्दन प्रहुण किया और तत्यक्षात् सोलह कारण भावनाओं को भाते हुए तीखेंडर प्रकृति का बन्च किया।

अन्त में भगवान पावा नगरी के उद्यान में पहुँचे और योग-निरोध करके अधाति कर्मी का क्षय करते हुए शुक्ति को प्राप्त हुए । देव-इन्ह्रादिकों ने आकर निर्वाण कल्याणक किया। गौतम को केवल झान करनक हुआ। जीर उसी की स्पृति में दीपावली का पर्व प्रय-िलत हुआ। इस प्रकार समप्र चित्र-चित्रण पर सिंहाबळोकन करने से यह बात पूर्व-परस्परा से कुछ विकद्ध-सी दिखती है कि भ० महावीर के हारा सभी तस्यों का विस्तृत उपदेश दिये जाने पर गैतम के दीर के के इसमें उल्लेख किया गया है, जब चवळा-जयध्वळाकार जैसे आवार्य समयदारण में पहुँचने हा उनके दीनित होने का उल्लेख करते हैं। पर इसमें विरोध की कोई बात नहीं है बल्कि सुसंगत ही कथन है। कारण कि इन्द्र ने विप्रवेध में जिस स्लोक का अर्थ गीतम स्पृद्धा था, उसे वे नहीं जानने थे, खतः यह कह कर ही वे भगवान के पास खारे थे कि चलो —तुन्हारे गुरु के सामने ही अर्थ बताईगा। सकळकीर्ति ने इन्द्र-द्वारा जो रलोक कहळाया, वह इस प्रकार है —

त्रेकाल्यं द्रव्यपटक सकल्याणितगणाः सत्यदायां नवैव, विश्वं प्चारितकाय-त्रन-समितित्रदः सप्त उच्चानि धर्मः । सिद्धः मार्गात्वरूपं विधिजनितकल्ज जीवषट्कायक्षेत्र्या, एतान् य अद्धाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्य ॥

इस ग्लोक में जिस कम से जिस तत्त्व का चल्लेख है. इसी कम से गौतम ने भगवान् से प्ररत पूखे ये और भगवान् के द्वारा उनका समुचित समाधान होने पर पीछे उनका दीक्षिन होना भी स्वाभाविक एव युक्ति-संगत है। (२)

रयधु-विरचित महाबीर-चरित

ग्यपूकि ने अपन्नं का भाषा में अने क प्रत्यों की रचना की है। उनका समय विक्रम की १४ वी झताबिद है। यद्यपि अपने पूर्व रखे गये महाबीर चरितों के आधार पर हो उन्होंने अपने चरित की रचना की है, तथापि बनके विशेष्ट व्यक्तित्व का उनकी रचना में स्थान-स्थान पर प्रभाव टिस्टिगोचर होता है। यहाँ पर इनके चरित से कुछ बिशिष्ट स्थळों के उद्धरण दिये जाते हैं — (१) भ० च्छपसदेव के द्वारा अपने अन्तिम तीर्थंहर होने की बात सुनकर मरीचि विचारता है—

षत्ता-शिक्षुशिक्षि जिश्वतुत्तत मुश्वित्व शिरुत्ततः,संतुद्वत मरीइ समर्खी । जिल्ला-मशिओ स्वित्वलाइ, कहमवि स्व चल्रहः, हं होसिम तिल्लायर

जाहीं ठारणह वियलह करणवायला, जह जोहस गरणु छंडर णहण्ला ।
जह सम्त्राचिमहा हुइ सीयल, जह परण्य हवाँन गय विस-मल ॥
प्याई कहमित्र पुरु चल चित्तर, खाउ अरण्यास्त्र विलाई पड्डच्छ ।
कि कारिंग इंदियगणु सोसमि, कि कारिंग उववासें सोसिम ॥
कि कारिंग इंदियगणु सोसमि, कि कारिंग उववासें सोसिम ॥
कि कारिंग इंदियगणु सोसमि, कि कारिंग उववासें सोसिम ॥
कि कारिंग जुचिम सिर-केसइ, कि कारिंग छुद्द-तरड किलेसइ ॥
कि कारिंग खुग्गण जाणि वियाम, कि विशु जलिगा महाण्ड पहरिम जेण कारिंग सहार्थ एगण्ड विश्व हिस होसह ॥
जिस्नं सिंग उवार गु की वि रणवार अरणहेन उण्ड केण्य और हो ।
जिस्नं कि उवार गु की वि रणवार अरणहेन उण्ड केण्य और हो ।
जिस जी उप्रुण सार्थ सिक्सेसड. मुद्र खिरखड हे किलेसइ ।
वार्य मासिव समक्तर सुद्र खिरखड हे किलेसइ ।
वार्य मासिव समक्तर सुद्र बाहिर, खिमाउ जब खाला छुटेंग्या हिर ॥
जिर्म खाय पिक्ख विद्र हे सिस, कुमय ।सर बहुमेर्र आमिय ।
चत्ता—पुणि कमस्द्र कर यारि पुणु स्था, सुद्र स्था

ियाच्चु जि परमाप्यत्र अत्थि अदृष्यत्र, एम संखु मत्र थपाइ ॥१६॥

(पत्र १७) जिनेन्द्र-भाषित वात कभी अन्यवा नहीं हो सकती है, सो में निश्चय से आगे तीर्थक्रूर होडंगा। यदि कद्ग्-चिन् कनकावल (सुमेर) चलायमान हो जाय, क्केतिवाग्य नभस्वल छाड़ दें, अर्फि-शिखा शीतल हो जाय, मर्प विष-रहिन हो जायें, ये सभी अनहोनी वार्ते क्ले सम्भव हां जायें, एर जिन भगवान का कथन कभी अन्यवा

महीं हो सकता। फिर मैं क्यों उपवास करके झरीर और इन्द्रियों को सुखाऊं, क्यों कायों समी करूं, क्यों वन में रहुँ, क्यों केहां का तों व करूं, क्यों मुख-त्यास की वेदना सहुँ, क्यों मुझ दिवार बिचक, जैर करों मुख-त्यास की वेदना सहुँ, क्यों नम होकर बिचक, जैर केवा ने होने वाला है वह होकर के ही रहेगा। उदय होते सुर्यं को कीन रोक सकता है ? जैसे कल समय आने पर स्वयं पक जाता है, बेसे ही समय आने पर स्वयं पक जाता है, बेसे ही समय आने पर स्वयं पक जाता है, बेसे ही समय आने पर स्वयं पक जाता है, बेसे ही समय आने पर स्वयं कर कि लगे। जैर कहा करने लगा और उहने लगा कि न कोई कर्ता है, न कोई कर्म ही है और न कोई सोफा ही है। जीव कभी भी कर्मों से स्वयंद नहीं होता है, बहा तो सहा ही निर्लंग परमास्य बना हुआ रहता है। इस प्रकार मरीचि न सांख्य मत की स्वयंदा की।

(२) रबधू ने त्रिपुष्ठ के भव का वर्णन करते समय बुद्ध का और उसके नरक में पहुँचने पर यहाँ क दुःखों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

 (३) मृग-पात करते सिंह को देख कर चारण मुनि - युगळ उसे सन्बोधन करते हुए कहते हैं।—

जगा जगा रे केतज सोवहि, तज पुरले मुलि आवड जोवहि। एक जि कोडाकोडी सायर, गयड असते कालु जि सायर।। (पत्र २४)

अर्थात—हे साई, जाग-जाग । किवने समय तक और सोपेगा ? पूरा एक कोझकोड़ी सागर प्रमास काल वुक्ते परिश्वसस करते हुए हो गया है। आज तरे पुरुष से यह मुनि-मुगळ आये हैं, सो देखों और आस-हित में छगो।

इस स्थलपर स्थम् ने चारत-मुनि के द्वारा सस्यक्त्व की सहिया

का विस्तृत वर्णन कराया है और कहा है कि अब हे सुगराज, इस हिंसक प्रवृत्ति को छोड़ कर मस्यक्त और ब्रत को प्रहुण कर।

- (४) भ० महाबीर का जीव स्वर्ग से अवतरित होते हुए मंसार के स्वरूप का विचार कर परम बैराम्य शावों की वृद्धि के साथ त्रिञ्ञला देवी के गर्भ में आया, इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण ्वधू ने किया हैं (पत्र ३)
- (४) जन्माभिषेक के समय सौंधर्म इन्द्र दिग्गला को पांडुक शिला के सर्व ओर प्रविच्छा कम से अपनी-अपनी दिशा में बँठा कर कहता है:—

शिय शिय दिस वक्यहु मावहास, मा को वि विसंद शुरू मङ्काठास । (पन्न ३६ A)

अर्थात् हे दिग्गलो, तुम लोग सावधान होकर अपनी-अपनी दिशा का संरक्षण करो और इस मध्यवर्ती चेत्र में किमी को भी प्रवेश मत करने दो।

इस उक्त उद्देश्य को भूल कर लोग आज पंचामृताभिषेक के समय दिग्पालों का आक्कानन करके उनकी पूजा करने लगे हैं।

(६) रवधू ने भी जन्माभिषेक के म्मय सुमेर के कम्पित होते का उन्होल किया है। सन्न बीक सिपेक से पूर्व कठशों में भरे जरू को कुनू के द्वारा मन बीक कर पित्र ने जाने का भी वर्णन किया है। (पत्र ३६ ८)

इस प्रकरण में गन्धोदक के माहात्म्य का भी सुन्दर एवं प्रभा-वक वर्णन किया है। (पत्र ३७ A)

(७) जन्मामिषेक वं लौटने पर इन्द्राणी तो भगवान् को ले जाकर माना को सींपती है और इन्द्र राजसभा में जाकर सिद्धार्य को जन्माभिषेक के समाचार सुकाता है। (पत्र ३८ B) भगवान् के श्री वर्धमान, सन्मति, महावीर आदि नामों के रखे जाने का वर्शन पूर्व परस्परा के ही अनुसार है।

(द) महाबीर जब कुमार काल को पार कर युवावस्था से सम्पन हो जाते हैं, तब जनके पिता विचार करते हैं :—

हो जाते हैं, तब उनके िया विचार करते हैं:—

अज्ञिव विसय आलि ए प्यासह, अब्ज सकामाध्यव ए भासह।
अज्ञिव विसय आलि ए प्यासह, अब्ज सकामाध्यव ए भासह।
अज्ञितित तृतें ए प भिज्जह, अक्ष अर्एग किंगिह ए देखिज्जह।
एएरि-कहा-रिन मागु एउ डोवह, एए सिवायर व कहव पढ़ीबह।
प्यास्त्र-प्रचानिति एवेण जिए भएएउ, सहह परिहिड एिप स्वरिए।
तड पुर- भएपि हडं पुन किंहा, नृहु पविवायहि स्वय्त्व मिए। १२४॥
कि पाहिए। ए कएउ सोवज्जह।
किंप पुन को अंतरु दिवजह, परडं मोहें किंपि भएएउजह।
तिहं करि जिह कुळ-सति बहुइ, तिह करि सुय-बंसु पश्चह।
तिहं करि जिह सुय-मञ्कू मागेरह, हुँति य पुरए तिस्म सह मा हि।

 कि जिससे कुल-सन्तान बढ़े और पुत्र का वंश प्रवर्तमान रहे । हे इन्द्र-शत-वश पुत्र, तुम ऐसा भाव करो कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो ।

पिता के ऐसे अनुराग भरे वचनों की सुन कर अवधि-विलोचन

भगवान उत्तर देते हैं:-

त गिसुगोप्पिण अवहि-विलोयण, पडिउत्तरु भासद मल-मोयण । ताय नाय जे तुम्ह पञ्चं, मरण्मा त णिरु होइ ए जुत्ता। चड गई पह व विहिय संसार, मोख-महापह तं चियदारं। दसर दमाई पारावारं, कवरण ताय वह बळह दार ॥ सन्वत्य वि अवसोस विद्यस्य, संधि वंध विसमहि विन्दिस्सा । सन्वत्य जि किभिन्नतसंपरण, सन्दत्य जि एव दारहिं जुएएं।। सन्वकाल पयहिय णिरु मुत्तं, सञ्बकाल वस-मंस-विलित्तं । सम्बद्धाल लालाग्स-गिल्लं, सन्वत्थ जि रहिरोह जलल्लं।। सञ्बकाल बहुमल कयकबुसं, सञ्बकाल धारिय जि पुरीसं। सहबकाल बहक्रिक्रयग्य, सञ्बकाल अतावलिबंध ।। सञ्बकाल मह भुक्खारीण वरिस अंगं सेयंताण, होई ए मोक्ल, दुक्ल धुव ताए।। धता-पर संभव पवहिय संभव, खण्-खण् बाहासय-महित । आरंभे महरड इंदिय- सह धुड, को एक संबद गए। अहिउ।। संसारि भयंतड' जाड जाड', गिरिडयड पमेल्लिय ताइ'ताइ'। केत्रियड गरोसिम आसि वंस, णिच्च चित्र जिंग लढ़ संस् ।। केत्तिबड भगमि कळ-संतईड, जणगी-जरगड पिय सामिगीड। परेमि मणोरह कास कास, त रिएसुणिनि शिड मेहिनि उसास ॥ होयवि विलक्षात्र मोणि थक्कु जाए एउ पहिउत्तर असक्कु।

अर्थात: — है तात, है पिता, तुमने जो कहा, सो वह युक्त नहीं है। बह दार-परिषद (ओ-रिबवाह) चतुर्गात रूप संसार-मार्ग का बढ़ाने बाढ़ा है और मोह " नहार पण्ड का रोकने वाला है। यह संसार रूप सागर दुस्तर दुर्गीत रूप है, इसका कोई आदि अन्त नहीं है। कौन बुद्धिमान् इसमें दृवना चाहेगा १ यह सर्वत्र आज्ञान से विस्तीर्ण है और विषम सन्धि-बन्धों से व्याप्त है। यह मानव-देह-क्रमि कुल से भरा हुआ है, नी द्वारों मे निरन्तर मल-स्नाव होता रहता है, सदा ही, गल-मूत्र प्रकट होता है, सदा ही यह बसा (चर्बी) श्रीर मांस से लिम रहता है, मुख से सदा ही लार बहती रहती है और सर्वाग रक्त-पुंज से प्रवाहित रहता है। सदा ही यह नाना प्रकार के मलों से कल्पित रहता है, सदा ही विष्टा को धारण किये रहता है। इससे सदा ही दुगन्ध आती रहती है और सदा हो यह आंतों की आवळी से बधा हुआ है। सदा ही यह भूख-प्यास से पोड़ित रहता है। ऐसे अनेक आपदासय जरीर का सेवन करने बालों को कभी सोच प्राप्त नहों हो सकता। हां, उनको दु व्यों की प्राप्ति तो निश्चय से होती ही है। पर से उत्तन्न होने वाले, मल-मुत्रादि को प्रवाहित करने वाले, चए चलमें संकड़ों बाधाओं से ब्याम और प्रारम्भ में मधुर दिखने वाले इस इन्द्रिय-सत्व हो कीन गुणी परुष सेवन करना चाहेगा ? संसार में परिश्रमण करने हुए इसने अनन्त जन्म, जाति और वंशों को पहण कर कर के छाड़ा है। जगनुमें की नसा बज्ञ सदा नित्य रहा है और कौन से कुछ की सन्तान माता, पिता और प्रिय जन नित्य बने रहे हैं। मनुष्य किम किसके मनोरथों को पूरा कर सकता है। इस लिप इस दार-परिप्रह को स्वीकार नहीं करने; ही अच्छा है। पिता महावीर ना यह उत्तर सुनकर और दीर्घ श्वास छोड़ कर चुप हो प्रत्युचर देने में अशब्द हो गरे ।

- (६) महावीर के वैराम्य उत्तम होने के अवसर पर रवधूने बारह भावनाओं का बहुत सन्दर एवं विस्कृत वर्णन किया है।
- (१०) ग्यधू ने दीक्षार्थ जाते हुए भगवान् के सात पग पैदल चलने का वर्णन इस बकार किया है:—

ता बहिवि सिहालगह जिगु चित्रंड पय घरंतु धरहिं।

पय सन्त महीयलि चलियङ जाम, इंदे परावेष्पिरा देख ताम। ससिपह सिवियहिं मंडिवि जिल्हिं, आरोबिवि एक्वायेड अणिद् ॥

अर्थात- भगवान सिहासन से उठकर जैसे ही भूतल पर सात पग चले. त्यो ही इन्द्र ने शिश्रिभा पालकी में भगवान को उठाकर बैठा दिया ।

(११) इन्द्र जब गीतम को साथ लेकर भगवान के समवशरण में आने छंगे, तो उनके दोनों भाई भी अपने शिष्यों के माथ वीखे हो लिये। तब उनका पिता शांडिल्य बाह्मण चिल्ला करके कहता है अरे. तम लोग कहां जा रहे ? क्या ज्योतियी के ये वचन सत्य हागे कि ये तीनों पत्र जिन-शासन को महती प्रभावना करेंगे। हाय, हाय, यह मायाची महावीर यहां कहां से आगया १

ता सिंडक्के विष्पे सिद्धव, हा हा हा कडू काजु विराहु । एयहिं जन्मण दिणि मइं लक्खिन, गोमित्तिएण मञ्कू ग्लिन अक्खह ॥ ए तिरिण वि जिणसमय-पहावण, पयड करेसहिं सहगइ दावण। त अहिहास पहु पुरम् जायड, कुवि मायावी इहु एिक आयड ।।

(१२) गौतम के दीश्वित होते ही भगवान् की दिव्यध्वनि प्रकट हुई। इस प्रसंग पर रवधू ने षट्-द्रव्य और सप्त-१२वो का तथा श्राव क और मुनिधर्म का विस्तृत वर्णन किया है।

अन्त में रयधूने भगवान् के निर्वाण कल्याण का वर्णन कर के गौतम के पूर्व मन एव भद्रवाह स्वामी का चरित्र भी लिखा है।

सिरिहर-विरचित-बङ्गमाणचरिउ

कृति श्रीधर ने अपने वर्धमान चरित की रचना अपन्न श भाषा में की है। यद्यपि भ० महावीर का कथानक एवं कल्याणक

भादि का वर्णन प्रायः वही है, जो कि दि० परम्परा के अन्य आचार्यों ने लिखा है, तथापि कुछ स्वल ऐसे हैं, जिनमें कि दि० परम्परा सें कुछ विशेषता दृष्टिगोचर होती है। जैसे —

(१ त्रिपृष्ठनारायण के भव में सिंह के सारने की घटना का वर्णन प्रस्तुत प्रन्यकार ने किया है। सिंह के उपद्रव से पीड़ित प्रजा राजा से जाकर कहती है—

पीडह पचाणग्रु पउर सन्तु, बळवंतु सुबसे भो कम्मसन्तु।
किं जन्मु जणवय-मारण कएण, सहं हरि-मिसेण आयउ रवेण ॥
अह असुरु, अहव तुव पुञ्बवेरि, दुढरु दुञ्बारु बहुते सेरि।
तारिसु विचारु साहहो ण देव, दिहुउ कयावि णर-णियर-सेव॥
घन्ता-पिययम पुनाहं गुण जुनाहं परितजे वि जयु जाह।
जीविड इच्छतुं छहु भज्जेतु, भय बसु को वि ण ठाह॥२१॥
(पत्र २२ B)

अर्थात्—हे सहाराज, एक बळवान सहान झात्रु सिंह हम कोगों को अत्यन्त सता रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सिंह के मित्र से सारने के लिये यम ही आ गया है, अयवा कोई असुर या कोई तुम्हारा पूर्व भव का बैरी देव-दानव है। आप शीक्ष उससे हमारी रक्षा करें, अन्यथा अपने गुणी प्रियजनों और अविश्विक कें में छोड़कर सब लोग अपने गुणी की रक्षा के लिए यहां से जल्दी भाग जावेंगे। भय के कारण यहां कोई भी मही ठहरेगा।

प्रजाजनों के उक्त बचन सुनकर सिंह मारने को जाने के लिए न्यों ही राजा उचत होता है, त्यों ही शिग्रष्ट कर्ट्स रोक् कर स्वयं अपने जाने की बात कहते हुए उन्हें रोकते हैं। वे कहते हैं— जह मह स्तिवि अधि वरु लेकि, प्रमु-णिमाह-करण।

जद मह सताव आस वरु लाव, पसु-ाणगाह-कएण। डिंडिड करि कोड वद्दरि विलोड, ता कि मद तणएण॥

(पत्र २४ B)

अर्थात्—यदि मेरे होते संते भी आप खड्ग लेकर एक पशु का निम्मह करने के लिए जाते हैं, तो फिर मुझ पुत्र से क्या लाभ ?

ऐसा कह कर त्रिष्ट सिंह को सारने के लिए स्वयं जंगल में जाता है और विकराल सिंह को रहाइते हुए सामने आता देखकर उसके छुले हुए मुख में अपना वाम इसर देकर दक्षिण हाथ से उसके , मुख को काइ देता है और सिंह का काम तमाम कर देता है। इस घटना को किंव के शब्दों में पिंद्रये—

हरिणा करेण णियमिवि थिरेण, णिइसग्रेण पुणु, तक्खग्रेण । विद्व इयर हत्थु संगरे समस्यु वयर्णतरात्ने पेसिवि विकरात्ने ॥ पीडियउ सीहु छोर्छत जीहु, छोयणजुञ्ग ओहियजुञ्गेण । दाविगाजास्त्र श्रविरस्त विसास्त्र, थुवमंत साह कोवेण णाह । पवियास्त्रीण हरि मारिकर्ण तहो छोयहि एहिं तगु, णिसासएहि ॥ (पत्र २४ B)

सिंह के मारने की इस घटना का वर्णन श्वे० प्रन्थों में भी पाया जाता है।

(२) म० महावीर के जन्म होने के दिन से ही सिखार्थ के घर श्री छक्सी दिन-दिन बढ़ने छगी। इस कारण दसवें दिन पिता ने उनका श्री वर्षमान नाम रखा। कवि कहते हैं—

जिण जन्महो अगु दिगु सोहमाण,णियकुळ सिरिदेक्सेवि बहुमाण, सिष आगुक्रकाइ सहुँ सुरेहि, सिरि सेहर-स्वणहि आसुरेहि। इहमें दिणि तहो अब बहुनिवेण, किंड बहुमाण इड णासु तेण।। (पत्र ६७ A)

(२) सन्मति-नाम रस्रे जाने का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया हैं-अरणिर्हे दियो तहो तिजएसरासु, किउ सम्मइ णासु जिल्लेसरासु। चारण सुनि विजय-सुसंजपिर्ह, तह संजणिनगयसंसपिर्ह ॥

(पत्र ६७ A)

इसी प्रकार भगवान के शेष नामों के रखने का भी सुन्दर वर्णन कवि ने किया है।

(४) गीतम को इन्द्र समवज्ञरण में ले जाते हैं। वे भगवान से अपनी जीव-विषयक शंका को पूछने हैं, भगवान की दिव्य ध्वनि से जनका सन्देह दूर होता है और वे जिन-दीक्षा ग्रहण करते हैं। इसका वर्णन कवि के शब्दों में पहें—

पुच्छित जीवद्विदि परमेसरू, पर्याणय परमाणंद्र जिलोसरू। सो वि जाय दिव्यव्सुणि भासई, तही संदेह असेसु विणासई।। पंच सवहिं दिय-सएहि समिल्लें। लड्डय दिक्ख विष्पेण समिल्लें। (पत्र ७० A)

(४) गौतम ने प्रबंह में दीक्षा ली और अपराह में द्वादशांग की रचना की। इसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

पुरुवरहर्इ लह दिक्खा, जायउ लिद्धिड सत्त णामु विक्खायउ। तस्मि दिवसे अवररहर तेण वि. सोवंगा गोत्तमणासेण वि ॥ जिणमूह-णिगाय अत्यालंकिय, बारहंग सूथ पयरयणंकिय। (A 00 EP)

इस वर्धमान चरित की रचना बहत सन्दर और स्वाध्याय चीरय है । इसके प्रकाशित होते से अपन्त श साहित्य की समृद्धि प्रकट होगी।

(४) जयमित्तहल्ल-विरचित वर्धमान काच्य

जय मित्तहल्ल ने भी अपश्चंश भाषा में वर्धमान काव्य रचा है जो कवित्व की दृष्टि से बहुत उत्तम है। इसमें भगवान् का चरित दिगम्बरीय पूर्व परम्परानुसारी ही है। हां, कुछ स्थलों पर अवश्य कुछ वर्णन विशेषताओं को लिये हुए हैं।

किय ने जनमाश्चिषक के समय मेरू-कम्पन की घटना का इस प्रकार वर्णन किया है—

> लड्डिकरि कलस सोहम्म तियसाहिणाः पेक्सिव जिणदेह संदेह किउ णियमणा । हिमगिरिंदत्य सरसरिम गंभीगओ. गंगमह पमह सपवाह बहणीरओ ॥ खिवमि किम कुंभ गयदंत कहि लग्भई। सर्वियव्य भावरित णह अव्सर्छ। सक्क संकंत तयणाणि संकिपओ। कणयगिरि सिहरु चरणंगुलीचिपयो ॥ टलिंड गिरिराउ खरहिंद्य सिलमंचयाः पहिच अमरिंड धरहरिय सपवंचया । रहिय दक्करिण राज्जरिय पंचाणणाः तमिय किवि कम्म उठवसिय तर काणणा ।। भरिय सरि विवर झलहलिय जलणिहिसरा. हबउ जग खोह बहु मोक्खु मोहियधरा। ताम तियसिंदु णिइंतु अप्पउ घण, बीर जय बीर जपंत कयबंदणं।।

वार जय वार जपतु कयवदण।। घत्ता---जय जय जय वीर वीरिय णाण अणंत सुहा।

महु खमहि भड़ाग तिहुअणसारा कब गुपरमाणु तुहा।।१ मा अर्थात् — जैसे ही सीधर्मन्द्र कब्हागं को हाथों में लेकर के अभिषेक करने के लिए उचात हुआ, त्यों ही उसे यह संका मन मं उत्पन्न हुई कि भगवान तो बिल्कुल बालक हैं और इनने विज्ञाल कछ्यों के लक्ष के प्रवाह को मस्तक पर कैसे मह सकेंगे ? तभी तीन झानकारी मगवान् ने इन्द्र की शका के समाधानार्थ चरण की एक अंगुडी से खुमेरु को दथा विद्या। उसको दवाते ही शिखाएं परिने डगी, वनों में निर्द्धन्त बैठे गल विचाह चठे. सिह गजैना करने अमे और सारे देवगण भय से ज्याकुळ होकर इघर-उचर देखने लगे। सारा जगत् क्षोभ को प्राप्त हो गया। तब इन्द्र को अपनी भूळ जात हुई और अपनी निन्दा करता हुआ तथा भगवान् की जयनकार करता हुआ क्षमा मांगने लगा कि हे अनन्त बीर्य और सुख के मख्डार। सुक्ते क्षमा करो, तुन्हारे वल का प्रमाण कीन जान सकता है।

(२) कवि ने इस बात का उल्लेख किया है कि ६६ दिन तक दिव्य ध्विन नहीं खिरने पर भी भगवान् भूतल पर विहार करते रहे। यथा—

णिगाथाइय समज भरंतह, केबळि किरणहो धर बिहरंतह। गय खासांह दिणंतर जामांह, अमराहिउमणि चितह तामहि।। इय सामग्गि सयळ जिणणाहहो, पंचमणागुमाम गणबाहहो। कि कारगु णउ वाणि पयासह, जीवाइय तबाइण सासह।। (पत्र = ३ B)

अर्थात — केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने पर निर्मन्थ मुनि आदि के साथ धरातल पर विद्यार करने हुए इत्यासल दिन बीत जाने पर भी जब भगवान की दिन्य वाणी प्राप्त नहीं हुई, तब इन्द्र के भन चिनता हुई कि दिन्य ध्वति प्राप्त नहीं होने का क्या कारण है ?

अन्य चरित वर्णन करने वालों ने भगवान् के विहार का इस प्रकार से उल्लेख नहीं किया है।

(३) कवि ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि भगवान श्रान्तम समय पावापुरी के बाहिरी सरोवर के मध्य में स्थित शिलातल पर जाकर ध्यानारुढ़ हो गये और वहीं से सेगा-निरोध कर अचाति कर्मों का क्षय करते हुए निर्वाण को प्राप्त हुए।

समम प्रन्थ में दो प्रकरण और उल्लेखनीय हैं - सिंह को

संबोधन करते हुए श्वन रित्त विधान' तप का तथा दीक्षा कल्याणक के पूर्व भगवान् द्वारा १२ भावनाओं के चिन्तवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। बीच में श्रेणिक, अभयकुमारादि के चरित्र का भी विस्तृत वर्णन है।

(も)

श्री कुमुद्चन्द्रकृत महावीर रास

श्री कुमुद्दचन्द्र ने अपने महाबीर रास की रचना राजस्थानी भाषा में की है। कथानक में प्रायः सकलकीर्ति के महाबीर चरित्र का आश्रय लिया गया है। इसमें भी भ० महाबीर के पूर्वभव पुरूरवा भील से वर्णन किये गये है। इसकी कुछ विरोधनाएं इस प्रकार हैं—

- (१) भगवान् का जीव जब विश्वनन्दी के भव में या और उस समय मुनि पद में रहते हुए विज्ञाबनन्दी को मारने का निदान किया, उस स्थळ पर कवि ने निदान के दोषों का बहुत मुन्दर वर्णन किया है।
- (२) भ० महावीर का जीव इकतीसर्वे नन्दभव में जब षोड़श कारण भावनाओं को भाता है, तब उनका बहुत विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन कवि ने किया है।
- (३) श्री ही आदि षट्कुमारिका देवियों के कार्य का वर्णन किव ने इस प्रकार किया है—

आहे श्री रेवी शोभा करि, छजा भरि ही नाम कुमारि। आहे घृति रेवी संतोष बोछि, जस कीर्ति सुरनारि। आहे बुद्धि रेवी आपी बहु बुद्धि, रिद्धि-सिद्धि लक्ष्मी चंग। आहे देवी तसु रहवुं नियोग, शुभोषयोग प्रसंग।।।।।

- (४) कुमारिका देवियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर भी माता के द्वारा अनुपम ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है।
- (४) जन्माभिषेक के समय पाण्डुकशिक्षा पर भगवान को विराजमान करने आदि का वर्णन किन ने ठीक उस प्रकार से किया है, जिस प्रकार से कि आज पंचामुनाभिषेक के समय किया जाता है।
- (६) सौधर्म इन्द्र के सिवाय अन्य देवों के द्वारा भी भगवान् के अभिषेक का वर्णन किव ने किया है। यथा—

अवर देव अमंख्य निज शक्ति लेंड कुंभ । जथा जोगि जल धार देई देव बहुरंभ ॥

जल से अभिषेक के बाद सर्वोंबिध आदि से भी अभिषेक का वर्णन कवि ने किया है।

- (७) वीर भगवान् के आठ वर्ष का होने पर क्षाधिक सम्यक्त्व और आठ मूळ गुणों के धारण करने का उल्लेख किव ने किया है।
- (८) भगवान् के दीक्षार्य चले जाने पर त्रिशला माता के करुण विलाप का भी वर्णन किया गया है।
- (६) जिस स्थान पर भगवान् ने दीक्षा ठी उस स्थान पर इन्द्राणी द्वारा पहिले से ही सांथिया पूर देने का भी उल्लेख किया गया है।

शेष कथानक पूर्व परम्परानुसार ही है।

(१६४)

(9)

कवि नवलशाह का वर्धमान पुराण

श्री सकछ की सिंक सक्तत वर्धमान चरित के श्राधार पर किंव नवछ हाह ने छन्दी-चढ़ हिन्दी वर्धमान पुराण की रचना की है। इसमें कवानक तो वही हैं। हा कुठ खळाँ पर किंव ने तास्विक चर्चा का विस्तृत वर्णन किया है और कुछ खळाँ का पद्यानुवाद भी नहीं किया है। प्रम्य की रचना दोहा, चौपाई, सोग्ठा, गीता, गोगीरासा, सचैया, श्रीद श्रानेक छदों में की गई है जो पढ़ाने रोचक श्रीर मनोहर है। किंव ने इसकी रचना वि० स० १८२४ के चैत सुरी १४ को पूर्ण की है। यह दिगम्बर जन पुरतकाळय स्रात से बीठ नि० २४६८ में सुदित हो चुका है।



विषय-सूची

/6/	
प्रथम सर्ग-मंगलाचरण, लघुता-प्रदर्शन, सज्जन-उपकार-	ãs.
वर्णेन दुर्जेन-स्मरण, काव्य की महत्ता, भ० महावीर	
के जन्म से पूर्वभारतवर्षकी सामाजिक,धार्मिक	
स्थिति का चित्रण।	8-80
द्वितीय सर्ग जम्बूद्वीप, भारतवर्ष, कुल्धनपुर श्रीर वहां के	
निवामी स्त्री-पुरुषों आदि का कवित्वमय वर्णन।	१८-३८
तृतीय सर्ग —राजा सिद्धार्थ श्रीर उनकी रानी प्रियकारिणी	
का साहित्यिक वर्णन्।	३⊏-४६
चतुर्थ सर्ग-वर्षा ऋतु का वर्णन, प्रियकारिणी द्वारा सोलह	
स्बप्न-दर्शन, उनके फल का वर्णन खीर भ० सहा-	
वीर का गर्भावरण।	ጀው-ወ፫
पंचम सर्ग-भगवान् की माता की सेवार्थ कुमारिका देवियों	
का आगमन, सेवा-सुश्रुपा-वर्णन एवं उनके प्रश्नों	
का माना द्वारा दिये गये उत्तरों का वर्णन ।	७६-६२
षष्ठ सर्ग प्रिथकारिणी के गर्भ-वृद्धिका चमस्कारिक वर्णन,	
वमन्त ऋतुका सुन्दर वर्णन और भगवान् महा-	
	₹-१०६
सप्तम सर्ग – देवालयों में घंटादि के शब्द होना, अवधि से	
भगवान का जन्म जान कर देव-इन्द्रादिकों का	
कुन्डनपुर आना और भगवान को लेजाकर सुमेर-	
पर्वत पर क्षीर सागर के जल से अभिषेक करना,	
पुनः छौटकर् भगवान् का माता-पिता को सौंपने	
	०-१२२
मष्टम सर्ग—भगवान् की बाल-खीलाओं का बर्णन, कुमार-	
बायकार गाम कोचे पर गिया कारा भगवान के	

सम्मख विवाह का प्रस्ताव रखना और संसार की दुर्दशा का चित्र खांच कर भगवान द्वारा उसे ध्यस्त्रीकार करना । १२३-१३६ नवम सर्ग-भगवान द्वारा जगन की दुर्दशा का विचार श्रीर शीत ऋत का वर्णन। 230-222 **बशम सर्ग** — भगवान का समार से बिरक्त होकर अनुप्रेक्षा चिन्तन करना, छौकान्तिक देवों द्वारा वेशस्य का समर्थन करना, देवादिको का खाना, भगवान का दीक्षा लेना और सिंह-बत्ति से विहार करना। १४३-१६४ एकादश सर्ग-भगवान द्वारा अपने पूर्व भवों का चिन्तवन करना, और पूर्व भवों में प्रचारित दुर्मतों के उन्मु-लन एवं संचित कभीं के क्षपण करने के लिए १६४-१७⊏ . दृढ चित्त होना। हादश सर्ग-भीक्त-ऋतु का साहित्यिक वर्णन, महाबीर के उप्रतपश्चरण का वर्णन, केवल्य-प्राप्ति स्त्रीर नज्ज-नित अतिद्याओं का वर्णन। 839-728 त्रयोदश सर्ग --समवद्यरण का विस्तृत वर्णन, गीतम का समवदारण में गमन, भगवान् से प्रभावित होकर दीक्षा-प्रहण स्पीर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रकट होना। 205.025 चतर्दश सर्ग-स्थारह गणधरों का परिचय, भगवान द्वारा ब्राह्मणत्व का सुन्दर निरूपण और सभी गणधरों की दीक्षा लेने का वर्णन। 208-228 पंचदश सर्ग-भगवान के उपदेश से प्रभावित हुए तात्का-लिक राजा छोगों का एवं अपन्य विशिष्ट लोगों का जैन धर्म स्वीकार करना। २२४-२४० षोडश सर्ग-- अहिंसाधर्मका सन्दर वर्णन। २४१-२४१

सप्तदश सर्गमदों के निषेध-पूर्वक सर्व जीव सम	ाताका पृष्ठ
सुन्दर वर्णन ऋौर कुछ पौराणिक ऋाख	यानकों
का दिग्दर्शन।	२४२-२६६
अष्टादश सर्ग-अवसर्पिणीकास्व, भोग-भूमि औ	र कर्म-
भूमि का तथा मुनि ऋौर गृहस्य ध	
सुन्द्र वर्णन।	948-988
एकोनवित्र सर्ग-स्थाद्वाद, सप्तभंग, और वस्तु की	नित्या-
नित्यात्मक रूप अनेक-धर्मात्मकता का	वर्णन.
जीवों के भेद-प्रभेद और सचित्त-स्रवित्त	
का सन्दर वर्णन।	२६२-३१२
विज्ञतितम सर्गे—सर्वज्ञना की संयुक्तिक सिद्धि ।	३१३-३२४
एकविश सर्ग-शरद ऋतु का सुन्दर वर्णन औ	र, भ०
महाबीर का निर्वाण-गमन।	324-333
द्वाविश सर्ग - भ० महावीर के पश्चात् जैन संघ मे	भेद,
जंन धर्मका उत्तरोत्तर हास आरोर उस पर	
कागद्वागहादिक दुःख प्रकट करना, क	
लघुता निवेदन ।	333-3¥ 2
परिशिष्ट—	
संस्कृत टीका - सर्ग प्रथम से षष्ठ सर्ग तक	३४३-४२३
	३४३-४२३ ४२४-४४२
संस्कृत टीका - सर्ग प्रथम से षष्ठ सर्ग तक	
संस्कृत टीका सर्ग प्रथम से षष्ठ सर्ग तक रह्णोकानुक्रमणिका क्रिष्ट शब्दों का द्यर्थ	४२४-४४२
संस्कृत टीका - सर्ग प्रथम से षष्ठ सर्ग तक श्लोकानुकमणिका क्रिष्ट शब्दों का अर्थ	४२४-४४२ ४४३-४ ५ ६
संस्कृत टी हा - सर्ग प्रथम से षष्ट सर्ग तक रह्णोत्रासुक्रमणिका	४२४-४४६ ४४३-४४६ ४४०-४४
संस्कृत टीहा – समें प्रथम से षष्ट समें तक रहोहानुक्रमणिका – जिल्द अन्दर्ग का क्षर्य नीर्थं करादि – नाम-सूची विशिष्ट व्यक्ति-नाम मुची	8₹8-88₹ 88₹-84€ 88 <i>9-</i> 88≡ 88£-8 €8
संस्कृत टी हा - सर्ग प्रथम से षष्ठ सर्ग तक रहो हानुक्रमणिका	848-884 884-884 886-884 886-884 886-888

नम्-निवेदनम

मतिमन्दत्वाद्थवाऽऽलस्या-

न कुर्युरल्पक्ने मयि रोषम्।

- मृति ज्ञानसागर

चंदन्यथापि लिखितमिह स्यात्।

शोधयन्तु सुधियस्तं दोवं

वीरोदय रचयिता . . .



💸 परम पूज्य मुनि श्री १०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज 💸



श्री १०८ मुनिश्री ज्ञानसागर-विरचित श्री वीगेट्य काञ्य ∴+∴

श्रिये जिनः सोऽन्तु यदीयसेवा समस्तर्सश्रीतृजनस्य मेवा । दाक्षेत्र मद्री रमने हदोऽपि प्रसादिनी नोऽन्त मनाक श्रमोऽपि ॥१॥

वे जिन भगवान हम सबके कल्याण के खिये हों, जिनकी कि चरण-सेवा समस्त्र श्रोत जानों को जीर मेरे खिए सेवा के तुल्ल है। तवा जिनकी सेवा ताओं (राख) के समान आखादन में मिस्ट एवं मृद् हैं और हृद्य को प्रसन्न करने वाली है। जातज्व जनकी चरण-सेवा के प्रसाद से इस काव्य-रचना में मेरा जरा-सा भी अम नहीं होगा। ज्यांत श्री जिनदेव की सेवा से मैं इस आरस्म किये जाने बाले काव्य की सहज़ में ही रचना सम्प्रक कर सकता गाए।

कामारिता कामितसिद्धये नः समर्थिता येन महोदयेन । मैंबाभिजातोऽपि च नाभिजातः समाजमान्यो वृषयोऽभिषातः॥२॥

जिस महोदय ने कामारिता-काम का विनाश-हमारे बांछित सिद्धि के लिए समर्थन किया है, वे श्वभिजात-उन्छष्ट कुळोलका होकर के भी नाभिजात-नाभिसुनु हैं और समाज-मान्य होकर के भी संज्ञा से कुण्य हैं।।?।। भावार्थ—इस रह्योक में विशेषालङ्कार से कथन किया गया है कि जो ऋभिजात ऋथांनु कुलीन है, वह नामिजात—ऋकुलीन कैसे हो सकता है 'इसका परिहार किया गया है कि वे वृपभदेव उत्तम कुल हैं उराक होकर के भी नाभि नामक चीदहर्वे कुलकर से उराक्र हुए हैं। इसी प्रकार जो यूपम (बेल) है, वह समाज (मनुष्य-मसुराय) में मान्य कैसे हो सकता है 'इसका परिहार यह है कि वे आदि तीये-कर बुप ऋषीन् धर्म के भरण-पीणण करने बाले होने से बूपम कह-लावे थे और इमी कारण समस्त मानव-ममाज में मान्य थे।

चन्द्रप्रभं नंतिम यदङ्गसारस्तं कौम्रुदस्तोममुरीचकार । सखद्धनः संरुभते प्रणश्यत्तमस्तयाऽऽन्त्रीयपदं समस्य ॥३॥

में चन्द्रप्रभ भगवान को तमस्कार करता हूँ, जिनको आगमार (श्रारीकि-प्रभा-पुट्य) पृण्डी मण्डल में हर्ष-समृह को बहाने वाला था। बच्छ के पक्ष में उसकी चिन्हिका कौमुद अर्थान, रवेन कमलों को विक्रसिन करने वाली होनी हैं। जिन चन्द्रप्रभ भगवान के आस्मिय पद को स्वीकार कर अपनरण के अज्ञान अध्यकार के दूर होने से सर्व जन सुख को प्राप्त करते हैं और चन्द्र के पन्न में उत्तम खंजन (चक्को) प्रभी चन्द्र को चांदनी में अपनी आस्मियना को प्राप्त करता है।।।।

पार्श्वप्रभोः सिन्निषये सदा वः समस्तु चित्ते बहुलोहभावः । भो भो जनः संलभतां प्रसर्ति धृत्वा यतः काश्चनसंप्रवृत्तिम् ॥४॥

भो भो जनो ! तुम श्रोताओं और पाठकों के हृदय में पार्य-प्रभु का निरन्तर चिन्तवन सन्निधि-उत्तम निधि प्राप्त करने के लिए सहायक होवे। जिससे कि तुम्हारा मन उस श्रानिर्वचनीय सरप्रवृत्ति को धारण करके प्रसन्नता को प्राप्त हो। यहां पार्श्व खीर लोह पद इलेपासक है। जिस्म प्रकार पार्श्वपाषण के योग से लाहा भी सोसा बन जाता है, इसी प्रकार तुम लोग भी पार्श्व प्रभु के सस्मरण से उन जिसी ही खतिबंचनीय शानिन को प्राप्त होखों।।।।।।

वीर ! त्वमानन्दञ्ज्वामत्रीरः मीरो गुणानां जगताममीरः । एकोऽपि सम्पातितमामनेक-लोकाननेकान्तमतेन नेक ॥४॥

हे बीर भगवन्। तुम खानन्द की भूमि होकर के भी खबीर हो खौर गुणों के भीर होकर के भी जगत के खमीर हो। है नेक-भन्न ! तुम खकेले ने ही एक हो करके भी खनेकान्त मत से खनेक छोत हो (परस्पर विरोधियों को) एकता के सुन में सम्बद्ध कर दिवा है।।।।।

भावार्थ - रहोक से पूर्वार्थ में विशेषालङ्कार से बर्णन किया गया है कि भगवान, तुम बीर होकर के भी ध्वीर - वीरता रहित हो, वह कसे सभव हो मकता है ? इसका परिहार यह है कि तुम 'क्ष' अर्थान् विराह मकता है ? इसका परिहार यह है कि तुम 'क्ष' अर्थान् विराह मान ही सहार दूसरे पहा में अर्थार नुलाक की हो लिया है जान के अर्थार कर कि हम का का उत्पादक होता है, उसी प्रकार हे वीर भगवन, तुम भी आगन्द उत्पन्न करने के लिए अर्थीर हो। भीर हो हक्त भी आगन्द उत्पन्न करने के लिए अर्थीर हो। भीर हो हक्त भी जान के अर्थार अर्थान सुद है कि आप गुणों के भीर अर्थान सुद हो करके भी जान के अर्थार अर्थान सबसे वहें भगल्य हो। भीर और अर्थार वे दोनों ही शहर का भी के हैं। यहाँ यमकाल्हार के साथ विरोधालङ्कार किया ने प्रकट हिन्या है। इसी एवा के अर्थन में पठित 'नेक' पद भी कारसी का है, जो कि अर्था के लिए किया किया है।

ज्ञानेन चानन्दसुपाश्रयन्तश्ररन्ति ये ब्रह्मपये सजन्तः । तेषां गुरूणां सदनुग्रहोऽपि कवित्वशक्तौ मम विघलोपी ।।६॥ जो ज्ञान के द्वारा आनन्द का आश्रय लेने हुए और प्रश्न-पथ अपने आसकत्वाण के मार्ग में अनुरक्त होने हुए आचरण वहने हैं, ऐसे ज्ञानान्दरण ज्ञार-पथ के पश्चित गुरुतमों का भन् अनुबह भी मेरी कवित्व अक्ति में विज्ञों का लोग करने बाला हो ॥दे॥

विशेष-इस पद्य के पूर्वार्ध में प्रयुक्त पदो के द्वारा कवि ने व्यपने ज्ञान-गुरु श्री ब्रह्मचारी ज्ञाना<u>नन्द्जी महाराज</u> का स्मरण किया है।

वीरोदयं यं विद्धातुमेव न शक्तिमान् श्रीगणराजदेवः । द्धाम्यदं तम्प्रति बालमस्यं वहन्निदानीं जलगेन्दुतस्वम् ॥७॥

श्री वीर भगवान् के जिस उदयक्ष माहास्य के वर्णन करने के खिए श्री गणवरदेव भी समर्थ नहीं हैं ऐसे वीरीद्य के वर्णन करने के खिए श्री गणवरदेव भी समर्थ नहीं हैं ऐसे वीरीद्य के वर्णन करने के खिए में जरून मिलिया चन्द्रमण्डल को उठाने की उच्छा करने वाले बालक के समान बालमाव (लडकपन) को धारण कर रहा हैं।।।।।

श्वकोऽथवाऽहं भविताऽस्म्पृपायाद्भवन्तु मे श्रीगुरवः सहायाः । पितुर्विलन्धांगुलिम्लतातिर्यथेष्टदेशं शिशुकोऽपि याति ॥८॥

भ्रयवा में उपाय से (प्रयत्न करके) बीराहय के कहते से समर्थ हो जाऊ गा, श्री गुरुजन मेरे सहायक होचे। जेसे बालक भ्रापन पिना की भ्रामुख्यों के सुद्ध सोगा को पकड़ कर अभीपट स्थान को जाता है, इसी प्रकार से भी गुरुजनों के साहाय्य से बीर सगयान के उत्य-रूप चरित्र को वर्णन करने में समर्थ हो जाऊ गा ॥=॥

मनोऽङ्गिनां यत्पद्चिन्तनेन समेति यत्रामलतामनेनः । तदीयवृत्तैकसमर्थना वाक् समस्तु किन्नानसुवर्णभावा ॥९॥ जिन बीर भगवान् के चरणों का चिन्तवन करने से प्राणियों का मन पापों से रहित होकर निमंछता को प्राप्त हो जाता है, तो किर उन्हीं वीर भगवान् के एकमान्न चरित्र का चित्रण करने में समर्थ मेरी बाणी मुख्ये भाव को क्यों नहीं प्राप्त होगी ? अर्थान् बीर भगवान् के चरित्र को वर्णन करने के छिए सेरी वाणी भी उत्तम वर्ण पद-बाक्य रूप से श्रवदय ही परिणत होगी।।।।।

रजो यथा पुष्पममाश्रयेण किलाऽऽविलं महचनं च येन । वीरोदयोदारविचारचिह्नं मतां गलालङ्करणाय किन्न ॥१०॥

जैसे मिलिन भी रज (शृलि) पुष्पों के आश्य से माला के साथ लोगों के गले का हार बनकर आलङ्कार के भाव को प्राप्त होती है, उमी प्रकार मिलिन भी मेरे बचन बीरोव्य के उदार विचारों से चिह्नित आर्थीन आहित हो कर सज्जनों के करठ के अलङ्कार के लिए क्यों नहीं होगे ? अर्थान अवद्य ही होगे ॥१२।।

लमन्ति सन्तोऽप्युपयोजनाय रमैः सुवर्णस्वस्रुपैत्यथायः । येनाईनो बृचविधानमापि निःसारमस्मद्रचनं तथापि ॥११॥

सङ्जन पुरुष भी छोगों के इंट्ट प्रयोजन के छिए साथक क्ष्य से शोभायभान होते ही हैं। जैसे रसायन के योग से छोहा सुवर्ण पते को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार निःसार भी मेरे बचन चाहुन्तदेव के परित्र-चित्रण से सार पने को प्राप्त होंगे और सङ्जन पुरुष उसे आदर से अपनावेंगे ॥११॥

सतामहो सा सहजेन शुद्धिः परोपकारे निरतैव बुद्धिः । उपद्रुतोऽप्येष तरू रमालं फलं श्रणत्यङ्गभृते व्रिकालम् ॥१२॥ इन्नहों, सञ्जनों की चित्त-शुद्धि पर आश्चर्य है कि उनकी बुद्धि दूसरों के उपकार करने में महत्त स्वमाव से ही निरत रहती है। हैंस्थो—छोगों के द्वारा पत्थर आदि मार कर के उपद्रव को प्राप्त किया गया भी हुआ सदा ही उन्हें रसाल (सरस) कर प्रदान करता है।।१२॥

यत्रातुरागार्थमुर्पति चेतो हारिद्रबत्वं समनायहेतोः । सुधेव साधो रुचिराऽथ स्रक्तिः सदैव यस्यान्यगुणाय युक्तिः॥१३॥

जिस प्रकार हल्दी का द्रब-रस चूने के साथ संयुक्त होकर छािलमा को प्राप्त हो जाना है, उसी प्रकार माधु-जन के सत्संग को पाकर मेरी उक्ति (कविना) भी रुचिर सुक्ति को प्राप्त हो लोगों के चिरा को हरण करके उनके हृदय में सर्देव अनुराग उत्पन्न करेगी। क्योंकि सज्जनों का सयोग सदा दूसरों की भलाई के लिए ही होता है।।१३।।

सुवृत्तभावेन सम्रुन्लसन्तः मुक्ताफलत्वं प्रतिपादयन्तः । गुणं जनस्यानुभवन्ति सन्तस्तत्रादरत्वं प्रवहाम्यहं तत् ॥१४॥

जिस प्रकार उत्तम गोळ आकार रूप से परिणत मौक्तिक (मोती) सूत्र का आश्रय पाकर अर्थात् सुत में पिरोये जाकर श्रोभा को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मज्जन पुरुष भी उत्तम सम्यक् चारित्र को सारण करके जीवन की निष्कळता को छोड़कर अर्थात् उसे सार्थक कर सनुष्यों के गुणों का अनुभव करते हैं। मैं ऐसे उन सन्त जनों में आदर के भाव को घारण करता हूँ। १९॥

साधोर्विनिर्माणविधौ विधातुरच्युताः करादुत्करसंविधा तु । तयैव जाता उपकारिणोऽन्ये श्रीचन्द्रनाद्या जगतीति मन्ये ।।१५।। साधुजनों को निर्माण करने हुए विधाना के हाथ से जो थोडी सी किणका रूप रचना-सामग्री नीचे गिर गई, उसी के द्वारा ही श्री चन्दन आदिक अन्य अपकारी पदायं इस जगन् में उराका हुए हैं, ऐसा में मानता हूँ ॥१४॥

भावार्थ — कबि ने यहां यह उद्येक्षा की है कि सरजनों को बनाने के पश्चान् विधाना को चन्दनादिक बुद्धों के निर्माण की वस्तुत: कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि चन्दनादि के सुगन्य-प्रदानादि के कार्य करने का तो अञ्जन परुष ही पर्योग्न थे।

साधुर्गु णग्राहक एष आस्तां रलाघा ममारादसतस्तु तास्ताः । सर्विषयप्रायनयोदितस्य दोषं सम्रदुषाट्य वरं करस्य ॥१६॥

माधु जन गुण-प्राहक होते हैं, यह बात तो ठीक ही है। किन्तु सर्व जनों के लिए प्रिय रूप से कहे गये मेरे इस काठ्य के दोषों का उद्घाटन (प्रकाशन) करके उसे निर्दोध उत्तम करने वाले असाधुजनों की ही मेरे हृदय में बार बार रुजाघ है। अर्थान् मेरे काट्य के होते का अन्वेषण करके जो असाधुजन उन्हें प्रकट कर उसे निर्दोध बना-बंगे, में उनका बहुत आसार मानते हुए उनकी प्रशंसा करता हैं।।१९॥

सदंकुगणां समुपायने तुः पुष्टा यथा गीरिह कामघेतुः । ययस्विनी मा खलशीलनेन तस्योपयोगोऽस्त महाननेन ॥१७॥

जिस प्रकार इस लोक में उत्तम दूर्वांकुरों के चरने पर काम-धेनु पुरट होती हैं और सल सिलाने से वह खुव दूघ देती है, उसी प्रकार सड़नों के उत्तम दया भाव से तो मेरी वाणी विकसित हो रही है और सल्जनों के द्वारा दोण प्रदर्शन कर देने से अधीन निकाल देने से मेरी यह कविता रूप वाणी भी निर्दोष होकर सरम वन जायगी एवं खूब पुष्ट होगी श्रौर इस प्रकार दुर्जनों का सम्पर्क भी हमारे छिए परमोपयोगी होगा ॥१७॥

कर्णेजपं यत्कृतवानभृस्त्वं तदेतदप्यस्ति विधे ! पटुत्वम् । अनेन साधोः सफलो नृभाव ऋते तमःस्यात्क रवेः प्रभावः ।।१८।।

हे बिधाता। तुमने जो दोष देखने वाले पिशुनों को उत्पन्न किया है सो यह भी तुन्हारी पटुना (चतुनाई) ही है, क्योंकि इससे माधु का मतुष्यपना सफल होता है। अन्यकार न हो. तो सूर्य का प्रभाव कहाँ हाय्ट-गोचर होगा।।१८॥

भावार्थ जैसे यदि अन्धकार न हो, तो सूर्य के प्रभाव का महत्त्व कैसे प्रकट हो सकता है, उभी प्रकार यदि दुर्जन छोग न हां, तो सञ्जनों की सञ्जनता का प्रभाव भी कैसे जाना जा सकता है।

अनेकथान्येषु विपत्तिंकारी विलोक्यते निष्कपटस्य चारिः । <mark>छिद्रं निरूप्य स्थितिमाद्</mark>धाति स भाति आखोः पिश्चनः सजातिः॥१९

दुर्जन सनुष्य बृहे के समान होते हैं। जिस प्रकार सूपक (बृहा) नाना जाति की घान्यों का विनाश करने वाला है, तिष्क अर्थान् कहुमूल्य पटों (क्लो) का आरि है, उन्हें काट डालना है और छिट्ट (बिल) देखकर उसमें अपनी स्थिति को काश्म रसना है। ठीक दमी प्रकार पिशुन पुरुष भी सूपक के सजातीय प्रतीत होते हैं क्योंकि पिशुन पुरुष भी नाना प्रकार से अपन्य सर्व साधारण जनों के लिए विपनि-कारक है, निष्करणट जनों के जुड़े हैं और लोगों के छिट्टों (दोणों) को देखकर अपनी स्थित को टह बनाने हैं। १९॥

योऽभ्येति मालिन्यमहो न जाने काव्ये दिने वा प्रतिभासमाने। दोषानुरक्तम्य खलस्य चेश ! काकारिलोकस्य च को विशेषः ॥२०॥

हे ईश ! काकारिकोक (उल्कुक-समूह) और खल जन में क्या विशेषना है, यह मैं नहीं जानना। अर्थान मुझे तो दोनों समान ही दृष्टि—गोगर होने हैं, क्यांकि दिन (मूर्य) के प्रतिसासमान होने पर उल्कुक लोक मिलना। को प्राप्त होने हैं और दोया (राति) में असुदुरक हैं अर्थान रात्रि में विचरण करने हैं। इसीप्रकार उत्तम काल्य के प्रका-हमान होने पर खल जन भी मिलन-बहन हो जाने हैं और उसके दोयान्वेषण में ही नत्यन रहते हैं। इस प्रकार से मुझे तो उल्कुक और सल जन में ममानवा ही विद्यानी है। १००।

खलस्य हन्नक्तमिशाधवस्तु प्रकाशकृद्वासरवत्सतस्तु । काव्यं द्वयोर्मध्यप्रपेत्य सायमेतज्जनानामनुरज्जनाय ॥२१॥

खल जनो का हृदय तो रात्रि के समान अर्थ-स्वरूप है और सञ्जनों का हृदय दिन के ममान प्रकाश-रूप है। इन सज्जन और दुर्जन जनों के मध्य में प्राप्त होका मेरा यह काव्य मार्यकाल की लालिमां के समान जन-साधाय के अप्तरंजन के लिए ही होगा।।२(।)

रसायनं काव्यमिदं श्रयामः स्वयं द्रुतं मानवतां नयामः । पीयुषमीयुर्विवृत्रा बुधा वा नाशाप्रुपायान्त्यनिमेषभावात् ॥२२॥

हम इम काञ्यरूप रसायन का आश्रय लेते हैं अधीन उसका पान करते हैं और रमायन-पान के फठ-स्वरूप स्वयं ही हम शीव मानवता को प्राप्त होने हैं। जो विद्युध अर्थान् देवता हैं, वे भले ही अर्थुन को पींदें, या जो विरात-बुद्धि होकर के भी अपने आपको विद्वान् मानते हैं, वे पीयूप श्रर्थात् जल को पीवें, परन्तु वे श्रातिमेष-भाव होने से काव्य-रसायन का पान नहीं कर सकते, श्रतः मानवता को भी प्राप्त नहीं हो सकते ॥२२॥

भावार्थ—देव श्रमुत-पायी और निमेष-(टिमकार) रहिन छोचन बाले माने जाते हैं, श्रतः उनको तो काव्यक्त रसायन-पान का श्रव-सर हो नहीं श्रीर इसिंछए वे श्रमुत-पान करते हुए भी मतुष्यता को नहीं पा सकते। तथा जो बुद्धि-विहीन हैं ऐसे जह छोग भी काव्य-सायान का पान नहीं कर मकते। श्रीनिमेप नाम मछछो का भी है श्रीर पीयूप नाम जल का भी है। मछछी श्रानिमेप होकर के भी जल का हो पान कर सकती है, उसके काव्य-सायान के पान की संभावना ही कहां है ? कहने का सार यह है कि मैं काव्य स्थायाण भी मतुष्य सच्ची मानवत को प्राप्त कर लेता है।

सारं कृतीष्टं सुरसार्थरम्यं निपन्लनाभावतयाऽभिगम्पम् । सम्रन्लसत्कन्पल्तैकतन्तः त्रिनिष्टपं काव्यम्रपेम्यहन्तः ॥२३॥

में तो काव्यक्ष त्रिविष्टप (स्वर्ग) को प्राप्त होता हूँ, अधीन् काव्य को ही स्वर्ग ममझता हूँ। जैसे स्वर्ग मार रूप है और छुती जनों को इस्ट है, उसी प्रकार यह काव्य भी अल्ड्रहारां से गुक्त हैं और झानियों को अभीए हैं। स्वर्ग सुर-मार्थ अर्थान् देवों के समुदाय से रम्य होता है और यह काव्य शृङ्कार, शान्त आदि सुरसों के अर्थ से रमणीक है। स्वर्ग मार्थ प्रकार की विपत्ति—आपनियों के अप्राप्त होने के कारण अधिनान्य होता है और यह काव्य मी विपद अर्थान् इस्तित वर्षों से रहित होने से आल्य के योग्य है। स्वर्ग कर्व्यक्क्ष्रों के समृहां से सदा उच्छास-पुक्त होता है और यह काव्य नाना प्रकार

की कल्पनाद्यों की उड़ानों से उल्लासमान है। इसलिए मैं तो काव्य को ही साक्षात् स्वर्ग सं बढ़कर समझता हूँ ॥२२॥

हारायतेऽथोत्तमवृत्तसुक्ता समन्तभद्राय समस्तु स्का । या स्त्रसाराज्ञगताथिकारा कण्ठीकृता सत्पुरुवैरुदारा ॥२४॥

यह स्क अर्थान् भले प्रकार कही गई कविता हार के समान आवरण करती है। जैसे हार उत्तम गोळ मोनियों वाळा होता है जमे प्रकार यह कविता भी उत्तम वृत्त अर्थात् छन्दों में रची गई है। हार सुत्र-(होर)-से अनुगत होता है और यह कविता भी आगम रूप सूत्रों के सारभूत अधिकारों वाली है। हारको उदार सरपुरूष करठ में धारण करते हैं और इस उदार कविता को सरपुरूष करठस्य करते हैं। ऐसी यह हार-स्वरूप कविता। समस्त लोक के कल्याण के लिए हों। एसी

विशेषार्थ—इस पदा में प्रयुक्त 'समन्तभद्र' पद से किब ने यह भाव व्यक्त किया है कि उत्तम किवता तो समन्तभद्र जैसे महान् क्षाचार्थ ही कर सकते हैं। हम तो नाम मात्र के किय हैं। इस प्रकार प्रन्य को प्रारम्भ करते हुए किव ने उनके पवित्र नाम का स्मरण कर क्षपनी छत्रा को प्रकट किया है।

किलाकलङ्कार्थमभिष्टुवन्ती समन्ततः कौमुदमेघयन्ती । जीयात्प्रभाचन्द्रमहोदयस्य सुमञ्जु वाङ् नस्तिमिरं निरस्य ॥२४॥

जो अकलङ्क अर्थ का प्रतिपादन करती है और संसार में सर्व ओर कीपुरी को बहाती है, ऐसी प्रभाचन्द्राचार्य महोदय की सुन्दर बाणी हमारे अहान-रूपकार को दूर करके चिरकाल तक जीवे, अर्थोन जयबन्ती रहे ॥२५॥ भावार्थ — जैसे चन्द्रमा की चन्द्रिका कलडू-रहित होती है, कुमुदां को विकसित करती है और समार के अत्यकार को दूर करती है, उसी प्रकार प्रभाचन्द्राचार्थ के न्यायकुमुदचन्द्रादि प्रस्य- रूप सुनद वाणी अकलडू देव के दार्शितक अर्थ को प्रकाशित करती है, संसार में हर्ष को चढ़ाती है और लगां के अज्ञान को दूर करती है। वह वाणी सदा जयवन्त रहे। पर्य के प्रयम चरण में प्रयुक्त 'अकलडूह्रव्य' पर के द्वारा 'अपाचार्य अकलडूह्रव्य' के स्मरण के साथ ही रहेलेस्टर से यह अर्थ भी ध्वतिन दिया गया है कि कुमोदिनयों को असल अल्ड कारी और कुलटा (ज्यभिचारिणी) नियों के दुराचारको रोकने वाली चन्द्र को चन्द्रिका भी मदा वनी रहे।

नव्याकृतिमें श्रृष्णु भो सुचित्त्वं कृतः पुनः सम्भवतात्कवित्वम् । वक्तव्यतोऽलंकृति दृरवृत्ते वृत्ताधिकारेष्वपि चाप्रवृत्तेः ॥२६॥

भो बिड़जनो, तुम मेरी बात सुनो—सुके ज्याकरण का बोध नहीं है, मैं अलड़ारों को भी नहीं जानता और छन्दों के अधिकार में भी भी प्रवृत्ति नहीं है। फिर मेरे से कविता कैसे संभव हो सकती है ? इस स्लोक का दूसरा अध्ये यह है कि मेरी यह नवीन कृति है। मेरा क्वनी आधीन विद्वजनों से और बुध आधीन चारित्र धारण करने वालों से भी सम्पर्क नहीं है, फिर मेरे कवित्र क (आश्मा) का वित्य अधीन सम्पर्क नहीं है, फिर मेरे कवित्र क (आश्मा) का वित्य अधीन सम्पर्क नहीं है, किर मेरे कवित्र क (आश्मा) का वित्य अधीन सम्पर्क नहीं स्वित्य-सामर्थ्य कैसे प्रकट हो सकता है ? अधीन नहीं उत्पन्न हो सकता ॥२६॥

सुवर्णमूर्त्तिः कवितेयमार्या लसत्पदन्यासतयेव भार्या । चेतोऽनुगृह्णाति जनस्य चेतोऽलङ्कार-सम्भारवतीति हेतोः ।।२७॥

मेरी यह कविता आर्य कुले?त्यन्न मार्या के तुल्य है। जैसे कुलीन

भार्या उत्ताम वर्णका सीन्दर्य की मूर्ति होती है, उसी प्रकार यह किया भी उत्तम वर्णों के द्वारा निर्मित मूर्ति वाछी है। जैसे भार्यो पद-सिक्षप के द्वारा शाभायमान होती है, उसी प्रकार यह कियता भी उत्तम-उत्तम पदां के न्यास वाछी है। जैसे भार्यो उत्तम श्रव्य हारों के भारण करनी है, उसी प्रकार यह कियता श्री नाता प्रकार के खब्द होरों से युक्त है। इस प्रकार यह कियता खार्यों भार्यों के समान सनुष्य के जित्त को श्रद्धार ते के उत्तम का श्रद्धार से श्रुक्त के उत्तम करने वाछी है। एथ।

तमोधुनाना च सुधाविधाना कवेः कृतिः कौसुदमादधाना । याऽऽह्वादनायात्र जगञ्जनानां व्यथाकरी स्याज्जहजाय नाना ॥२८

कवि की यह कृति चन्द्र की चिन्द्रका के समान तम का विनाश करती है, सुधा (अस्त्र) का विधान करती है, प्रव्यो पर हप को बदानी है, जाजानों के हृद्य को आहादित करती है और चन्द्रिका के समान जलजों-(कमला) को तथा कान्य के पल्ल में जड़-जानों को ताना ज्या को करने वाली है।।२८।।

भावार्थ — यथि चन्द्र की चन्द्रिका तमो-बिनाझ, कुमुद-विकास और जगःजनाहाद आदि करती है, फिर भी वह कमलों को पीड़ा पहुँचाती ही है, क्योंकि रात्रि में चन्द्रीद्य के समय कमल संकृषित हो जाते है। इसी प्रकार मेरी यह कविता रूपी चन्द्रिका यगिर सर्व कोगों को सुख शानि-चर्थक होगी, मगर जद्द-जनों को तो वह पीड़ा देन वाली ही होगी, क्योंकि वे कविता के ममें को ही नहीं समझ सकते हैं।

प्रत्यकार इस प्रकार संगल-पाठ करने के पश्चान् प्रकृत विषय का प्रतिपादन करते हैं --- सार्षद्वयाब्दायुतपूर्वमय दिनादिहासीत्समयं प्रपय । भ्रवस्तक्ते या खलु रूपरेखा जनोऽनुविन्देदम्रतोऽथ लेखात् ॥२९॥

आज से खड़ाई इजार-वर्ष पूर्व इस भूनल पर काल का आश्रय पाकर जो धर्म और समाज की रूप-रेग्वा थी, उसे सर्व लोग इस आगे वर्णन किये जाने वाले लेख से जानने का प्रयत्न करें।।२६॥

'यज्ञार्थमेते पश्चो हि सुष्टा' इत्येवस्रुक्तिर्बहुशोऽपि भृष्टा । प्राचालि लोकेरभिनोऽप्यशस्तैरहो रसाशिक्षवशङ्गतैस्तैः ॥३०॥

'ये सभी पशु यहां के लिए विधाता ने रचे हैं', यह आरीर इस प्रकार की बहुत सी श्रम्य बक्तियां रसना और शिक्ष (जनन) इन्द्रिय के बशीभूत हुए उन उन अप्रशक्त वासन्यशी लोगों ने ब्राहो, चारों आरोर प्रचलित कर रखीं थीं 1180।

कि छाग एवं महिषः किमश्वः कि गौर्नगेऽपि स्वरसेण शश्वत् । वैश्वानरस्येन्धनतामवाप दत्ता अहिंसाविधये किलाऽऽपः । ३१॥

क्या छान (बक्रम) क्या महिष (क्रेंसा) क्या छात्र श्रीर क्या गाय, यहां तक कि मतुष्य तक भी बळ-प्रयोग-पूर्वक निरन्तर यज्ञापि के इन्यनपने को प्राप्त हो रहे थे और धर्म की ब्यहिसा-विधि के ळिए छोगों ने ळळाडबळि हे डी थी ॥३१।

भूतैं: समाच्छादि जनस्य सा हक् वेदस्य चार्थः समवादि नाहक् । सर्वत्र पैशाच्यमितस्ततोऽभृदहो स्वयं रक्तमयी यतो भूः । ३२॥

धूर्त लोगों ने बेद के वाक्यों का हिंसा-परक द्यर्थ कर-करके जन साधारण की क्यालों को क्यसदु कार्य की प्ररूपणा के द्वारा आच्छा- दिन कर दिया था और जिधर देखो उधर ही पैशाची और राक्षसी प्रवृत्तियां हिट-गोचर होती थीं। अधिक क्या कहें, उनके पैशाचिक कर्मों से यह सारी पृथिवी स्वयं रक्तमयी हो गयी थी ॥२२॥

परोऽपकारेऽन्यजनस्य मर्वः परोपकारः समभूतु खर्वः । सम्माननीयत्वमवाप वर्वः किमित्यतो वच्म्यधिकं पुनर्वः ॥३३॥

में तुम होगों से श्रीर श्रधिक क्या कहूँ-सभी होग एक दूसरे के श्रपकार करने में हम रहे थे श्रीर परोपकार का तो एक दम श्रभा-बमा ही हो गया था। तथा भृतंत्रन सम्माननीय हो रहे थे श्रथीन् होतों में प्रतिद्वा पारहे थे। १३।।

रमश्र्रं स्वकीयां वलयन् व्यभावि लोकोऽस्य द्वों यद्यृदिहाविः। मनस्यनस्येवमनन्यताया न नाम लेकोऽपि च साधतायाः॥३४॥

लोगों में उस समय जाति-कुल खादि का मद इस तेजी से प्रकट हो रहा वा कि वे अपने जातीय आहंकार के वशीभृत होकर अपनी मूंखें को वल देते हुए सर्वत्र दिखाई दे रहे थे। लोगों के मन में एकान्त स्वार्थ-परायणा और पार की महत्त्वां हो जोर पकड़ दे हों थी, त्वा उनमें साधुता का लेश भी नहीं रह गया था। 28/11

समक्षतो वा जगदम्बिकायास्तत्युत्रकाणां निगलेऽप्यपायात् । अविस्पताऽसिस्थितिरङ्किताऽऽसीज्जनेन चानेन घरा दुराशीः ॥३४॥

उस समय पाप से नहीं ढरने वाले छोगों के द्वारा जगदम्बा के समक्ष ही उसके पुत्रों के (अज महिष) के गले पर छुरी चलाई जाती थी, अर्थात् उनकी बलि दी जाती थी (सारी सामाजिक और घार्मिक स्थिति अति भयद्भर हो रही थी) और उनके इस दुष्कर्मों से यह वसुंधरा दुराशीप दे रही थी. अर्थात् त्राहि बाहि कर रही थी। वेशा

परस्परद्वे पमग्री प्रवृत्तिरेकोऽन्यजीवाय ममात्तकृतिः । न कोऽपि यस्पाथ न कोऽपि चित्तं श्चान्तं जनः स्मान्ययतेऽपवित्तम् ।

इस समय लोगों में परश्र विद्वेष-मयी प्रवृत्त फेल रही थी चौर एक जीव दूसरे जीव के मानने के लिए लड़ हाथ में लिए हुए या। ऐसा कोई भी मनुष्य नहों दिन्याई देता था जिसका चित्त कोघ से मरा हुआ नहों। उस समय लोग शान्त पुरुष को मूर्लों का मुखिया मानने लगे थे। १६ ।

भूगो भुवो यत्र हृदा विभिन्नं स्वपुत्रकाणां तदृदीक्ष्य चिह्नम् । इवान्यकारातुराता दिशस्ता गन्तुं नभोऽवाज्छदितोऽप्यधस्तात् ॥३७

अपने पुत्रों के ऐसे स्त्रोटे चिद्ध देखकर पृथिवी साता का हृदय बार-बार विद्योग हो जाता था, अयोग वार-बार भूकन्य आने से पृथिवी कट जाती थी। सभी दिशार अन्यकार से ज्याप्त हो रही थी और लोगों के ऐसे दुष्कृत्य देखकर मानों आकाश नीचे रसातल को जाना चाहता था।।३७।।

मनोऽहिबद्धक्रिमकल्पहेतुर्वाणी कृपाणीव च मर्म भेतुम् । कायोऽप्यकायो जगते जनस्य न कोऽपि कस्यापि बभव वस्य:॥३८

उस समय के लोगों का मन सर्प के तुल्य कुटिल हो रहा था, उनकी वाणी कुपाणी (लुरी) के समान दूसरों के मर्मको भेदने वाली थी और काथ भी पाण का आव (आगाम-द्वार) वन रहा था। उस समय कोई भी जन किसी के वश में नहीं था, अर्थान लोगों के मन-वपन-काथ की किया अति कुटिल थी और सभी स्वच्छन्द एवं निरक्षुश हो रहेथे॥ ३८॥

इति दुरितान्धारके समये नक्षत्रीधसङ्क लेऽधमये । अजनि जनाऽऽह्वादनाय तेन वीराह्वयवरसुधास्पदेन ॥३९॥

इस प्रकार पापान्यकार से ज्याम, दुष्कृत-मय, श्रश्लिय जर्नों के समृह से संकुल समय में, श्रथवा नश्लत्रों के समुदाय से ज्याप्त समय में डस वीरनामक महान् चन्द्र ने जर्नों के कल्याण के खिए जन्म लिया ॥ ३६ ॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भ्रजः स सुपृषे भ्रामकेत्याह्वयं वाणीभृषण-वर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । श्रीवीराभृद्देश्युना विरचिते काल्येऽशुना नामत-स्तस्मिन् प्राकथनाभियोऽयमसकौ सर्गः समाप्तिं गतः ॥१॥

इस प्रकार भीमान सेठ चतुर्भु जजी और वृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीमूषण, वाल-नक्षत्राची पं० सूरामल वर्तमान सुनि ज्ञानसागर-द्वारा विरचित इस वीरोदय नामक काव्य में प्राक्कबन रूप यह प्रथम सभी समाप्त हुखा।। १।।



अथ द्वितीयः सर्गः

द्वीपोड्य जम्बूपपदः समस्ति स्थित्यासकौ मध्यगतप्रशस्तिः । लक्ष्म्या त्वनन्योपमयोपविष्टः द्वीपान्तराणाम्रुपरिप्रतिष्टः ॥१॥

इस कासंख्यात द्वीप और समुद्र वाळी पृथ्वी पर सबके मध्य में 'कन्यू' इस उपपद से कुक द्वीप है, जो क्रपनी स्थिति से पृथ्वी पर मध्यात प्रशस्ति को प्राप्त होकर कावस्थित है। यह कानन्य उपमा बाळी कहमी से संयुक्त है और सभी द्वीपान्तरों के ऊपर प्रतिक्रित है। १।।

भावार्ध:- जो मध्यस्थ भाग होता है, सो सर्वोपरि प्रतिष्ठित केंसे हो सकता है, यह विरोध है। परन्तु जन्यूद्वीप मध्य आगस्थ हो करके भी शोभा में सर्व शिरोमणि है।

सम्बद्धि सिद्धि प्रगुणामितस्तु पाथेयमाप्तं यदि वृत्तवस्तु । इतीव यो वक्तिः सुराद्रिदम्भोदस्तस्वहस्तांगुलिरङ्गिनम्भोः ॥२॥

इस जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन की कंचाई वाला जो सुमेर पर्वत है. उसके बहाने से मानां यह जम्बूद्वीप लोगों को सम्बोधन कर सुमेर पर्वन रूप स्थाने हाव जाता उरके यह कह रहा है कि स्था नमुच्यो, यदि तुसने चारित्र बलु रूप पायेय (मार्ग-मोजन) प्राप्त कर लिया है स्वयोत् चारित्र को धारण कर लिया है, तो फिर सिद्धि (मोक्ष लक्ष्मी) को सरलता से प्राप्त हुई ही समझो। २।।

अधस्थविस्फारिफणीन्द्रदण्डरछत्रायते वृत्ततयाऽव्यखण्डः । सुदर्शनेत्युत्तमश्रैलदम्मं स्वयं समाप्नोति सुवर्णक्रम्भम् ॥३॥ क्रायोजोक में अवस्थित और फैछावा है अपने फणा मस्डल को जिसने ऐसा शेषनाग रूप जिसका दरह है, उसका कृताकार से अस्वरत जन्नुदींग छत्र के समान प्रतीत हो रहा है। तथा सुदर्शन नामका जो यह सुमेर पर्वत है यह स्वयं उसके स्वर्ण कुन्म की उपमा को धारण कर रहा है।। २॥

सुन्रत्तभावेन च पाँर्णमास्य-सुधांशुना सार्धमिहोपमाऽस्य । विराजते यत्परितोऽम्बुराशिः समुल्लसत्कुण्डिनवद्विलासी ॥४॥

सुवर्षु डाकार रूप से पूर्णमासी के बन्द्रमा के साब पूर्ण जपमा रकने वाले इस जन्मूदीप को सर्व श्रीर से घेर करके उहासित कुरहरू के समान विलास (शोभा) को धारण करने वाला (लवण) समुद्र अवस्थित है।। ४॥

भावार्थ:- यह जम्बूद्वीप गोलाकार है और इसको घेरे हुये लवण समुद्र है। श्रतः इसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की उपमा दी गई है।

तस्वानि जैनाऽऽगमवद्विभर्ति क्षेत्राणि सप्तायमिहाग्रवर्ती । सदक्षिणो जीव इवाऽऽप्तहर्षस्तत्राऽसकौ भारतनामवर्षः ॥४॥

यह जम्बूद्वीप जैन-श्वागम के समान सात तस्व रूप सात ही क्षेत्रों को धारण करता है। उन सात तस्वों में जैसे सुचतुर ब्यौर हुएँ को प्राप्त जीव तस्व प्रधान है, उसी प्रकार उन सातों क्षेत्रों में दक्षिण दिक्षा की आप कृति समृद्धि को प्राप्त भारतवर्ष नामका देश व्यव-व्यित है।। ४।।

श्रीभारतं सम्प्रवदामि शस्त-क्षेत्रं सुदेवागमचारितस्तत् । स्वर्गापवर्गाद्यमिधानशस्यसुत्पादयस्पुण्यविशेषमस्य ॥६ । में श्री भारतवर्ष को प्रशस्त खेल (क्षेत) कहता हूँ, क्योंकि जैसे उत्तास चेल जल्प हान्यों के उत्तास चेल जल्प हान्यों को उत्तर करना है, उसी प्रकार यह मारतवर्ष भी उत्तम तीर्थहर देखें के ज्ञागमन के समय जन्माभिषेक जल से ज्ञयन तीर्थहर देखे के ज्ञागमन के समय जन्माभिषेक जल से ज्ञयना तीर्थहर देखे के ज्ञागमन के समय जन्माभिषेक जल से ज्ञयना तीर्थहर देखे के ज्ञागम (सदुपरेश) रूप जल से प्रश्नाम होत्र स्थर्ग क्यों प्रयाद को उत्पन्न करता है। इस सम्बन्ध के उत्पन्न करता है। इस स्थान को उत्पन्न करता है।

हिमालयोल्लासि गुणः स एष द्वीपाधिषस्येत धतुर्विशेषः । बाराशिवंशस्थितिराविभाति भोः पाउका क्षात्रयशोऽनुपाती ॥७॥

है पाठको! उस द्वीपाधिप अर्थान् सबं द्वीपों के स्वामी जन्यू द्वीप का यह भारतवर्ष धनुर्विरोष के समान प्रतिभामित होता है। जैसे चतुव में डोरी होती है उसी प्रकार इस भारतवर्ष के उत्तर दिश पूर्व से केंद्र पश्चिम तक अवस्थित हिमालय नामका पर्वत हो में पूर्व से केंद्र पश्चिम तक अवस्थित हिमालय नामका पर्वत हो होती है। जैसे घनुथ का एष्ट भाग में समुद्र रूप बांस की स्थिति है। जिस प्रकार पर्वथी मनुष्य शाज यश को प्रकट करता है, उसी प्रकार वह भारतवर्ष के प्रकट शाज शाज यश को प्रकट करता है, उसी प्रकार वह भारतवर्ष भी खाजिय होजों से समुद्र रूप वांस की स्थान से महान्य से की प्रकट करता है। उसी महान्य की प्रकट करता हुआ शोआयवान हो रहा है।। ए।।

श्रीसिन्यु-गङ्गान्तरतः स्थितेन पूर्वापराम्भोनिधिमंहितेन । श्रीसेन भिन्नेऽत्र किलाऽऽर्यशस्तिः षडुवर्गके स्वोच्च इवायमस्ति ।८।

पूर्व से लेकर पश्चिम समुद्र तक और श्री गङ्गा, सिन्धु निदयों के अन्तराल से अवस्थित ऐसे विजयार्व शैल से भिन्न हुन्या यह भारतवर्ष षट खबड बाला है। उसमें यह आर्थ खरड पट वर्ग में स्वस्थानीय और उन्न प्रह के समान सर्व श्रेष्ठ है। (शेष पांच तो म्लेच्छ खरह होने से अप्रशस्त हैं।) ।। ८।।

तस्मिन् वपुष्पेव शिरः समानः विदेहदेशेत्युचिताभिधानः । स्वमुत्तमन्वं विषयो दथानः स चाधुना सन्कियते गिरा नः ॥९॥

जेंसे कारीर में शिर सर्वोगिर अवस्थित है उसी प्रकार इस भारतकों के आर्य अव्हर्ड में 'विटेह' इस समुचित नाम बांछा और उत्तमना को बारण करने वाला देश है। अब हम अपनी वाणी से उसकी कुनरता का वर्णन करते हैं।। ६।।

अनल्पपीतास्वरधामरस्याः पवित्रपद्माप्तरसोऽप्यद्स्याः । अनेककल्पद्गुमसस्विधाना ग्रामा लसन्ति त्रिदिवोपमानाः॥१०॥

उस विदेह देश में विशाल पीतान्वर खर्यान खाकाश को रार्स्स करने वाले प्रासादों से रमणीक, पित्र कमलों खीर जलों से भरे हुए सरोवरों से युक्त, खदम्ब (पर-पराभव-रहित) खीर खनेक प्रकार वाले कल्पवृक्षों से (वन-उपवर्नों से) ळ्याप्त ऐसे पुर-प्रामादिक स्वरोळोक के समान शोभित हैं॥ १०॥

भावार्यः - उस देश के नगर-मामादिक स्वर्ग-सद्द्य प्रतीत होते हैं, क्योंकि जैसे स्वर्ग में पीत-वस्त्र-वारी इन्द्र के बाम हैं। उसी प्रकार यहां पर भी अन्वर अयोत आकाश को छूते वाले वहे बड़े मकान हैं। स्वर्ग में पद्मा (छस्भी) अप्तरा आदि रहती है, यहां पर कमड़ों से मुझोभित जल-भरे सरोवर हैं। स्वर्ग के भवन किसी से कभी पराभव को प्राप्त नहीं होते, वैसे ही यहां के प्रसाद भी दूसरों से अदन्य हैं। और जैसे स्वर्ग में अनेक जाति के कल्पकुछ होते हैं, , इसी प्रकार यहां पर भी छोगों को मनोवांछित फल देने वाले अनेक बृक्षों से युक्त वन-उपवनादिक हैं। इस प्रकार इस भारतवर्ष के प्राम-नगरादिक पूर्ण रूप से स्वर्ग की उपमा को धारण करते हैं।

श्विसावलीहाभ्रतयाऽप्यटूटा बहिःस्थिता नूतनधान्यकूटाः । प्राच्याः प्रतीचीं व्रजतोऽञ्जपस्य विश्रामशैला इव भान्ति तस्य ॥१९॥

उन प्राम-नगरादिकों के बाहिर अवस्थित, अपनी शिखाओं से ज्याप्त किया है आकाश को विन्होंने ऐसे अट्ट (विशाल एवम् बिपुल परिमाण वाले) नवीन धान्य के कूट पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा को जाने वाले सूर्य के विशाम शेल (कीड़-पर्वत) के समान प्रतिमा-विन्न होते हैं ॥ १९॥

उर्वी प्रफुक्षस्थलपद्मनेत्र-प्रान्ते ऽञ्जनीयं दघती सखेऽत्र । निरन्तराचालिकलप्रसक्तिः सीभाग्यमारभीयमभिन्यनक्ति ।।१२।।

दे सस्के, इस बिरेड देश में प्रफुडित स्थल पद्म (गुलाव के कुल) रूप नेशों के प्रान्त भाग में अन्त्रन (कालल) को घारण करने वाली कृष्णी निरन्तर ज्याप्त अमर-समृद्द की गुलार से मानों अपने सौभाग्य को अभिव्यक्त कर इती है। १२ ।।

धान्यस्थली-पालक-बालिकानां गीतश्रुतेर्निश्चलतां द्यानाः । चिचेऽष्ट्रानीनस्य विलेप्यशङ्काग्रत्पादयन्तीद्व करङ्गरङ्काः ॥१३॥

चस देश में घान्य के खेतों को रखाने वाली बालाव्यों के गीतों को सुनने से खेत खाने के लिए खाये हुए दीन कुरंग (हरिण) निश्च-.छता को प्राप्त होकर पथिक जनों के चित्त में चित्रोक्षिखित जैसी भ्रान्ति को उत्पन्न करते हैं। श्रधीत् वे खेत को चरना मूलकर गाना सुनने के लिए निश्चल हो चित्र-लिखित से प्रतीत होते हैं॥ १३॥

सम्पन्छवत्वेन हितं जनानामुत्पादयन्तो विनयं द्धानाः । स्वजन्म वृक्षाः सफळं वुवाणा लसन्ति यस्मिन् सुपर्यक्रशाणाः ।१४।

उस देश के बृक्ष विनय अर्थात पश्चिमों के निवास को, तथा नम्रता को भारण करने वाले हैं और उत्तम हरे-मरे पत्तों से युक्त किंवा सम्पदा बातें होने से आने बाले छोगों का हित सम्पादन करते हैं। अत्यव सम्माग को प्रकट करने वाले होकर अपने जन्म की सफ्छता सिद्ध करते हुए बोभायमान हो रहे हैं। १४॥

निशासु चन्द्रोपलभित्ति-निर्यज्जलप्लवा श्रीसरितां ततिर्यत् । निदायकालेऽप्यतिकलमेव प्रसम्बरूपा वहतीह देव ॥१४॥

हे देव, वहां पर रात्रि में चन्द्रकान सणियों की भित्तियों से निकलन वाले जलसे परिपूर्ण उत्तम सरिताकों की अंणी सीध्म ऋतु में भी अनिक्ल अर्थान दोनों तरों से बाहिर पूर बाली होकर के भी प्रसन्न रूप को धारण करती हुई बहती है। १४।

भावार्थ—जब नदी वर्षा ऋतु में किनारे को उल्लंघन करके बहती है तो उसका जल गदला होता है। किन्तु इस विदेह देस में बहने वाली निदयां श्रातिकुल होकर के भी प्रसन्न (स्वच्छा जल वाली थीं श्रीर सदा हो जल से भरी हुई प्रवाहित होती रहती थीं।

यदीयसम्पत्तिमनन्यभूतां भूवीक्षितुं विश्वहितैकपूनाम् । उत्फुल्लनीलाम्बुरुहानुभावा विभाति विश्कालितलीचना वा ॥१६॥ विश्व का हित करने वाली, श्रीर श्रद्वितीय जिस देश की सम्पत्ति को देखने के लिये दुश्वी खिले हुए नील कमलों के बहाने से मानों अपनी श्रांखों को खोलकर शोभायमान हो रही है । १६ ॥

यतोऽतिवृद्धं जढधीरवरं सा सरिचतिर्याति तदेकवंशा । संपन्छवोद्यत्तरुणावरुद्धा न निम्नगत्वप्रतिबोधनुद्धा ॥१७॥

उस देश की निदयों की पंक्ति सम्पत्ति के सद से उद्धत तरण जानों के द्वारा, दूसरे पक्ष में उपमा पक्ष वाले पृक्षां से अदारोध किये जाने पर तथा उसी के दंश वाली होते हुए भी असि बृद्ध उलिंध रूप पति के पास जाती हैं और इस प्रकार हा-टु:म्ब है कि वे अपने निम्न-गापने का प्रतियेथ नहीं कर रही हैं, अर्थात निम्नगा (नीचे की और बहना या नीच के पास जाना) इस नाम को सार्थक कर रही हैं, यह महान दक्ष की बात है।। १७॥

भावार्ध—यदि कोई नवयीवना स्त्री अच्छे अच्छे नवयुवक जनों के द्वारा संवरण के लिए रोके जाने पर भी किसी मूर्व और अपने ही वंश वाले दुद्ध पुरुष को स्त्रीकार करे, तो उसका वह कार्य लोक उत्ते के अनुत्व हो गिना जायगा और सब लोग उसकी निन्दा करेंगे। इसी भाव को छक्ष्य में रख कर कवि ने निरंशों के निम्नागापने को क्षेत्र कि कि नदी सदा नीचे की और बहती हुई और मार्ग में अनेक तकण-स्थानीय तरुआं (युद्धां) से रोकी जान पर भी बुद्ध एवं जक समुद्द से जा मिलती है, तो उसके इम निम्नगापने पर भिकार है।

विणक्पथस्तूपितरत्नज्ञा हरि-प्रियाया इव केलिक्टाः । बहिष्कृतां सन्ति तमां हसन्तस्तत्राऽऽपदं चाऽऽपदस्रक्षसन्तः ॥१८॥ उस विरेह देश के नगरों के विणक् पर्यो (बाजारों) में हुकार्नों के बाहिर पद-पद पर लगाये गये स्तुपाकार रत्नों के जुट (देर) मार्नों बहिरकृत आपदाओं का उपहास-सा करते हुए हरि-प्रिया (छक्सी) केंद्रिकट अर्थात क्रीडा पर्यनों के समान प्रतीत होते हैं ॥ १८ ॥

पदे पदेऽनल्पजलास्तटाका अनोकहा वा फल-युष्पपाकाः । व्यर्थानि नावद् धनिनामिदानीं सत्रप्रपास्थापनवांछितानि ॥१९

जिस देश में पद-पद पर गहरे जलों से मरे हुए विशास सरो-बर और पुष्प-फलों के परिपाक वाले शुक्ष आज भी भनी जनों के सत्र (अब्रु क्षेत्र) और प्रपा (प्याऊ) स्थापन के सनोरबों को ज्यार्थ कर रहे हैं। १६॥

विस्तारिणी कीर्तिरिवाथ यस्यामृतस्त्रवेन्दो रुचिवत्प्रशस्या । सुदर्शना पुण्यपरम्परा वा विश्वाजते धेनुततिः स्वभावात् ॥२०॥

उस देश की गाएं चन्द्रमा की चांदनी के समान अस्त (दूध) को वर्षाने वाली, कीर्ति के समान उत्तरीत्तर बढ़ने वाली और पुरय-परस्परा के समान स्त्रभाव से ही दर्शनीय शोभित हो रही हैं ॥२०॥

अस्मिन् भुवो भाल इयदिशाले समाद्धव्र्ञ्जीतिलकत्वमाले। समङ्कितं वक्ति मदीयमाषा समेहि तं कुण्डपुरं समासात्।।२१।।

हे मित्र । पृथ्वी के माल के समान इतने विशाल उस देश में श्री निलकपने को धारण करने वाले खौर जिसे लोग कुण्डन-पुर कहते हैं, ऐसे उस नगर का अब मेरी वाणी वर्णन करती है सो सुनो॥ २१॥ नाकं पुरं सम्प्रवदाम्यहं तत्सुरक्षणा यत्र जना वसन्तः । सुरीतिसम्बुद्धिमितास्तु रामा राजा सुनाशीर-पुनीत-वामा ॥२२॥

बह कुरहनपुर नगर खगे हैं, क्योंकि वहां रहने बालों को कोई कष्ठ नहीं है। वहां के सभी लोग सुलक्षण देवों के सहस हैं। क्रिया भी देखियों के समान सुन्दर जेष्ठा वाली हैं और राजा तो सुनाशीर-पुनीत-धाम है, जबाँत् उनका पुरुष होकर सूर्य जैसा पवित्र तेज वाला है, जैसे कि समों में उन्हों होता है। २२।।

अहीन-सन्तान-समर्थितत्वात्पुन्नागकन्याभिरथाश्वितत्त्वात् । विभात्यनन्तालयसंकुलं यन्निरन्तरं नागकुलैकरम्यम् ॥२३॥

वह कुएडतपुर नगर निरन्तर नाग (सर्प) देवताओं के कुठों से आदितीय रमणीयता को प्राप्त होकर नागपुरी सा प्रतीव होता है। जैसे नागपुरी आहि आवांत सर्पों की सन्तान से समर्थित है, उसी प्रकार यह कुएडतपुर भी आदीन अर्थोत् हीन-कुछ से र्राहत उच्च कुठो-राज सम्तान से संपुक्त है। तथा जैसे नागपुरी पुन्नाग-उत्तम वर्ण वाले नागों की कन्याओं से आखित (संपुक्त) है, उसी प्रकार यह कुएडतपुर नगर भी उत्तम बंहा में उत्तम कुह कन्याओं से संयुक्त है। और जैसे नागपुरी आवत्त आयों है रवता के आवत्य (भवत) से पुक्त है, उसी प्रकार यह कुएडनपुर नगर भी उत्तम बंहा में उत्तम कुछ है। अर्थार जैसे नागपुरी आवत्त आयों है रवता के आवत्य (भवत) से पुक्त है, उसी प्रकार यह नगर भी आवत्त (आगणित) उत्तम विशाल आवशों से संकुछ है। १३।।

समस्ति भोगीन्द्रनिवास एप वप्रच्छलात्तत्परितोऽपि शेषः । समास्थितोऽतो परिखामिषेण निर्माक एवानु बृहद्विषेण ॥२४॥

यह कुरडनपुर ओगीन्द्र खर्थात् ऋति ओग-सम्पन्न जतों के, तथा दूमरे पक्ष में शेषनाग के निवास जसा शोभित होता है, क्योंकि कोट के छल से चारों खोर स्वयं शेषनाग समुपस्थित हैं, तथा परिखा (खाई) के बहाने कोट के चारों खोर बढ़े हुए जल रूपी शेपनाग के द्वारा छोड़ी गई कांचली ही अवस्थित है।। २४॥

रुक्ष्मीं मदीयामनुभावयन्तः जना इह। ऽऽमत्य पुनर्वसन्तः । इतीव रोषादुषरुद्धः वारि-राशिः स्थितोऽसौ परिखोपचारी ॥२५॥

मेरी छक्ष्मी को छाकर उसे भोगते हुए छोग सर्वक्रीर से आक्षा-क्षाकर यहाँ निवास कर रहे हैं, यह देखकर ही मानों रोज से परिला के वहाने वह समुद्र उस पुर को चारों आग्रेस से बेर कर अब-स्थिन है। २२॥

विणक्पथः काव्यतुलामपीति श्रीमानसङ्कीर्णपदप्रणीतिः। उपैत्यनेकार्थगुणैः सुरीतिं समादधन्निष्कपटप्रतीतिम् ॥२६॥

उस नगर का बाजार एक उत्तम काल्य की तुलता को धारण कर रहा है। जैसे काल्य श्री अर्थान् श्रृङ्कारादि रसों की शोभा से युक्त होता है, उसी प्रकार बहां के बाजार श्रीमान् (ज्रुक्सी-सम्पत्ति वाले) हैं। जैसे काल्य में असंकीर्ण (स्पष्ट) पद-विन्यास होता है, वेसे ही बहां के बाजार संकीर्णता-सिहत खूब चौड़ी सक्कां बाले हैं। जैसे काल्य-गत शब्द अनेक अर्थ बाले होते हैं, वेसे ही वहां के बाजार अनेक प्रकार के पदार्थों से भरे हुए हैं। और जैसे काल्य के शब्द अपना अर्थ छल-रहित निष्कपट रूप से प्रकट करते हैं, वेसे ही वहां के बाजार में भी निष्क अर्थान् बहुमूल्य पट (क्का) मिलते हैं। इस प्रकार वहां के बाजार काल्य जैसे ही प्रतीत होते हैं।। २६।।

रात्रो यदभ्रं लिहशालशृङ्ग-समङ्कितः सन् भगणोऽप्यभङ्गः । स्फुरत्प्रदीपोत्सवतानुपाति सम्वादमानन्दकरं दधाति ॥२७॥ रात्रि में जिस नगर के गगनलुम्बी शाल (कोट) के शिखरों पर आश्रित और अपना गमन भूलकर चित्राङ्कित के समान अभङ्ग (निअक्त) रूप से अवस्थित होता हुआ नक्षत्र मण्डल प्रकाशमान प्रदीपोस्सव (वीणवली) के अम से लोगों में आनन्द उत्पन्न कर रहा है। १७॥

अयः कृतः सम्रपि नागलोकः कृतोऽस्त्वहीनाङ्गभृतामथौकः। इतीव तं जेतुमहो प्रयाति तत्स्वातिकाम्भश्छविदम्भजाति ॥२८॥

अध-कृत अधीत् निरस्कृत होने के कारण नीचे पाताल लोक में अवस्थित होता हुआ। भी यह नागलोक ऋहीन (उस कुलोराक) देहशास्त्रियों का निवास स्थान कैसे बन रहा है, मानों इसी कारण इसे जीतने के छिए यह नगर लाई के जल में प्रतिविभिन्नत हुई अपनी परलाई के बहाने से नीचे नागलोक को जा रहा है। २-॥

सम्बन्छसन्नीलमणित्रभाभिः समङ्किते यदरणेऽथवा भीः । राहोरनेनेव गविस्तु साचि श्रयन्युदीचीमथवाऽप्यवाचीम् ॥२९॥

श्चत्यन्त चमकते हुए नीलमणि की प्रभाशों से व्याप्त जिस नगर के कोट पर राहु के विश्वम से डरा हुआ। मूर्य उसके उपर न जाकर कभी दत्तर एतमु कभी दक्षिण दिशा का आश्रय कर तिरछा गमन करता है।। रहा।

यत्सातिकावारिणि वारणानां लमन्ति शङ्कामनुसन्द्धानाः । शनेश्वरन्तः प्रतिमावनाराश्चिनादिनो वारिग्रुचोऽप्युदाराः ॥३०॥

उदार, गर्जनायुक्त एवं धीरे-धीरे जाते हुए मेच जिस नगर की स्वाई के जल में प्रतिविम्बत अपने रूप से हाथियों की शंका की उत्पन्न करते हुए शोभित होते हैं ।। २०।। तत्रत्यनारीजनपुतपार्दस्तुला रतेर्मृ प्रि लक्षत्यसादैः । खुठन्ति तापादिव वारि यस्याः पद्मानि यस्मात्कठिना समस्या ॥३१

रित के सिर पर रहने का जिन्होंने प्रसाद (सीभाग्य) प्राप्त किया है ऐसे, नहां की नारी जनों के पित्र चरणों के साथ तुळना (उपसा) की समता प्राप्त करना कठिन समस्या है, यही सोचकर मानों करल सन्ताप से सन्ताप होकर नहां की खाई के जल में लोट पोट रहे हैं, ऐसा प्रतीन होता है। ३१॥

भावार्थ: वहां की स्त्रियां रित से भी ऋषिक सौन्दर्व को धारण करती है, ऋतएव उनके सौन्दर्य को प्रकट करके के लिए किसी भी उपमा का टेना एक कठिन समस्या है।

एतस्य वै सीधपदानि पश्य सुरालय त्वं कथमूर्ध्वमस्य । इतीव वप्रः प्रहसत्यजस्यं शृङ्गाग्ररत्नप्रभवद्ग् चिस्रक् ॥३२॥

हे सुराख्य! तुम इम कुरहतपुर के सीधपरों (सबनों) को निश्चय से देखो, किर तुम क्यों इनके क्रपर खबस्थित हो ? मानों यही कहता हुआ। और खपने शिखरों के खन्न माग पर छो हुए रसंगं से उपन्न हो रही कांनि रूप माला को धारण करने वाला उस नगर का कोट निस्तर देव-अवनों की इसी कर रहा है।। ३२।।

भावार्थ.— सुरालय नाम सुर + चालय ऐसी सन्त्रि के कानुसार ट्रेय-भवनों का है और सुरा + कालय ऐसी सन्त्रि के कानुसार मिद्दारालय (शराब पर) का भी है। सौध-पद यह नाम सुवा (अधुन) के स्थान का भी है और कूने से बने भवनों का भी है। यहां भाव यह है कि कुछहनपुर के सुधा-निर्मित भवन सुरालय को लक्ष्य करके कह रहे हैं कि तुस लोग मिद्दा के कावास हो करके भी हमारे खर्बान् सुधा-सबनों के ऊपर रहते हो, मानों इसी बहाने से शिखर पर के रत्नों की कान्ति रूप माला धारण करने वाला कोट उनकी हंसी उडा रहा है।

सन्धृपधूमोत्थितवारिदानां श्रृङ्गाग्रहेमाण्डकसम्बिधाना । आतोशनादैः कृतगर्जितानां शम्पेव सम्माति जिनालयानाम् ॥३३॥

भेरी आदि वादियों के शब्दों से किया है गर्जन को जिन्होंने, और उत्तम भूप के जलने से बठे हुए भूम-पटल रूप बादलों के मध्य में जिनालयों के शिल्पों के बामभाग पर लगे हुए सुवर्ण कलशों की कांतिरूप माला मानों शम्पा (बिजली) की आन्ति को ही उत्पन्न कर रही है। 133।

गत्वा प्रतोलीशिखराग्रलम्नेन्दुकान्तनिर्यज्जलमापिपासुः । भीतोऽथ तत्रोल्लिखितान्स्रगेन्द्रादिन्दोर्मु गःप्रत्यपयात्यथाऽऽश्च।।२४

इन जिनालयों की प्रतोली (द्वार के उपरी भाग) के शिखर के ष्रप्रभाग पर छगे चन्द्रकांत मणियों से निकलने हुए जल को पीने का इच्छुक चन्द्रमा का स्था वहां जाकर और वहां पर उद्दिखित (दस्कीण, चित्रंत) अपने शुनु सुगराज (सिंह) को देखकर मयभीत हो तुग्न ही वापिस लीट श्राता है।। ३४॥।

वात्युचलत्केतुकरा जिनाङ्का ध्वजा कणत्किङ्किणिकापदेशात् । आयात भो भव्यजना इहाऽऽश स्वयं यदीच्छा सकतार्जने सा ॥३५

वायु के संचार से फड़फड़ा रहे हैं केतु रूप कर (इस्त) जिनके ऐसी जिन-सुद्रा से ऋड़ित ध्वजाएं बजती हुई छोटी-छोटी घरिटयों के शब्दों के बहाने से मानों ऐसा कहती हुई प्रतीत होती हैं कि भो भञ्यजनो ! यदि तुन्हारी इच्छा सुकृत (पुष्य) के उपार्जन की है, तो तुम लोग शीघ्र ही स्वयं यहां पर काको ॥ ३४॥

जिनालयस्फाटिकसौधदेशे तारावतारच्छलतोऽप्यशेषे । सुपर्वभिः पुष्पगणस्य तत्रोचितोपहारा इव भान्ति रात्रौ ॥३६॥

उस कुण्डतपुर नगर के जिनाख्यों के स्कटिक मणियों से निर्मित अतप्य स्वच्छ स्वेत वर्ण वाले समस्त सीय-प्रदेश पर अर्थात् छतों पर गत्रि के समय ताराओं के अवतार (प्रतिविक्स) मानों देवताओं कंद्रारा किये गये पुष्प-समृद के समुचित उपहार (भेंट) से प्रतीत होते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ:- स्फटिक-सणि-निर्मित जिनाखर्यो की छत के ऊपर नक्षत्रों का जो प्रतिबिम्ब पक्ता है, वह ऐसा प्रतीत होता है मानों देवताक्षों ने पुष्पों की वर्षा ही की है।

नदीनभावेन जना लसन्ति वारीचितत्वं वनिताः श्रयन्ति । सम्रुचरङ्गत्वमुपैति कालः स्फुटं द्वयेषां गुणतो विशालः ॥३७॥

उस नगर के मतुध्य दीनता-रहित, समुद्र-समान गम्भीर भाव के धारक हैं और ज़ियां भी परम सीन्दर्य की धारक एवं जल के समान निर्मल चरित्र वाशी हैं। अत्तरव वहां के लोगों का दाम्यस्य जीवन वहे ही आनन्द से बीतता है अधीन् सुख में बीतता हुखा काल कर्ने प्रतीत नहीं होता। ३७॥

नासौ नरो यो न विभाति भोगी भोगोऽपि नासौ न वृषप्रयोगी । वृषो न सोऽसख्यसमर्थितः स्यात्सख्यं च तनात्र कदापि न स्यात्।३८ उस कुरहतपुर नगर में ऐसा कोई मनुष्य नहीं बा, जो भोगी नहों, और वहां ऐसा कोई भोग नहीं वा जो कि धर्म-संययोगी अर्थान् धर्मानुकुळ नहों। वहां ऐसा कोई धर्म नहीं बा जो कि अरसस्य (शतुरा) समर्थित अर्थान् शतुरा पदा करने वाला हो और ऐसी कोई मित्रता नथीं, जो कि कादाचित्कहो अर्थान् स्थायी नहीं।। देट।।

निरीष्ठचकाव्येष्वपवादवत्ताऽथ हेतुवादे परमोहसत्ता । अपाक्रनामश्रवणं कटाक्षे छिद्राधिकारित्वमभृद गवाक्षे ॥३९॥

वहां निरीष्ठ्य अर्थान्, आंष्ठ से न बोले जाने वाले कार्यों में ही अपवादपना था थानी पकार नहीं बोला जाता था, किन्तु अन्यत्र अपवाद नहीं था अर्थोन् कहां कोई किसी की निन्दा नहीं करता था। हेतुवाद (तर्क शास्त्र) में ही परम ऊह्वपना (तर्क-वितर्क पना) था, अन्यत्र परम (महा) मोह का अभाव था। वहां अपाङ्ग यह नाम स्त्रियों के नेत्रों के कटाक्ष में ही सुना जाता था, अन्यत्र कहीं कोई अपाङ्ग (हीनाङ्ग) नहीं था। बहां छिद्र का अधिकारीयना भवनों के नहीं था।। ३६॥

विरोधिता पत्र्जर एव माति सरोगतामेति मरालतातिः । दरिद्रता स्त्रीजनमध्यदेशे मालिन्यमेतस्य हि केशवेशे ॥४०॥

विरोधपना वहां पिंजरां में ही था, खर्चान् वि (पक्षी) गण पिंजरों में ही खनरुद्ध रहते थे, खर्चन कहीं भी छोगों में विरोधभाव नहीं था। सरोगता वहां मराल हंस) पिक्तमें ही थी, खर्चान् हंस ही सरोबर में रहते थे खौर किसी में रोगीपना नहीं था। दरिद्रता वहां की स्त्रीतनों के मध्यप्रदेश (किटिभाग) में ही थी, स्वर्थान् उनकी कमर बहुत पतळी थी, स्रम्यत्र कोई दिन्दि (धन-हीन) नहीं था। मिलनता वहां केश-पाश में ही हिप्पोचर होती थी, स्वन्यत्र कहीं पर भी मिलनता स्वर्धात् पाप-प्रवृत्ति नहीं थी॥ ४०॥

स्नेहस्थितिर्दीपकवजनेषु न दीनता वारिधिवच तेषु । युद्धस्थले चापगुणप्रणीतिर्येषां मताऽन्यत्र न जात्वपीति ।।४१।।

वहां दीयक के समान मनुष्यों में रनेह की स्थिति थी। जैसे रनेह (तेळ) दीपकों में मरा दहना है, इसी प्रकार वहां के मनुष्य भी रनेह (तेळ) दीपकों में मरा दहना है, इसी प्रकार वहां के मनुष्य भी स्थान के समान नदीनता थी, ख्यांन जैसे समुद्र नदीन (नदी + इन) नदियों का स्थामी होता है, वेसे ही वहां के मनुष्य न दीन थे, ख्यांन दीन या गरीब नहीं थे। बहां के लोगों का चाप (धनुए) और, गुण (कोरी) से प्रेम युद्धस्थळ में ही माना ताता था, ख्यांन कहीं किसी में खपराण (दुर्गुण) का सद्भाव नहीं या, खयांन सभी लोग सद्भाणी थे। ४१।।

सीन्दर्यमेतस्य निशासु दृष्टुं स्मयं स्वरुत्यक्तरुचोऽपक्वष्टुम् । विकामिनक्षत्रगणापदेशाद् दुग् देवतानामपि निर्निमेश ॥४२॥

रात्रि में इस नगर के सीन्दर्य को देखने के लिए चौर इसके खद्युत सीन्दर्य को देखकर स्वर्ग में उत्पन्न हुई लक्ष्मी के आईकार को दूर करने के होतु ही मानों प्रकाशमान नक्षत्रन-समूह के बहाने से देखताओं की आंखें नियेग-दिव रहती हैं। ४२॥

भावार्थ:- वहां के नगर की शोभा स्वर्ग से भी आधिक थी, यह देखकर ही मानों देव-गण निर्निभेष (टिमकार-रहित) नेत्र वाले हो गये हैं। प्रासादशृङ्काग्रनिवासिनीनां मुखेन्दुमालोक्य विधुर्जनीनाम् । नम्रीभवन्नेष ततः प्रयाति हियेव सल्लब्धकलङ्कजातिः ॥४३॥

कपने कपने महलों के शिखर के अम भाग पर वेंडी हुई वहां की ख़ियों के मुख-चन्द्र को रेखकर कल कु को प्राप्त हुक्या यह चन्द्रमा मानों लजा से नम्र होता हुक्या अर्थान् अपनासा मुंह लेकर वहां से जाता है। प्रदे॥

परार्थनिष्ठामपि भावयन्ती रसस्थिति कामपि नाटयन्ती । कोपैकवाञ्जामनुसन्द्धाना वेश्यापि भाषेव कवीश्वराणाम् ॥४८॥

बहां की बेरया भी कवीभारों की वाणी के समान मालूस पढ़ती है। जैसे किवयों की वाणी परार्थ (परोपकार) करने में निष्ठ होती है, उसी प्रकार बेरया भी परार्थ धन के खपहरण में निष्ठण होती है। लेसे किव की वाणी श्रुक्तर हाम्य खादि रमों की वर्णन करने वाली होती है, उसी प्रकार वहां की बेरया भी काम-स्स का खप्रिमन्य करने वाली है। जसे किवयों की वाणी कोप (शब्द-शास्त्र) की एक मान्न बांछा रखती है। उसी प्रकार बेरया भी धन-संमह रूप खजाने की वांछा रखती है। अर्थ।

सौंघाग्रलप्रबहुनीलमणिप्रभाभिदोंषायितत्वमिह सन्ततमेव ताभिः। कान्तप्रसङ्गरहिता खलु चक्रवाकी वापीतटेऽप्यहनि ताम्यति सा वराकी

वहां के भवनों में लगे हुए खनेक नीलमणियों की प्रभा-समूह से निस्तर ही यहां पर रात्रि है, इस कल्पना से वापिका के तट पर बेटी हुई वह दीन वक्षी दिन में भी पति के सयोग से रहित होकर सन्ताप को प्राप्त होती है। ४४।। भावायं:- चकवा-चकवी रात्रि को बिहु इ जाते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। सो हुएडनपुर के भवनों में जो क्यसंख्य नीकमणि क्यो हुए हैं उनकी तीकी प्रभा के कारण वेचारी चकवी को दिन में भी रात्रि का अम हो जाता है और इसलिए वह अपने चकवे से बिहु इ कर दुखी हो जाती है।

उत्फुल्लोत्पलचन्नुपां मुहुरथाक्रुष्टाऽऽननश्रीर्वला—

त्काराबद्धतनुस्ततोऽयमिह् यद्विम्बावतारच्छलात् । नानानिर्भलरत्नराजिजटिलप्रासादभिचाविति

लरत्नराजजाटलमात्तादानपापात तच्चन्द्राश्मपतत्पयोभरभिषाच्चन्द्रग्रहो रोदिति ॥४६॥

विकसित नीळ कमळ के समान है नयन जिनके ऐसी वहां की खियों के मुख की शोभा को बार बार चुराने बाला ऐसा यह चन्द्र-मह वहां के अनेक निमेळ रहां की पिक से जड़े हुए प्रासादों की भित्त में अपनेन प्रतिबन्ध के पड़ने के बहाने से ही मानों कारागार जिळखाना) में बढ़ हुआ कीर उन भवनों में कमे हुए चन्द्रकांत मणियों से गिरते हुए जळ-पुग्के मियसे रोता रहता है। प्रद ॥

एतस्याखिलपत्तनेषु सततं साम्राज्यसम्पत्पतेः

रात्री गोपुरमध्यवर्तिसुलसञ्चन्द्रः किरीटायते । नो चेत्सन्मणिबद्धसृभिविसरे तारावतारच्छला-

दभ्रादापतिना कुनः सुमनसां वृष्टिः सतीहोज्ज्नला ॥४७॥

समस्त नगरों में निरन्तर चकवर्ती की साम्राज्य-सम्पदा के स्वाभी रूप इस कुण्डनपुर के गोपु के ऊपर प्रकाशमान चन्द्रमा रात्रि में मुकुट की शोभा को घारण करता है। यदि ऐसा न माना जाय तो उत्तम मिएवों से निवद्ध भवनों के आङ्गण में ताराओं के अवतार के बहाने आकाश से गिरती हुई फूलों की उज्ज्वल वर्षा कैसे सम्भव हो ॥ ४७ ॥

काठिन्यं कुचमण्डलेऽथ सुम्रुखे दोषाकरत्वं परं वक्रन्यं मृदुकुन्तलेषु क्रुशता बालावरुग्नेष्परम् । उवोरिव विलोमताऽप्यथरता दन्तच्छदे केवलं

शंखत्वं निगले दशोश्चपलता नान्यत्र तेषां दलम् ।।९८।।

वामानां सुविलित्रये विषमता शैथिल्यमङ्घानुता-प्याद्धस्यं सुदशां नितम्बदलये नाभ्यण्डके नीचता । श्रव्देच्बेद निपातनाम यमिनामक्षेत्र वा निग्रड-

श्चिन्ता योगिकुलेषु पौण्ड़निवये सम्पीडनं चाह ह ॥४९॥

 नहीं है। शिष्ठलता वहां की क्षियों के चरणों में ही है, ब्रान्यत्र शिष-लता नहीं है। उद्धरपना केवल वहां की सुनयनाओं के नितन्य-संबंध में ही है, ब्रान्यत्र कहीं पर उद्धरपना नहीं है। नीचता (गहराष्ट्र) नाभि-संदंख में ही है, ब्रान्यत्र नीचपना नहीं है। निपातपना शब्दों में ही है। क्रान्यत्र कहीं भी कोई किसी का निपात (चात) नहीं करता है। निमहपना सयमी जनों की इंग्ट्रियों में है, ब्रान्यत्र कहीं भी कोई किसी का निमह नहीं करता है। चिन्ता ब्रायोंत्र वसु-सक्स का चिन्तव्रत्र व वहां योगिजनों के समुदाय में है, ब्रान्यत्र कहीं भी किसी के कोई चिन्ता नहीं है। सम्पीदन या सम्पीजन वहां केवल पींडों के समुह में ही है। ब्रायोंत्र मार्टे ही वहां कोल्ह में पेले कार्य हीं

> अभ्रं तिहाग्रशिखरावितसङ्क्ष्यं च मध्याह्नकाल इह यद्वरणं समञ्चन् ।

प्रोत्तप्तकाञ्चनरुचिर्भु वनेऽयमस्मिन् कल्याणकम्भ इव भाति सहस्ररश्मिः ॥५०॥

इस कुण्डनपुर नगर में गगनचुन्नी शिखरावळी से ब्याप्त कोट को मध्यात काळ के समय प्राप्त हुन्या, तपाये गये सुवर्ण की कांति-वाळा यह सहस्रारिम (सूर्य) सुवर्ण-कुम्भ के समान प्रतीत होता है। ॥४०॥

भावार्थः - मध्यान्ह काल में कोट के ऊपर द्याया हुआ सूर्य उसके सुवर्ण कलश-सा दिखाई देता है।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भ्र जः स सुषुते भूरामलेत्याह्नयं वाणीभृषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं घीचयम् ।

श्रीवीराभ्युदयेऽस्रुना विरचिते काव्येऽयुना नामतः

द्वीपप्रान्तपुराभिवर्णनकरः सर्गो द्वितीयोऽप्यतः ॥२॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भ जजी और घतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण बाल-ब्रह्मचारी पं० भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर द्वारा विरचित इस वीरोदय काव्य में जम्बूद्वीप, उसके चेत्र, देश और नगरादि का वर्णन करने वाला यह दूसरा सर्ग समाप्त हमा।। २॥

अथ ततीयः सर्गः

निःशेषनप्रावनिपालमौलि-मालारजः पिञ्जरितांघ्रिपौलिः । सिद्धार्थनामा ५स्य बभव शास्ता कीर्तीः श्रियो यस्य वदामि तास्ताः॥१

समस्त नम्रीभृत भूपालों के मौलियों (मुकटों) की मालात्रों के पष्प-पराग से पिक्तरित (विविध-वर्णयक्त) हो रहा है पाद-पीठ जिसका, ऐसा सिद्धार्थ नाम का राजा इस कुण्डनपुर का शासक हुन्ना। जिसकी विविध प्रकार की कीर्त्तियां और विभित्तियां थीं। मैं उनका वर्णन करता है।। १।।

सीवर्ण्यमुद्धीक्ष्य च वैर्यमस्य दुरं गतो मेहरहो नुपस्य । मक्तामयत्वाच्च गमीरभावादेतस्य वार्धिग्रुपितः सदा वा ॥२॥

इस सिद्धार्थ राजा के सीवर्ष्य (सुन्दर रूप झौर सुवर्ण-भंडार) को, तथा धैर्य को देखकर ही मानों समेरु पर्वत, दर चला गया है। इसी प्रकार इस राजा के मुक्तामयत्व ऋौर गन्भीर-भाव से समुद्र सदाके लिए मानों पानी-पानी हो गया है।। २॥

भावार्थ - सुमेर को खपने सुवर्णमय होने का, तथा पैयं का बड़ा सहकार था। किन्तु जब इसने सिहार्थ राजा के अपपार सीयप्ये एवं भेयें को देखा, नो मानों स्वयं छिन्तित होकर के ही वह इस भरत खेन से बहुत दूर चला गया है। सगुर को अपने सुकामय (मोती-पुक्त) होने का और गम्भीरता का बड़ा गर्थ था। किन्तु जब उसने निद्धार्थ गाजा को गुक्त-आमय अयोन रोग-रहित एवं अगाध गाम्भीयं वाला देखा, तो मानों वह अपमान से चूर होकर पानी-पानी हो गया। यह वह आअर्थ की बात है।

रवेर्दशाऽऽशापरिपूरकस्य करैः सहस्रौमेहिमा किमस्य । समक्षमेकेन करेण चाशासहस्रमापूरयतः समासात् ।।३।।

अपने सहस्र करों (किरणों) से दश दिशाओं को परिपूर्ण करने बाले सूर्य की महिमा इस सिद्धार्थ राजा के समक्ष क्या है ? जो कि एक ही कर [हाय) से सहस्रों बनों की सहस्रों आशाओं को एक साथ परिपूर्ण कर देना है।। २।।

भूमावहो वीतकलङ्कलेशः भन्यान्जबृन्दस्य पुनर्स्वदे सः । राजा द्वितीयोऽथ लसत्कलाट्य इनीव चन्द्रोऽपि बर्मोभयाट्यः ॥४॥

आहो ! इस भूनल पर कलक्क के लेश से भी रहित, भव्य जीव रूप कमल-इन्द को प्रमुदित करने वाला और समस्त कलाव्यां से संयुक्त यह सिद्धार्थ राजा तो आद्विनीय चन्द्र है, यह देखकर ही माना चन्द्रमा भी भयाल्य व्यर्थोत् भय से युक्त व्ययवा प्रभा से संयुक्त हो गया है। । । ।। योगः सदा वेदनया विधेः स शूली किलाभृद्वराजितेशः। गदाश्वितो माधव इत्यमस्य निरामयस्य क सपो नृषस्य ॥४॥

विधि (ब्रह्मा) के तो सदा वेद-झान या वेदना के साथ संबोग है, भौर अपराजितेश्वर वह महादेव शूळ (उदर-स्थाधि, एवं त्रिश्रूळ) से संयुक्त है, तथा माधव (विष्णु) सदा गदाश्चित गद अर्थान् रोग से एवं गदा (अस्त्रविदेश) से युक्त है। किर इस निरामय (नीरोग) राजा की ससना कहां है।। ४॥

आवार्थ —समार में बद्धा, महंश और विष्णु थे तीनों देवता ही सर्वे श्रेष्ठ समके जाते हैं। किन्तु वे तीनों नो क्रमशः काम-वेदना, ग्रह्भ और गदाश्चित होने से रोग-युक्त ही है और यह राजा सर्वे प्रकार के रोगों से रहित पूर्ण नीरोग है। फिर उसकी उपमा संसार में कहाँ मिळ सकती है?

यत्कुष्णवर्तमृत्वे प्रतापविद्धं सदाऽग्रुप्य जनोऽभ्यवाप । ततोऽनुमात्वे प्रति चाङ्गतन्वं लोकस्य नो किन्तु विवर्कप्तचम्।।६॥

इस राजा की प्रताप रूप आफ्रि को लोग सदा ही कृष्ण वर्त्सद (भूगपना) के विना ही स्वीकार करने थे। किन्तु किर भी आनुमान के प्रति यह अञ्चनपना लोक के वितर्कणा का विषय नहीं हुआ।। ६॥

भावार्थ—न्यायसाम्य की परिभाषा के अनुसार साधन से साध्य के झान को अनुमान कहा जाता है। जेसे धूमको देखकर आग्नि का झान करना। परन्तु राजा तो कृष्णादलो अयोग् पापाचार से रहित सा किर भी लोग कृष्णादलों (काले मार्ग वाला पूम) के दिना ही इसके प्रताप रूप आग्नि का अनुमान करते थे। इतने पर भी न्यायशास्त्र के उक्त निषमोन्लंधन की लोगों में कोई चर्चो नहीं थी। मृत्त्वं तु संज्ञास्त्रिति पूज्यपादः नृपोऽसकी धातुषु संजगाद । ममत्त्रहीनः परलोकहेतोस्तदस्य धामोज्ज्वलकीर्त्तिकेतोः ॥७॥

श्चावार्य पूज्यपाद ने श्चपने व्याकरण ज्ञास्त्र में सुरव (प्रातिपदि-करव) को संज्ञाश्चा में कहा (धातु-पाठ में नहीं)। किन्तु समल-हीन इस सिद्धार्थ राजा ने तो सुरव श्वयीत् सुतिकापन को तो पार्थिव धातुश्चां में गिना है। यह सब इस उडावल कीर्तिज्ञाली श्वीर पर-लोक के टिए श्वयीत् परभव श्रीर श्रम्य जर्मों को हितार्थ प्रयस्त करने वाले इस राजा की सहचा है।। ७।।

भावार्थ — जैनेन्द्र ज्याकरण में भनुष्य खादि नामों की सुरसंक्षा की गई है, भू श्रादि धातुष्यों की नहीं। किन्तु मिद्धार्थ राजा ने उसके विपरीत सुवर्णादि धातुष्यों में सुरदना (सिक्तापन) मानकर मनुष्यों में खादभाव प्रकट किया है। सारांश्च-यह राजा ख्रापनी प्रजा की भराक्ष के लिए सुवर्णादि-धन को मिट्टी के समान ज्यय किया करना था।

सा चापविद्या नृपनायकस्य लोकोत्तरत्वं सखिराज पश्य । स मार्गणांवः सवित्वं गुणस्तु दिगन्तगामीति विचित्रवस्तु ॥८॥

हे भित्रराज, इस राज-राजेश्वर सिद्धार्थ की चापविद्या (धनुर्वे-दिना) की लोकोत्तरता तो देखो—िक वह बाण-पु-ज तो समीप है श्वीर गुण (होरी) दिगन्तगामी है, यह तो विचित्र बात है।। मा

भावार्थ — धनुर्धारी जब धनुष लेकर बाण चळाता है, तब डोरी तो उसके पास ही रहती है और बाण दूर ळक्ष्य स्थान पर चळा जाता है। किन्तु सिद्धार्थ राजा की विद्याने यह ळोकोत्तरपना प्राप्त किया कि याचक जन तो उसके समीप आते थे और उसके यश आदि गुण दिगन्तगामी हो गये, अर्थान् वे सर्व दिशाओं में फेल गये।

त्रिवर्गभावात्त्रतिपत्तिसारः स्वयं चतुर्वर्णविधि चकार । जनोऽपवर्गस्थितये भवेऽदः स नाऽनभिज्ञत्वममुष्य वेद ॥९॥

यह राजा त्रिवर्ग (पर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ) में निष्णात यह सिलिए प्रजा में चतुर्वर्ण (काक्षण, अतिन, वेश्य और शूद वर्ण की अयवस्था स्थयं करता था। असल्य अपवर्ष (मीक्ष नामक चतुर्थ पुरुषार्थ) की प्राप्ति के लिए भी यह अनिभन्न नहीं, अपितु अभिक्ष (जानकार) है, ऐसा उस समय का प्रत्येक जन स्वीकार करता था। इस श्लोक का एक दूसरा भी अर्थ है—यह राजा कवगीदि पांच वर्गों में से आदि के तीन वर्षा 'कवर्षा, 'चवर्षा और 'टवर्षा पढ़ चुकते पर उसके आतो के तवर्गीय त, थ, द, ध इन चार वर्णों को याद करने में च्या हुआ था, अतः 'प्वर्ग की जानने के पहिले 'न' कार का जानना आवश्यक है, ऐसा छोग कहते थे। हा।।

भुजङ्गतोऽमुष्य न मन्त्रिणोऽपि असेः कदाचियदि सोऽस्तु कोपी । त्रातुं क्षमा इत्यरयोऽनुयान्ति तदंधिचश्चक्षसचन्द्रकान्तिम् ॥१०॥

यदि कदाचिन् (किसी ख्यराधी के ऊपर) यह राजा कुपित हो गया, तो उसके भुजक्र (खक्र) से रक्षा करने के लिए मन्नीगण भी समर्थ नहीं थे, ऐना मानकर ऋरिगण स्वयं खाकर के इस राजा के चरणों की चसकती हुई नख-चन्द्रकानिक का खाध्य लेते थे।। १०।।

१ कवर्ग—क, स, ग, घ, ङ ।२ चवर्ग—च, छ, ज, झ, ज ।३ टवर्ग— ट,ट,क,ढ,ण ।४ पवर्ग—प,फ,ब, स. स. ।

भावार्थ—इस स्टोक में प्रयुक्त शुजङ्ग और मंत्रीयद इत्यर्थक हैं, सो दूसरा अर्थयह है कि यदि कोई भुजङ्ग (काला सांप) किसी व्यक्ति पर कदाचिन् कोयित हो जाय अर्थान् काट साय, तो मन्त्री अर्थान् विष-मंत्र के ज्ञाता गाम्ब्री लोगा भी उसे बचा नहीं सकते हैं। राजा के ऐसे प्रवल प्रताप को देख कर शशुगण श्वयं ही आकर उसके वरणों की सेवा करते थे।

हे तात जान्चितलम्बवाहो नीङ्गं विमुख तनुजा तवाहो । समास्वपीत्थं गदितुं नृपस्य कीर्तिः समुद्रान्तमवाप तस्य ॥११॥

हे तात! (जनक समुद्र!) तुन्हारी यह तनुजा (झारमजा पुत्री छक्ष्मी) आजानुबाहु (युटनों तक छन्बी सुजाओं वाले) इस राजा के शरीर को सभाओं के बीच से भी । आजिंगन करने से) नहीं छोड़ती है, अधीन् इतनी अधिक निर्ळेज है, यह शिकायत करने के छिए ही मानों इस राजा की कीर्ति क्री दूसरी स्त्री ससुद्रान्त को प्राप्त हुईं ॥ ११॥

भावार्थ—अपनी सीत लक्ष्मी की उक्त निर्लंजना को देख कर ही उसे कहने के लिए राजा की कीर्ति रूपी दूसरी पत्नी समुद्र के अपन तक गई, अर्थान् इसकी कीर्ति समुद्र-पर्यन्त सर्व ओर फैली हुई थी।

आकर्ण्यं भूपालयशःप्रशस्तिं शिरो धुनेच्चेत्कथमेवमस्ति । स्थितिर्भुवीऽपीत्यनुमानजातात्कर्णौ चकाराहिपतेर्न घाता ॥१२॥

इस सिद्धार्थ भूपाल के निर्मल यशोगाया को सुनकर ऋहिपति (सर्पराज शेपनाग) कदाचित् ऋपना शिर घुने, तो पृथ्वी की श्विति कॅसे रहेगी ? श्रवांत् पृथ्वी पर सभी कुछ उलट-पुलट हो जायगा, ऐसा (भविष्य कालीन) श्रतुमान हो जाने से ही मानों विधाता ने नागराज के कानों को नहीं बनाया॥ १२॥

भावार्थ--ऐसी लोक-प्रसिद्धि है कि यह पूर्श्वी रोपनाग के शिर पर अवस्थित है। उसे ध्यान में रख कर के ही किव ने सर्पों के कान न होने की उस्प्रेश की है।

विभृतिमस्त्रं दधताऽप्यनेन महेश्वरत्वं जननायकेन । कुतोऽपि वैषम्यमितं न दृष्टेः सम्रुकतन्त्रं त्रजताऽध सृष्टेः ॥१२॥

बिभूतिमत्ता ऋौर महेश्वरता को धारण करने वाले इस राजा ने चतुर्वण वाली सृष्टि की रचनारूप समुन्नति को करते हुए भी दृष्टि की विपमता ऋौर संहारकता को नहीं धारण किया था॥ १३॥

भावार्ध--महेश्वर (महादेव) की विभूतिमत्ता ब्यवीन् हारीर में भरम लगाना और दृष्टि-विषमता (तीन नेत्र का होना) ये दो बातें सतार में प्रतिख है। सो इस राजा में भी विभूतिमत्ता (वेभवशाकिता) और महाच् ऐश्वर्यपना तो बा, किन्तु नेत्रों की विषमता नहीं बी। महादेव की संसार-सहारकता भी प्रतिख है और जबा की सृष्टि-रचना भी प्रतिख है। यह सिखार्थ राजा खपनी प्रजा रूप पृष्टि का जबा के समान रचिवता (व्यवस्थापक) तो बा, पर महादेव के समान उनका संहारक कही बा। कहने का सार यह कि इस सिखार्थ राजा संप्रति के इस सिखार्थ राजा में जबा के सुणेत से के स्वार्थ राजा स्वार्थ पर सुष्टि-संहारक रूप खवाण नहीं बा।

एकाऽस्य विद्या श्रवसोश्च तत्त्वं सम्प्राप्य लेमेऽथ चतुर्दशत्वम् । शक्तिस्तथा नीतिचतुष्कसारमुपागताऽहो नवतां वभार ।।१४॥ इस सिखार्थ राजा की एक विद्या दोनों अवणों के तस्य को प्राप्त होकर अपर्थान कणेगोचर होकर चतुर्देशत्व को प्राप्त हुई। तथा एक शक्ति भी नीति-चतुरुक के सारपने को प्राप्त होकर नवपने को घारण करनी थी।। १४।।

भाषार्थ — राजा ने यद्यपि एक राज-विद्या ही गुरु-मुख से अपने दोनों कानों द्वारा सुनी थी, किन्तु इसकी प्रनिभा से वह चौदह विद्या रूप से परिणत हा गई। इसी प्रकार इस राजा की एक शक्ति भी नीतिच्चुत्क (आम्बीश्चिको, त्रयी, वाको और दण्डलीति) को प्राप्त होकर नवता अर्थान् नव-संस्था को प्राप्त हुई, यह परम आश्चर्य की बात है (इसका परिहार यह है कि उसकी शक्ति भी निस्य नवीनता को प्राप्त हो होंगे।

छायेव सूर्यस्य सदाऽतुगन्त्री वभूव मायेव विधेः सुमन्त्रित् । चृपस्य नाम्ना प्रियकारिणीति यस्याः पुनीता प्रणयप्रणीतिः॥१५॥

हे सुमन्त्रिन् (मित्र)! इस सिद्धार्थ राजा की प्रियकारिणी इस नाम से प्रसिद्ध रानी थी, जो कि सूर्य की छाया के समान एव विधि (कक्षा) की माथा के ममान पति का मदा अनुतामन करती थी और सिसका प्रणय-प्रणयन अर्थान् प्रेम-प्रदर्शन पित्रत्व था। अतपद यह अपने प्रिय-कारिणी इस नाम को सार्थक करती थी॥ १४॥

द्येव धर्मस्य महानुभावा क्षान्तिस्तथाऽभृत्तपसः सदा वा । पुण्यस्य कन्याणपरम्यरेवाऽसी तत्यदाधानसमर्थसेवा ॥१६॥

महानुभाव उदार-हृदय) वाली यह रानी धर्म की दया के समान, तप की क्षमा के समान तथा पुरुष की कल्याणकारिणी परस्परा के समान थी खीर सदा ही उस राजा के पदाधीन (चरणों के श्राश्रित) रहकर उनकी समर्थ (तन, मन, वचन से एकाप्र होकर) सेवा करने वाळी थी॥ १६॥

हरेः प्रिया सा चपलस्वभावा मृहस्य निर्रुजतयाऽघदा वा । रतिस्त्वदश्या कथमस्तु पश्य तस्याः समा शीलभ्रुवोऽत्र शस्य॥१७

है प्रशंसनीय मित्र, जनाक्षो—इस संसार में परम झील वाली इस सानी के लिए किम की उपमा दी जाय ? क्यों कि यदि उसे हरि (बिच्यु) की भिया लक्ष्मी की उपमा देने हैं, तो वह जपल स्वभाव बाली है, पर यह तो परम द्वानत है, खत: लक्ष्मी की उपमा देना टीक नहीं है। यदि कही कि उसे शिवजी की स्त्री पार्वती के स्वरोक्ष दी जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्यों कि वह तो शिवजी के स्वरोक्ष में निलंज होकर मदा जिपटी रहती है, स्त्राः करिकारिणी है। किन्तु यह रानी तो मदा सल्ज होने से प्रियकारिणी है। यदि कहो कि काम की स्त्री रिन की उपमा दी जाय, सो वह तो खररय रहती है-क्यांसों से दिलाई हो नहीं देनी है—फिर उसकी उपमा देना कैसे खजित होगा ? क्यांन् मुक्ते तो यह रानी संसार में उपमा से रहित होने के कारण व्यवन्त ही प्रतीत होती है।। १७।।

वाणीव याऽऽसीत्परमार्थदात्री कलेव चानन्दविधा विधात्री । वितर्कणावत्परमोहपात्री मालेव सत्कौतुकपूर्णगात्री ॥१८॥

वह रानी वाणी (सरस्वती) के समान परमार्थ की देने वाळी है। सरस्वती सुद्ध को परमार्थ (भोव) देने वाळी है बौर यह याचक-बनों को परम अर्थ (यन) की देने वाळी है, चन्द्रमा की कळा के समान ज्ञानन्द-विधिवा विधान करने वाळी है, ज्ञाबीन परम ज्ञानन्द-दायिनी है। वितर्कणा बुद्धि के समान परम ऊद्दाणीह (तर्क-वितर्क) करने वाही है और यह अपने पति ने परम स्नेह अनुराग की पात्री (अधिहानवाही) है। तथा पुष्पमान्त्र के समान सक्तेतिकी अर्थान् उनम पुष्पों से और यह मनो-विनोदों से परिपूर्ण झरीर वाही है। १६।।

लतेव सम्पन्लवभावभुक्ता दशेव दीपस्य विकासयुक्ता । सचेव नित्यं समवादःम्रक्ता द्राचेव याऽऽसीनमृदुताःप्रयुक्ता ॥१९॥

यह रानी लता के समान सम्पन्लव भाव वाली है। जैसे लता वत्तम पत्लवों (पत्रों) से युक्त होती हैं, वसी प्रकार यह रानी भी मम्पत्ति से (सर्व प्रकार की समृद्धि आव हो युक्त है एवं मंजुभाषिणी है। तथा यह शानी दीपक की दशा के समान विकास (प्रकाश) से युक्त है। सत्ता (नैयायिकों के द्वारा माने गये पदार्थ विशेष) के समान यह रानी नित्य ही सामान्य धर्म से युक्त है, ष्वर्षोत्त सदा ही सस-दर्शिनी रहती है। तथा यह रानी द्वारा के समान युवता (कोमलता) से संग्रक है, अर्थान् परम कोमलाब्री है।। १९।।

इतः प्रभृत्यम्ब तवाननस्य न स्पर्धयिष्ये सुषुमामसुष्य । इतीव पादाप्रमितोऽय यस्या युक्तः सुघांग्रः स्वक्क्लेन स स्यात्॥२०

हे अपने ! अन आज से आगे मैं कभी भी तुन्हारे इन मुख की मुख्या। (सीन्दर्ग) के साथ स्पर्ध नहीं कह गा। ऐसी प्रतिक्षा करके ही सानों वह चन्द्रमा अपने तारागणहप कुछ के साथ आकर रानी के पादाप्त (चरण-नवीं) को आप हो गया है। २०॥

भावार्थ – रानी के चरणों की अंगुलियों के नखों की कांति चन्द्र, तारादिक के समान प्रकाशमान थी, जिसे लक्ष्य करके किन ने चक्त उन्नेक्षा की है।

दण्डाकृति लोमलतास्त्रथाऽरं कुलालसन्त्रं स्वयसुज्जहार । कुम्मोपमत्त्रं कुचयोर्द्धाना नितम्बदेशे प्रशुचकमानात् ॥२१॥

यह रानी अपनी लोम-लताओं (रोम-राजिओ) में तो दश्द की अपने कि प्रमाण करती थी और शर्य कुलाल (कुम्मकार) के सप्तव की उद्धुत करती थी भयों नुकल (वंश) के अपन्यता (आलसीपन) को दूर करती थी। अथवा पुल्वी पर सर्व जनता से अपना प्रेम पकट करती थी। आपने होनों कुनों में कुम्म की उपना को भारण करती थी। पत्रक स्वाक कि तान के सुन्ता की प्रमाण करती थी। पत्रम अकि वाल कि तान प्रदेश में स्वयं ही विश्तीर्ण यक्ष (वर्तन बनाने के कुम्हार के जाक) का अनुमान होता था।। रह।।

भागाय: - उस रानी ने अपने नितम्ब-मरव्हळ को चाक मान कर और उदर में होने वाली रोमावली को दरव मानकर स्वयं को कुम्भकार माना और अपने दोनों स्तन-रूप कलशों का निर्माण किया। इस स्थोक से किंव ने यह भाव प्रकट किया है कि अपने इस्ट अनिष्ठ का विशाला यह जीव स्वयं ही है।

मेरोर्यदाँद्धत्यमिता नितम्बे फुल्लत्वमब्जादथवाऽऽस्यविम्बे । गाम्भीर्यमब्धेरुत नाभिकायां श्रोणी विज्ञालत्वमथो घराया ॥२२॥

उस रानी ने अपने नितम्ब भाग में सुमेर की उद्धतता को, सुख-बिम्ब में कमक की प्रपृक्षता को, नाभि में समुद्र की गम्भोरता को और ओणियाग (नामि से अयोभाग) में पृथ्वी की विज्ञालता को आरण किया था॥ २२॥

चाञ्चन्यमक्ष्णोरनुमन्यमान। दोषाकरत्वं च ग्रुखे दधाना । प्रबालमानं करयोर्जगाद बभुव यस्या उदरेऽपवादः ॥२३॥ बह रानी अपनी दोनों आंखों में चक्कलता का अनुमान कराती श्री, आरेर मुख में दोषाकरल को धारण करती थी। दोनों हाथों में प्रवाल भाव को कहती थी और उसके उदर में अपवाद था॥ २३॥

भावार्थ: - चक्कलना यद्यपि दोष है, किन्तु रानी की श्रांखों की श्रांख होकर वह गुण बन नया था, क्योंकि क्यियों के आरंखों की चक्क लाव करम मानी जाती है। दोषाकर व्यवीन दोषों की खानि होना वृष्य है, किन्तु रानी के मुख में दोषाकर व्यवीन नम्हत्य था, उसका मुख चन्द्रमा के समानथा। प्रवालमाव अर्थान् वालकरन (लक्करन) यह दोष है, किन्तु रानी के हायों के प्रवालमाव (मूंगा के समान लालिमा) होने से वह गुण हो गया था। अपवाद (निन्दा) होना यह तमाने के हिन्हें रानी के पेट में इक्षता या शीणता रूप का स्वाद गुण बन गया था।

महीपतेर्घाम्नि निजेङ्गितेन सुरीति-सम्पत्तिकरी हि तेन । कटिप्रदेशेन हृदापि मित्राऽसकी थरायां समभृत्पवित्रा ॥२४॥

हे मित्र! वह रानी सिद्धार्थ राजा के घर में अपनी चेष्टा से सुरीति और सम्पत्ति की करने वाली थी। कटिप्रदेश में संकुचित (कृष्ठा) हो करके भी हृदय से विशाल थी, इस प्रकार वह धरातल पर प्रविच्यी। २४॥

आवार्थ:- इस स्होक में सुरीति पर इचर्बक है, तहनुसार वह रानी अपनी चेष्टा से सुरी (देवियों) को भी मात करने वाली थी। और उत्तम रीति से चलने के कारण प्रजा में उत्तम रीति-रिवाजों को चलाने वाली थी। तबा पवित्र पर में भी ऋषे है—रानी का किट-प्रदेश तो इका था, किन्तु उसके नीचे का नितस्य भारा और उपर का वक्षःस्थळ विरतीर्ण था, अतएब वह पवित्र अर्थात् पवि (वज) के त्र-तुल्य आकार को धारण करता था। किर भी उसका हृदय पवित्र निर्मल) था।

मृगीद्यश्चापलता स्वयं या स्मरेण सा चापलताऽपि रम्या । मनोजहाराङ्गभृतः क्षयेन मनोजहाराऽथ निजेक्षयेन ॥२४॥

इस स्गानवनी की जो स्वाभाविक चपछता थी वसी को काम-देव ने बपनी सुन्दर थानु-छता बनाई, क्योंकि कामदेव को हार के समान हृदय का खंडकार मानने वाली वह रानी खपने कटाझ से क्षण मात्र में मनुष्यों के मन को हर लेंगी थी। २४।।

अस्या अजस्पर्धनगर्द्धनत्वात्कृतापरार्थं समुपैमि तत्त्वात् । अभ्यन्तरुच्छित्रगुणप्रपत्र्चं मृणालकं नीरसमागतं च ॥२६॥

भावार्थ-किव ने कमल-नाल के पोलेपन और जल-गत होनंपर क्लेक्स की है कि वह रानी की भुजाओं के साथ स्पर्धा करने पर परा-जित होकर लजा से पानी में डवा रहता है।

या पक्षिणी भूपतिमानसस्येष्टा राजहंसी जगदेकदृश्ये । स्वचेष्टितेनेव बन्व मुक्ता फलस्थितिया विनयेन युक्ता ।।२७।।

जैसे राजहंसी मान-सरोवर की पश्चिणी अर्थात उसमें निवास

करने वाली होती है, उसी प्रकार यह रानी मूपित के मन का पक्ष करने वाली थी, इसलिए (सर्व रानियों में खिक प्यारी होने है) पट्टरानी थी। राजहंसी खपनी चेच्टा से गुक्ताफलों (मोतियों) में खित रलने वाली होती है खर्चान मोतियों को चुनाती है खोर रानी खपनी चेच्टा से गुक्त किया है निष्फलता को जिसने ऐसी थी, खयोंन सफल जीवन वितान वाली थी। राजहंसी बिन्नय (पिह्नयों की रीति) का पालन करने वाली होती है, और यह रानी विनय से संयुक्त थी, खयोंन विनय गुण-वाली थी।। रा।

प्रवालता मुर्ध्म्यधरे करे च मुखेऽब्जताऽस्याश्चरणे गले च । सुवृतता जातुपुगे चरित्रे रसालताऽभृत्कुचयोः कटित्रे ॥२८॥

इस रानी के जिर पर तो प्रवास्ता (केशों की समनता) थी, कोठों पर मूंगे के समान लाडिमा थी और हाथ में नव-पहुब की समना थी। रानी के मुख में कड़ता (जरू-तुन्वता) थी, चरणों में कमल-सहझ कोमलता थी और गले में झंख-सहझता थी। दोनों जंपाओं में सुजुत्तता (सुवतुं लाकारता) थी और चरित्र में सदाचारिता थी। दोनों सनों में रामलता (आक्रफल-तुन्वता) थी और कटिक्र (अधोत्तव-यांघरा) पर रसा-लता (करपनी) शोभित होती थी। १२॥

पूर्व निनिर्माय विधु विशेष-यत्नाद्विधिस्तन्मुखमेवमेषः । कुर्व स्तदुल्लेखकरी चकार स तत्र लेखामिति तामुदारः ॥२९॥

विधाता ने पहले चन्द्र को बनाकर पीछे बड़े प्रयत्न से—साव-धानों के साथ इस रानी के युक्त को बनाया। इसीडिए मानों उदार विधाता ने चन्द्र-विम्ब की ज्यवंता प्रकट करने के छिए उस पर रेखा खोंच दी है जिसे कि छोग कळडू कहते हैं। २६॥

अक्षीतिबोधा ऽऽचरणप्रचारैश्चतुर्दऋनं गमिताऽत्युदारैः । विद्या चतुःपष्टिरतः स्वभावादस्याश्च जाताः सकलाः कला वा।।३०।।

इस रानी की बिद्या विश्वदरूप कायोति (काण्ययन), बोध (ज्ञान-प्राप्ति), क्याचरण (तदनुकुल प्रवृत्ति) और प्रचार के द्वारा चतुर्वेशन्त को प्राप्त हुई। पर एक बस्तु को चार के द्वारा गुणित करने पर भी चतुर्वेशन्त अवोत् चैदह की सच्या प्राप्त नहीं हो सकती हैं, यह विरोध है। उसका परिहार यह किया है कि उसकी एक विद्या ने ही अभीति आदि चार दशाएं प्राप्त की। पुनः वही एक विद्या चैदह प्रसिद्ध विद्याओं में परिणत हो गई। एवं उसकी सन्पूर्ण कलाएं स्वतः

भावार्ध-एक वस्तुकी १६ कलाएं मानी जातः हैं, इस्तएव चार दशाबों की (१६ ४४ = ६४) चौमठ कलाए खतः ही हो जाती हैं। वह रानी कियों की इन चौंसठ कलाओं में पारगत थी. ऐसा अभि-क्षाय एक औक में टक्क किया गया है।

यासामरूपस्थितिमात्मनाऽऽह स्वीयाधरे विद्रु मतास्रुवाह । अनुषमत्वस्य तनी त सन्त्रं साधारणायान्वभवन्महत्त्वम् ॥३१॥

यह प्रियक्तिरणी रानी अपनी साम (ज्ञान्न) चेण्टा से तो मरु (मारवाड़) देश की उपस्थिति को प्रकट करनी थी। क्योंकि इसके अधर पर विदुमना (इक्ष-रहितना) और मूंगा के समान लालिमा थी। तथा इसके झरीर में अनुय-देशना की भी सन्ता थी। अर्थोन् अरुयन्त सुन्दरी होने से उसकी उपमा नहीं थी, अर. उदसें अनुपसना थी। एवं वह साथारण देश के लिए सहरक के स्थीकार करनी थी, अर्थोन् उसकी धारणा-सांक महान अपूर्व थी। ११॥ आवार्ष—देश तीन प्रकार के होते हैं—एक के, बिनमें जल कीर हुआं की बहुआ होती है, कर्दें कम्पूपरेश कहते हैं। दूसरे से, वहां पर जल कीर हुआ होता है, कर्दें कम्पूपरेश कहते हैं। दूसरे से, वहां पर जल कीर हुआ होता हीता है, जर्दें मस्त्रेश कहते हैं। वहां पर जल कीर हुआ ये दोनों ही साधारणत: हीनाधिक रूप में पाये जाते हैं जर्दे साधारण देश कहते हैं। विभिन्न प्रकार के हम तीनों ही देशों की जपस्थित का चित्रण किंव ने रानी के एक ही शरीर में कर दिखाया है।

अक्ष्णोः साञ्जनतामवाप दघती या दीर्घसन्दर्शिता-स्रवीराप्य विलोमतां च युवतिलेंगे सुवृत्तस्थितिम् । काठिन्यं कुचयोः सस्रुत्रतिमथो सम्भावयन्ती वर्गा

रलक्ष्णत्वं कचसंग्रहे सम्रुदितं वक्रत्वमप्यात्मनः ।।३२॥

बह रानी अपने नेत्रों में अञ्चल-गुक्तता और साथ ही दीर्घ-सम्बृश्चिता (दूर-दृष्टिता) को भी धारण करती थी। वह अपनी जंपाओं में दिक्कोमा (रोम-रहित्तता और प्रतिकृत्वता) को जीर साव ही सुकुत्त की स्थिति को धारण करती थी। अवने दोनों कुचों में और उत्तम चारित्र को धारण करती थी। अपने दोनों कुचों में कांटिन्य और समुझति को धारण करती हुई हो।सती थी। तथा केहा-पाश में सचिकणता को और वकता को भी धारण करती थी। १३२॥

भावार्थ--एक वस्तु में परस्पर-विरोधी दो धर्मों का रहना कठिन है, परन्तु वह रानी खपने नेत्रों, जंघाओं, कुचों खीर केशों में परस्पर-विरोधी दो दो धर्मों को धारण करती बी।

> निय जिनपगिरेवाऽऽसीत्समस्तैकबन्धुः श्रवाय-सुषुमेवाऽऽह्वाद-सन्दोहसिन्धुः ।

सरससकलचेष्टा साजुकूला नदीव नरपतिपदपद्मप्रेक्षिणी षट्पदीव ॥३३॥

है मित्र, वह रानी जिनरेव की वाणी के समान समस्त जीव-छोक की एक मात्र कपु थी, पन्द्रमा की सुपुता के समान सब के आकार-पुज रूप सिन्यु को वहाने वाली थी, उभय-तदातुगामिनी नदी के समान सब सरस चेप्टा वाली और पति के अनुकूछ स्नाचरण करने वाली थी, नवा अमरी के समान अपने प्रियतम सिद्धार्थ राजा के चरण-कमलों का निरन्तर अवलोकन करने वाली थी। १३।

रतिरिव च पुष्पञ्चतुषः प्रियाऽभवत्साशिका सती जनुषः । ईशस्य विभृतिमतः भूमावपराजिता गुणतः ॥३४॥

वह रानी कामदेव को रति के समान, जन-जीवन को शुआ-शीर्षाद के समान, विभूतिमान महेश को खपराजिता (पार्वती) के समान भूमरहळ पर खपने गणों से पति को खरयन्त त्यारी थी ॥२४॥

असुमाह पति स्थितिः पुनः समवायाय सुरीतिवस्तुनः । समर्वा ममनासुदाहरदज्जङः किन्तु समर्थकन्धरः ॥३५॥

वह रानी पति को खपने प्राण समझती थी और निरन्तर सुदृह प्रेम बनाये रखने के लिए क्तम रीति (रिवाजों) की खिति स्वीकार करती थी। तथा राजा उसे स्वयं खपनी ममता-रूप मानता था, क्योंकि वह स्वयं अजड अर्थात् मुस्ते नहीं, खिप्तु विद्वान था, साथ ही समये कम्बर था, खयाँत् बाहुबाल को बारण करता था। विरोध में जड़-रहित होकर के भी पूर्ण जल बाला था। वेश। भावार्थ-दोनों ही राजा-रानी परस्पर अत्यन्त अनराग रखतेथे।

नरपो दृषभावनाप्तवान् महिषीयं पुनरेतकस्य वा । अनयोरविकारिणी किया समभृत्सा द्युसदामहो प्रिया ॥३६॥

यह सिद्धार्थ राजा वृषभाव (बेळपने) को प्राप्त हुआ और इसकी यह रानी महिषी (भैंस) हुई। पर यह तो विरुद्ध है कि बैंक की स्त्री भैंस हो। अत पिरार यह है कि राजा तो परम धार्मिक सा और सिपकारिणों उसकी पट्टानी बनी। इन दोनों राजा-रानी की किया अबि (भेड़) को उत्पन्न करने वाली हो, यह कैसे संभव है। इसका परिहार यह है कि उनकी मनोविनोद आदि सभी कियार विकार-रहित थी। यह रानी मानुषी होकर के भी देवों की प्रिया। आही) थी। पर यह कैसे संभव है। इसका परिहार यह है कि वह अपने गुणों हारा देवों को अस्पन तथा थी। यह रानी मानुषी होकर के भी देवों की प्रिया। आही) थी।

स्फुटमार्चवसम्बिधानतः स निशाःवासरयोस्तयोः स्वतः । इतरेतरमानुकूल्यतः समगच्छत्समयः स्वमूल्यतः ॥३७॥

रात्रि और दिन में ऋतुओं के अनुसार आचरण रूप विधि-विधान करने से उस राजा-रानी का बहु समय परस्पर अनुकूछता को छिए अपनी सफछता के साथ बीत रहा था।। ३७॥

भावार्थ--राजा को वासर (दिन, की ब्रीर रानी को निका (रावि) की उपमा हेकर किंव ने यह प्रकट किया है कि उन दोनों का समय परश्यर में एक दूसरे के अनुकुक आवरण करने से परम आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्ध्वः स सुपुवे भूरामलेत्याह्वयं वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । श्रीवीराम्युद्येऽग्रुना विरचिते काव्येऽधुना नामतः

श्रीसिद्धार्थ-तदङ्गनाविवरणः सर्गस्तृतीयस्ततः ॥३॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु जजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, बाणीभूषण बाल-ब्रह्मचारी पं० भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञान-सागर-द्वारा विरचित इस वीरोदय काव्य में सिद्धार्थ राजा स्त्रीर उसकी प्रियकारिणी रानी का वर्णन करने वाला तीसरा सर्ग समाप्त हका ॥ ३॥



श्रय चतुर्थः सर्गः

अस्या महिष्या उदरेऽवतार-मस्माकमानन्दगिरोपहारः । ग्रक्तेरिवारात्क्रवलप्रकारः वीरः कदाचित्स्वयमावभार ।।१।।

हमारे ज्यानन्द रूप वाणी के उपहार स्वरूप वीर अगवान् ने सीप में मोती के समान इस प्रियकारिणी पट्टरानी के उदर में (गर्भ में) कदाचिन् स्वयं ही अवतार को धारण किया।। १।।

बीरस्य गर्भेऽभिगमप्रकार आषाढमासः श्रुचिपक्षसारः । तिथिश्र सम्बन्धवरोन पष्ठी ऋतः समारब्धपुनीतबृष्टिः ॥२॥

जब वीर भगवान् का गर्भ में इवतार हुआ, तब आवाद मास बा, शुक्त पक्ष बा, सम्बन्ध के वश तिथि पष्टी बी और वर्षा ऋतु बी। जिसने कि पवित्र वृष्टि को आरम्भ ही किया था॥ २॥

धरा प्रभोर्गर्भम्रपेषुषस्तु बभूव सोल्लासविचारवस्तु । सन्तापम्रज्झित्य गताऽऽर्द्रभावं रोमाञ्चनैरङ्कृरिता प्रजावत् ॥३॥

बीर प्रभु के गर्भ को प्राप्त होने पर वह पृथ्वी हुषै से वहसित विचार वाली हो गई और भीष्म-काल-जानित सन्ताप को छोड़कर ब्याहता को प्राप्त हुई। तथा इस ऋतु में पृथ्वी रोमाओं से प्रजा के समान खंडरित हो गई।। ?।।

भावार्थ:- वीर भगवान् के गर्भ में झाने पर वर्षा से तो पूछ्वी हरी भरी हुई और प्रजा हर्ष से विभोर हो गई।

नानीविधिस्फूर्तिधरः प्रशस्य-वृत्तिर्जगत्तप्रवेत्य तस्य । रसायनाधीश्वर एव कालः प्रवर्तयन् कौशलमित्युदारः ॥॥॥

नाना प्रकार की श्रीषिषयों को स्कृष्ति देने वाळा श्रयांत् उत्रम करने वाळा, प्रश्नंसनीय प्रश्नुत्त वाळा श्रीर उत्तम धान्यों को उत्यन्न करने वाळा श्रतपुत्र उदार, रस (जळ) के श्रागमन का स्वामी यह रसायनाधीश्वर वर्षाकाळ अपने कौशळ (चातुर्य) के प्रवर्तन करता हुश्चा, साब ही को श्रयांत् पृथ्वी पर शर (जळ) को वरसाता हुश्चा, सुद्धा सरकाराडों को उत्यन्न करता हुआ झाया।। ।। ।।

वसन्तसम्राह्-विरहादपर्तुः दिशावयस्याभिरिवोपकर्तु म् । महीमहीनानि घनापदेशाद् धृतानि नीलाब्जदलान्यशेषात् ॥५॥

वसन्त रूप सम्नाट के वियोग हो जाने से निष्णम हुई मही (पूर्व्या) का उपकार करने के लिए ही मानों दिशा रूपी सदेलियों में मेघों के क्याज से चारों स्रोर विशाल नीलकमल-दलों को फैला विया है। में।।

वृद्धिर्जडानां मिलनैर्धनैर्वा लब्धोबातिस्त्यक्तपथो जनस्तु । द्विरेफसंघः प्रतिदेशमेनं कलिर्ज् वर्षावसरोऽयमस्तु ।।६॥

यह वर्षाकाल तो मुक्ते कलिकाल-सा प्रतीत होना है, क्योंकि इस वर्षा खतु में जड़ी क्यांन तलों की वृद्धि होती है, ब्योंन कालक सं जड़ (मूले) प्रनों की वृद्धि होती है। वर्षा ऋतु में तो काले बादल जब्रित करते हैं ब्यौर कलिकाल में पापी लोग प्रचुरता से उदराज होते हैं। वर्षा काल में तो सबंग जलमय कृष्यी के हो जाने से लोग मार्गों पर खाना-जाना छोन्न देते हैं ब्यौर कलिकाल में लोग मर्गों पर खाना-जाना छोन्न देते हैं ब्यौर कलिकाल में लोग धर्म-मार्ग को छोन्न देवें में वर्षाना-जाना छोन्न देते हैं ब्यौर कलिकाल में लोग धर्म-मार्ग को छोन्न देते हैं वर्षा काल में मिन्त क्योंन हो-तरी पर सबंग्रे हिरेफ

(सर्प) समूह प्रकट होता है खौर किलकाल में पिशुन (चुगलखोर) जनों का समूह बढ़ जाता है॥६॥

मित्रस्य दुःसाध्यमवेक्षणन्तूःबोद्धाश्च यूनां विरुयं त्रजन्तु । व्यर्थं तथा जीवनमप्युपात्तं दुर्देवतां दुर्दिनमित्यगात्तत् ॥७॥

वर्षाकाल के दुर्दिन (मेघाण्लल दिन) मुक्ते दुर्देव से प्रतीत होते हैं, क्योंकि वर्षाकाल में मित्र क्यांगत सूर्य का दर्शन दुस्ताम्ल हो जाता है और दुर्देव के समय मित्रं का दर्शन नहीं होता। वर्षों में युवक जनों के भी उद्योग ज्यापार विलय को प्राप्त हो जाते हैं और दुर्भाग्य के समय नवस्त्रुवकों के भी पुरुषार्थ विनिष्ठ हो जाते हैं। वर्षाकाल में वरसने वाल जीवन (अ) ज्यं जाता है और दुर्देव के समय उससे पीडित जनों का जीवन व्यर्थ जाता है।। ७।।

लोकोऽयमाप्नोति जडाशयत्वं सद्वत्मं लुप्तं घनमेचकेन । वक्तार आरादथवा प्लवङ्गा मौन्यन्यपुष्टः स्वयमित्यनेन ।।८॥

वर्षांकाल में यह सारा लोक (संसार) जलाशय (सरोबर) ह्यात को प्राप्त हो जाता है, ज्यांन् जियर देखो, ज्यर पानी ही पानी सरा हुआ दिखाई देता है और कलिकाल में लोग जहाशय (सुर्ष) हो जाते हैं। वर्षांकाल में आकाश घन-मेचक से अर्थान् समय मेचों के अर्थाकार वेटचार होते हैं। वर्षांकाल में थोर पाप के ह्यारा सम्मानी लुपा हो जाते हैं। वर्षांकाल में थोर पाप के ह्यारा सम्मानी लुपा हो जाते हैं। वर्षांकाल में मेंदक बक्ता हो जाते हैं, अर्थान् सर्वेत्र टर्टर करते हुए दिल्लीचर होते हैं, और कलिकाल में उल्लाह्म मचाने वाले मनुष्य ही वक्ता बन जाते हैं। वर्षांकाल में उल्लाह्म स्वाप्त करते हैं। इस प्रकार गुक्ते वर्षांकाल और कलिकाल में मरोपकारी जीव मौन धारण करते हैं। इस प्रकार गुक्ते वर्षांकाल और कलिकाल ने विकास होते हैं। हम प्रकार मुक्ते वर्षांकाल और कलिकाल ने विकास होते हैं। हम प्रकार मुक्ते वर्षांकाल और कलिकाल ने विकास होते हैं। हम प्रकार मुक्ते वर्षांकाल की स्वाप्त करने हम हम प्रविद्या होते हैं। हम प्रकार मुक्ते वर्षांकाल की स्वाप्त करने सहस्त होते हैं। हम प्रकार मुक्ते वर्षांकाल की स्वाप्त होते हैं। हम स्वाप्त होते हैं। हम स्वाप्त हम स्वप्त हम स्वप्त हम स्वप्त हम होते हमें हम स्वप्त स्वप्त करते हम स्वप्त हम

रसैर्जगत्य्लावितुं क्षणेन सुन्कण्ठिनोऽयं सुदिरस्वनेन । तनोति नृत्यं मृदु-पञ्जुलाणे मृदक्वनिःस्वानजिना कलाणी ॥९॥

रसों (जलें) से जगत को एक क्षण में श्राह्मवित करने के लिए ही मानों सुदक्कों की ध्वनि को जीतने वाले मेंचों के गर्जन से खाति उक्किटिज और एटु मञ्जुल शब्द करने वाला यह कलापी (मयूर) तुत्व किया करता है ॥ ६॥

भावार्थ - यह वर्षाकाल एक नाटक घर सा प्रतीत होता है, क्योंकि इस समय सेघों का गर्जन नो सुदक्कों की ध्वति को प्रहण कर कीता है कोर उसे सुनकर प्रसन्न हो सबूद गण जृत्य करने हुए सरस सक्कीत रूप सिट कोळी का विस्तार करते हैं।

पयोधरोत्तानतया सुदे वाक् यस्या भृतं दीपितकामदेवा । नीलाम्बरा प्रावृद्धियं च रामा रमीधदात्री समनोभिरामा ।।१०।।

यह वर्ष ऋतु पयोधरों (मेघों और स्तनों) की उत्तानता अर्थान् जन्नति से, मेघ-गर्जना से तथा आनन्द-वर्षक वाणी से छोगों में कामदेव को अरथन प्रदीम करने वाछी, नीलवस्तु-धारिणी, रस (जल और श्रृक्षार) के पूर को बढ़ा देने वाली और सुमनों (पुष्पों तथा उत्तम मन) से अपिराम (सुन्दरी) रामा (स्त्री) के समान प्रतीव होती है।। १०।।

भावार्थ: - वर्ष ऋतु उक्त वर्णन से एक सुन्दर स्त्री सी दिखाई देती है।

वसुन्धरायास्तनयान् विषयं निर्यान्तमारात्स्वरकालमयः । सम्पाप्रदीपैः परिणामवाद्रीग्विलोकयन्त्यम्बुसुचोऽन्तराद्रीः ॥११॥ इस वर्षा ऋतु में, वसुन्धरा के तनयों अर्थान बृक्ष-रूप पुत्रों को जलाकर या नष्ट-श्रष्ट करके शीवता से तुप्त (छिने) हुए श्रीष्म कारू को अन्तरक्ष में आद्रंता के धारक नेष, आंसू बहाते हुए से मार्नों शम्या (बिजली) रूप दीपकों के द्वारा उसे हुंब रहे हैं ॥ ११॥

भावाध:- यहां कवि ने यह उसेक्षा की है कि धीध्म काल बुखों को जलाकर कही छिप गया है, उसे खोजने के लिए दु कित हुए सैच बयों के बहाने फांस्स् बहारे हुए तथा विजयों हर दीपकों को हाथ में लेकर उसे इथर उधर लोज रहे हैं।

बृद्धस्य सिन्धोः रसमाग्र हत्वा शापादिवास्येऽलिरुचिन्तु धृत्वा । अर्थेतदागोहतिनीतिसत्त्वाच्छणत्यशेषं तमसौ तडिन्वान् ।।१२।।

भेष ने दृढ़ सिन्धु के रस (जल वा धन) को शीव्रता से खप-हरण कर लिया, जातएव उनके शाप के भय से ही मानों खपने सुख पर असर जेसी कान्ति वाली कालिया धारण करके इस किये हुए अपराध से सुक्त होने के लिए वह चणहत समस्त जल को वर्षा के बहान से वापिस लोड रहा है। १२।

रलोकन्तु लोकोपकृतौ विधातुं पत्राणि वर्षा कलमं च लातुम् । विभारदाऽभ्यारमते विचारित भृयो भवत् वार्दल आधुकारी ।१३।

जंसे कोई विशारता (विजुपी) की छोकोपकार के हेनु त्रोक की रचना करने के छिए पत्र (काग्रज) मिपपात्र (इवात) और करूम के को जंदात होति है, उसी प्रकार वह विशारता स्थान, शरद ऋतु से रहित वर्षो ऋतु छोकोपकार के छिए मानों स्रोक रचने को वृक्षों के पत्र रूपी काग्रज, बादछ रूपी दवात और धान्य रूप करूम को खपना रही है। पुन: हे विचारशील मित्र, उक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए यह वाईल (मेग) वार वार शोवता कर रहा है। खाशु नाम नाना प्रकार के धान्यां का भी है, सो यह मेघ जल-वर्षों करके धान्यों को शीव वरणत कर रहा है। १२॥

एकाकिनीनामधुना वधूनामास्वाध मांसानि मृद्नि तासाम् । अस्थीनि निष्ठीवति नीरदोऽनौ किलात्ममाक्षिन् करकप्रकाशात् ।१४।

हे आस्मसाक्षित् । यह नीरद (दन्त-गहित, मेघ) पति-विरह से कोकेटी रहत वाली उन बधुकों (शिव्यों) के यह सांस को खाकर के काब करक कथात् कोले वा घड़े गिराने के बहाने से मानों उनकी हिक्वें को उगल रहा है।। १४॥

भावार्थ--वर्षा-काल में, पति विहीन स्त्रियों का जीना कठिन हो जाता है।

नितम्बिनीनां मृदुषादपद्यैः प्रतारितानीति कुशेशयानि । ह्रिया क्रिया स्वीयशरीरहत्यै तेषां विषप्रायरयादिदानीम् ॥१५॥

इस जीवलोक में नितित्वानी (स्त्री) जनों के कोमल चरण रूप कमलों से जल में रहते वाले कमल लखे गये हैं, इसीलिये मानों इस समय लज्जा से लज्जित होकर उनकी किया जल-वेग के बहाने से मानों अपने झरीर की हत्या के लिए उग्रत हो रही है। (१४॥

भावार्थ--वहां की स्त्रियों के चरण, कमलों से भी सुन्दर हैं, पर वर्षा ऋतु में कमल नष्ट हो जाते हैं। इस बात को लक्ष्य कर उक्त कल्पना की गई है।

सम्रुच्छलच्छीतलक्षीकराङ्के वायौ वहत्येष महीमहाङ्के । भियेव भूयोविधवान्तरङ्गग्रनायतम् प्रविज्ञत्यनङ्गः ॥१६॥

उछलते हुए शीतल जल-कण जिसके मध्य में है, ऐसे पवन के मही-पुष्ट के ऊपर बहने पर यह चांग-रहित कामदेव शीत के भय से ही मानों पति-वियोग के सन्ताप से सन्तम विधवाओं के खन्तरंग में प्रवेज कर रहा है ।। १६ ॥

भावार्ध—वर्षा ऋतु में खत्यन्त शीतक समीर से भयभीत होकर अर्थान् शीत से पीड़ित होकर गर्मी पाने के लिए ही मार्नो पति-वियोगिनी शियों के सन्तम कार्रार में यह कामदेव प्रवेश करता है। इसका झप्रभाय यह है कि वर्षा काल में विधवाओं के शरीर में कामदेव अपना प्रभाव दिखाता है।

बुधा श्रयन्तः कुकविप्रयातं ५ङ्कप्लुता कं कलयन्त्य्दात्तम् । भेकाः किलैकाकितया लपन्तस्तदन्ति नित्यं महताम्रतान्तः॥१७॥

बुशा ही कुकिन की चेष्टा का आश्रय तीते हुए कीचड़ से ज्याप्त (छय-पथा हुए ये मेंडक अल्प जल को स्वीकार करते हैं और आकेते होने के कारण टर्र-टर्र शब्द करते हुए नित्य ही महापुरुषों के मन को कचोटों रहते हैं।। १७।।

भावार्थ—वर्षाकाल में मेंढक, अपने को सब कुछ समझने वाले कुकवियों के समान वर्थ्य ही टर्र-टर्र का राग आलापते रहते हैं।

चित्तेशयः कौ जयतादयन्तु हृष्टास्ततः श्रीकुटजाः श्रयन्तु । सुमस्थवार्विन्दुदलापदेशं सुक्तामयन्तेऽप्युपहारलेशम् ॥१८॥

'इस वर्षा ऋतु में यह कामदेव पृथ्वी पर विजय प्राप्त करें' यह

कहते हुए ही मानों हर्षित हुए कुटज वृक्ष ध्याने फूछों पर ध्याकर गिरि हुई जल-किन्दुक्यों के बहाने से मोतियों का उपहार प्राप्त कर रहे हैं॥ १८॥

कीटक् चरित्रं चरितं त्वनेन पश्यांशकिन्दारुणमाशुगेन । चिरात्पतच्चातकचत्र्चुमुले निवारितं वारि तदत्र तुले ॥१९॥

हे अंशक्ति (विचारशील मित्र)। देखो इस वर्षोकालीन आशुग (पवन) ने कैंसा अथानक चरित्र आचिरत किया है कि चिरकाल के पश्चान् आकर चातक पक्षी की खुळी हुई चोंच में गिरने वाली वर्षो की जल-विच्यु के। इसने निवारण कर दिया है, अथान् रोक विया है। १६॥

भावार्थ—वेग से पवन के चलने के कारण चातक की चोंच में गिरने वाली बूद वहां न गिर कर उड़ के इधर-उधर गिर जाती है।

घनैः पराभृत इवोड्वर्गः लघुत्वमासाय विचित्रसर्गः । तुल्यार्थवृत्तिः प्रथितो धराङ्के खबोतनाम्ना चरतीति सङ्के ॥२०॥

वर्षा ऋतु में रात्रि में चमकते हुए उड़ने वाले खबोतों (जुगनू या पटवीजनो) को लक्ष्य में रख कर कवि उत्पेक्षा करते हुए कहते हैं कि पनों से (मेपां और हथीड़ों से) परामृत (ताड़ित) हो करके कि पनों खुत वा वितत्र आकार को प्राप्त हुआ, समान ऋषे वृत्ति वाला उडु वर्षा (नक्षत्र-समृह) लग्नोत नाम से प्रसिद्ध होकर मूनळ पर इथर-जबर डड़वा हुआ चमक रहा है।। २०।।

भावार्य--स्व+द्योत स्वर्थान् श्राकाश में चमकने के कारण स्वद्योत यह स्वर्थ नक्षत्र स्वीर जुगन् (पटवीजना) इन दोनों में समान रूप से रहता है इसी कारण किन ने उक्त कल्पना की है।

गतागतैदौंलिककेलिकायां सहर्स्य हुः प्राप्तपरिश्रमायाम् । पुनश्च नैषुण्यसूपैति तेषु योषा सुतोषा पुरुषायितेषु ॥२१॥

हिडोले में मूलने समय गत और आगत से (बार-बार इधर से जघर या उतर और नीचे जाने आने से) प्राप्त हुआ है परिश्रम जिसमें ऐसी वाँजिल-कीड़ा में अति सन्तुष्ट हुई श्री उन पुरुवाबितों में (पुरुष के समान आचरण करने वाली रति-कीड़ाओं में) निपुणवा को प्राप्त कर रही है। ११।

भावार्थ--वर्षाकाल में प्राय सर्वत्र स्त्रियां हिंडोलों पर मूलती हैं, उसे लक्ष्य में रलकर किन ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

म्रुखश्रियःस्तेयिनमैन्द्वन्तु विम्बं प्रहर्तुः समुदेति किन्तु । तत्रापि राहुः मुनयः समाहुदालिन्यपैतीति जवात्सुबाहुः । २२।।

मूळा पर मूळनी हुई स्त्री खपनी सुखब्री के जुराने बाले चन्द्र-बिन्च को प्रहार करने के लिए ही मानों उपर की खोर जाती है, किन्तु वहां भी (चन्द्र के पाम) राहु रहता है ऐसा सुनि जन कहते हैं, मो वह कही हमारे सुख्यन्द्र को प्रसान लेवे, इम विचार के खाते ही वेग से वह चनम सुन्ना वाजी स्त्री शीम छीट खाती है। २२॥

त्रीढिं गतानामपि वाहिनीनां सम्पर्कमासाय सुहुर्बहूनास् । बुद्धो वराको जहची रयेण जातोऽघुना विश्रमसँत्रुतानाम् ॥२३॥

प्रौद अवस्था को प्राप्त हुई और विश्वम-विलास से संयुक्त ऐसी

बहुत-सी निदयों का संगम पाकर यह दीन, जड़-बुद्धि समुद्र शीघता से श्रव बृद्ध हो रहा है ॥ २३॥

भावार्थ--जैसे कोई सूर्व युवा पुरुष श्रानेक युवनी शिवयों के साथ समागम करे, तो जल्दी चूढ़ा हो जाता है, उसी प्रकार यह जब्दि (ममुद्र) भी वर्षों के जल से उमब्दी हुई निर्देयों का सगम पाकर जल्दी से बुढ़ हो रहा है श्रवंति वह रहा है।

रसं रसित्वा अमतो वसित्वाऽष्यजन्यतोऽष्युद्धततां कशित्वा । परञ्जपुत्रजोद्गतिमण्डिनास्यमेतत्त्रमापश्य सखेऽधुनाऽस्य।(२४।।

हे मित्र, रस (मिरिरा, जल) पीकर विश्वम (नशा) के बहा होकर मुसते हुए और उद्धतपना अंधीसार करके यद्वानदा बङ्बड़ाने वाले ऐसे इस समुद्र के परण्ज- (फेत-) पुष्प के निकलने से महित सुख को तो देखी। 1 २५ ॥

भावार्थ — जैसे कोई मनुष्य मिरा को पीकर नहों से मूमने लगता है, उद्धत हो जाता है, यदा-नद्धा बकने लगता है और मुख से झाग निकल्ने लगते हैं, बेसे ही यह समुद्र भी सहस्रों निर्यों के रस (जल) को पीकर मिरोन्सण पुरुष के समान सर्व चेप्टाएं कर रहा है।

अनारताकान्तघनान्घकारे भेदं निशा-बासरयोस्तथारे । भतु यु तिश्वाप्ययुर्ति वराकी तनोति सम्प्राप्य हि चक्रवाकी ।।२५॥

निरन्तर सघन मेघों के बाच्छादित रहने से घनघोर खन्धकार बाले इस वर्षा काल में रात और दिन के मेद के नहीं प्रतीत होने पर यह बराकी (दीन) चक्रवाकी बपने भर्ता (चक्रवाक) के संग्रीम को चौर वियोग को प्राप्त हो कर ही छोगों को दिन चौर रात का भेद प्रकट कर रही है॥ २४॥

भावार्थ:- वर्षा के दिनों में सूर्य के न दिखने से चकवी ही लोगों को अपने पति-वियोग से रात्रिका और पति-संयोग से दिन को बोध कराती है।

नवाङ्क् रैरङ्क् रिता धरा तु व्योम्नः सुकन्दत्वमभृदजातु । निरुव्यतेऽस्मिन् समये मयेह यत्किञ्चिदासीच्छ्रणु भो सुदेह॥२६॥

वर्षा ऋतु में वसुन्थरा नो नब-दुर्बाङ्कृ में से ब्याप्त हो गई चौर स्थाकाश मेवों से चारों चौर व्याप्त हो गया। ऐसे समय में यहां पर जो कुछ हुआ, उसे में कहना हूँ, सो हे सुन्दर शरीर वाले मित्र, उसे सुनों।। २६।।

स्वर्गादिहायातवनो जिनस्य सोपानसम्पत्तिमित्राभ्यपस्यत् । श्रीषोडशस्त्रप्ततिं रमा या सुखोपसुप्ता निशिषश्चिमायाम् ॥२७॥

तक दिन सुख से सोती हुई क्स प्रियकारिणी रानी ने पिछकी रात्रि में स्वर्ग से वहां काने वाले जिनदेव के उत्तरने के लिए रची गई सोपान-सम्पन्ति (सीढ़ियों की परम्परा वाली निःश्रेणी) के समान सोलह क्यों की सुन्दर परम्परा को देखा। १७॥

तत्कालं च सुनष्टनिद्रनयना सम्बोधिता मागर्व-

देवीभिश्व नियोगमात्रमभितः कल्याणवास्यस्तवैः । इष्टाचारपुरस्सर् वरतनुस्तल्यं विहायाऽऽईता

प्रातःकर्म विधाय तत्कृतवती द्रव्याष्टकेनार्चनम् ॥२८॥

स्वप्रों को देखने के तस्काछ बाद ही मागध जनों (चारणों) पवं कुमारिका देवियों के, सर्व ब्रोर से कल्याणामयी वचन-सुति के नियोग मात्र को पाकर नीद के दूर ही जाने से जिसके तेत्र खुछ गये हैं, ऐसी बस पुन्दर शरीर वाली पियकारिणों रानी ने जाग कर, इट ब्राच्यणायुक्त काय्या को छोड़कर और प्रातःकालोन कियाओं को करके ब्राईन्स जिनेन्द्रों की ब्राष्ट-द्रव्य से ब्राचना (यूजा) की ॥ २८॥

तावनु सत्तमविभूषणभृषिताङ्गी

साऽऽलीकुलेन कलिता महती नताङ्गी।

पृथ्वीपति परमप्ततनुः शुभायां

देवी प्रतस्थ इति कामितया सभायाम् ॥२९॥

सत्त्रआन् उत्तमोतम जाम्यणां से जामूणित परम पवित्र हेह की चारक, महान् बिनव से नक्षीभूत श्रियकारिणों देवी ने सहेलियों के समुदाय से संयुक्त होकर स्वार्धे का फल जानने की इच्छा से हो। सथमा राजसभामें कृष्टीपति ज्यपने शाणनाथकी और शस्थान किया ॥ २६॥

नयनाम्बुजसम्प्रसादिनीं दिनपस्येव रुचिं तमोऽदिनीम् । सम्रुदीक्ष्य निजासनार्थके स्म स तां वेशयतीत्यथानके ॥३०॥

उम मिद्धार्थ राजा ने, नेत्र रूप कमलों को प्रमण करने वाली और अन्यकार को दूर करने वाली सूर्य की प्रभा के समान ज्ञानी हुई रान्नी को देखकर पाप-रहित प्वम पुरुष-रक्रूण ऐसे अपने ज्ञासन के अर्थ भाग पर बैठाया। ३०॥

विश्दांश्चसमृहाभितमणिमण्डलमण्डिते महाविमले । सुविशालेऽवनिललिते समुखते सुन्दराकारे ।।३१।। पर्वत इव हरिपीठे प्राग्णेश्वरपार्श्वसङ्गता महिषी । पञ्चपति-पार्श्वगताऽपि च बभौ सती पार्वतीव तदा ॥३२॥

निर्मेख किरण-समृद्द से श्राधित मणि-मण्डळ से मण्डित महान् निर्मेल, सुविशाल, पृथ्वी पर सुनोभिन श्रात वन्नत, सुन्दर श्राकार बार्च पर्वेत के समान् निहामन पर प्राणनाथ सिद्धार्थ के पार्थ भाग में श्राविश्वत वह एट्टानी प्रियकारिणी पशुपति सहादेव के पार्थ-गत पार्वेती सती के समान वस समय सुनोभित हुई ॥ ३२.३२ ॥

> उद्योतयत्युदितद्दन्तविद्युद्धरीचि-रंशेनु पस्य कलकुण्डलकल्पशोचिः। चिचेष चन्द्रवद्दना समयानुसारं तत्कर्णयोरिति वचोऽमृतमण्युदारम्।।३३॥

खपने दांतों की निर्मेल किरणों द्वारा महाराज सिद्धार्थ के कुरवलों की कांनि को बढ़ाने वाली उस चन्द्रसुखी रानी ने समया-तुसार खबसर प्राप्त कर राजा के दोनों कांगों में बहस्यमाण प्रकार के उदार चनामुत लोका, ऋषीन खन्तों की कहा ॥ ३३॥

श्रीजिनपद्मसादादवनौ कल्याणभागिनी च सदा।
भगवचरणप्योजभ्रमरी या संश्रुग्युत तथा।।३४॥
दृष्टा निश्रावसाने विश्वदाङ्का स्वन्मचोडश्री सहसा।
यापि मया प्राचेरवर! श्रुमाश्चमं यत्मले तस्याः।।३४॥
सज्झानैकविलोचन! वक्तव्यं श्रीमता च तङ्गवता।
न हि किश्विदपि निसर्गादगोचरं झानिनां मवति।।३६॥

जो जिनदेव के चरणों के प्रसाद से इस भूतल पर सदा कल्याण के जातत है बारे समावान के चरण-कसलों की श्रमरी है, ऐसी मैंने निज्ञा (रावि) के खबसान कार्जे (श्रमित महर में) श्रुभ चित्र बाळी सोळह स्वप्नों की परम्परा सहसा देखी है, उसे शुनिये और उसका जो श्रभ वा काश्रभ कल है उसे हे पूज्य श्रीमान, ज्ञाप कहियो क्योंकि है सच्चानरूप कांद्रितीय नेत्र बाले प्राणनाव! ब्रानियों के क्रिय स्वभावत कुछ भी अज्ञात नहीं है।। ३४-३६।।

पृथ्वीनाथः पृथुलकथनां फुल्लपाथोजनेत्रो बाणीं प्रोक्तां प्रथितसुप्रयुप्रोथया तीर्थरूपाम् । श्रुत्वा तथ्यामविकलगिरा वर्षणैर्मन्यराङ्ग इत्थं तावत्प्रथयति तरां समाथ सन्मङ्गलार्थाम् ॥३०॥

बिझाल नितन्ब-बाली रानी के द्वारा कही गई, विझाल खर्य को कहने वाली, तीर्य रूपी यथाये तरब वाली वाणी को सुनकर हर्षे से रोमाज्ञित है जड़ जिसका, ऐसा वह प्रकृतित कमल के समान बिकसिल नेत्रवाला कृष्वी का नाथ सिद्धार्थ राजा अपनी निर्दोप वाणी से उत्तम महत्व सक्स्प अर्थ के प्रतिपादक वचनों को इस प्रकार से कहने लगा। १७।।

त्वं तावदीक्षितवती शयथेऽध्यनन्यां स्वप्नावर्खिः त्वनुदृष्टिः प्रतिभासि घन्या । भो भो प्रसन्तवदने फलितं तथा स्याः कल्याणिनीहः श्रृष्णु मञ्जुतमं ममाऽऽस्यात् ॥३८॥

हे कुशोदरि, तुमने सोते समय जो अनुपम स्वप्नावली देखी है,

उससे तुम ब्रात्यन्त सौभाग्यशालिनी प्रतिभासित होती हो। हे प्रसन्न-मुखि, हे कल्याणशालिनि, मेरे मुख से उनका श्राति सुन्दर फल सुनो ।। ३८ ॥

अकलङ्कालङ्कारा सुभगे देवागमार्थमनवद्यम् । गमयन्ती सन्नयतः किलाऽऽप्तमीमस्तिताख्या वा ॥३९॥

हे सुभगे, तुम आज मुझे आप्तमीमांसा के समान प्रतीत हो रही हो। जैसे सम्बन्धमूर स्वामी के द्वारा की गई आप की मीमांसा अकल्डहुनेव-द्वारा (रचिन अष्टसती वृत्ति थे) अल्ड्रकुत हुई है, उभी प्रकार तुम भी निर्मेल आपूमणों को चारण करती हो। आप्तमीमांसा सलय से आर्थान समझीहण स्थाद्वार-याय के द्वारा निर्दोच आर्थ को प्रकट करती है और तुम भी अपनी सुन्यर चेष्टा से निर्दोच तीर्थंद्वर वेच के आपास को अक्ट कर हो हो। बे है।।

लोकत्रयैकतिलको बालक उत्फुल्लनलिननयनेऽद्य । उदरे नवावतरितो हीङ्गितमिति सन्तनोतीदम् ॥४०॥

हे प्रकृष्टित कमलनयने! तीनों लोकों का ऋदितीय तिलक ऐसा तीर्थ हुए होने वाला बालक खाज तुन्हारे गर्भ में अवतरित हुआ है। ऐसा संकेत यह स्वप्नावली दे रही है॥ ४०॥

दानं द्विरद इवासिल-दिशासु मुदितोऽथ मेदिनीचके । मुहुरपि मुखन विमलः समुक्रनाऽऽत्माऽथ सोऽवतरेत् ।।४१॥

तुमने सर्व प्रथम जो ऐरावत हाबी देखा है उसके समान तुन्हारा पुत्र इस मही-मण्डल पर समस्त दिशाओं में दान (मद जल) को कारंबार वितरण करने वाला, प्रमोद को प्राप्त एवम् निष्पाप महान् क्यास्ना होगा ॥ ४१ ॥

> मूळगुणादिसमन्वित-रत्नत्रयपूर्णधर्मश्रकटन्तु । म्रुक्तिपुरीम्रुपनेतुः धुरम्धरो वृषभवदयन्तु ॥५२॥

दूसरे स्त्र में नुमने जो वृषभ (बैंड) देखा है, उसके समान कुस्तार पुत्र भर्म की पुरा को घारण करने बाला, तथा मृड्यूण आदि से युक्त भी रस्त-त्रय से परिपूर्ण धर्म रूप शकट (गाड़ी) को मुक्ति-पुरी पहुँचाने में समये होगा ॥ भरे ॥

> दुरभिनिवेश-मदोद्धुर-कुवादिनामेव दन्तिनामदयम् । मद्मुद्भेत्तुमदीनं दक्षः खलु केशरीन्थमयम् ॥४३॥

तीसरे स्वप्न में जो केमरी (सिह) देखा है उसके समान वह पुत्र दुराप्रह रूप मद से उन्मत्त कुवादि-रूप हस्तिया के मद की निर्दयता से भेदन करने में दक्ष होगा॥ ४३॥

> कल्याणाभिषतः स्यात् सुमेरुर्जाषे ऽथ यस्य सोऽपि वरः । कमलात्मन इव विमलो गर्जेर्यथा नाकपतिभिग्रम् ॥४४॥

चौथे स्त्रप्त में तुमने जो हाथियों के द्वारा श्राभिषेक की जाती हुई छक्ष्मी देखी है वह इस बात की स्वक है कि तुन्हारे पुत्र का सुमेर के शिखर पर इन्हों के द्वारा निर्माळ जळ से कल्याण रूप स्विभिक होगा। 18 था

सुयग्रःसुरभिससुच्चय-विजृम्भिताशेषविष्टपोऽयमितः । मान्यद्विक इव च भवेद्वन्यअमरैरिहाभिमतः ॥४५॥ पांचबें स्वम्न में तुमने जो श्वमरों से गुरूजार करती हुई दो मालाएं देखी हैं, वे यह महर करती हैं कि तुम्हारा पुत्र इस लोक में सुयश की सुगन्य के समृह से समस्त जाना को क्यान करने वाला, भव्य जीत क्यों अमरों से सेवित जीर सम्मानित होगा॥ ४४॥

निजञ्जियोष्रतिसम्यो वृषामृतस्योरुधारया सिञ्चन् । विधुरिव कौंधुदमिह वा कलाउरो ह्यं धयेत्किञ्च ॥४६॥

छठे स्वप्न में तुमने जो चन्द्रमा देखा है, वह सूचित करता है कि तुम्हारा पुत्र अपनी पवित्र किरणों के समुदाय से धर्म रूप अपन की विज्ञाल धारा के द्वारा जगन को सिंचन करता हुआ इस संसार में भज्य जीव रूप कुमुरों के समुद्र को वृद्धिगत करेगा और सर्व कलाओं का धारण करने बाला होगा।। ४६।।

विकचितभव्यपयोजो नष्टाज्ञानान्धकारसन्दोहः । सुमहोऽभिकलितलोको रविरिव वा केवलालोकः ॥४७॥

सानवें स्त्रप्त में तुमने जो सूर्य देखा है, उसके समान दुन्हारा पुत्र भव्य जीव रूपी कमलों का विकासक, अञ्चान रूप अन्यकार के समुदाय का नाशक, अपने प्रताप से समस्त लोक में व्यापक और केवल आन रूप प्रकाश से समस्त जगन् को आलोकित करने वाला होगा। १४०॥

कलशद्विक इव विमलो मङ्गलकारीह भन्यजीवानाम् । तृष्णातुराय वाऽमृतसिर्द्धि श्रणतीति संसारे ॥४८॥

व्याठवें स्वप्न में तुमने जो जल-परिपूर्णदो कलका देखे हैं, सो

तुम्हारा पुत्र कळका-युगळ के समान इस संसार में मन्य जीवों का संगठकारी खौर तृष्णातुर जीवों के लिए ब्रमृत रूप सिद्धि को देने बाला होगा ॥ ४८ ॥

केलिकलामाकलयन् कुर्यात्स हि सकल लोकमतुलतया । सुदितमथो सुदितात्मा मीनद्विकवन्मदीवलये ।।४९॥

नमें स्वप्न में तुमने जो जल में कीड़ा करती हुई दो मछल्यां देखी हैं, सो उनके समान ही तुम्हारा पुत्र इस मही-मयड़ल पर स्वयं प्रमुदित रहकर खतुल केलि-कलाखोंको करता हुआ सकल लोक को प्रसन्न करेगा।। ४६॥

अष्टाधिकं सहस्रं सुलक्षणानां यथैन कमलानाम् । द्रह् इव द्वान एवं सततं क्रमनाशको भविनाम् ॥५०॥

दशवें स्वप्न में तुमने जो चष्ट खिक सहस्र कमलों से परिपूर्ण मरोबर देखा है, सो उसके समान ही तुम्हारा पुत्र उत्तम एक हजार खाठ लक्षणों का धारक, एवम निरन्तर भव्य जीवों के दुःख और पाप का माशक होगा। ५०।

जलनिधिरिव गम्भीरः प्रभवेदिह पालितस्थितिर्निवहः । लब्धीनां तु नवानां केवलजानां निधीनां वा ॥४१॥

ग्यारहवें स्वप्न में जो तुमने समुद्र देखा है, सो उसके समान ही तुम्हारा यह पुत्र गम्भीर, लोक-खिति का पालक, नव निषियों और केवल झान-जनित नव लच्चियों का धारक होगा ॥ ४१।

सुपदं समुन्नतेः स्यान्छितराज्यपदानुराग इह सततम् । चामीकर-चारुरुचिः सिंहासनवद्वरिष्टः सः ॥५२॥ बारहवें स्वप्न में तुमने जो मुन्दर सिंहासन देखा है, उसके समान ही तुस्हारा यह होने बाला पुत्र सदा ही समुक्ति का मुपद (उत्तम स्वान) होगा, शिव-राज्य के पद का अनुगगी होगा और सन्तम मुक्षण के समान सर्वेश्रेष्ठ उत्तम कांति का भारक होगा।। ४२॥

सुरसार्थेः संसेन्यो ह्यभीष्टदेशोपलन्धिहेतुरपि । हे देवि तब सुपुत्रः विमानवद्गै भवेत्पृतः ॥५३।

तेरहवें स्वप्न में तुमने जो सुर-सिवित विमान देखा है, सो हे देखि। उसके समान ही तुम्हारा वह सुपुत्र सुर-साथ (देव-समूह) सै ब्यवता सुरस-श्रम्भ वाले पुरुषों से सिवित, खमीछ देश मोक्ष की प्राप्ति का हेत और खति पवित्रास्ता होगा।। ४३।।

सततं सुगीततीथों निख्लिमहीमण्डले महाविमलः। यशसा विश्रुत एवं घवलेन हि नागमन्दिरवत् ॥५४॥

चौदह वें खप्न में नुमने जो धवल वर्णमाल। नाग-मन्द्रिर देखा है, उसके समान ही तुन्हारा यह पुत्र समस्त मही मपढल पर सदा ही सुगीत तीर्थ होगा, अर्थान् जिसके धर्म तीर्थ का गान चिरकाल तक इस संसार में होता रहेगा। वह पुत्र महा विमल पत्रम् उज्ज्वल धवल यहा से विश्वत (विख्यात) होगा॥ ४४॥

सुगुणैरमलैर्गु णितो स्त्नैरिव स्त्नसन्निरिह सम्यः । लोकानां सकलानां मनोऽनुकूलैरनन्तैः सः ॥४४॥

पन्द्रहवें स्वप्न में तुमने जो निर्मल रत्नों की राशि देखी है, उसके समान ही तुम्हारा पुत्र समस्त लोगों के मनोऽतुकूल ज्ञाचरण करने वाला, अप्रतन्त निर्मल गुण रूप रत्नों से परिपूर्ण एवम् महा रमणीक होगा ॥ ४४ ॥

अपि दारुणोदितानां चिरजातानां च कर्मणां निवहस् । स नथेद्रस्मीभावं बह्विसमृहो यथा विशदः ।।५६॥

सोलहवें स्वप्न में तुमने जो धूम-रहिन निर्मल अप्निका समूद् देखा है, सो हे देखि! तुम्हाग यह पुत्र भी चिरकालीन, दास्ण परि-पाकवाले कर्मों का समूद्द सम्म करके अपने निर्मल आस्म-स्वरूप को प्राप्त करेगा। ॥ ४।।

सबुन्नतात्मा गजराजवत्त्वया धुरन्थरोऽसी घवलं (ऽवनी यथा । स्वतन्त्रवृत्तिः प्रतिभातु सिंहबद्रमात्मवच्छश्वदस्तिष्टतोत्सवः ॥५७ द्विदामवत्स्यात्सुमनःस्यकं पुनः प्रशादभूमिः शिवदसमस्तु नः । दिनेशवद्यः पयदर्शको भवेद् द्विकुम्भवन्मङ्गलकुजवज्जवे ॥५८॥ विनोदपूर्णो स्वयुग्मसम्मितिः समः पयोद्येः परिपालितस्थितिः । तटाकवद् द्वभुतौ क्रमच्छिदं सुरीतवर्त्व गौरवकारि सम्बिदं ॥५९॥ विमानवदः सुरसार्थ-संस्तवः सुरीततार्थः स्त्तु नागलोकवत् । गुणैरुपेतो स्विव रत्नराशिवत्युनीततामभृषयातु विद्ववत् ॥६०॥

हे कल्यागुआतिनी प्रिय रानी ! सर्व स्वग्नों का मार यह है कि तुम्हारा यह होने वाळा पुत्र संसार में गजराज के समान समुत्रत महास्मा, भवल पुरम्बर (बृवम) के समान घर्मेपुरा का धारक, सिंह के समान स्वतन्त्र बृक्ति, सा (कस्मी) के समान निरस्तर प्रावस्त्रक इत्सर्वों से मण्डित, माल्वद्धिक के समान सुमर्ती (पुष्पों और सजनों) का स्थल, चन्द्र के समान इस सबकी प्रसादभूषि, दिनेश (सूर्य) के समान संसार में मोक्षमार्ग का प्रदर्श के, कल्डरा-गुगल के समान जगत् में मङ्गल-कारक, सीन-गुगल के समान जिनोद-गुग स्वपुत्र के समान लोक एवम् भर्म की भर्योदा का परिपालक, सरोवर के समान संसार ताप-सन्तत्र शरीरधारियों के क्रम (बकान) का खेदक, सिंहासन के समान गौरवकारी, विमान के समान देव-समृह से संसुत, नागलोक के समान स्थापत सीव, रत्तराशि के समान गुणों से संगुक्त और अपित के समान कर्महण ईचन का दाहक एवम् पवित्रता का धारक होगा॥ ४०-६०॥

देवि ! पुत्र इति भृत्रयाधिपो निश्चयेन तव तीर्थनायकः । गर्भ इष्ट इह वे सर्ता कचित्स्वप्नवृन्दमफलं न जायते ॥६१॥

हे देवि ! तुम्हारा गर्भ में खाया हुआ यह पुत्र निश्चय से तीनों स्रोकों का स्थामी खौर तीर्थ-नायक (नीर्थहर) होगा। क्योंकि, सन्-पुरुषों के स्वप्र-समुद्द कभी निष्कल (कल-रहित) नहीं होते हैं।। दिश।

वाणीमित्थममोघमङ्गलमयीमाकण्यं सा स्वामिनो वामोरुख महीपतेर्मितमतो मिष्टामश्र श्रीष्टुखात् । अङ्कप्राप्ततुतेत्र कण्टकितनुर्हेर्षाश्रुसम्बाहिनी जाता यत्युतमात्र एव सुखदस्तीर्थेश्वरे किस्पुनः ।।६२।।

वह वामोरु (सुन्दर जवाच्यां वाली) प्रिवकारिणी रानी कारने मितमान्, महीपित प्राणनाव के श्री मुख से इस प्रकार की कभी च्यर्थ नहीं जानेवाली मङ्गळमधी मधुर वाणी को सुनकर हवीशुर्जी को बहाती हुई गोद में प्राप्त दुए शुक के समान खानन्द से रोमाख़ित हो गई। युन-मात्र की प्राप्ति हो सुखद होती है, फिर तीर्थेश्वर जेसे पुत्र के प्राप्त होने पर तो सुखका ठिकानाही क्याहै ॥ ६२ ॥

तदिह सुर-सुरेशाः प्राप्य सद्धर्मलेशा वरपटह-रणाद्यैः किञ्चनश्रेष्ठपाद्यैः ।

वरपटहःरणाद्यः किञ्चनश्रष्ठपाद्यः । नव-नवमपि कृत्वा ते ग्रहस्तां च जुत्वा

सद्दयकलिताङ्गी जम्मुरिष्टं वराङ्गीम् ॥६३॥

इसी समय भगवान के गर्भावतरण को जान करके सद्धर्भ के धारक देव और देवेन्द्र गण यहां खाये और उत्तम भेरी, रण-पूळ खादि वागों से तथा पुणादि श्रेष्ठ पुजन सामग्री से खभिनव अपनेत पुजन करके और उस सहायोदय से गुक्त देह की धारण करने वाली खुन्दरी रानी को वारंवार नमस्कार करके अपने-अपने इष्ट स्थान को खहेन गये। ६२ ॥

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्क्क्षेत्रः स सुदुवे भूरामलेत्याह्वयं वाणीभूषण-वर्णिनं घृतवरी देवी च यं श्रीचयम् । वर्षतोर्जिनमातुराचशयनानन्दस्य संख्यापनं सर्गस्तुर्य इंदैतदुक्त उचितः सन्तोषयन् सन्मनः ॥४॥ इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्श्वज्ञी और घृतवरी देवी से

इस प्रकार श्रीमान सेठ चतुर्भुजजी और पृतवरी देवी से उत्तक्ष हुए वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी पंट भूरामल वर्तमान सुनि ह्यान सागर द्वारा विरचित इस वीरोद्य काल्य में भगवाच की माता के स्थान-दुश्त का भर्णन करने-चाला और देवागमन से मन को सन्तुष्ट करने वाला यह चौषा सर्ग समाप्त हुखा॥ ४॥



अथ पञ्चमः सर्गः

अथाभवद् च्योम्नि महाप्रकाशः स्वर्गातिशायी सहसा तदा सः । किमेतदित्यं हृदि काकुभावः कुर्वन् जनानां प्रचलस्प्रभावः ॥१॥

भगवान महावीरके गर्भ में खाने के पश्चान् खाकाश में सूर्य के प्रकाश को भी उल्लघन करने वाला खौर उत्तरोतर बृद्धि को प्राप्त होने वाला महान-अकाश महसा दिखाई दिया, जिसे देखकर 'यह क्या है' इस प्रकार का तर्क-वितर्क लोगों के हृदय में उत्पन्न हुखा। सभी लोग उस प्रकाश-पुष्त से प्रभावित हुए ॥ १॥

क्षणोत्तरं सन्निधिमाजगाम श्रीदेवतानां निवहः स नाम । तासां किलाऽऽतिथ्यविधीं नरेश उद्घीवक्षवोद्यत आदरे सः ॥२॥

इसके एक क्षण बाद ही श्री, ही आदि देवताओं का वह प्रकाशभयी समृह छोगों के समीप आया। वसे आता हुआ देखकर वह सिद्धार्थ राजा खड़े होकर उन देवियों के आतिष्य-सस्कार की विधि में उदात हुआ।। २।।

हेतुर्नरद्वारि समागमाय सुरश्रियः कोऽस्ति किलेतिकायः । दुनोति चित्तं मम तर्क एष प्रयुक्तवान् वाक्यमिदं नरेशः ॥३॥

श्राप देव-लक्ष्मियों का सनुष्य के द्वार पर श्रागमन का क्या कौनसा कारण है, यह वितर्क मेरे चित्त में उथल-पुथल कर रहा है। ऐसा वाक्य उस सिखार्च नरेश ने कहा॥ ३॥ विरोप-क्शेक-पठिल 'नर-द्वारि' और सुरिश्रयः ये दोनों पद इययंक हैं। तदनुसार दूसरा अर्थ यह है कि आप ससृद्धिशाल्यिं का सुस दीन (गरीव) के द्वार पर आने का क्या कारण है, ऐसा राजा ने कहा।

गुरोर्गु रूणां भवतो निरीक्षाऽस्माकं विभो ! भाग्यविधेः परीक्षा । तद्रथमेवेयमिहास्ति दीक्षा न काचिदन्या प्रतिभाति भिक्षा ॥॥॥

देषियों ने उत्तर में कहा-हे विश्वो (स्वामित्) जगदु-गुरु जिनेन्द्र के गुरु (पिता) ऐसे खापके दर्शनार्थ हम छोगों का क्यागतन हुआ है। यह हमारे आय का परीज्ञा-काछ है-पुरुष अवसर है। उसी के छिए हम छोग यहां आईं हैं, और कोई कारण हमारे आने का नहीं है।।।।

अन्तः पुरे तीर्थकृतोऽवतारः स्यात्तस्य सेवैव सुरीसुसारः । चकाक्रया लिप्सुरसाँ त्वदाक्षां सरीगणः स्यात्सफलोऽपि भाग्यात ।।

ब्यन्तःपुर में महारानी प्रियकारिणों के गर्भ में तीर्थ हूर भगवान् का व्यवतार हुबा है, उनकी सेवा करना ही हम सब देवियों के बात का सार (परम लाभ) है। हम सब मृत्र की ब्याहा से बाई हैं और व्यव हम देवीगण आपकी ब्यनुहा प्राप्त करने के लिए उस्मुक हैं, सीमाम्य से हमारा यह मनोरस सुकल होये। । ।।

इत्थं मवन् कत्र्चुकिना सनाथः समेत्य मातुर्निकटं तदाऽथ । प्रणम्य तां तत्पदयोः सपयी-परो वभृवेति जगुर्नुवर्याः ॥६॥

इस प्रकार कहकर और राजा की अध्नुझा प्राप्त कर वह देवियों का समुदाय कआ्चुकी के साथ माता के निकट जाकर और उन्हें प्रणाम कर वनके चरणें की पूजा के लिए तैयार हुआ। ऐसा श्रेष्ठ पुराण पुरुष कहते हैं॥ ६॥

न जातु ते दुःखदमाचरामः सदा सुखस्यैव तव स्मरामः । शुक्कं च तेऽनुग्रहमेव यामस्त्वदिङ्गतोऽन्यम मनाग् वदामः ॥७॥

उन देवियों ने कहा -हम मब आपको दुःख पहुँचाने वाला कोई कान नहीं करेंगी, किन्तु आपको सुख पहुँचाने वाला ही कार्य करेंगी। इस आपसे शुक्क (भेट या वेतन) में आपका केवल अनुमह ही चाहती हैं। इस लोग आपके सकेत वा आभिशाय के प्रतिकृत जरासा भी अन्य कुछ नहीं कहेंगी।। ७॥

दत्वा निजीयं हृदयं तु तस्यै लब्धा पदं तद्भृदि किञ्च शस्यैः। विनत्युपर्वेर्वचनैर्जनन्याः सेवासु देव्यो विभवुः सुधन्याः ॥८॥

इस प्रकार जिनस्रता से परिपूर्ण प्रद्यंतनीय वचनों से उस माता को अपना अभिप्राय कह कर और उनके हृदय में अपना स्थान जमा कर वे देखियां माता की सेवामें छग कर अपने आपको सुधन्य मानती हुई ॥ ८॥

प्रमे दर्दा दर्पणमादरेण दृष्टुं मुखं मञ्जुदशो खेण । स्देषु कतु^रं मृदु मञ्जनं च वक्त्रं तथा सालियतुं जलं च ॥९॥

उन देवियों में से किसी ने प्रातःकाल माना के अथन-कक्ष से बाहिर खाते ही उस सुन्य-नयना को शुक्ष देखने के लिए कादर के साथ दर्पण हिया,तो किसी ने शीख दोतों की युद्धि के लिए मंत्रा कर और किसी खप्य देवी ने सुन्त को बोने के लिए जल दिया॥ स् तनुं परोद्धर्तयितुं गतापि कयाऽभिषेकाय क-क्लिप्तिरापि । जहप्रसङ्गोऽत्र कुनः समस्तु कृत्वेति चित्ते किल तर्कवस्तु ॥१०॥

सन्मार्जिता प्रोञ्छनकेन तस्याः कया पुनर्गात्रतिः प्रशस्या । दुक्कमन्या समदात्सुशानं समादरोऽस्या गुणवत्स्वथातः ॥१९॥

कोई देवी माना के शारीर का उबटन करने लगी, तो कोई स्तान के लिए जल लाने को जबत हुई। किसी ने साना करावा, तो किसी ने मां के प्रशासनीय शारीर के जरर पड़े हुउ जल को यह विचार करके कराई से पाछा कि इस पित्रज उत्तम माता के साथ जड़ (सूख, द्वितीय पक्ष में जल) का प्रसंग क्यों रहे ? माता का गुण-बानों के प्रांत आप तर इसारा करा किसी देवी ने पहिनते के लिए साता को उत्तम क्या दिया। १० ११।

बबन्ध काचित्कवरी च तस्या नियमेतो वक्रिमभावदृश्याम् । तस्याः दशोश्रञ्जलयोस्तथाऽन्याऽलुजनं चकारातिशितं वदान्या ।।

किसी देवी ने स्वभाव से उस माता के विक्रम (कुटिल) भाव हर दिखने वाले छुंचराने बालों का जूड़ा बांघा, तो किसी चतुर देवी ने माता के चंचल नेत्रों में अत्यन्त काला श्रांजन लगाया ॥ १२॥

श्रुती सुशास्त्रश्रवणात् पुनीते पयोजपूजामत एव नीते । सर्वेषु चाक्केषु विभिष्टताले चकार काचित्तिरुकं तु भाले ।।१३।३

दोनों कान उत्तम झाख़ों के सुनने से पवित्र हुए हैं, अनुत्र व कुमलों से पूजा को पात हुर, अर्थात् किसी देवी ने माता के कानों में कुमल (कुनफुल) लगा दिये। यह भाल (मस्तक) शरीर के सर्व अंगों में विशिष्टता वाला है, अर्थात् उत्तम है, यह विचार कर किसी देवी ने उस पर तिलक लगा दिया।। १३॥

अलञ्जकारान्यसुरी रवेण पादौ पुनर्नः पुरयोर्द्ध येन । चिभेष कण्ठे मृदु पुष्पहारं संछादयन्ती कुचयोरिहारम् ॥१४॥

कोई खन्य देवी माता के दोनों वरणों को शीव्रता से नुपुरों के जोड़े से खलकृत करती हुई। किसी देवी ने दोनों स्तनों को खाच्छा-दिन करते हुए माता के करठ में सुकोयल पुष्पहार पहिनाया॥ १४॥

काचिद् भुजेऽदादिह बाहुबन्धं करे परा कङ्कणमाबबन्ध । श्रीवीरमातुर्वेलयानि तानि माणिक्य-मुक्तादिविनिर्मितानि ॥१४॥

किसी देवी ने माना की गुजाओं पर बाहुबन्ध बांधा, किसी ने माना के हाथों में कडूण बांधा। किसी देवी ने श्री वीर अगवान, की माना के हाथों में माणिक, मोनी आदि से रचे हुए कगनों को पहिनाया। १६।।

तत्राईतोऽचींसमयेऽर्चनायः, योग्यानि वस्तूनि तदा प्रदायः। तया समं ता जगदेकसेञ्यमामेजुरुत्साहयुताः सुदेञ्यः ॥१६॥

उत्साह-संयुक्त वे सुरेवियां भगवान् की पूजन के समय पूजन के लिए योग्य उचित वस्तुओं को दे करके उस भाता के साथ ही जगन् के द्वारा परम सेव्य जिनेन्द्रदेव की उपासना-पूजा करने लगी ॥ १६॥

एका मृदङ्गं प्रद्धार बीणामन्या सुमज्जीरमथ प्रवीणा । मातुः स्वरे गातुमभृत् प्रयुक्ता जिनव्रमोर्भक्तिरसेण युक्ता ॥१७॥ किसी एक देवी ने सुदङ्ग लिया, तो किसी दूबरी ने बीधा छठाया, तीसरी कुझल देवी ने मंजीरे उठाये। और कोई जिन मग-बाग् की मिक्त रूप रस से युक्त इोकर माता के स्वर में स्वर मिलाकर गांने के लिए प्रदुस हुई।। १७।।

चकार काचिद् युवतिः सुलास्यं स्वकीयसंसत्सुकृतैकभाष्यम् । जगंद्विजैतुर्द्धदत्र दास्यं पापस्य कुर्वाणमिवाऽऽशु हास्यम् ॥१८॥

कोई युवती अपने पूर्वोपार्जित सुक्रत के भाष्य रूप (पुष्य स्वरूप), जगदु-विजयी जिनराज की दासता को करती हुई और पाप की मार्गो हॅंमी-सी उड़ाती हुई सुन्दर मृत्य को करने छगी।। १८॥

अर्चीवसाने गुणरूपचर्चा द्वारा समस्तृत विनष्टवर्चाः । मतिः किलेतीक्रितमेत्य मातुर्देव्यो ययुर्जीवमपीह जातु ।।१९॥

पुजन के खन्त में खन भगवान के गुण रूप चर्चा-द्वारा हम सब लोगों में पाप की नाश करने वाली बुद्धि हो, अयोन् अब हम सब की बुद्धि भगवद्-गुणों की चर्चों में लगे जिससे कि सब पापों का नाश हो, ऐसा माता का अभिमाय जानकर सभी देवियां अपने नृत्य खादि कार्यों के लोड़ कर मौत वारण करती हुई ॥ १९॥

सदुक्तये दातुमिनायनं सा रदालिरश्मिच्छलदीपनंशा । एवं प्रकारा समभृद् रसन्ना श्रीमातुरेवात्र न चालसन्ना ॥२०॥

दन्त-पंक्ति की कंग्लि के छळ से दीक्कों के बंश वाशी, खालस्य रहित ऐसी भी जिनसज्ज की माता की रसना (वाणी) उत्तम इक्ति (चर्ची) की खबसर प्रचान करने के लिए ही मानों इस प्रकार प्रकंट हुई।। २०॥ यथेच्छमायुच्छत भोः सुदेव्याः युष्मामिर्सत प्रस्तेत सेव्यः । अहं प्रभोरेवसुपासिका वा सङ्कोचवार्षिः व्रवस्त मात्रा ॥२१॥

हे देवियो ! तुम लोगों को जो कुछ पूछना हो, अपनी इच्छा के मातुसार पूछो । तुम्तारे भी प्रश्नु ही जगस्य हैं चौर में भी बसु की ही उपासना करने वाली हूँ। तुम सब चर्चो कर नाय के द्वारा सङ्कीच कर समुद्र के पार को प्राप्त होच्यो ॥ २१॥

न चातकीनां प्रहरेत् पिपासां षयोदमाला किस्र जनमना सा । युष्माकमाञ्चक्कितसुद्धरेयं तकें रुचिं किक्स सस्रद्धरेयम् ।।२२।।

यदि सेपमाला चिरकाल से पिपासाकुलित चातकियों की प्यास को दूर न करे, तो उसके जन्म से क्या लाभ है ? मैं बाब तुम लोगों की शकाब्यों को क्यों न दूर करू और तस्य के तर्क-वितर्क (ऊद्धा-पीड कर विचार) में क्यों न कवि करू ।। २२ ।।

नैसर्गिका मेऽभिरुचिर्वितकें यथाच्छता सम्भवतीह ककें । चिश्वम्मरस्याद्य सती कृपा त सुधेव साहाय्यकरी विभात ॥२३॥

तर्क-वितर्क में श्रायोत् यथार्ष तस्य के चिन्तन करने में सेरी स्वाभाविक श्राभरिष है, जैसे कि दर्पण में स्वन्छता स्वभावतः होती है। किर तो श्राज विश्व के पालक तीर्यङ्कर देव की क्रुपा है, स्मे बह सुधा (श्रमुत) के तुल्य सहायता करने वाली होवे॥ २३॥

सावार्थ-सुधा नाम चूना का भी है। जैसे दर्पण चूना की सहायता से एकदम स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् की रूपा से हमारी बुद्धि भी स्वच्छ हो रही है। इत्येवमारवासनतः सुरीणां वभूव सङ्कोचतिः सुरीणा । यथा प्रभातोदयतोऽन्धकार-सत्ता विनश्येदयि बुद्धिघार ॥२४॥

हे बुद्धि-धारक! जैसे प्रभात के उदय से अन्यकार की सत्ता विळकुळ विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार माता के उक्त प्रकार से दियों गये आरबासत-द्वारा देवियों का संकोचपना विळकुळ दूर हो गया। २२।।

शिरो गुरुत्वान्नतिमाप भक्ति-तुलास्थितं चेत्युचितैत युक्तिः। करद्वयी कुटमलकोमला सा समुच्चचालापि तदैव तासाम् ॥२५॥

बसी समय बन देनियों के भक्ति-रूपी तुछा (तराजू) के एक बढ़े पर ऋवस्थित किर तो भारी होने से नति (नस्रता) को प्राप्त हो गया और दूसरे पड़ेदें पर ऋवस्थित पुष्पकिकता से कोसक कर-युगळ हरूके होने से ऊपर चले गये, सो यह युक्ति घेचत ही हैं। गरसा

आवार्थ — जैसे तराजू के जिस पळड़े पर भारी वस्तु रखी हो, तो वह नीचे को मुक जाता है और हळकी वजन बाला पळड़ा ऊपर को उठ जाता है, इसी प्रकार माता की उक आरवासन देने बाळी बाणी को मुनकर कुतब्रता एवं भक्ति से देवियों के मस्तक सुक्र गये और हस्त-पुगळ ऊपर मस्तक से छग गये। अप्योत चन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर हर्ष से गद्दगद् एवं अक्ति से पूरित होकर माता को तसस्कार किया

मातुर्म्युः सं चन्द्रमिवेत्य हस्ती सङ्कोचमाप्ती तु सरोजशस्ती । कुमारिकाणामिति युक्तमेव विमाति भो मो जिनराज देव ॥२६॥

हे जिनराज देव! माता के मुख को चन्द्र के समान देखकर

उन कुमारिका देवियों के कमल के समान लाल वर्ण वाले उत्तम हाथ सकोच को प्राप्त हो गये, सो यह बात ठीक ही प्रतीत होती है ॥२६॥

भावार्थ--कमल सूर्य के उदय में विकसित होते हैं और चन्द्र के उदय में सकुचित हो जाते हैं। देवियों के हाथ भी कमल-तुल्य थे, सो वे माता के मुख-चन्द्र को देखकर ही मानों संकुचित हो गये। प्रकृत में भाव यह है कि माता को देखते ही उन देवियों ने अपने-अपने दोनों हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्कार किया।

ललाटमिन्द्चितमेव तासां पदाञ्जयोर्मातुरवाप साऽऽशा । अभृतपूर्वेत्यवलोकनाय सकौतुका वागशुनोदियाय ॥२७॥

उन देवियों का ललाट चन्द्र-तुल्य है, किन्तु यह माता के चरण-कमलों की प्राप्त हो गया। किन्तु यह बात तो क्यमूत-पूर्व ही है, मानी यही देलने के लिए उनकी कोतुक से भरी हुई वाणी खब इस प्रकार प्रकट हुई ॥ २७॥

भावार्थ--उन देवियों ने माता से प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया।

दुःखं जनोऽभ्येति क्रुतोऽथ पापात्, पापे क्रुतो घीरविवेकतापात् । क्रुतोऽविवेकः स च मोहशापात्, मोहक्षतिः क्रिं जगतांदुरापा ।।

हे मात:! जीव दुःस को किस कारण से प्राप्त होता है ? उत्तर-पाप करने से! प्ररत-पाप में बुद्धि क्यों होती है ? उत्तर-ऋषिवेक के प्रतार से । प्ररत-ऋषिवेक क्यों उराज होता है ? उत्तर-मोह के झाप से अर्थों मोह कर्म के उपय से जीवों के ऋषिवेक उत्पन्न होता है। और इस मोह का विनाझ करना जान्-जनों के लिए बड़ा कठिन हैं।। रहा। स्यात्साऽपरागस्य इदीह शुद्धचा कुतोऽपरागः परमात्मबुद्धचा । इत्यस्तु बुद्धिः परमात्मनीना कुतोऽप्युपायात्सुतरामहीना ॥२९॥

प्रस्त-तो फिर उस मोह का विनाझ केसे सम्भव है ? उत्तर-राग-रहित पुरुष के हृदय में उत्पन्न हुई विशुद्धि से मोह का विनाझ सम्भव है। प्रस्त-राग का श्रभाव कैसे होता है ? उत्तर-परमास्य-विषयक बुद्धि से। प्रस्त-परमास्य-विषयक उन्नत (हड़) बुद्धि कैसे होती है ? उत्तर-उपासे अयोग् भगवान की भक्ति करते से, उनके बचनों पर शद्धा रखने से खीर उनके कबनातुसार खाचरण से परमास्य-विषयक बुद्धि प्रकट होती है।। २६।।

रागः कियानस्ति स देह-सेवः, देहरच कीटक् शठ एष एव । कथं शठः पुष्टिमितश्च नरयत्ययं जनः किन्तु तदीयवरयः॥२०॥

प्रस्त-राग क्या बस्तु है ? उत्तर-देह की सेवा करता ही राग है। प्रस्त-यह देह केंसा है ? उत्तर-यह शठ (जड़) है। प्रस्त-यह शठ क्यों है ? उत्तर-क्योंकि यह पोषण किये जाने पर भी नष्ट हो जाता है। किन्तु दुःख है कि यह संसारी प्राणी किर भी उसीके बश हो रहा है।। ३०॥

कुतो ऽस्य वश्यः न हि तत्त्वबुद्धिस्तद्-धीः कुतः स्याद्यदि चित्तशुद्धिः। श्रद्धेश्च (केद्धाः जिनवाक्श्रयोगस्तेनागदेनेव निरेति रोगः ॥३१॥

प्रस्त-तो फिर यह जीव उसके वश क्यों हो रहा है ? उत्तर-क्योंकि इसके पास तत्त्व-दुद्धि, अवीत् देश-उपारेय का विवेक नहीं है । प्रस्त-फिर यह तत्त्व-दुद्धि केसे प्राप्त होती है ? उत्तर-विद चित्त में श्चित हो । प्रस्त-उस चित्त-शुद्धि का द्वार क्या है ? उत्तर-जिन वचनों का उपथोग करना, अर्थात् उन पर अग्रस्छ करना ही चिच-शृद्धि का द्वार है और इस अोगिंघ के द्वारा ही संसार का यह जन्म-मरण के चक्र-क्रप रोग दूर होता है॥ ३१॥

मान्यं क्रुतोऽर्हद्वचनं समस्तु सत्यं यतस्तत्र समस्तु वस्तु । तस्मिन्नसत्यस्य क्रुतोऽस्त्वभाव उक्ते तदीये न विरोधभावः ॥३२॥

प्रश्न-श्रार्ट्डन जिनेन्द्र के ही बचन मान्य क्यों हैं ? उत्तर-क्योंकि वे सत्य हैं और सत्य बचन में ही बस्तु-तरब समाविषट रहता है। प्रश्न-श्रार्ट्डबनों में श्रास्त्यपने का श्रामाव क्यों है ? उत्तर-क्योंकि उनके कथन में पृत्रीपर विशोध-भाव नहीं है। ३२॥

किं तत्र जीयाद्विरोधभावः विज्ञाननः सन्तुलितः प्रभावः । अहो न कल्याणकरी प्रणीतिर्गतानगरयैवभिद्यास्त्वपीति ॥३३॥

प्रश्त-उनके बचनों में ऋषिरोध आय क्यों है ? उत्तर-क्योंकि उनके बचन विज्ञान से ऋषीत् केवल्य रूप विशिष्ट ज्ञान से प्रति-पादित होने के कारण सन्तुळित प्रभाव वाले हैं। ऋहो देवियों ! जो बातें केवळ गतानुगतिकता से (भेड़-बाळ से) की जाती हैं, उनका ऋष्यरण कल्याणकारी नहीं होता ॥ ३३ ॥

एवं सुविश्रान्तिमभीप्सुमेतां विज्ञाय विज्ञा रुचिवेदने ताः । विज्ञश्रष्टः साम्प्रतमत्र देव्यः मितो हि भृयादगदोऽपि सेव्यः ॥३४॥

इस प्रकार से प्रश्नोत्तरकाल में ही उन बिझ देवियों ने माता को बिकाम करने की इच्छुक जानकर प्रश्न पूछने से विकाम लिया, अर्थात् उन्होंने प्रश्न पूछना बन्द कर दिया। क्योंकि औपिय परिमित ही सेट्य होती है। ३४॥ अवेत्य धुक्तेः समयं विवेकात् नानामृदुव्यञ्जनपूर्णमेका । अमत्रमत्र प्रद्वार मातुरग्रे निजं कौशलमित्यजातु ॥३४॥

पुनः भोजन का समय जानकर विवेक से किसी देवी ने नाना प्रकार के सुदु एवं मिष्ट व्यक्तनों से परिपूर्ण बाल को माता के आगे रखा और अपने कौंशल को प्रकट किया।। २४॥

माता समास्त्राय रसं तदीयं यावत्सुतृप्तिं समगान्मृदीयः । ताम्बूलमन्या प्रददौ प्रसत्तिप्रदं भवेत्रत्प्रकृतानुरक्ति ।।३६।।

माता ने उस सरस भोजन को खाकर ज्यों ही ख्रात्यन तृप्ति का खनुभव किया, त्यों ही किसी दूमरी देवी ने प्रकृति के खनुकूछ एवं प्रसन्नतावर्षक ताम्यूल लाकर दिया।। ३६॥

यदोपसान्द्रो प्रविहर्तु मम्बान्त्रित तदा तत्सुकरावलम्बात् । विनोदवार्तामनुनम्बियात्री समं तयाऽगाच्छनकैः सगात्री ॥३७॥

भोजन के उपरान्त भवन के समीपवर्ती उद्यान में बिहार करती हुई माता को किसी देवी ने अपने हाथ का सहारा दिया और यह सुन्दर शरीर वाळी माता उसके साथ विनोद-वार्ता करनी हुई धीरे-धीरे डथर उसर वसने ळगी॥ ३७॥

चकार शय्यां श्रयनाय तस्याः काचित् सुपुष्पैरभितः प्रशस्याम् । संवाहनेऽन्या पदयोर्निलन्ना बभूव निद्रा न यतोऽस्तु भग्ना ।३८।

रात्रि के समय किसी देवी ने उस माता के सोने के लिए उत्तम पुष्पों के द्वारा शय्या को चारों खोर से अच्छी तरह सजाया। जब माता उस पर लेट गई तो कुछ देवियां माता के चरणों को दवाने में संख्या हो गईं, जिससे कि माता की नींद भग्न नहीं होवे, अर्थान् माता सुख की नोंद सोवें ॥ ३८ ॥

एकाऽन्विता वीजनमेव कर्तुं केशान् विकीर्णानपरा प्रधर्तु म् । बभूव चातुर्यमपूर्वमासां प्रत्येककार्ये खलु निष्प्रयासात् ॥३९॥

माता के सोते समय कोई पंखा झलने लगी, तो कोई माता के बिकारे हुए केशों को सम्झारने लगी। इस प्रकार से उन देवियों का माता की सेवा के प्रत्येक कार्य में खनायाम ही खपूर्व चातुर्य प्रकट हुआ।। ३६॥

त्रियं मुखेऽम्बा हियमत्र नेत्रयोर्धार्तं स्वके कीर्तिम्रोजराजयोः । बुद्धं विधाने च रमां वृषकमे समादधाना विवसी गृहाश्रमे ॥४०॥

माता अपने मुख में तो श्री को, नेत्रों में ही को, सन में भृति को, दोनों डरोजराजों (कुचें) में कीर्ति को, कार्य-सन्पादन में बुद्धि को और धर्म-कार्य में उक्ष्मी को धारण करती हुई गृहाश्रम में ही अस्यन्त जोभित हुई।। १८।।

भावार्थ—माता की सेवार्थ जो श्री द्वी उपादि देवियां आई थीं उन्हें मानों माता ने उक्त प्रकार से उपात्मसात् कर लिया, यह भाव कवि ने व्यक्त किया है।

सुपल्छवारूयानतया सदैवाऽतुभावयन्त्यो जननीस्चदे वा । देच्योऽन्वगुस्तां मधुरां निदानाल्छता यथाकौतुकसम्विधाना ॥४१॥

जिस प्रकार पुरुपों को धारण करने वाली और उत्तम कोमल

परुखवों से युक्त कता बसन्त की शोधा को बढ़ाती है, उसी प्रकार वे देखियां भी उत्तम पर (चचन) और आध्यानों से उस माधुर्य-सवी माता की वसन्त उद्धु के समाज अभाव से हमें और कौतुक को बढ़ाती हुई सेवा करती थीं ॥ ४१॥

मातुर्मनोरथमनुप्रविधानदक्षा देव्योऽभ्युपासनसमर्थनकारिपक्षाः । माता च कौशलमवेत्य तदत्र तासां गर्भक्षणं निजमतीतवती सुदा सा।।

माता की इच्छा के अनुकुल कार्य करने में वृक्ष और उनकी सर्व प्रकार से उपायना करने में साथ पक्ष वाळी वे देखियां माता की सेवा में सदा सावधान रहती थी और माता उनकी कार्य-कुसलता को देख-देख कर हुएँ से अपने गर्भ के समय की विता रही थी।।४२॥

श्रीनान् श्रेष्टिचतुर्भु जः स सुबुवे भूरामसेत्याह्वयं वाणीभूषणवर्णिनं छृतवरी देवी च यं धीचयम् ।

तेनास्मिन् रचिते यथोक्तकथने सर्गोऽस्तिकायान्त्रितः देवीनां जिनमातसेत्रनजुषां संदर्भनाय स्थितिः ॥५॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु जजी और माता घृतवरी रेथी से उदयन हुए, वाणी-भूषण, बाल क्रवाचारी पंट भूरामल वर्तमान मुनि झानसागर द्वारा विराज्य इस यवोक्त कथन-कारक काल्य में जिन माता की सेवा करने वाली कुमारिका देवियां का वर्षिण करने वाला ऋरिकार संस्था से स्था से युक्त यह पांचवा समें समाप्त हुआ।। सा



अथ षष्ठः सर्गः

गर्भस्य षण्मासमधस्त एव ववर्ष रत्नानि क्कबेरदेवः । भो भोजनाः सोऽस्तु तर्मा स्रुदे वः श्रीवर्धमामो श्रुवि देवदेवः ॥१॥

भो भो मनुष्यो । वे देवों के देव श्री वर्द्धमान देव, तुम सबके परम हर्ष के किए दांवें, जिनके कि गर्भ में त्राने के छह सास पूर्व से हो कुबेरदेव ने यहां पर रहनों को वरसाया ॥ १ ॥

सम्रुद्धसत्पीनपयोधरा वा मन्दत्वमञ्चत्पद्पङ्कजा वा । पत्नी प्रयत्नीयितमर्त्यराजः वर्षेव पूर्णोदरिणी रराज ॥२॥

सिद्धार्थ र.जा जिसकी सार सम्झाल में सावधानी पूर्वक लग रहें हैं, ऐसी उनकी पूर्ण-उदर बाली गर्मिणी पत्नी प्रियक्तारिणी राती वर्षा ऋतु के समान शोभित होती हुई। जैसे वर्षा ऋतु जल से ऋतित पुष्ट मेच वाली होती हैं। इसी प्रकार से यह रानी भी उद्धास को प्राप्त पुष्ट स्तनों को घारण कर रही है। तथा जैसे वर्षा ऋतु में कमलों का विकास मन्दता को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार रानी के चरण-कमल मी गमन की मन्दता को प्राप्त हो रहे थे। ऋषीत् रानी गर्भ-भार के कारण भीर-धीर चलने लगी। र।

गर्भार्भकस्येव यशःप्रसारेराकन्यितं वा घनसारसारेः । स्वन्येरहोभिः सम्रुवाह देहमेषोषगुप्ता गुणसम्पदेह ॥३॥

रानी का संतप्त कांचन-कान्तिवाला झरीर धीरे-धीरे बोड़े ही दिनों में स्वेतपने को प्राप्त हो गया। सो प्रेसा प्रतीत होता या कि गर्भ में स्थित वालक के कर्यूर-सार के तुल्य श्वेत वर्ण वाले यहा के प्रसार से ही वह श्वेत हो गया है। इस प्रकार वह रानी गुण रूप सम्पदा से युक्त देह को धारण करती हुई ॥ ३॥

भावार्यः — गर्भावश्या में स्त्रियों का शरीर श्वेत हो जाता है उसी को छक्ष्य करके किव ने उक्त कल्पना की है।

नीलाम्बुजातानि तु निर्जितानि मया जयाम्यद्य सितोत्पलानि । कापर्दकोदारगणप्रकारमितीव तन्तेत्रपूर्णं बभार ॥४॥

नील कमल तो मैंने पहिले ही जीत लिए हैं, ऋव ऋाज में स्थेत कमलों को जीत्ंगी, यह सोच करके ही मानों रानी के नयन युगल ने कापरिक (केंडी) के समान उदार स्थेत गुण के प्रकार को धारण कर जिला। पा

भावार्थ: - उस रानी के नील कमल-तुल्य जो नेत्र थे, वे ऋव गर्भ के भार से श्वेत हो गर्थ।

सताऽर्हताऽभ्येत्य विधेर्विधानं यम्नाभिज्ञातप्रकृतेस्तु मानम् । तथाऽऽप्यहो राजकुलोचितेन मृगीदशस्तत्र नर्तिमुखेन ॥४॥

गर्भत्य प्रशंसतीय शीर्थद्वारेव के द्वारा होने वाली आवाधा-विशेष के कारण उस समय नाभिजात (नीचकुलीश्रज नाभिभग्दल) को तो अभिनान आगया, अर्थान् जो नाभि पहले गहरी थी, वह ब्बब उबली हो गई। किन्तु राजकुलीचित (राजवश ६ वोग्य अववा चन्द्रशुळ-क्रांति का घारक) उस सुगनयनी रानी का सुख नम्र हो गया यह आवार्ष है। ॥ ॥

भावार्थः - गर्भावस्था में नाभि की गहराई तो उथरी हो गई और छजा से रानी का मुख नीचे की ओर देखने छगा। गाम्भीर्यमन्तःस्थित्रिश्चौ विलोक्याचिन्त्यप्रभावं सहजं त्रिलोक्याः । हियेव नाभिः स्वगभीरभावं जहावहो मञ्जुहशोऽथ तावत् ॥६॥

खड़ी! तीनों लोकों की सहज गम्भीरता और श्रविन्त्य प्रभाव गर्भस्य शिशु में देखकर ही उस सुन्दर हिष्ट वाली रानी की नामि के लज्जित हो करके ही मानों खपने गम्भीरपने को छोड़ दिया।। ६॥

यथा तदीयोदरबृद्धिवीक्षा वक्षीजयोः स्यामस्रखत्वदीक्षा । मध्यस्थवृतेरिष चोन्नतत्वं कुतोऽस्तु सोढुं कठिनेषु सत्त्वम् ॥७॥

जंसे जंसे रानी के उदर की बृद्धि होने लगी, वेसे वेसे ही उसके कुनों के श्रमभाग (चुनुक) श्याम मुख्यने की दीक्षा को प्राप्त हुए, श्रयांन् वे काले होने लगे। सो यह ठीक ही है, क्योंकि कठीर स्वभाव याले जीवों में मध्यस्थ स्वभाव याले मजन पुरुर की उन्नति को सहन करने की क्षमता कहां से सम्भव है ? ॥ ७ ॥

तस्याः क्रशीयानुदरप्रदेशः वलित्रयोच्छेदितया मुदे सः । बभृव भृपस्य विवेकनावः सोऽन्तस्थतीर्थेश्वरजः प्रभावः ॥८॥

उस रानी का अध्यन्त कुश वह उदर-भाग त्रिवली के उच्छेद हो जाने से उस विवेकवान राजा के हर्ष के लिए हुद्या, सो यह गर्भस्थ तीर्थहर भगवान का प्रभाव है।। ८।।

सावारं - जैसे कोई क्रश क़रीर वाला (निर्वेल) व्यक्ति तीन तीन वल्यानों का उच्छेद (विनाझ) करने, तो यह हर्ष की बात होती है, जसी प्रकार रानी के उत्र की त्रिवली का उच्छेद राजा के हर्ष का कारण हुआ। लोकत्रयोधोति पवित्रविचि -त्रयेण गर्भेऽपि स सोपपचिः । धनान्तराच्छक्तपयोजवन्युरियावर्मो स्वोचितधामसिन्धुः ॥९॥

तीनों छोकों को ब्योतित करने वाले, पवित्र, ऐसे मिति, शुन कौर कावित्र इन तीन झानों से युक्त वे बुद्धिमान् भगवान् गर्भ में दहेते हुए इम प्रकार में सुशोधिन हुए जैसे कि सपन मेगां से आयृत सूर्य कावनी समस्त किरणों से संयुक्त सुशोधित द्वोता है।। है।।

पयोषरोल्लास इहाविरास तथा मुखेन्दुश्च पुनीतभासः । स्थानं बभूबोत्तमपुण्यपात्र्या विचित्रमेतद् भुवि बन्धुधात्र्याः ॥१०॥

संसार में उत्तम पुरुष की पात्री और बन्तुकर्तो की घात्री (माता) ऐसी इस रानी के एक खोर तो प्योधरों (मेर्चो और स्तर्ना) का वरुलास मकट हुआ और दूसरी और मुख्यक्ट्र पुनीत कांतिबाला हो गया १ यह तो विचित्र बात है ॥ १०॥

भाषार्थः - पयोधरां (मेघां) के प्रसार होने पर चन्द्रमाका प्रकाश मन्द रिखने काता है। किन्तुरानी के प्योधराँ (स्तनी) के प्रसार होने पर उसके मुखन्दनी चन्द्रमाका प्रकाश और अधिक वरु गया, यह आध्ये की बात है।

कवित्ववृत्येत्पृदितो न जातु विकार आसीज्जिनराजमातुः । स्यादीपिकायां मरुतोऽधिकारः कविद्युतः किन्तु तथातिचारः।११।

यह ऊपर जो माता के गर्भकाल में होने वाली वातों का वर्णन किया है, वह केवल कवित्व की दृष्टि से किया गया है। वस्तुत: जिनसाज की माता के झरीर में कभी किसी प्रकार का कोई विकास नहीं होता है। तेउ-चत्ती वाली साधारण दीपिका के बुझाने में पवन का अधिकार है। पर क्या वह बिजली के प्रकाश की बुझाने में सामर्थ्य रखता है ? अर्थात नहीं।। ११॥

विजृम्मते श्रीनम्रचिः प्रचण्डः कुवेरदिश्यंग्रुरवाप्तदण्डः । कालः किलायं सुरमीतिनामाऽदितिः समन्तान्मधुविद्धधामा ॥१२

निश्चय से अब यह सुरभीति (सुरभि) इस नामका काल आया, अधांन तसन का समय प्राप्त हुआ। इस समय कामन्त्र तो प्रवरक हुआ और अध्य सुर्थ को अध्यभीत करने लाल अदिति नास का समय सामन्त्र तो अध्यभीत करने लाल अदिति नास राह्मस (दानव) भी प्रचयत हुआ। इधर सूर्य ने कुबेर दिशा (उत्तर दिशा) में दरक (प्रचाण) किया, अध्योन उत्तरावण हुआ, उधर बहु दरक जं प्राप्त हुआ, अधीन उह साम के लिए केंद्र कर किया गया, क्योंकि अब वह छह सास नक इधर दक्षिण की और नहीं आयोगा। तथा अदिति (प्रश्वी) जारों और से पुष्ट-पराग हारा क्याम हो गई। दूसरे पक्ष में आदिति (देशों की माता) के स्थान को मधु राक्षस ने घेर लिया। १९॥

भावार्थ:- किन ने वसन्त ऋतु की तुलना अविति नामक राक्षस से की, क्योंकि दोनों के कार्य समान दिखाई देते हैं।

यरायनीरोद्धरितप्रद्यन-शृङ्गै रनङ्गै कसखा स्रखानि । मधुर्घनी नाम वनीजनीनां मरुत्करेणोशतु तानि मानी ॥१३॥

कामदेव है सखा (मित्र) जिसका, और अभिमानी ऐसा यह बसन्त रूप बनी पुरुष पराग-गुक्त जल से भरी हुई पुष्त रूपी पिच-कारियों के द्वारा बनस्वकी रूपी बनिताओं के मुखा को पवनरूप करसे सीच दहा है। १२। भावार्थं - वसन्त ऋतु में सारी वनस्थली पुष्प-पराग से व्याप्त हो जाती है।

वन्या मधोः पाणिष्टतिस्तदुक्तं पुंस्कोकिलैर्विप्रवरेस्तु स्रक्तम् । साक्षी स्मराक्षीणहविर्धु गेष मेरीनिवेशोऽलिनिनाददेशः ॥१४॥

इस बसन्त ऋतु में बन-छक्ष्मी और वसन्तराज का पाणिमहण (विवाह) हो रहा है, जिसमें पुंक्तेकिल (नर कोयल) रूप विभवर (वि-प्रवर क्यांन् भेच्छ पक्षी और विश्वर श्रेष्ठ आहण) के सुक्त (वचन) ही तो मंत्रोबाएण है, कामदेव की प्रज्वलित क्यांन ही होमागिन रूप से साक्षी है और भारों की गुंजार ही भेरी-निनाद है, क्यांन् बाजां का शब्द है। ४४॥

प्रत्येत्यशोकाभिधयाथ मुर्च्छनारक्तकुल्लाक्षितयेक्षितः सन् । दरैकघातेत्यनुमन्यमानः कुजातितां पश्यति तस्य किन्न ॥१४॥

बसन्त ऋतु में कोई पविक पुरुष विश्राम पाने और शोक-रहित होने की इच्छा से 'अशोक' इस नाम को विश्वास करके उसके पास जाता है, किन्तु उसके छाठ-छाछ पुष्प रूप नेजों से देखा जाने परस्क स्वरू मृष्टिंछत हो जाता है। वह पविक अशोक गृक्ष के पास जाते हुए यह क्यों नहीं देखता है कि यह 'कुजाति' और दर्रकशाता (भयानक) है।। १४।।

भावार्थ:- कु+ जाति अपबीत् भूमि से उत्पन्न हुआ। दूसरे पक्ष में स्त्रोटी जाति वाला स्वर्ध है। इसी प्रकार दरेक्याता का अर्थ दर अपबीत् पत्रों पर अधिकार रस्त्रे वाला और दूसरे पक्ष में दर अपबीत् दर या भय के करने वाला है। प्रदाकुदर्पाक्कितचन्दनाक्तैर्याम्यैः समीरैरिव भीतिभाक्तैः । कुवेरकाष्ठाऽऽश्रयसे प्रयत्नं दचाति पौष्ये समये युरत्नम् ॥१६॥

सपों के दर्प से काहून चन्द्रन कुओं की सुगन्ध से युक्त इस दक्षिण मळवानिल से भवभीत हुए के समान यह सूर्व कुवेर की उत्तर दिशा को काशय करने के लिए इस वसन्त समय में प्रयन्त कर रहा है। १६।।

भावार्ष — वसन्त ऋतु में सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो सा वात को उदय करके कि ने व्यक्षिण की है कि वसन्तकाल में दक्षिणो मक्यानिक वहने काना है, उसमें मक्यानिक विश्वत चन्द्रन-वृक्षों की सुगम्य के साथ उन पर लिपटे हुए सर्गों के निभास का विष भी मिला हुआ है, वह कहीं सुझ पर कोई दुष्प्रभाव न हाले, इस अय से ही मानों सूर्य दक्षिण से उत्तर की खोर गमन करने लगाता है।

जनीसमाजादरणप्रखेतुरसौ सहायः स्मरविश्वजेतुः । वनीविहारोद्धरणैकहेतुर्वियोगिवर्गाय तु धूमकेतः ॥१७॥

यह वसन्त-ऋतु श्री-समाज में झादर भाव के उत्यक्त करने वाले विश्व-विजेता कामका सहायक (मित्र) है तवा बन-विहार के करने का हेतु है, किन्तु वियोगी जनों के समुदाय को भस्म करने के किए तो भूमकेतु (श्वामि) ही है। १७।।

माकन्दश्चन्द्रप्रसवाभिसर्तुः विकस्य मोदाम्गुद्यं प्रकर्तुम् । निभाजनीयः क्रुग्रुमोत्सवर्तुः सखा सुखाय स्मरभूमिमर्तुः ॥१८॥

आम्र-समृह की प्रसून-मंजरी के अभिसार करने वाले कोयछ

के हर्ष का श्रम्भ्युवय करने के छिए, तथा कामदेव रूपी राजा के सुख को बढ़ाने के छिए पुष्पोत्सव वाछी वसन्त ऋतु सखासन्नक्षना चाहिए॥ १८॥

भावार्थ - वसन्त ऋतु सभी संसारी जीवों को सुखकर प्रतीत होती है।

यतोऽ¥ः पुपात्ता नवपुष्पतातिः कन्दर्पभृषो विजयाय याति । कुट्दुः करोतीह पिकद्विजातिः स एष संखध्वनिराविभाति ।।१९।।

नवीन पुष्पों के समृह रूप वाणों को लेकर के यह कामरूपी राजा मानों विजय करने के लिए प्रयाण कर रहा है और यह जो कोचल पश्चियों का समृह 'कुटू-कुटू' शब्द कर रहा है, सो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कामरेब के विजय-प्रश्वान-स्चक शङ्क की अपनि ही समाई रे रही हैं। १६॥

नवप्रसङ्गे परिहष्टचेता नवां वधूटीमित्र कामि एताम् । स्रुहुर्मु हुरचुम्बति चअवरीको माकन्दजातामध मञ्जरीं कोः ॥२०॥

नव-प्रसङ्घ के समय हर्षित चित्र कोई काभी पुन्य जैसे अपनी मनोडा क्षी का बार-बार चुन्यन लेता है, उभी प्रकार यह चबरीक (आँग) क्षाप्र कृष्य पर उरक्ष हुई मजरी का बार-बार चुन्यन कर रहा है। २०॥

आम्रस्य गुञ्जत्कलिकान्तरालेर्नालीकमेतत्सहकारनाम । इन्दर्भकर्पक्षण एव पान्था-क्किने परासुत्वमूतो वदामः ॥२१॥

जिसकी मंजरी के भीतर अमर गुजार कर रहा है, ऐसे आन्न का 'सहकार' अर्थान् सहकाल (काल-यमगज का साथी) यह नाम इसस्य नहीं है, क्योंकि आम का बुक्ष आस्त्र से देखने मात्र से ही पश्चिक जर्नों के लिए सरण को करने वाला है, ऐसां हम कहते हैं।। २१।।

भावार्थ'- पुष्प-मंजरी-युक्त आम्न-वृक्ष को देखते ही प्रवासी पिषक जनों को अपनी प्यारी स्त्रियों की याद सताने लगती है।

सुमोद्गमः स प्रथमो द्वितीयः मृङ्गोरुगीतिर्मरुदन्तकीयः । जनीस्त्रनीतिः स्मरबाणवेशः पिकस्वनः पश्चम एष शेषः॥२२॥

कामदेव के पांच वाण माने जाते हैं। उनमें पुष्पों का बहुस होना यह पहिला बाण है, भ्रमरों की उदार गुंजार यह दूसरा बाण है, दक्षिण दिशा की वायु का संचार यह तीसरा बाण है, क्रियों की स्वाभाविक चेश्र यह चौंचा बाण है और कोयलों का शब्द यह पांचवां बाल है।। २२।।

भावार्थ --वसन्त ऋतु में काम-देव ऋपने इन पांचीं बाणीं के बारा जगत को जीतता है।

अनन्तर्ता साम्प्रतमाप्तवद्भिः स्मरायुधैः पश्चतया स्फुरङ्किः । विश्वक्तयार्धेकः समलङ्क्रियेत वियोगिवर्गादक्रस्तथेतः ॥२३॥

कवि-मान्यता के अनुसार काम के पांच बाण माने जाते हैं, किंदु इस बस्तर ऋतु में बाण अनन्यता को प्राप्त हो रहे हैं (क्योंकि चर्कों और पुष्पोद्रम आदि दृष्टिगोचर होने छन्तत है।) अन्यवस्त कास के बाणों के द्वारा छोड़े गये पंचरत (पांच संस्था और दृख्) से वियोगी जनों को छोड़कर और कीन ऐसा पुरुष है जो कि समरुक कुत किया आव। अर्थात् वसन्य काछ में वियोगी जन ही काम के बाणों के निकान बनते हैं।। २३।। समन्ततोऽस्मिन् सुमनस्त्वमस्तु पुनीतमाकन्दविधायि वस्तु । समक्ष माधादतिवर्तमाने तथा पिकस्योदयमुद्रिधाने ॥२८॥

हे समञ्च (सन्मुख उगियत युन्दर इन्द्रिय वाले मित्र)! माप के प्रशान आनेवाले, आग्न वृक्षों को सफल बनाने वाले और कोयल के आनन्द-विधायक इस फाल्गुण मास या वसन्त काल में सर्व और फूलों का साम्राज्य हो रहा है, सो होये। दूसरा अर्थ—हे समक्षम (सदा क्षमा के धारक) मित्र! पाप से दूर रहनेवाले और आत्म-कल्याण के विधान को स्वीकार करने वाले इस च्छुताज वसन्त में लक्ष्मी को बढ़ाने वाला सुमनसपना (देवपना) सहज ही प्रकट हो रहा है। २४।।

ऋतुश्रियः श्रीकरणञ्च चूर्णं वियोगिनां भस्मवदत्र तूर्णम् । श्रीमीनकेतोर्ध्वजनस्त्रकल्पं पौष्यं रजोऽदः प्रसरत्यनल्पम् ॥२५॥

इस वसन्त ऋतु में यह पुष्पों का रज (पराग) सर्व कोर केल जाता है सो ऐसा प्रतीत होता है, मानों वसन्त लक्ष्मी के मुख की शोआ को बढ़ाने वाला चूर्ण (पाडडर) ही हो, अथवा वियोगी जनों की भक्त ही हो, अथवा शी मीनकेतु (कामदेव) की ध्वजा का बस्न ही हो ॥ २४॥

श्रेणी समन्ताद्विलसत्यलीनां पान्थोपरोघाय कशायदीना । वेणी वसन्तश्रिय एव रम्याऽसौ श्रृङ्खला कामगजेन्द्रगम्या ॥२६॥

इस वसन्त के समय भोंरों की क्रेणी सर्व कोर दिखाई देती है, बह ऐसी मदीत होती है, मानों पथिक जनों के रोकने के लिए विशास क्या (कोबा वा हय्टर) ही हो, कायवा वसन्त लक्ष्मी की रमणीय वेणी ही हो, ऋयता कामरूपी गजराज के बांधने की सांकल ही हो ॥ २६ ॥

प्रत्येति लोको विटपोक्तिसारादङ्गारतुल्यप्रसवोपहारात् । पलाशनामस्मरणादथायं समीहते स्वां महिलां सहायम् ॥२७॥

संसारी जन 'विपट' इस नाम को सुनकर उसे बृक्ष जान इम पर विश्वास कर लेता है किन्तु जब समीप जाता है, तो उसके कांगार-तुल्य (हृदय को जलाने बाले) फूलों के उपहार से शीव्र ही उसके 'पलाज' (पल-मांस का अक्षण करने बाला) इस नाम के स्मरण से (अपनी रक्षा के लिए) अपनी सहायक की को याद करने लगता है। २७॥

भावार्थं.- 'विटप' नाम वृक्ष का भी है श्रीर विटक्तों के सर-दार भडुश्रा का भी है। पलाश नाम डाक के वृक्ष का **है श्रीर** मांस-भक्षी का भी है।

मदनमर्मविकायसमन्वितः कुहरितायत एष समद्भुतः । सुरतवारि इवाविरभृत्क्षणः स विटपोऽत्र च कौतुकलक्षणः ॥२८॥

यह वसन्त का समय रित-कीझ के समान है, क्यों कि रितकाल में मदन के ममें का विकास होता है और इस वसन्त में आश्र वृक्ष के ममें का विकास होता है। रितकाल में कुहरित (सुरत-शब्द) होता है, इस समय कोयल का झन्द होता है। रितकाल में विटप (कामी) लोग कौतुकयुक्त होते हैं खीर वसन्त में प्रत्येक वृक्ष पुष्पों से युक्त होता है। रेप।

कलकुतामितिझंकृतन् पुरं कणितिकिङ्किणिकङ्कृतकङ्कणम् । मृगदत्रां मुखपबदिदसया रथिमनः कृतवान् किल मन्थरम् ॥२९ इस वसन्त में भीठी बोळी बोळते वाळी, नूपुरों के झंकार को मकट करने वाळी, जिनकी करणनी की घटियां बज रही हैं और जिनके कंडण भी झंकार कर रहे हैं, ऐसी मृगनयनी ख़ियों के मुख-कसळ को देखने की इच्छा से ही मानों सूर्य देव ने खपने रख की गति को मन्द कर दिया हैं ॥ २६॥

भावार्य-वसन्त काल में सूर्य की गति धीमी हो जाती है, उसे लक्ष्य में रख करके किन ने यह उत्येका की है।

नमु रसालद्रलेऽलिपिकावर्लि विवलितां ललितामहमित्यये । भ्रुवि वशीकरणोचितयन्त्रक-स्थितिमिमां मदनस्य सुमाशये ।।३०।।

इस बसन्त ऋतु में आग्न बृक्ष के पत्तां पर जो आंकी-बांकी नाना प्रकार की पंक्तियां बना कर और और कोश्वल बेठे हुए हैं, वे कोयल और मेरि नहीं है, किन्तु संसार में छोगो को मोहित करने के लिए कुछों पर लिसे हुए कामदेव के बशीकरण यत्र ही हैं, ऐसा मैं समझता हैं।। ३०।।

न हि पलाशतरोर्मु कुलोड्गतिर्वनश्चनां नश्चरक्षतसन्तिः । लसति किन्तु सती समयोचितासुरभिणाऽऽकलिताऽप्यतिलोहिना।।

वसन्त ऋतु में पळाश (ढाक) का वृक्ष फूळता है, वे उसके फूळ नहीं, किन्तु वन-ळहमी के स्तर्नों पर नल-छत (नहां के घाव रूप चित्र) की परम्परा हो है, जो कि वसन्त रूपी रसिक पुरुष ने वस पर की है, इसी ळिए वह क्यति रक्त वर्ण वाळी शोमित हो रही है।। ३१।।

अयि ठवङ्कि ! भवत्यपि राजने विकलिते शिशिरेऽपि च शैशवे । अतिश्रयोजनिमत्स्तवकस्तनी अमरसङ्गवशान्मदनस्तवे ॥३२॥ श्रवि व्यवज्ञवे ! तुम बड़ी सीमाग्यववी हो, क्योंकि तुन्हारा शिशिरकाळ रूपी शैशवकाळ तो बीत जुका है और श्रव तब-यौवत श्रवस्था में पुष्पों के गुच्छों-रूपी उन्नत स्तर्नों से युक्त हो गई हो, तथा भौरों के प्रसंग को प्राप्त होकर काम-प्रस्ताव को प्राप्त हो रही हो ॥ ३२ ॥

रिवरयं खलु गन्तुमिहोद्यतः समभवग्रदसौ दिशस्चराम् । दिगपि गन्धवहं नतु दक्षिणा वहति विश्रियनिश्वसनं तराम्॥३३॥

इस बसन्त काल में सूर्य दक्षिण दिशा हपी की को छोड़ कर उत्तर दिशा हपी की के पास जाने के लिए उधन हो रहा है, इसलिए पति-विधोग के दुख से दुखित होकर के ही मानों दक्षिण दिशा शोक से भरे हुए दीर्घ निश्वास छोड़ गढ़ी है, सो बड़ी नि:स्वास दक्षिण बायु के हुए में इस समय बहु रहा है। ३३॥

स्रक्रलपाणिषुटेन रजोऽन्जिनी दशि ददाति रुचाऽम्बुजजिब्दशाम् । स्थलपयोजवने स्मरधूर्चराड्डरति तद्धृदयद्रविणं रसात् ॥३४॥

जिस बत में गुलाब के पुष्प और लाल कमल कूछ रहे हैं, बहां पर कमिलनी तो अपने मुक्तित गणि (हस्त-) पुट के द्वारा कमल की शोभा को जीतने वाली कियों की आंखों में पुष्प-पराग क्ष्मी पूल को होंक रही है और कामरेव क्यी पूर्वराज चोर अवसर देखकर उनके हुट्यक्सी धन को चुरा रहा है। ३४॥

अभिसरन्ति तरां कुसुनक्षयो सम्जविताः सहकारगणाश्च वै । रुचिरतामिति कोकिलपित्सतां सरसभावभृतां मधुरारवैः ॥३४॥

ं इस वसन्त समय में जाम्न वृक्ष व्यपने जवर आकर बेठे हुए

श्रौर सरस भाव को धारण करने वाले कोयल पक्षियों के मधुर शब्दों के द्वारा मानों रुचिरता (रमणीयता) का ही श्रभिसरण कर रहे हैं।। ३४।।

विरहिणी-परितापकरो ऽकरोधदपि पापमिहापरिहारभृत् । तद्घमध विषयत एषको लगदलिञ्यपदेशतया दधत् ।।३६।।

विरहिणी क्रियों को सम्नाप पहुँचा कर इस वसम्न काल ने को क्यपिहरणीय ऐसा निकाचित पाप उपार्जन किया है, वह उदय में क्याकर क्याज संलग्न इन औरों के बहाने मानों इस वसन्त को दुखी कर रहा है।। ३६।।

ऋद्धि बारजनीव गच्छति वनी सैपान्वहं श्रीभुवं

तुल्यः स्तेनकृता प्रतर्जीत खरैः पान्थान् शरैः रागदः । संसारे रसराज एत्यतिथिमाञ्चित्यं प्रतिष्ठापनं

नर्मश्रीऋतु कौतुकीव सकलो बन्धुर्सु दं याति नः ॥३७॥

इस समय यह वनायकी वेश्या के समान प्रतिदिन लक्ष्मी से सम्पन्न समुद्धि को प्राप्त हो रही है, राग को उत्पन्न करने वाला यह कामदेव इस समय चोर के समान आचरण करता हुआ पिक-उनों को अपने तीक्ष्ण वाणों से विद्य कर रहा है, रसों का राजा जो प्रक्लार रस है, वह इस समय संसार में सवेत्र अतिथि रूप से प्रतिष्ठा को पा रहा है, और हमारा यह समस्त बच्यु-जन-समृह विनोद करने वाले वसन्तनों के कौतुक करने वाले विद्युक्त के समान हुये को प्राप्त हो रहा है। १७ ॥

चैत्रशुक्रपक्षत्रिजयायां सुतमस्त सा भूपतिजाया । उत्तमोच्चसकलग्रहनिष्ठे समये मौहूर्तिकोपदिष्टे ॥३८॥ चैत्र शुक्ता तीसरी जया तिथि कथीत् त्रयोदशो के दिन. सब कि सभी चलम प्रह चक्ष स्थान पर क्षत्रस्थित थे जीर जिस समय की ज्योतिचीगण सर्वोत्तम बनला रहे थे-ऐसे चनम समयमें सिद्धार्थ राजा की रानी दृश भियकारिणी देवी ने पुत्र को जना ॥ ३८ ॥

रविणा ककुविन्द्रशसिका स्फुटपाथोजकुलेन वापिका । नवपल्लवतो यथा लता ग्रुगुभे साऽऽग्रु ग्रुभेन वा यता ॥३९॥

वह रानी उत्पन्न हुए उम मुन्दर शिशु के द्वारा ऐसी शोभित हुई जैसे कि सूर्य के द्वारा इन्द्रशासित पूर्व दिशा, विकसित कमळ-समूह से वापिका और नव-पल्छवों से छता शोभित होती है।। ३६॥

सदनेकसुलक्षणान्त्रित-तनयेनाथ लसत्तमस्थितिः। रजनीय जनी महीसुजः सशिनाऽसौ प्रतिकारिणी रुजः ॥४०॥

उस समय वह उत्तम स्थिति को प्राप्त राजा की रानी रजनी के समान शोभित हुई। जैसे रात्रि विकसित व्यनेक नश्चत्रों के साथ चन्द्रसे युक्त होकर शोभित होती है, उसी प्रकार रानी उत्तम व्यनेक हुभ छञ्चण वाले तुत्र से प्रसन्न हो रही थी। जैसे चांदनी रात भय कुप रोग का प्रतीकार करती है, उसी प्रकार यह रानी संसार के भय की मिटाने वाली हैं॥ ४०॥

> सौरभावगतिस्तस्य पश्चस्येव वपुष्यभूत् । याऽसौ समस्तलोकानां नेत्रालिशतिकर्षिका ॥४१॥

उस उत्पन्न हुए पुत्र के शरीर से पद्म के समान सौरभ (सुगन्ध) निकल रहा वा, खौर दूसरा अर्थ यह कि वह स्वर्ग से खाया है, ऐसा स्पष्ट झात हो रहा था। इसीकिए वह पुत्र के झरीर से निकलने वाली सौरभ सुगन्धि समस्त दर्शक लोगों के नेत्र रूपी भौरों को व्यपनी चोर व्याकर्षित कर रही थी॥ ४१॥

शुक्ते मौँक्तिकवत्तस्या निर्मलस्य वपुष्मतः । सद्भिरादरणीयस्योद्भवतोऽपि पवित्रता ॥४३॥

जिस प्रकार सीप से उत्पन्न हुआ मोती स्वभाव से निर्मेछ, सत्पुरुषों से आदरणीय और पित्रव होता है, उसी प्रकार उस रानी से उत्पन्न हुए इस पुत्र के भी निर्मेछना, सन्तों के द्वारा आदरणीवता और सभावत: पविज्ञता थी। ४२।।

> रत्नानि तानि समयत्रयष्ठसराशः श्रीशे ववर्ष खखु पश्चदशेति मासान् । अद्याश इत्थमिह सोऽद्य श्रुवि प्रतीत एपोऽपि सन्मणिरभृत त्रिशकाखनीतः ॥४२॥

जिस सहापुरुष के खागमन के उपलक्ष्य में उत्तर दिशा का स्वामी कुबैर जैसे इस सूतल पर पन्द्रह माम तक प्रतिदित तीन बार उन उत्तम रतों की वर्षा करना रही, उसी प्रकार यह मणियों में भी महामणि सकर सवोंक्छ नर-रत्न झाज त्रिशला देवी की खानि रूप कूख से उत्पन्न हुखा। ४३।।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भ्रुजः स सुषुवे भूरामलेत्याहृयं वाणीभृषणवर्णिनं घृतवरी देवी च गं घीचयम् ।

तेनास्मिन् रचिते यथोक्तकथने सर्गः बडेवं स्थितिः राद्यतोरिभमक्कमे जिनगतेरुत्पत्तिरासीदिति ॥६॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु जजी और घृतवरी देवी से चरका हुए वाणीभूषण बाल-महाचारी पं० भूरामल बर्तमान सुनि झानसागर द्वारा विरचित इस काच्य में वसन्त च्युतु में जिनपित बीर भगवान् को उत्पत्ति का वर्णन करने वाला यह छठा सर्ग समाप्त हुआ।। ६॥



अय सप्तमः सर्गः

अथ जन्मनि सन्मनीषिणः प्रससाराप्यमितो यशःकिणः । जगतां त्रितयस्य सम्पदा जुभितोऽभूत्रमदाम्बुधिस्तदा ॥१॥

इस समय सन्मनीपी भगवान् का जन्म होने पर उनके यहा का पूर चारों कोर फेंड गया। उस समय तीनों जगन् की सम्पदा से क्यानन्दरूप समुद्र क्षोभित हो गया। क्रयोन् सर्वत्र आनन्द फेंड गया।। १।।

पटहोऽनददद्रिशासिनां भ्रवि घण्टा नतु कल्पवासिनाम् । उरगेषु च शंखसद्ध्वनिर्हरिनादोऽपि नभश्रराध्वनि ॥२॥

उस समय पर्वत के पक्ष-शातन करने वाले व्यन्तरों के गृहों में भेरी का निताद (उच शब्द) होने छगा। करुपवासी देवों के विमानों में परटा का नाद हुच्चा, अवनवासी देवों के अवनों में झंखों की ध्वति हुई और ज्योतियी देवों के विमानों में सिंहनाद होने छगा। १ ॥

न मनागिह तेऽधिकारिता नमनात्स्वीकुरु किन्तु सरिताम् । जिनजन्मनि वेत्थमाह रे प्रचल्डै हरिविष्टरं हरेः ॥३॥

उस समय जिन भगवान् का जन्म होने पर इन्द्र का सिंहासन कम्यायमान हुआ, मानों यह यह कह रहा वा कि अब इस पर बैठे रहने का तेरा इन्छ भी अधिकार नहीं है। अब त् भगवान् के पास जाकर और उन्हें नामकार कर जपने जीवन को सफल बना।। ३॥ न हि पत्रश्वरादियं हमां असामित्यन किलोति विस्मपात्। अवर्षि प्रति यत्नवान्युदवबोद्धं च सुदामयं प्रद्रुः।।४॥। उस समय देवों का स्वामी यह इन्द्र मेरे ये सहस्र नेत्र भी सिंहासन के हिल्ने का कारण जानने में समय नहीं है, यह देखकर ही मानों आश्चर्य से यवार्ष रहस्य जानने के लिए खबचिहान का उपयोग करने को प्रथनशील हुखा। । ४।।

अवयुष्य जनुर्जिनेशिनः पुनरुत्थाय ततः क्षणादिनः । प्रणनाम सुपर्वणां सतां गुणभृमिहिं भवेद्विनीतता ॥४॥

श्रविश्वान से जिनेन्द्रदेव का जन्म जानकर तत्काल श्रपने सिंहासन से उठकर देवों के स्वामी उस इन्द्र ने (जिस दिशा में भग-बान का जन्म हुआ था, उस दिशा में सात पग आगो जाकर भगवान् को परिक्ष) नासकार किया। सो यह ठीक ही है, क्योंकि विनीतता अर्थान् सज्जां के गुणा के प्रति आदरभाव प्रकट करना ही समस्त गुणां का आयार है। ॥ ।।

जिनवन्दनवेदिडिण्डिमं स मुदा दापितवान् जवादिमम् । प्रतिपद्य समाययुः सुरा असुरा अप्यखिला निजात्पुरात् ॥६॥

उस इन्द्र ने हर्षित होकर तत्काल जिन-बन्दना को चलने की सूचना देने वाली ढिंढोरी दिलवाई और उसे सुनकर सभी सुर और असुर शीब्र अपने अपने पुरों से आकर एकत्रित हुए ॥ ६ ॥

निरियाय स नाकिनायकः सकलामर्त्यनिरुक्तकायकः । निजपत्तनतोऽधना कृती नगरं कुण्डननामकं प्रति ॥७॥

पुनः वह इती देवों का स्वामी सौधर्महन्द्र सर्व देव शौर श्रमुरों से संयुक्त होकर अपने नगर से कुण्डनपुर चलने के लिए निकला ॥ ७ ॥

प्रततानुसृतात्मगात्रकैरमरैहिस्ततपुष्पपात्रकैः । सह नन्दनसम्पद्ध्यभृद्धिरहं सोद्धमिनाथ चाप्रश्चः ॥८॥

जिनके शरीर ज्यातन्द से भरपूर हैं जौर जिनके हाथों में गुरुपों के पात्र है, ऐसे देवों के साथ तन्दनवन की सम्पदा भी चली। मानों विरह को सहने के लिए ज्यासमर्थ होकर ही साथ हो ली है।। पा।।

कबरीव नमोनदीक्षिता प्रजरत्याः स्वरधिश्रियोहिता । स्मटिकारमविनिर्मितस्थलीव च नाकस्य विनिश्रलावलिः॥९॥

मध्यरोक को आंते हुए वन देवों ने गार्ग में नभोनदी (खाकाश गंगा) को देखा, जो ऐसी प्रतीन होनी थी माजों खायन बुढ़ देव-ज्यमी की बेणी ही हो, ख्यवा १६८ हक मणियों से रचित स्वर्ग-रोक के मुख्य द्वार की निश्चरता को प्राप्त देहती ही हो। ह

अरविन्दिधिया दधद्रविं पुनरैरावण उष्णसच्छविम् । धुतहस्ततयात्तपुरयजन्नमयद्वास्यमहो सुरवजम् ॥१०॥

पुन. चागे चलते हुए इन्द्र के ऐरावत हाची ने कमल समझ करके सूर्य को अपनी सूंड से उठा लिया चौर उसे उष्णता-युक्त देखकर दुरून ही सूंड को झड़का कर उस प्रदण किए हुए सूर्य को छोड़ दिया और इस प्रकार उसने देव-समूह को हेसा दिया। १०।

स्वयक्तरनक्रनिर्णये वियदच्यातुत तारकाचये । कुचलप्रकारान्वये विशुं विद्याः कौस्तुभमित्थमस्यशुः ॥११॥

मीनों, केंकड़ों और नाकुआं का निश्चय है जहां ऐसे आकाश

रूप समुद्र में मोतियों का अनुकरण ताराश्रों का समूह कर रहा है। वहीं पर देव छोगा ने चन्द्रमा को यह कौस्तुभमणि है, ऐसा कहा॥ ११॥

भावार्थ:- जैसे समुद्र में भीन, कर्केट और मकरादि जळ-जन्तु एवम् मीत्किक कीन्तुभमणि श्वादि होते हैं, उसी प्रकार देव लोगों ने खाकाश को ही समुद्र समझा, स्वीक वहां वन्हें मीन, मकर खादि राशि वाले पद दिखाई दिये

पुनरेत्य च कुण्डिनं पुराधिपुरं त्रिकमर्शेन ते सुराः । उपतस्त्ररसुष्य गोपुराग्रभुवीत्थं जिनमक्तिसनुगः । १२॥

पुन: जिन-भक्ति में तत्वर वे देव लोग कुण्डनपुर नगर आकर और उसे तीन प्रदक्षिणा देकर उस नगर के गोपुर की अन्नभूमि पर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

प्रविवेश च मातुरालयमपि मायाप्रतिरूपमन्वयम् । विनिवेश्य तदङ्गतः शची जिनमेवापजहार गुद्धचित् । १३॥

पुन: इन्द्राणी ने भाना के सीरि-सदन में प्रवेश किया। चौर मायामयी शिशु को माता के पास रखकर उनके शरीर के समीप से वह श्रद्ध चित्रचाळी शची जिन भगवाच को उठा छाई॥ १३॥

हरये समदाज्जिनं यथाऽम्बुधिवेलागतकौस्तुभं तथा । अवकृष्य सुभक्तितोऽचिरात् त्रिशलाया उदितं श्रचीन्दिरा॥१४॥

पुनः उस शवी रूपी छक्ष्मीने समुद्र की बेखा को प्राप्त हुए कौसुभमणि के समान त्रिशला माना से प्रगट हुए जिन भगवान् को लाकर शीघ्र ही ऋति भक्ति से हरि रूप इन्द्र को सौंग दिया॥ १४॥ जिनचन्द्रमसं प्रपश्य तं जगदाह्यदकरं सम्रुवतम् । करकञ्जयुगं च कुड्मलीमवदिन्द्रस्य वर्गे किलाऽच्छलि ॥१४॥

जगन् को श्राहादित करने वाले पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान ममुन्नत जिन चन्द्र को देखकर इन्ट्र के छल-रहित कर-कमल-युगल मक्किल होते हुए शोभा को प्राप्त हुए॥ १४॥

भावार्थ:- चन्द्र की देखकर जैसे कमल संकुचित हो जाते हैं, वसी प्रकार भगवान रूप चन्द्रमा की देखकर इन्द्र के हस्त रूप कमल युगल भी संकुचित हो गये (जुड़ गये)। अर्थान् इन्द्र ने हाथ जोड़कर भगवान् की नमस्कार किया।

बृहदुन्नतवंशशालिनः शिर सीत्थं मुकुटानुकालिनम् । समरोपयदेष सम्बनं पुनरैरावणवारणस्य तम् ॥१६॥

पुन इस इन्द्र ने वड़े उन्नत वंशशाली ऐरावत हाथी के सिर पर मुकुट का ऋतुकरण करने वाले उन जिन भगवान् को विराजमान किया॥ १६॥

सुरशैलप्रपेत्य ते पुनर्जिनजन्माभिषवस्य वस्तुनः । विषयं मननाऽथ सुद्धुरा परिकर्तुः प्रतिचक्रिरे सुराः ।।१७/।

पुनः वे सब देव सुरशैल (सुमेरः) को प्राप्त होकर भगवान् को जन्माभिषेक का विषय बनाने के लिये अर्थान् अभिषेक करने के लिय हर्षित वित्त से उद्यत हुए॥ १७॥

सुरदन्तिशिरःस्थितोऽभवद् घनसारे स च केशरस्तवः। शरदश्रसमुक्त्रयोपरि परिणिष्टस्तमसां स चाप्यरिः॥१८॥ उस समय मुराज पेरावत के शिर पर अवस्थित अगवान ऐसे शोधित हुए, मानों कर्षू र के समूह पर केशर का गुच्छक ही व्यवस्थित हो। अथवा शरकाळीन शुभ्र मेथपटल के ऊपर अन्यकार का शत्रु सूर्य ही विराजमान हो।। १८ ।।

वनराजचतुष्टयेन यः पुरुषार्थस्य समर्थिना जयन् । प्रतिभाति गिरीश्वरः स च सफलच्छायविधि सदाचरन्॥१९॥

पुरुष के चार पुरुषार्थों को समर्थन करने वाले चार बनराजों से तिजयी होता हुआ वह गिरिराज सुमेरु सदा फळ और छाया की विधि को आचरण-सा करता हुआ प्रतिभासित हो रहा था ॥ १६॥

भावार्थ:- जैसे कोई पुरुष चारों पुरुषार्थ को करता हुआ सकळ जीवन-यापन करता है, उसी प्रकार यहां सुप्रेम भी चारों श्रोर वनों सं संयुक्त होकर नाना प्रकार के फुठों और छाया को प्रदान कर रहा है, ऐसी उपेक्षा यहां किंव ने की है।

जिनसञ्चसमन्त्रयच्छलाड् धृतसूर्तीनि विभर्ति यो बलात् । अपि तीर्थकरत्वकारणान्युपयुक्तानि गतोऽत्र धारणाम् ॥२०॥

जिन-भवनों ने समन्वय के छल से मानों यह सुमेरु तीब हुर पद के कारण-भूत सोलह कारण भावनाओं का ही हठातृ मूर्ति रूप को घारण कर जोभित हो रहा है।। २०॥

भावार्थ — सुमेरु पर्वत पर अवस्थित सोलइ जिनालयों को लक्ष्य करके कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

निजनीतिचतुष्टयान्वयं गद्दनव्याजवक्षेन घारयन् । निखिलेष्वपि पर्वतेष्वयं प्रश्रुरूपेण विराजते स्वयम् ॥२१॥ अपनी नीति-चतुष्टय (आव्यीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दरह-नीति या साम, दाम, र्दंड और भेर) को चार वनों के व्याज से धारण करता हुआ यह सुमेरु समस्त पर्वतों में स्वयं स्वामी रूप से विराजमान है, ऐसा में समझता हूँ। २१।।

गुरुमभ्रुपगम्य गौरवे शिरसा मेरुरुवाह संस्तवे । प्रभुरेष गभीरताविधेः स च तन्ता परिवारितोऽबृनिधेः ॥२२॥

जम्माभिषेक के उत्सव के समय जिन-भगवान् की गुण-गरिमा को देखकर सुमेरु ने जगद-गुरु भगवान् को अपने शिर पर धारण किया। तथा यह भगवान् गम्भीरता रूप विधि के स्वामी हैं, ऐसा समझकर क्षीर सागर ने अपने जल रूप शरीर से भगवान् का अभिषेक किया।। २२॥

भावार्थ – सुमेरु का गौरव चौर समुद्र की गंभीरता प्रसिद्ध है । किन्तु भगवान् को पाकर दोनों ने घपना श्रहंकार छोड़ दिया ।

अतिवृद्धतयेव सित्रिधि सम्रुपागन्तुमशक्यमम्बुधिम् । अमराः करुणापरायणााः सम्रुपानिन्दुरथात्र निर्वृणाः ॥२३॥

पुनः ऋत्यन्त बृद्ध होने से भगवान् के समीप वाने को व्यसमर्थ ऐसे क्षीर सागर को ग्छानि-रहित और करुणा में परायण वे व्यमर-गण उसे भगवान के पास छाये।। २३॥

आवार्ष - देवगण भगवान के काभिषेक करने के लिए श्लीर-सागर का जल लाये। उसे लक्ष्य करके किन ने यह उत्पेक्षा की है, कि वह क्षाति बृद्ध होने से स्वयं ज्ञाने में अससमर्थया, सो जल लाने के वहाने से मानों वे श्लीर सागर को ही भगवान के समीप ले आये हैं।

अयि मञ्जुलहर्यु पाश्रितं सुग्सार्थप्रतिसेवितं हितम् । निजसक्षवदम्बुधिं भणमनुजग्राह च देवतागणः ॥२४॥

हे मित्र ! मुन्दर छहरियों से संयुक्त और मुरस जल रूप आर्थ से, अथवा देव-समृह् से सेवित, हितकारी उस हीर सागर की आत्मा का उन देवाणों ने अपने भवन के समान ही अनुस्रह् किया। २४।।

सम्रदालकुचाश्चितां हितां नितरामक्षतरूपसम्मिताम् । तिलकाङ्कितभालसत्पदामनुगृह्णात्युदधेः स्म सम्पदाम् ॥२५॥

वे देवतागण उदार लीची वृक्षों से गुक, अखरोट या बहे हों के वृक्षों वाली, तथा तिलक जाति के वृक्षों की पंक्ति बाले समुद्र के तट की सम्पदा का तिरीक्षण कर रहे थे। इसका दूसरा अपने स्त्री पक्ष में इस मकार लेना चाहिए कि उठे हुए कुचों बाली, अखराड रूप-सोन्दर्य की धारक, तथा मस्तक पर तिलक लगाये हुए, ऐसी स्त्री के समान समुद्र की तट-सम्पदा को देवताओं ने देखा॥ २४॥

प्रतताविलसन्ततिस्थितिमिति वा नीरदलक्षणान्वितिम् । प्रविवेद च देवता ततः विशदाक्षीरहितस्य तस्वतः ॥२६॥

देवों ने उस क्षीर सागर को एक बृद्ध पुरुष के समान श्रमुअब किया। जेसे बृद्ध पुरुष बलियों (बुद्दापे में होने वाली शरीर की क्रुरियों) से युक्त होता है, उसी प्रकार यह समुद्र भी बिक्छत वर्रमों की मालाओं से युक्त है। बृद्ध पुरुष जेसे बुद्दापे में वन्त-रहित सुब्ब बाला हो जाता है, उसी प्रकार यह श्लीर सागर भी जनमाभिषेक के समय नीर-दश्ल (जलांश) के प्रवाह रूप से युक्त हो रहा है। इद्ध पुरुष जैसे बुड़ापे में विश्वद-नयन वाली नाथिका से रहित होता है, कसी प्रकार यह समुद्र भी विशय हीर-(हुम्प-) तुम्य रस वाला है। काराव देवों ने कस क्षीर सागर को एक वृद्ध पुरुष के समान ही समझा।। २६ ॥

मृदुपन्छवरीतिधारिणी मदनस्यापि विकासकारिणी । शरजातिविलग्नसम्यदा सुखमेतत्त्रणतिः सुरेष्वदात् ॥२७॥

कोमल पत्रों की रीति की धारण करने वाली तथा कोमल चरणों वाली काम की एवं झाझ झूल की विकास-कारिणी झाउनाति के घास विशेष से गुक्त और वाण के समान कुझ बदर वाली ऐसी इस क्षीर सागर की बेला देवों में सुख की देने वाली हुईं॥ २०॥

क्षुरसार्थपति तमात्मनः प्रश्वमित्येत्य सुपर्वणां गणः । बद्दति स्म शिरस्सु साम्प्रत-मभितो बृद्धमवेत्य तं स्वतः ।।२८।।

उस देव-समृह ने सुरस (उत्तम जल) रूप कार्व के स्वामी, काववा देव-समुदाय के स्वामी उसे अपना प्रभु इन्द्र जानकर तथा, सर्व और से वृद्ध हुए ऐसे श्लीर सागर को अपने शिरों पर धारण किया। प्रस्

भावार्थ — वे देवगण क्षीर सागर का जल कलजों में भर कर क्योर क्यपने मस्तकों पर रख कर लाये।

जिनराजततुः स्वतः शुचिस्तदुपायेन जलस्य सा रुचिः । जगतां हितकृद् भवेदिति हरिणाऽकारि विभोः सवस्थितिः ॥२९॥

यद्यपि जिनराज का शरीर स्वतः स्वभाव पवित्र था, तथापि इस

जल को भी भगवान के शरीर के सम्पर्कसे पवित्रताप्राप्त हो ऋौर यह सर्वजगत्का हितकारक हो जाय, यह विचार कर इन्द्र ने भगवान्का ऋभिषेक किया॥ २६॥

सुरपेण सहस्रसंधुजैरभिषिकः सहसा स नीरुजैः । न मनागपि खिन्नतां गतः सहितस्तीर्थकरत्वतो यतः ॥३०॥

इन्द्र ने अपनी सहज नीरोग सहस्र सुजाओं से सहसा (एक साथ ही एक हजार कड़वों से) आभिक्ष किया, किन्तु बाल रूप मगवान जरा-सी भी खिलता को आम नहीं हुए। सो यह उनके तीर्थेहर शहति-युक्त होने का प्रवाप हैं।। ३०।।

कुसुनाञ्जलिवद्वयुव साऽम्बुतितः पुष्टतमेऽतिसंग्सात् । निजगाद स विस्मयो गिरा भ्रवि वीरोऽयमितीह देवराट् ॥३१॥

अत्यन्त पुष्ट अर्थान् व अमयी भगवान् के शरीर पर अस्यन्त उत्माह से छोड़ी गई वह विशाल जल की थारा पुष्पों की अप्तालि के समाह में श्रोत हुई। वह विशाल जल की थारा पुष्पों की अप्तालि के परम हुई से थार और जिनेन्ह हैं। ऐसा अपनी वाणी से कहा।। 3१।।

परितः प्रचलज्जलच्छलान्निखिलाश्चापि दिशः समुज्ज्बलाः । स्मितयक्तप्रसा इवाबभरमिषिकः स यदा जिनमुग्नः ॥३२॥

जिस समय श्री जिनप्रभु का खिभिषेक किया गया. उस समय सर्व खोर फैलते हुए जल के बहाने से मानों सभी दिशाएँ खति फक्क्सल मन्द हास्य यक्त मख वाली-सी शोभित हुई ॥ २२॥ तरलस्य ममाष्युपायनं प्रश्चदेहं दिवसेऽय यत्पुनः । जलग्रुञ्चलमाप तावतेन्द्रपुरं सम्प्रति हर्षसन्ततेः ॥३३॥

श्चाज के दिन श्चित चंचल भी मैं भगवान की देह का उपहार बना, यह सोच करके ही मानों क्षीर सागर का वह जल श्रपनी हर्ष-परस्परा से इन्द्र के पुर तक ऊपर पहुँचा । ३३॥

श्वशिनाऽऽप विश्वस्तु काश्वन-कलशाली सह सम्ध्यया पुनः। प्रसरज्जलसन्ततिः सतां हृदये चन्द्रिकया समानताम् ॥३४॥

स्त्रभिषेक के समय भगवान् ने तो चन्द्र के साथ, सुवर्ण कलशों की पंक्ति ने सन्ध्या के साथ खोर फैलने हुए जल की परम्परा ने चन्द्रिका के साथ सङ्क्रनों के हृदय में समातता प्राप्त की ॥ २४ ॥

कथमस्तु जडप्रसङ्गताऽखिलविज्ञानविधायिना सता । सह चेति सुरेशजायया स पुनः प्रोज्छित ईश्वरो स्यात् ॥३५॥

समस्त विज्ञान के विधायक इन सन अगवान के साथ जड़ (जल और मूर्ख मतुष्टम) का प्रसंग केसे होवे, ऐसा विचार करके ही मानों इन्द्र की इन्द्राणी ने अगवान के शरीर को शीवता से पोंड विचा। ३४॥

स्फटिकामकपोलके विभोः स्वहगन्तं प्रतिविम्बितं च भोः । परिमार्जितमादता शची व्यवरत्सत्स्वथ सस्मितां रुचिम् । ३६॥

भगवान् के स्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ कपोल पर प्रतिबिन्त्रित अपने कटाञ्च को (यह कोई कालिमा लग रही है, यह समझ कर के) बार-बार परिमार्जन करने को उद्यत उस इन्द्राणी ने देशों में मन्द्र हास्य-युक्त शोभा को प्रदान किया॥ ३६॥

भावार्थ—भगवान् के कपोळ पर प्रतिविन्तत अपने ही कटाक्ष को भ्रम से वार-बार पींछने पर भी उसके नहीं मिटने पर देवगण इन्द्राणी के इस भोलेपन पर हंसने छगे।

त्रीतिमात्रावगम्यत्वात्तिमिदानीं पुलोमजा । भूषणैर्भूषयामास जगदेकविभृषणम् ॥ ३७ ॥

यद्यपि भगवान सहज ही अति सुन्दर थे, तथापि नियोग को पूरा करने के छिए इस समय हरिंत इन्द्राणी ने जगन् के एक साज (अदितीय) आभूग्ण-स्वरूप इन भगवान् को नाना प्रकार के भूषणीं से विभूषिन किया। १२०।

कृत्वा जन्ममहोत्सवं जिनपतेरित्थं सुरा सादरं

रू।घाऽधीनपदैः प्रशाब पितरं सम्पूज्य वा मातरम् । सम्बोध्यापि पुरप्रजाः सुललितादानन्दनाटचादरं

स्वं स्वं धाम ययः समर्प्यं जिनपं श्रीमातरङ्के परम् ॥३८॥

इस प्रकार आदर के साथ सर्व देवगण जिनपति वीर भगवान् के जन्माभिषेक का महान् उत्सव करके और अत्यन्त प्रकासनीय वचनों से सिद्धार्थ पिता को प्रभन्न कर तथा त्रिश्रला माता की पूजा करके, पर्व अपने सादर किये हुए आनन्द नाटक (ताव्हक नृत्य) से पुरवासी लोगों को आनन्दित करके और माता की गोद में भग-बान जिनेन्द्र को सींप करके अपने अपने स्थान को गये॥ ३८॥ श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्धुः जः स सुषुवे भूरामलेत्याहृयं वाणीभूषण-वर्णिनं वृतवरी देवी च यं घीचयम् । आगत्याथ सरैरकारि च विभोमेरी समासेचन-

आगत्याय सुररकारि च विमानरा समासचन--मित्यस्याभिनिवेदितेऽत्र निरगात्मर्गो नयप्रार्थनः॥७॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुज श्रीर पृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणी-भूषण, बालजदाचारी प० भूरामल चर्तमान मुनि ज्ञान-सागर द्वारा विरिचन इस काव्य में वीर भगवान् के जन्माभिषेक का बर्णन करने वाला यह नवों की सख्या वाला सातवां सर्ग समाप्त इश्रा ।। ७।।



अथ अष्टमः सर्गः

पितापि ताबदावाञ्छीन् कर्तुः जन्ममहोत्सवम् । किस्रु सम्भवतान्मोदो मोदके परभक्षिने ॥१॥

आयानन्तर पिता श्री सिद्धार्थ ने भी भगवान के जन्म-महोस्सव को करने की इच्छा की। सो ठीक ही है, क्योंकि दूमरे के द्वारा मोदक (खड़्द्र) के खाये जाने पर क्या दर्शक को भी मोदक खाने जैसा प्रमोद संभव है १ कभी नहों। १॥

> समभ्यवाञ्छि यत्तेन प्रागेव समपादि तत् । देवेन्द्रकोषाध्यक्षेण वाजुछा वन्ध्या सतां न हि ॥२॥

सिद्धार्थ ने बीर भगवान् के जन्म महोत्सव मनाने के लिए जो जो सोचा, उसे इन्द्र के कोपाध्यक्ष कुबेर ने सोचने से पहिले ही सन्पादित कर दिया। सो ठीक ही है, क्योंकि सुकृतशालियों की बांछा कभी बन्ध्या (ब्यबं) नहीं होती है ॥ २ ॥

सुधाश्रयनया रूपातं चित्रादिभिरलङ्कृतम् । रेखानुविद्धधामापि स्वर्गवत्सममात्पुरम् ॥३॥

चूने ही सफेरी के आश्रय से उञ्चल, नाना प्रकार के चित्र आदि से अलंकुत. एक पंकि-बद्ध भवन वाला वह नगर स्थर्ग के समान सुशोभित हुआ। जैसे स्वर्ग सुधा (अस्तृत) से, चित्रा आदि अप्सराओं से और लेलों (देवां) से गुक्त रहता है।। ३।।

> मानोकता गृहा यत्र मत्तवारणराजिताः । विश्वदाम्बरचुम्बित्वात्सम्बभृतुर्वु पा इव ॥४॥

बहां पर खपनी ऊंचाई से उन्नत सुन्दर बरामरों से शोभित भवन निर्मेळ खाकाश को चूमने वाले होने से राजाओं के समान मतीत हो रहे थे। जैसे राजा छोग निर्मेळ वस्त्र के धारक, मदोन्मत्त गज सेना से युक्त एवं सन्मान से संयुक्त होने हैं॥ ४॥

> नटतां तटतामेवं दघत्संकटतामपि । असंकटमभूद्राजस्थानं निदोंषदर्शनम् ॥४॥

नृत्य करते हुए नर्तकों से और आने-जाने वाले लोगों से संकट-पने को (भीड़-भाड़ को) धारण करता हुआ भी वह राज-भवन संकट-रहित और निर्दोष दिखाई दे रहा था।। ४॥

> श्रिया सम्बर्धमानन्तमनुक्षणमपि प्रश्रम् । श्रीवर्धमाननामाऽयं तस्य चक्रे विश्वामपतिः ॥६॥

सिद्धार्थ राजा ने प्रतिक्षण श्री ऋर्थान् शारीरिक सौन्दर्य से वृद्धि-गत होते हुए उन प्रभु का 'श्री वर्धमान' यह नाम रखा।। ६॥

> इङ्गितेन निजस्याथ वर्षयनमोदवारिधिम् । जगदाह्यादको बालचन्द्रमाः समवर्षत ॥७ ।

श्राथानन्तर अपने इंगित से अधीत् बाल-सुलभ नाना प्रकार केंग्रा रूप कियान्काण से जगत् को आहादित करने वाले झे बाल चन्द्र-वकरण भगवान् समार में हर्ष रूपी समुद्र को बढ़ाते हुए सर्व बढ़ने को।। ७।।

> रराज मातुरूत्सङ्गे महोदारविचेष्टितः । क्षीरसागरवेलाया इवाङ्के कौन्तुमी मणिः ॥८॥

अगादिव वितुः पार्खे उदयाद्रेरिवांश्चमान् । सर्वस्य भृतलस्यायं चित्तास्मोजं विकासवन् ॥९॥

कभी-कभी वे भगवान् समस्त भूतळवासी प्राणियों के चित्त रूप कमळों को विकसित करते हुए उदयाचळ पर जाने वाले सूर्य के समान पिता के समीप जाने थे।। ६।।

देवतानां कराग्रे तु गतोऽयं समभावयत्। बङ्कीनां पञ्जवप्रान्ते विकासि कुसुमायितम् ॥१०॥

देवताक्यों के इस्तों के क्षप्रभाग पर कावस्थित वे भगवान् इस प्रकार से सुशोभित होने थे, जिम प्रकार से कि, खताक्यों के पल्खबों के कारत में विकसित कुराम शोभा को धारण करता है।। १०।।

> कदाचिच्चेद्भुवो भालमलश्चके तदा स्मितम् । तदङ्घिनखररमीनां व्याजेनाप्याततान सा ॥११॥

कवाजित पृथ्वी पर सेटते हुए भगवान समके मस्तक को इस प्रकार से खळकृत करते थे, मानों उनके चरखों के नखों की किरणों के बहाने से वह पृथ्वी खपनी गुरूदराहट को ही चारों खोर फँडा रही है।। ११।

यदा समन्यस्केषु बालोऽयं समन्तति । अस्य स्फूर्तिर्विमिन्नैन काचेषु मणिनचदा ॥१२॥

जब यह बाल स्वरूप भगवान खपने समवयक बालकों में खेला करते थे, तो उनकी शारीरिक प्रभा खीरों से विशेषता को लिए हुए पूषकृ ही दिखाई देती थी, जैसे िक कार्चों के मध्य में खबस्थित मणि की शोभा निराली ही दिखती हैं॥ १२॥

समानायुष्कदेवीय-मध्येऽथो बालदेवराट् । कालभेषं चकारासं। रममाणो निजेच्छया ।१३॥

इस प्रकार समान व्यवस्था वाले देव-कुमारों के समूह के बीच व्यपनी इच्छानुसार नाना प्रकार की कीड़ाओं को करते हुए वे देवा-थिपति बाल जिनदेव समय ज्यतीत कर रहे थे॥ १३॥

दण्डमापद्यते मोही गर्तमेत्य मुहुर्मु हुः । महात्माऽनुबभृवेदं बाल्यक्रीडास् तत्परः ॥१४॥

बाल्य-कीड़ाओं में तत्तर यह महात्मा वीर प्रभु गिल्छी इण्डा का क्षेत्र लेखते हुए ऐसा अनुभव करते थे कि जो मोही पुरुष संसार रूप गहुंडे में गिर पहना है, वह वार-वार इस गिक्की के समान दण्ड को प्राह होता है। १४॥

भावार्ध—जैसे गहुंद्र में पड़ी गिक्षी वार-वार डप्डे से पीटे जाने पर ही ऊपर को उठकर काती है, इसी प्रकार से जो मोही जन ससार रूप गर्त में पढ़ जाने हैं, वे वार-वार नाना प्रकार के दु:ख स्प डपडों से दिष्डत होने पर ही ऊपर आते हैं, अर्थान् अपना कढ़ार कर पाते हैं।

परप्रयोगतो दृष्टेराच्छादनप्रपेयुषः । शिरस्याधात एव स्यादिगान्ध्यमिति गच्छतः ॥१५॥

कभी-कभी खांख-भिचौनी का खेळ खेळते हुए वे बाळ रूप बीर भगवान ऐसा खनुभव करते थे कि जो जीव पर-प्रवेश से खपनी टिष्टि के खाच्छादन को प्राप्त होता है, वर्षान् खनात्म-बुद्धि होकर मीह के उत्तय से जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है, वह दिगाञ्च होकर शिर के खायात को ही प्राप्त होता है। १४॥

भावार्थ—आंख-भिचीनी के समान ही जिस जीव की दृष्टि मोह-कर्म के द्वारा आच्छादित रहती है, वह दूसरों से सदा ताइना ही पाता है और दिशान्ध होकर इधर-उधर भटकता रहता है।

नवालकप्रसिद्धस्य बालतामधिगच्छतः । मुक्तामयतयाऽप्यासीत्कुवलत्वं न चास्य तु ॥१६॥

यदापि बीर भगवान बालकपन को धारण किये हुए थे, किर भी व बालक प्रतिद्ध थे, अर्थान् बालक नहीं थे। यह बिरोध हुआ। इसका परिदार यह है कि वेतन बढ़ने वाले नवीन बालें (केशों) से युक्त थे। तथा वे गुक्ताय (मोती रूप) होकर के भी कुनल थी। तथा वे गुक्ताय (मोती रूप) होकर के भी कुनल थी।ती) नहीं थे। यह बिरोध हुआ। इसका परिदार यह दै कि ये भगवाग मुक्त-आमय अर्थान् रोग-रहित थे, अतएव दुर्वल नहीं, अपितु अतुल बलकाली थे। १६॥

अतीत्य बाऽलस्यभावं कौमारमतिवर्त्यं च । समक्षतीचितां काय-स्थितिमाप महामनाः ॥१७॥ इन महामना मगवान ने कालस्य-रहित होकर, तथा बालकपने को विताकर, एवं कुमारपने का उल्लंघन कर किन्तु कामरेव की की बासना से रहित होकर रहते हुए सुन्दर, सुडील अवयवां वाली सर्वाङ्ग पूर्ण यौदन व्यवस्था रूप शारीक स्थिति नो प्राप्त किया। व्यवीत युवाबस्था में प्रवेश किया। १७॥

> नाभिमानप्रसङ्गे न कासारमधिगच्छता । न मत्सरस्वभावत्वयुपादायि महात्मना ॥१८॥

भगवान् उस खबस्था में निरिभगानपने से कासार, खबीन् खास-पिनन करते हुए छोगों में मस्सर भाव से रहित थे। दूसरा खर्च यह है कि खपनी नाभ के हारा सीन्दर्य अकट करते हुए वे कासार खबीन् सरोवर की उपना को धारण करते थे।। १-॥

मृदुपन्ठवतां वाचः स्फुरखे च करद्वये । शरिषत्रतिमानत्वं चिचे चोरुषुगे पुनः ॥१९॥

युवायस्था में भगशान् वचन-स्कूरण, अर्थान् बोळने में सुदु-भाषिता को और दोनों हाथों में कोमळ-पल्ळवता (कोषळ समान मृदुना) को, तथा चित्त में और दोनों जंपाओं में शर्षि-समानता को धारण करते थे। अर्थान् चित्त में तो शर्षि (जळिंव) के समान गम्भीरता बी और जंपाओं में शर्षि (नृणीर) के समान उतार चढाव वाली मांसलता थी।। १६॥

> व्यासोपसंगृहीतत्वं यस्य वश्वति वेदवत् । स्फुरत्तमःस्वभावत्वं कचन्नुनदे च नकवत् ॥२०॥

उन भगवान् के वश्चःस्वल में वेद के समान ज्यासोपसंगृहीतता

थी, ऋषींन् जैसे ज्यामभी ने देरों का संकलन किया है, जमी प्रकार प्रगासान् का बक्षस्थल ज्यास वाला था, क्योंन् क्यति सिस्टून था। उनके केश-सहस् में राजि के समान स्कृटित-तमःस्व्यासवता थी, क्योंन् उनके केश चमकदात्र और अस्थन्त काले थे।। २०॥

अविकल्पकतोत्साहे सौगतस्थेव दर्शने । परानुग्रहता यस्य चित्ते बुधनभोगवत् ॥२१॥

सौगत (बौद्ध) के दर्शन के समान भगवान के उत्पाह में निर्धिकल्पकता थी, तथा चित्त में बुध नक्षत्र के समान परातुमहता थी।। २१।।

भावार्थ – भगवान् चित्त में उत्माह युक्त रहते हुए भी संकल्प विकल्प रहित थे और वे सदा दूसरों का अनमह (उपकार) करने की तत्पर रहते थे।

सुतरूपस्थिति दृष्ट्या तदा रामोपयोगिनीम् । कन्यासमितिमन्वेष्टुं प्रचकाम प्रभोः पिता ॥२२॥

उस युवावस्था में अपने पुत्र की रामीपयोगिनी आर्थात् विवाह के योग्य स्थिति को हेकबर प्रभु के पिता ने कन्याओं के समूह को इंडने का उपकम किया। दूसरा रिष्ठष्ट आर्थ यह है कि आराम (बजान) के योग्य मुन्दर तरुआं (बुआं) की उपस्थिति को हेस्सर के कन्यास आर्थात् जरू-सिंचन के लिए राजा ने विचार किया।। २२॥

प्रभुराह निशम्येदं तात! तावत्किमुधते। दारुणेत्युदिते लोके किमिष्टेऽहं सदारताम्।।२३॥ पिता के इस विवाह-प्रस्ताव को सुनकर अगवान् बोले— है तात! व्याप क्या कहते हैं है लोक की ऐसी दानण विवाद में मैं क्या स्थाप क्या कहते हैं है लोक की ऐसी दानण विवाद कि हा ह

प्रस्युवाच वचस्तातो जगदीश्वरमित्यदः । नारी विना क तुरछाया निश्शाखस्य तरोरिव ॥२४॥

भगवान् के उक्त बचन सुनकर पिता ने जगदीश्वर बीर भगवान् से पुनः कहा—नारी के विना नर की छाया (शोभा) कहां संभव है 9 जैसे कि शाखा-रहित बृक्ष की छाया सम्भव नहीं है।।२४।)

एनद्वचोहिमाऽऽक्रान्त-मनःकमलतां द्वत् । नानुजानामि माता ते श्वश्रुनाम न सम्बहेत् ॥२५॥

हिम (बर्फ) से आकान कमल की जैसी दशा हो जाती है, भगवान के बचन से वेंसी ही मनः स्थिति को प्राप्त होते हुए पिता ने पुनः कहा — तुन्हारी माता कभी 'सास्' इस नाम को नहीं घारण करेगी, ऐसा में नहीं जानना था।। रेश।

भावार्थः - गुके तुमसे यह आशा नहीं थी कि हुम विवाह के प्रस्ताव को इस प्रकार आविकार कर माता को सासूबनाने का अध्यसर नहीं दोगे।

किसु राजकुलोत्पन्नो हेतुनापि विनाऽङ्गज । युवतीर्थोऽत्र युवतिरहितो भवतादिति ॥२६॥ पिता ने पुनः कहा-हे झाल्पज ! विना किसी कारण के ही क्या राजकुळ में उत्पन्न यह युवतीयें (युवावस्थारूपी तीयें) युवती-रहित ही रहेगा ? अर्थान् स्विचाहित रहने का तुम्हें कोई कारण तो वतळाना चाहिए ॥ २३ ॥

पुत्रप्रेमोद्भवं मोहं पितुर्ज्ञात्वा प्रश्वः पुनः । विनयेनेति सम्बक्तं समारेभे महामनाः ॥२७॥

पिता के पुत्र-प्रेम से उत्पन्न हुए इस मोह को देखकर सक्षामना बीर भगवान ने पुनः विनय के साथ इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया । २०॥

करत्रमेकतस्तात परत्र निखिलं जगत् । प्रेमपात्रं किमित्यत्र कर्तव्यं बृहि धीमता ॥२८॥

हे तात ! एक क्योर कलत्र (क्यो) है और दूसरी क्योर यह सर्व दु:स्वी जगत् है । हे श्रीमन् ! इनमें से मैं किसे क्यपना प्रेम-पात्र बनाऊं १ मेरा क्या कर्ताव्य है १ इसे क्याप ही बतलाइये ॥ २८ ॥

किमस्मदीयबाहुभ्यां प्रियाया गलमालभे । धूर्तानां पाशतो जन्तुन्त् ताभ्याम्धन्मोचयेऽथवा ॥२९॥

क्या मैं अपनी इन समर्थ भुजाओं से प्रिया के गले का आर्छि-इन करूं, अथवा इनके द्वारा धूर्तों के जाळ से इन दीन प्राणियों को छड़ाऊं ? (आप ही बतलाइये)।। २६।।

प्रायोऽस्मिन् भृतले पुंसो बन्धनं स्त्रीनिबन्धनम् यदमावे परं किश्चित् सम्भवेच्च न बन्धनम् ॥३०॥ प्राय: इस भूतल पर पुरुष के श्ली का बन्धन ही सबसे बड़ा बन्धन है, जिसके प्रभाव में चौर कोई दूसरा बन्धन सम्भव नहीं है। प्रार्थान, कुटुम्ब आदि के ष्रम्य बन्धन श्ली के क्रभाव में सम्भव नहीं होते हैं। 120।।

हृषीकाणि समस्तानि माधन्ति प्रमदाऽऽश्रयात् । नो चेत्पुनरसन्तीव सन्ति यानि तु देहिनः ॥३१॥

प्रमदा (क्वी) के आत्राश्य से ये समस्त इन्द्रियां मद को प्राप्त होती हैं। यदि स्त्री का सम्पर्कन हो नो फिर ये देवधारी के होती हुई भी नहीं होती हुई सी रहती हैं।। ३१।।

तदीयरूपसाँन्दर्यामृतराश्चेः सदाऽतिथी । निजनेत्रसर्गं कर्तुः चित्तमस्य प्रसर्पति ॥३०॥

स्त्री के होने पर मनुष्य का वित्त अपने दोनों नयन रूप सीनों को असके रूप-समुस्तागर का अतिथि बनाने के लिए सदा उस्पुक उसके एक बी । अवीन् वह फिर सदा स्त्री के रूप सीन्दर्य के सागर से ही गोते लगाया करता है ॥ ३२ ॥

यन्मार्दवीपदानायोद्वर्चनादि समर्ज्धते । सदा मखमलोच्लभयनाद्यकुर्वता ॥३३॥

खीर स्त्री होने पर ही; यह मनुष्य सदा मलमछी विस्तरों पर शयन-खामन आदि को करता हुखा शरीर की मार्चवता के लिए उबटन, तेल-मर्दन खादि को किया करता है॥ ३३॥

न हि किश्विदगन्धत्वमन्धत्वमधिगच्छता । इति तैलफुलेलादि सहजं परिगृद्धते ॥३४॥ मेरे शरीर में कदाचित् कुछ भी दुर्गन्य प्राप्त न हो जाथ, इसी विचार से स्त्री के प्रेम में अन्धा बनकर सनुष्य रात-दिन तेळ-फुलेख स्त्रादि को सहज में ही प्रहण करता रहता है।। ३४॥

प्रसादयितुमित्येतां वपुषः परिपुष्टये । वाजीकरणयोगानामादरः क्रियतेऽन्वहम् ॥३५॥

स्त्रीर अपनी स्त्री को प्रसन्न करने के छिए शरीर की पुष्टि करने बाले बाजीकरण प्रयोगों में सदा आदर करला है, अर्थोन् निव्य ही पुष्टि-कारक एवम बल-बीर्थ-वर्धक औषिययों का सेवन करता रहता है।। ३४।।

वदत्यपि जनस्तम्यै श्रवमोस्तृप्तिकारणम् । स्वकर्णयोः सुधास्त्ति तहचः श्रोतुमिच्छति ॥३६॥

मनुष्य स्त्री को प्रसन्न करने के लिए तो स्त्री से मीठे बचन बोलता है श्रीर उस स्त्री के बचन कानों को तृप्ति के कारण है, इसलिए श्रपने कानों में सुधा को प्रवाहित करने वाले उसके बचनों को सुनने के लिए मनुष्य सराइच्छुक रहता है। इस प्रकार स्त्रियों के निमिन्न से पृथ्य उसका दास बन जाता है। ३६।

इन्द्रियाणां तु यो दामः स दासो जगतां भवेत् । इन्द्रियाणि विजित्यैव जगज्जेतृत्वमाप्तुयात् ।।३७॥

हे तात! सच बात तो यह है कि जो इन्द्रियों का दास है, वह सर्व जगन् का दास है। किन्तु इन्द्रियों को जीत करके ही मनुष्य जगब्जेनुस्य को प्राप्त कर सकता है।। ३०॥ सद्योऽपि वश्चमायान्ति देवाः किम्रुत मानवाः । यतस्तवृत्रक्षचर्यः हि त्रताचारेषु सम्मतम् ॥३८॥

जो पुरुष ब्रह्मचारी रहता है, उसके देवता भी शीव वश में खा बाते हैं, फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है। इसीलिए ब्रह्मचर्य सर्व ब्रताचरणों में श्रेष्ठ माना गया है।। २८॥

पुरापि श्रूयते पुत्री ब्राह्मी वा सुन्दरी पुरोः । अनुचानत्वमापन्ना स्त्रीषु शस्यतमा मता ॥३९॥

सुना जाता है कि पूर्वकाल में भी पुरुदंव ऋषभनाथ की सुपुत्री बाक्की ब्हौर सुन्दरी ने भी ब्रद्धाचर्य को अगीकार किया है ब्हौर वे सर्व स्वियों में प्रशस्ततम (सर्वश्रेष्ठ) मानी गई हैं।। ३६।।

उपान्त्योऽपि जिनो बाल-ब्रह्मचारी जगन्मतः । पाण्डवानां तथा भीष्म-पिताण्ड इति श्रृतः ॥४०॥

उपान्त्य जिन पार्श्वनाथ भी बाल ब्रह्मचारी रहे है, यह सारा जगन् जानता है। तथा पारहभों के भीष्म पिनामह भी खाजीवन ब्रह्मचारी रहे, ऐसा सुना जाता है।। ४०।।

अन्येऽपि बहवो जाताः कुमारश्रमणा नराः । सर्वेष्वपि जयेष्वग्र-गतः कामजयो यतः ॥४१॥

अन्य भी बहुत से मनुष्य कुमार-अमण हुए हैं, आशीत् विवाह न करके कुमार-काल में ही दीक्षित हुए हैं। हे तात ! अधिक क्या कहें—सभी विजयों में काम पर विजय पाना अप्रगण्य है।। ४१।। हे पितोऽयमितोऽस्माकं सुविचारविनिश्चयः । नरजन्म द्धानोऽहं न स्यां भीरुवशंगतः ॥४२॥

इसिंखए हे पिता ! हमारा यह दृढ़ निश्चित विचार है कि मनुष्य जन्म को धारण करता हुआ मैं स्त्री के वझगत नहीं होऊ गा ॥ ४२ ॥

किं राजतुक्तोडाहेन प्रजायाः सेवया तु सा । तद्र्थमेवेदं ब्रज्जचर्यमाराधयाम्यहम् ॥४३॥

श्रीर जो अपने विवाह करने से राजपुत्रता की सार्थकता कही, सो उत्तमे क्या राजपुत्रना सार्थक होता है ? वह तो प्रजा की सेवा से ही सार्थक होता है ! अनत्य प्रजा की सेवा के छिए ही मैं ब्रक्सचर्य की आप्रापना करता हैं।। 84 !

राज्यमेतदनर्थाय कॅल्वाणामभृदहो । तथा भग्न-दोःवस्त्योः प्रपञ्चाय महात्मनोः ॥४४॥

संसार का यह राज्य नो ऋनर्थ के लिए ही है। देखों—कौरवों का इसी राज्य के कारण विनाश हो गया। भरत और बाहुबली जैसे महापरवों के भी यह राज्य प्रपच का कारण बना॥ ४४॥

राज्यं भ्रुवि स्थिरं काऽऽसीत्प्रजायाः मनसीत्यतः । शास्वतं राज्यमध्येतुं प्रयते पूर्णरूपतः ॥४५॥

श्रीर फिर यह सांसारिक राज्य स्थिरभी कहां रहता है ? श्रातप्य मैं तो प्रजा के मन में सदा स्थिर रहने वाला जो शास्वत राज्य है उसके पाने के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्नशील हूँ॥ ४४॥ निशम्य युक्तार्थधुरं पिता गिरं पस्पर्श बालस्य नवालकं शिरः । आनन्दसन्दोहसमुल्लसद्वपुस्तया तदास्येन्द्रमदो दशः पपुः ॥४६॥

भगवान् की यह युक्ति-युक्त वाणी को सुनकर के आनन्द-सन्दोह से पुलक्ति डाशीर होकर पिना ने अपने वालक के नव अळक (केश) वाली जिर का स्पर्श किया और उनके नेत्र भगवान् के मुखकरा चन्द्र से निकलने वाली अमृत को पीन लगे।। प्रदा।

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्भु जः स सुदुवे भ्रामलेत्याह्नपं वाणीभ्षणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । वीरस्य क्रमतोऽभिद्यद्वय युवनामाप्तस्य पित्रार्थनाऽ-भृद्वैवाहिकसम्बिदेऽबददर्भो निष्कामकीर्वि तु ना ॥८॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु जजी श्री ग्वतवरी देवी से उरदश्र हुए बाणीभूषण बाल ब्रह्मचारी पंच्यारामल वर्तमान सुनि ज्ञानमागर द्वारा विरिचन इस काव्य में बीर भगवान की शाल्यवस्था से गुवा-बस्था को प्राप्त होने पर पिना के द्वारा प्रशाविन विवाह की श्रास्ती-कारता और गृह-स्थाग की भावना का वर्णन करने वाला यह श्राटवों सर्ग समाप्त हुआ। । मा



अथ नवमः सर्गः

अथ प्रभोरित्यभवन्मनोधनं निभालयामो वटरं जगज्जनम् । वृषं विजुम्पन्तमहो सनातन यथात्म विष्वकृतनुसृन्तिभालनम् ॥१॥

विवाह कराने का प्रस्ताव स्वीकार न करने के पश्चान् बीर प्रभु के मन में यह विचार उत्पक्त हुआ। न्याही में संसार के छोगों को मूर्वना औं ग्रुद्दलाओं से भरा हुआ। देख रहा हूँ। तथा प्राणिमात्र को अपने समान समझने वाला समातन धर्म यिलुग होता हुआ। देख रहा हूँ, इसलिए सुझे, उनकी मंभाल करना चाहिए॥ १॥

तिष्ठेयमित्यत्र सुखेन भृतले म्खजतःथान्यः म पुनः परिस्खलेत् । किं चिन्तया चान्यजनस्य मनमनम्बद्धं म्बसिद्धान्तसुपैत्यहो जनः॥

शहो, ये संसारी छोग किनने स्वार्थी हैं। ये सोचने हैं—कि संसार में मैं सुख से रहें, यह अप्य कोई दुःख में गिरता है, गिरे, हमारे मन में अन्य जन की चिन्ना क्यों हो ? इस फार सर्व जन अपने-अपने स्वार्थ-माधन के मिद्धान को प्राप्त हो रहे हैं॥ २॥

स्त्रीयां पिपासां शमयेत् परासृजा क्षुधां परप्राणविपत्तिभिः प्रजा । स्त्रचन्नुषा स्त्रार्थपरायणां स्थिति निभालयामो जगतीदशीमिति ।।

आज होग दूसरे के खुन से अपनी प्यास ज्ञान करना चाहते हैं और दूसरे के प्राणों के विनाश से अधान उनके मांस से अपनी भूख मिटाना गहते हैं। आज में अपनी आंख से जगत में ऐसी स्वार्थ-परायण स्विति को देख रहा हूँ॥ ३॥ अजेन माता परितुष्यतीति तन्निगद्यते धूर्वजनैः कदर्थितम् । पिवेन्तु मातापि सुतस्य शोणितमहो निशायामपि वर्थमोदितः ॥

श्रहो ! धूरी जन कहते हैं कि जगदस्या वकरे की बिछ सं सम्बुष्ट होती हैं ! किन्तु यदि माता भी पुत्र के खून को पीने रुगे, तब तो किर रात्रि में भी सूर्य उदित हुआ समझना चाहिए ॥ ४॥

जाया-सुतार्थ श्विव विस्फुरन्मनाः कुर्यादजायाः सुतसंहर्ति च ना । किसुच्यतामीदिश एवमार्यता स्ववाञ्छितार्थः निवदनर्थकार्यता॥४॥

इस भूतछ पर आज मनुष्य अपनी स्त्री के पुत्र-छाभ के छिए हुर्षित चित्त होकर के आजा (वकरी) के पुत्र का सहार कर रहा है। ऐसी आपतेता उच्च कुछीनना) को क्या कहा जाय! यह तो अपने बांछित कार्य की सिद्धि के छिए अनर्थ करने बासी महा नीचता है।। ४।।

गार्हस्थ्य एवाभ्युदिताऽस्ति निर्नृ तिर्यतो नृकीटैंप्रियतेऽधुना मृतिः । अत्यक्तदारैकममाश्रयैः कृती स कोऽपि योऽभ्युन्झितकामसन्कृतिः ॥

आहो, आज गाईरथ्य दशा में ही मुक्ति संभव बतलाई जा रही है। उसी का यह फल है, कि ये नर-कीट खी-पुत्रादि का आश्रय छोड़े बिना ही अब घर में मर रहे हैं। आज कोई विरला ही ऐना कृती पुरुष दृष्टिगोचर होना है, जो कि काम-सेवा एव कुटुम्बादि से मोह छोड़ कर आस्त-कल्याण करता हो।। ६।।

जनैर्जरायामपि बाञ्ज्यते रहो नवीढया स्वीदरसम्भवाऽप्यहो । विक्रीयते निष्करुणैर्मु गीव तेर्दू ष्कामि-सिंहस्य करे स्वयं हतैः ।। आहो आज लोग बुदापे में भी नवोदा के साथ संगम चाहते हैं। आज करुणा-रिंडा हुए कितने ही निदयी लाग दुरुकाभी सिंह के हाथ में अपने उदर से उत्पन्न हुई बालिका को सृगी के समान सर्वाचेच रहें हैं॥ ७॥

जनोऽतियुक्तिर्गु रुभिश्च संसेजत् पिताऽपि तावचनयं परित्यजेत् । वृथाऽरिता सोदरयोः परस्परमपीह नारी-नरयोश्च सङ्गरः ॥८॥

खाज संसार में मनुष्य अयोग्य वचनों से, गुरु जनों का खप-मान कर रहा है, और पिता भी स्वार्थी बनकर खपने बुत्र का परि-स्वाग कर रहा है। एक बदर से बरत्न हुए दो सगे भाइयों में खाज परस्पर क्रकारण ही अबुना दिखाई दे रही है और स्त्री-पुन्य में कलह मचा हुआ है। । मा।

स्वरोटिकां मोटियतुं हि शिक्षते जनो ऽखिलः सम्बलये ऽधुना क्षितेः । न कथनाप्यन्यविचारतन्मना जलोकमेषा ग्रसते हि पूतना ॥९॥

आत इस भूनल पर समस्त जन अपनी-अपनी रोटी को मोटी बनाने में लग रहे हैं। कोई भी किसी आत्म की अलाई का विचार नहीं कर रहा है। आहे, आत्र तो यह स्वाब-परायणता रूपी राक्षसी सारे मनस्य लोक को डी प्रसर रही है।। है।।

जनी जनं त्यक्तुभिवाभिवाञ्छति यदा स शीर्षे पिलतत्वमञ्जति । नरोऽपि नारीं समुदीक्ष्य मञ्जुलां निषेत्रते स्नागभिगम्य सम्बलात्।।

आरज स्त्रीजब अपने पति के शिर में सफेदी देखती है, तो उसे ही छोड़ने का विचार करती है। आरज का मनुष्य भी किसी श्चन्य सुन्दरी को देखकर उसे शीघ्र बलान् पकड़ कर उसे सेवन कर रहा है।। १०॥

स्ववाञ्छितं सिद्धयित येन तत्पथा प्रयाति लोकः परलोकसंकथा । समस्ति तावत्खलता जगनमतेऽनुमिच्यमानः खलता प्रवर्धते ॥११॥

श्राज जिस मार्ग से श्रपंत श्रमीष्ट की सिद्धि हांती है, संसार श्रमी मार्ग से जा रहा है, परलोक की कथा तो श्राज ख-लता (गगन-लता) हो रही है। श्राज तो जगन में निरस्तर मोची जाती हुई खलता (द्वेतना) ही बढ रही है। ११।

समीहमानः स्वयमेष पायसं ममनुमाराज्यणभक्षकाय सन् । धरातले साम्प्रतमर्दितोदरः प्रवर्तने हत्न म नामतो नरः ॥१२॥

श्राज का यह मानव क्षयं स्थीर को त्यांन की इच्छा करने हुए भी दूसरों को बना खाने के लिए ज्यान देखकर उदर-पीड़ा से पीड़ित हुआ दिखाई दे रहा है। दु सर्दे कि श्राज धरानल पर यह नाम-मात्र से मतुष्य बना हुआ है। १२ ॥

अहो पश्तनां भ्रियते यतो बिलः रममानतामञ्जति देवतास्थली । यमस्थली वाऽतुलरक्तरञ्जिता विभाति यस्याः सततं हि देहली ॥

ब्बहो, यह देवतास्थली (मन्दिरों की पावन भूमि) पशुष्मों की बिल को भारण कर रही है और प्रसमानपने को प्राप्त हो रही है। वन मन्दिरों की देहली निरम्नर अनुल रक्त से रिजत होकर यम-स्थली-सी गरीत हो रही है। १२।

एकः सुरापानरतस्तथा वत पलक्कपत्वान्कवरस्थली कृतम् । कैनोदरं कोऽपि परस्य योषितं स्वमान्करोतीतरकोणनिष्टितः ॥ कहीं पर कोई छुरा- (मिहरा-) पान करने में संख्त्र है, तो कहीं पर दूसरा मांस खा-खाकर अपने वदर को किसतान बना रहा है। कहीं पर कोई मकान के किसी कोने में बैठा हुआ। पराई स्त्री को आपसमान कर रहा है। १४॥

कुतोऽपहारो द्रविणस्य दृश्यते तथोपहारः स्ववचः प्रपश्यते । परं कलत्रं ह्रियतेऽन्यतो हटाद्विकीयते स्वोदरपूर्तये सटा ॥१५॥

कहीं पर कोई पराये धन का अपहरण कर रहा है, तो कहीं पर कोई अपने मुठे बचन को पुष्ट करने वाले के लिए उपहार दे रहा है। कहीं पर कोई हठान् पराई भी को हर रहा है, तो कहीं पर कोई अपने उदर की पूर्णि के लिए अपनी जटा एंडा रहा है। १४।।

स्रुधेश्वरस्य प्रतिपत्तिहेतवेऽथ संहृतिर्यत्कियते जवखवे । न तादशीभृमिधनादिकारणानुबुत्तवे कीदशि अस्ति धारणा।।१६।।

देखो, आश्चर्य तो इस बात का है कि आज छोग इस संसार में ज्यष्ट कल्पना किये गये (अपने मनमाने) ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के छिए जैसी शास्त्राधं रूप ठड़ाई छड़ रहे हैं, बैसी छड़ाई तो आज अर्मि, भी और बनावि कारणों के छिप नहीं छड़ी जा रही है, यह कैसी विचित्र धारणा है। १६।।

दुर्मोचमोहस्य हतिः कुतस्तथा केनाप्युपायेन विद्रताऽपथात् । परस्परप्रेमपुनीतभावना मनेदमीपामिति मेऽस्ति चेतना ॥१७॥

अतएव इस दुर्मीच (कठिनाई से झूटने वाले) भोह का विनाश कैसे हो, लोग किस उराय से उत्पथ (कृमार्ग) त्याग कर सत्पथ (सुमार्ग) पर खावें खोर कंसे इनमें परस्वर प्रेम की पिवत्र भावना जागृत हो। यही मेरी चेतना है खर्यान् कामना है। (ऐसा भगवान् उस समय विचार कर रहे थे।)॥ १७॥

जाञ्चं पृथिव्याः परहर्तु मेव तचिन्तापरे तीर्थकरे क्रुधेव तत् । व्याप्तुं पृथिव्याः कटिबद्धभावतामेतत्युनः सम्ब्रजति स्म तावता ।।

इल प्रकार भगवान् ने पुत्वी पर कैठी हुई जड़ता (मृह्ता) को दूर करने का विचार करने समय मातों उत पर क्रोचित हुए के समान सारी पूर्वी पर तरपरना से कटिबढ़ होकर जाड़ा फैठ गया। अर्थात कीतकाल जा गया। १८।।

कन्याप्रस्तस्य धतुःप्रसङ्गतस्त्वनन्यमेवातिशयं प्रविभतः । शीतस्य पश्यामि पराक्रमं जिन श्रीकर्णवत्कस्पकरं च योगिनः॥

हे जिन भगवन् । कन्या-राशि से उरतन हुए और धनु राशि के प्रसंग से अतिशय बृद्धि को घारण करने वाले, तथा योगियों को कंपा देने वाले इस दीगकाळ को मैं श्री कर्ण राजा के समान पराक्रमी देखता हैं।। १६।।

भाषार्थ — जैसे कर्ण राजा कुमारी कन्या कुमी से उपन हुआ स्त्रीर धनुर्विया को प्राप्त कर उसके निमित्त से स्त्रिन प्रतापी स्त्रीर स्त्रजेय हो गया या, जिसका नाम सुनकर योगीजन भी थरों जाते थे, उसी प्रकार यह शीतकालाङ भी उसी का स्तृतकरण कर रहा है, क्योंकि यह भी कन्या राशिक्ष्य सुर्वे से उरान्ना होकर धन गशि पर स्त्राने से स्त्रित उम्र हो रहा है।

कुचं समुद्घाटयति प्रिये स्त्रियाः समुद्रवन्ती भिशिरोचितश्रियाः । तावत्करस्पर्भमुखैकलोपकृत सुवीव रोमाञ्चनतीत्यहो सकृत ॥२०॥ इस समय प्रिय के द्वारा स्त्री के कुचों को उचाड़ दिये जाने पर शीत के मारे उन पर रोमांच हो आते हैं, जो कि उसके कर-स्पर्झ करने पर सुख का छोप कर उसे सुई के समान चुभते हैं।। २०।।

सम्बिश्रती सम्प्रति नृतनं तमः समानयन्ती किल क्रूपतः पयः । तुपारतः सन्दथती सितं शिरस्तुजे श्रमोत्पचिकरीत्यहो चिरम् ॥

इस शीतकाल में नवीन वय को घारण करने वाली और काले केशों वाली कोई स्त्री जब कुएं से जल भर कर घर को शाती है और मागे में हिमपात होने से उसके केश खेत हो जाते हैं, तब उसके घर आने पर वह चपने बच्चे के लिए भी चिरकाल तक 'यह मेरी माता है, या नहीं' इस प्रकार के भ्रम को उरपन्न करने वाली हो जाती है, यह आअर्थ है।। २१।।

विवर्णतामेव दिशन् प्रजास्वयं निरम्बरेषु प्रविभर्ति विस्मयम् । फलोदयाधारहरश्च शीतल-प्रसाद एषोऽस्ति तमां भयङ्करः ॥

यह शीतल-प्रसाद अर्थात् शीतकाल का प्रभाव बहा अयंकर है, क्योंकि यह प्रजाब्दों में (जन साधारण में) विवर्णता (कान्ति-हीनता) को फैलाता हुआ। और निरस्वरों (वस्त्र-हीनों) में विसमय को उराज करता हुआ। फलोदय के आधार भूत बुक्षों को विनष्ट कर रहा है। २२।

भावार्थ — यहां कि ने क्याने समय के प्रसिद्ध त्र० शीतल-प्रसादकों की क्षोर व्यंत्र किया है, जो कि विषया-विवाह क्यादि का प्रचार कर लोगों में वर्णशंकरता को कैला रहे थे, तथा दिगम्बर जैनियों में व्यत्ति क्यान्नर्य उत्तम कर रहे थे और क्याने धर्म-विद्योधी कार्थों से लोगों को धर्म के कल स्वर्ग आदि की प्राप्ति के मार्ग में रोड़ा स्टब्स रहे थे।

रुचा कचानाकलयञ्जनीष्वयं नितम्बनी बस्नम्रतापसारयन् । रदच्छदं सीत्कृतिपूर्वकं धवायने दघचजैभिर आग्रुगे।ऽथवा ॥२३॥

श्रथवा यह शीतकाछीन वायु श्रयने संचार से स्त्रियों में उनके केशों को विश्वेरता हुआ। नितस्व पर से बस्त्र को दूर करता हुआ। सीरकार शब्द पूर्वक उनके कोटों को चूसना हुआ। पित के समान आवरण कर रहा है ॥ २३ ॥

दृढं कवाटं द्यितानुशायिन उपर्यथो त्लकुथोऽनपायिनः । अङ्गारिका चेच्छयनस्य पार्श्वतः शीतोऽप्यहो किंकुस्तादसावतः॥

यदि सकान के किवाह दहना से बन्द हैं, सनुष्य घरानी प्यारी स्त्री का आलिंगन किये हुए आदन्द से सो रहा है, उत्तर से रहें सरी रिवाई को ओदे हुए हैं और अप्ता के समीप ही खंगारां से सरी हुई खगीठी रखी हुई है, नो फिर ऐसे लोगों का आहो, यह शीत क्या बिगाह कर सकेगा ? आयोत कुछ भी नहीं ॥ २४॥

सम्रन्थिकन्थाविवरात्तमारुतैर्निशामतीयाद्विचलद्रदोऽत्र तैः । निःस्वोऽपि विश्वोत्तमनामधामतः कुटीरकोणे कुचिताङ्गको वत ।।

इस शीलकाल में दरिड़ पुरुष भी— जो कि कटी गृदकी को कोड़े हुए हैं और जिसके लिड़ों से ठंडी हवा का रही है, अत: शीत से पीकत होकर दांत किटकिटा रहा है, ऐसी दश में भी वह विश्वोत्तम भगवान का नाम लेते हुए ही कुटिवा के एक कोने में संकुचित काग किये हुए शत बिता रहा है। २ ॥। कुशीलवा गल्लकपुष्प्रकाः पुनर्हिमर्चु राह्ने। विरदास्त्यवस्तुनः । प्रजल्पनेऽनल्पतयेव तत्परा इवामरेशस्य च चारणा नराः ॥२६॥

इस समय गाओं को कुला कर बड़बड़ाने वाले ऊंट लोग हिस ऋतु रूपी राजा की बिरावाकी के बसान करने में ख़ुब ख़ब्ली तरह से इस प्रकार तत्पर हो रहें हैं, जैसे कि राजा अमरेश की विरदावली चारण लोग बहानते हैं ॥ २६॥

भावार्थ - यहां पर ऋमरेश पद से कवि ने ऋपने रणोली प्राम के राजा ऋमरसिंह का स्मरण किया है।

प्रकम्पिताः कीशकुलो ह्वास्ततं मदं ममुज्झन्ति हिमोद्येन तम्। समन्तभद्रोक्तिरसेण कातराः परे परास्ता इव सौगतोत्तरा ॥२७॥

जंसे समन्तभद्र-स्वामी कं स्कि-रस से सीगत बौद्ध) छादि कन्य दार्झानिक भवादी लोग शास्त्रार्थ में परास्त होकर कायर वन क्याने मद (काहंकार) को लोब देते हैं, उसी प्रकार इस समय हिम के बदय से कार्योत् हिमागत होने कीशकुलोद्धन बानर लोग भी कांप्रते हर क्याने मद को लोब रहे हैं॥ २७॥

रविर्घतुः प्राप्य जनीमनांसि किल प्रहर्तुः विलसत्तमांकि । स्मरो हिमैर्व्यस्तशरप्रवृत्तिस्तस्यासकौ किङ्करतां विभर्ति ॥२८॥

झीतकाल के हिमपात से झस्त-स्थात हो गई है झर-संवालन की प्रवृत्ति जिसकी ऐसा यह कामदेव अभिमान से आदि विलास को प्राप्त स्त्रियों के मन को हरने में असमर्थ हो रहा है, अतपव उसकी सहाबता के लिए ही मानों यह सूर्व बतुव लेकर अवीत् बतु राक्ति पर आकर उस कामरेव की किंकरता (सेवकपना) को धारण कर रहा है, अर्थान् उसकी सहायता कर रहा है।। २८॥

श्यामास्ति शीताकुलितेति मन्त्रा प्रीत्याम्बरं वासर एष दस्त्रा । किलाधिकं संकुचितः स्वयन्तु तस्यै पुनस्तिष्ठति कीर्चितन्तु॥२९॥

यह स्थामा (रात्रि रूप स्त्री) शीन से पीड़ित हो रही है, ऐसा समझ कर मानों यह दिन (सूर्य) शीन से उपके लिए ऋधिक ऋन्वर (बस्त्र और समय) दे हेता है और श्वयं तो सकुचिन हो कर के समय बिता रहा है, इम प्रकार उसके साथ स्नेह प्रकट करता हुआ। सा प्रतीन होता है।। २६।।

भावार्थ: - शीतकाल में दिन छोटे श्रीर रात्रि बड़ी होने लगती है, इने लक्ष्य में रखकर कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

उष्मापि भीष्मेन जितं हिमेन गत्वा पुनस्तन्निखिलं क्रमेण । तिरोभवत्येव भ्रवेऽबटे च वटे मृगाशीस्तनयोस्तटे च ॥३०॥

भयक्कर हिम के द्वारा जीती गई वह समस्त उष्णता भागकर क्रम से पृथ्वी के कूप में, वट वृक्ष में और मृगनयनियों के स्तनों में तिरोडित हो रही है ॥ ३० ॥

भावार्थः – शीतकाल में औरतो सर्वस्थानों पर शीत अपना ऋषिकार जमा लेता है, तब गर्मी भागकर उक्त तीनों स्थानों पर द्विप जाती है. अर्थान शीतकाल में ये तीन स्थल ही गर्म रहते हैं।

सेवन्त एवन्तपनोष्मतुल्य-तारुण्यपूर्णामिह भाग्यपूर्णाः । सन्तो हसन्तीं मृगशावनेत्रां किम्बा हसन्तीं परिवारपूर्णाम् ॥३१॥ इस जीतकाल में सूर्व के समान काव्यन्त उच्यता को घारण करने वाली या काव्यन्त कान्तिवाणी, एवम् हंसती हुई तथा तास्त्रव से परिपूर्ण मृगनयनियों को और क्रांगारों से जगमगाती हुई वा परिवार के जनों से घिरी क्रांगीठी को भाग्य से परिपूर्ण जन ही सेवन करने हैं॥ २१॥

श्रीतातुरोऽसँ। तरणिर्निश्चायामालिङ्गय गाढं दयितां सुगात्रीम् । श्रेते समुत्थातुमथालसाङ्गस्ततस्स्वतो गौरवमेति रात्रिः ।।३२।।

इस शीनकाल में शीन से आनुर हुआ। यह सूर्व भी रात्रि में अपनी सुन्दरी स्त्री का गाद आलिक्षन करके सो जाता है, अत: आलस्य के दश से वह प्रभात में शीव उठ नहीं पाता है, इस कारण रात्रि स्वत: ही गौरव को प्राप्त होती है, अर्थान् वड़ी हो जाती है। ३२।।

भावार्ध:- शीतकाल में रात बड़ी क्यों होती है, इस पर किंव ने उक्त उलेक्षा की है।

हिमारिणा विग्रहमस्युपेतः हिमतु रेतस्य करानथेतः । समाहरन् हैमकुठानुकूले ददाति कान्ताकुचशैलमूले ॥३३॥

यह हेमन्त ऋतु हिम के शतु सूर्य के माथ विम्नह (युद्ध) करने को अध्यत हो रही है, इसीलिए सानों उसके उष्ण करों (किरणों) को तो लेकर हैमकुछ की अध्युक्कछता वाले अधीन हिम से बने या युवर्ण से बने होने के कारण हैमकान्ति वाले शिवयों के कुच रूप शैंछ के मूछ में रख देती हैं। (इसीलिए निवयों के कुच उष्ण होते हैं।) ॥ ३३॥ महात्मनां संश्रुतपादपानां पत्राणि जीर्णानि किजेति मानात् । प्रकम्पयन्ते दरवाग्धिरा विभावग्रुप्रान्तमिता विचाराः ॥३४॥

इस शीतकाल में संशुन (प्रसिद्ध-प्राप्त) शुक्षों के पत्र भी जीणें होकर गिर रहे हैं, ऐसा होने स ही भानों दर व्यश्वीत जरासी भी जल की धारा लोगों को कंगा देती है। तथा इस समय लोगों के विचार हर समय विभावसु (अधि) के समीप बेठे रहने के बने रहते हैं। इसरा क्रवं यह कि इस समय प्रसिद्ध आर्षभंगों के पत्र तो जीण हो गये हैं, ब्रात: उनका छभाव सा हो रहा है और लोग पंठ रन्यारीलाल की विचार-धारा से प्रभावित हो रहे हैं और विकारी विचारों को क्योंगिशर कर रहे हैं। देश ।।

भावार्थ:-कवि ने अपने समय के प्रसिद्ध हुवारक पं० दरवारी-लाल का उन्लेख 'दरवारि-धारा' पद से करके दन के प्रचार कार्य को अनुचित वतलाया है।

क्षीतं वरीवर्ति विचार-लोपि स्वयं सरीसर्ति समीरणोऽपि । अहो मरीमर्ति किलाकलत्रः नरो नरीनर्ति कुचोष्मतन्त्रः ।।३५।।

इस हेमना ऋतु में वि अर्थान् पश्चियों के चार (संचार) का कोष करने वाला झीत जोर से पढ़ रहा है, समीरण (पवन) भी स्वयं जोर से चल रहा है, स्ती-रहित मतुष्य मरणोग्मुख हो रहे हैं और स्त्री के सनों की उपना से चणा हुए मतुष्य नाच रहे हैं, अर्थान् खानन्द मना रहे हैं।। देश।।

नतम् नो लञ्चमहोत्सवेन समाहतः श्रीकरपञ्चवेन । ष्टुइनिपत्योत्पततीह कन्दुर्धु दाऽधरोदाररसीव बन्धुः ॥३६॥ नतभु युवती के क्यानन्द को प्राप्त श्रीयुक्त कर-पल्लब से ताहित किया हुआ यह कन्दुक रूप पुरुव नीचे गिरता है और हुए से सुक्क होकर के उसके क्यावरों के उदार रस की पान करने के इन्छुक पवि के समाम बार बार करर को उठता है।। ३६।।

कन्दुः कुचाकारधरो युवत्या सन्ताज्यते वेत्यनुयोगधारि । पदोः प्रसादाय पतत्यपीति कणोत्पलं यन्नयनानुकारि ॥३७॥

कुष के झाकार को धारण करने वाला यह करदुक युवती स्त्री के द्वारा तादित किया जा रहा है, ऐसा विचार करने वाला और उसके नेज-कमल का झतुकरण वाला यह क्लोरियल (कान का झासू-पण कनफुल) मानों उसे प्रसन्न करने के लिए झर्योन् स्त्री से झपना झपराध माफ कराने के लिए उसके पैरों में झा गिरता है। 20 ॥

भावार्थः – गेन्द कोलते समय कनफूल क्रियों के पैरों में गिर पदताहै, उसे लक्ष्य करके कवि ने उक्त उन्नेक्षाकी है।

श्रीगेन्दुकेली विभवन्ति तासां नितम्बिनीनां पदयोर्विलासाः । ये ये रणन्त्र पुरसाररासा यूनां तु चेतःपततां सुभासाः ॥३८॥

श्री कन्दुक-क्रीड़ा में संख्य उन गेन्द खेलने वाली निवस्थिनी खियों के शब्द करते हुए नुपुरों से युक्त चरणों के विकास (पद-निचेप) बुवाजनों के चित्र कर पश्चियों के लिए गिद्ध पक्षी के खाक्रमण के समान प्रतीत डोते हैं ॥ ३२ ॥

वैद्वरूयमप्यस्त्वभिमानिनीनामस्तीह यावत्र निश्चा सुपीना । श्रीतानुयोगात्पुनरर्घरात्रे लगेत्रवोडापि घवस्य गात्रे ॥३९॥ इस शीतकाल में जब तक निशा (रात्रि) अच्छी तरह परिपुष्ट नहीं हो जाती है, तब तक भले ही अभिमानिनी नाथिकाओं की पति से वियुक्तता बनी रहे। किन्तु अर्थ रात्रि के होने पर शीत लगने के बहाने से (प्रीहा की तो बात ही क्या) नवोड़ा भी अपने पति के शरीर से स्वयं ही संलग्न हो जाती है।। ३६।।

तुषारसंहारकृतौ सुदक्षा नो चेन्मृगाक्षी सम्रुपेति कक्षाम् । न यामिनीयं यमभामिनीति किन्त्वस्ति तेषां दुरितप्रणीतिः॥४०॥

तुषार के संहार करने में सुदक्ष सुगाक्षी जिसकी कक्षा (बगल) में उपस्थित नहीं है, उसके लिए तो यह रात्रि यामिनी नहीं, किन्तु दारुण दःस्व देने वाली यस-भामिनी ही है।। ४०।।

श्रीतातुरैः साम्त्रतमाशरीरं गृहीनमम्भोभिरपीह चीरम् । श्रनैरवश्यायमिषात् स्वभावाऽसी दंशनस्य प्रश्चता ऽह्न्ता वा॥४१॥

इस शीतकाल में कोरों की तो बात ही क्या है, शीत से पीड़ित हुए जलाशयों के जलों ने भी बर्फ के बहाने से क्याने सारे शरीर पर बक्क प्रहण कर लिया है। क्यांत्रेत टंड की क्यंत्रिकता से वे भी जम गये हैं। यह शीतकरत की स्वाभाविक अद्भुत प्रभुता ही समझना चाहिए।।४१।।

चकास्ति वीकासजुषां वराणां परिस्थितिः कुन्दककोरकारणाम् । छताप्रतानं गमिताऽत्र शीताङ्गीता तु ताराततिरेव गीता ॥४२॥

देखो, इस समय विकास के सन्मुख हुई उत्तम छताओं में संछप्न कुन्द की कछियों की परिस्थिति ऐसी प्रतीत होती है, मानों चे कुन्दकी कलियां नहीं है, अपितु शीत से भयभीत हुई साराश्चों की पंक्ति ही है ॥ ४२ ॥

श्वाखिषु विपन्लवत्वमथेतत् संकुचितत्वं सत्तु मित्रेऽतः । शैत्यमुपेत्य सदाचरशेषु कहलमिते द्विजगशेऽत्र मे शुक् ॥४३॥

इस शीतकाल को पाकर शुक्षों में पत्रों का स्वभाव, दिन में संक्षंचितता, अधीन दिन का छोटा होना, चरणों का ठिटुराना और दोनों का कल्लह, स्थान (कट-हिस्ताना केरे दिल शोधनीय है। इसरा सर्थ वह है कि छुटुन्बी जनों में विपक्ति का प्राप्त होना, मित्र का कटना सन्-स्थाचरण करने में शिथिलता या स्वालस्य करना और दिज-गण (बाह्यण-वर्ग) में कल्लह होना, वे सभी बातें मेरे लिये विजननीय है। ४३॥

पुरतो बह्विः पृष्ठे भातुर्विथुबदनाया जातुनि जातुः । उपरि तूलयुतवस्रकतातु निर्वाते स्थितिरस्तु सदा तुः ॥४४॥

इस शीतकाल में दिन के समय तो छोगों को सामने आप्नि और पुष्ट भाग की ओर सूर्य चाहिए। तथा रात्रि में चन्द्र-चदनी स्त्री की जंबाओं में जंबा और ऊपर से अच्छी रहें से भरे वस्त्र (रिजाई) से ढका हुआ। जरीर और वायु-रहित स्थान में अवस्थान ही सदा आवश्यक है।। प्रश्र।

एणो यात्रुपकाण्डकाधरदलस्यास्वादनेऽपि श्रमं

सिंही हस्तिनमाक्रमेदिष पुरः प्राप्तं न कुण्ठकमः । विग्रः क्षित्रसुपाक्षिपत्यिष करं प्रातर्विशे नात्मनः

हा शीताऽऽक्रमणेन यात्यपि दशां संशोचनीयां जनः॥४४॥

इस समय श्रीत के मारे हिरण अपने पास ही पृथ्वी पर पड़ी पास को बढ़ा कर खाने में अति अस का अनुभव कर रहा है। स्वयं सामने आते हुए हाथी पर आक्रमण करने के लिए सिंह भी कुंचिटत कम बाला हो रहा है, अर्थांत पेर उठाने में अपनर्थ बन रहा है। और माह्यण प्रातःकालीन संख्या-विधि के समय माला फेरने के लिए अपने हाथ को भी नहीं उठा पा रहा है। इस प्रकार हा! अल्येक जन शील के आक्रमण से अति शोवनीय दशा को प्राप्त हो रहा है।।४॥।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्श्वजः म छुपुवे भूरामलेत्याङ्वयं वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । बीरे स्वार्थसमर्थनैकपरतां ठोकस्य संशोचित सम्प्राप्तस्य कथा तपारभारदोऽस्मिन् तरकृते भो कृतिन् ॥९॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु ज चौर घृतवरी रेवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बाल-ब्रह्मचारी ए० भूरामळ वर्तमान सुनि झान-सागर द्वारा निर्मित इस काव्य में लोगा की स्वार्थ-परायणना और की भयकूरना का वर्णन करने वाला यह नवां मंगे समाप्त हुचा।। है।।



अथ दशमः सर्गः

श्रीमतो वर्धमानस्य चित्ते चिन्तनमित्यभृत् । हिमाक्रान्ततया दृष्ट्वा म्लानमम्मोहहत्रजम् ॥१॥

शीत के आक्रमण से सुरझाये हुए कमलों के समूह की देखकर श्रीमान् वर्धमान भगवान् के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुइया ।। १।।

> भ्रुवने लब्धजनुषः कमलस्येव मादशः। क्षणादेव विपत्तिः स्यात्सम्मत्तिमधिगच्छतः॥२॥

इस संसार में जिसने जन्म लिया है कौर जो सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता है, ऐसे मेरे भी कमल के ममान एक क्षण भर में विपत्ति का सकती है।। २॥

> दृश्यमस्त्यभितो यद्वद्धतुरैन्द्रं प्रसत्तिमत् । विषादायैव तत्वश्चाकश्यदेवं प्रपश्यते ॥३॥

यह इन्द्र-धतुत्र सर्व प्रकार से दर्शनीय है, प्रसन्नता करने बाला है, इस प्रकार से देखने वाले पुरुष के लिए तत्रश्चान् नष्ट होता हुन्या वही इन्द्र-धनन कसी के विषाद के लिए हो जाता है।। ३।।

अधिकर्तुं मिदं देही वृथा वाजुलति मोहतः । यथा प्रयतते भूमी गृहीतुं बालको विश्वम् ॥४॥ संसार की ऐसी क्षण-मंगर वस्तुकों को क्षपने क्षषिकार में करने केलिए यह प्राणी मोह से मुखाही इच्छा करना है। जैसे कि चाळक मूमि पर रहते हुए चन्ट्र को प्रहण करने का ब्यर्थ प्रयत्न करना है।। ४।।

संविदन्निष संसारी स नष्टो नश्यतीतरः। नावैत्यहो तथाप्येवं स्वयं यममुखे स्थितम् ॥४॥

यह संसारी जीव, वह नष्ट हो गया, यह नष्ट हो रहा है, ऐसा देखता-जानता हुआ। भी आश्चर्य है कि स्वयं को यम के मुख में स्थित हुआ। नहीं जानता है।। ४।।

> किनन्यैरहमध्यस्मि वश्चितो मायगाऽनया । धीवरोऽध्यम्बपुरान्तःपाती यदिव झंझया ॥६॥

स्त्रीरों से क्या, धीवर क्यांनू बुद्धि वाला भी में क्या इस माया से बंचित नहीं हो रहा हूं ? जैसे कि जल के प्रवाह के मध्य को प्राप्त हुआ धीवर (कहार) सद्भावात से क्याव्योतित होकर उसी पानी के पूर में हुव जाता है, उसी प्रकार में भी इस संसार में हुव ही रहा हैं।। 5।।

> स्त्रस्थितं नाञ्जनं वेत्ति वीक्षतेऽन्यस्य लाञ्जनम् । चन्नर्यथा तथा लोकः परदोषपरीक्षकः ॥७॥

जिसे आंख अपने भीतर छंगे हुए अंजन को नहीं जानती है और अन्य के लंडन (अजन या काजल) को झट देख तेती है, इसी प्रकार यह लोक भी पराये दोगों को ही देखने वाला है, (किन्सु अपने दोगों को नहीं देखता है।)॥ ७॥ श्रोत्रबद्धिरलो लोके छिद्रं स्वस्य प्रकाशयन् । भृणोति सुखतोऽन्येषासुनितानुचितं ववः ॥८॥

श्रोत्र (कर्ण) के समान विरहा पुरुष ही संसार में अपने छिद्र (छेद वा दोष) को प्रकाशित करता हुआ अन्य के उचित स्त्रौर अनु-चित वचन को सुख से सुनता है। प्रा

जुगुप्से ऽहं यतस्तर्तिक जुगुप्स्यं विश्वमस्त्यदः । शरीरमेव ताद्दशं हन्त यत्रानुरज्यते ॥९॥

में जिससे ग्लानि करता हूं, क्या वह यह विश्व ग्लानि-योग्य है ? सब से श्रिधिक तो ग्लानि-योग्य यह शरीर ही है। दुःख है कि इसी में यह सारा संमार अनुरक्त हो रहा है।। ६॥

> अस्मिकहन्तयाऽग्रुष्य पोषकं शोषकं पुनः। बाञ्छामि संहराम्येतदेवानर्थस्य कारणम् ॥१०॥

मैं आज तक इस झरीर में आहंकार करके इसके पोषक को तो, जाहता रहा, आपनी न राग करना रहा, और झरीर के झोषक से हेय करके उसके संहार का प्रयत्न करता रहा। मेरी यह राग-हेय-मयी प्रवृत्ति ही मेरे लिए समर्थ का कारण हुई है। १०॥

विषदे पुनरेतस्मिन् सम्पदस्सकलास्तदा । सञ्चरेदेव सर्वत्र विद्यायोच्चयमीरणः ॥११॥

किन्तु आत्मासे इस शरीर को भिन्न समझ लेने पर सर्व वस्तुएं सन्पदाके रूप ही हैं। पबन उक्कय अर्थान् पर्वत को छोड़कर सर्वेत्र संचार करता ही है।। ११॥ भावार्थ — चास्म-रूप उच्च तस्य पर जिनकी दृष्टि नहीं है और इरीर पर ही जिनका गग है, उनको सभी वस्तुएं विपत्तिमय बनी रहती हैं। किन्तु खास्म-दृशीं पुरुष को वे ही वस्तुएं सम्पत्तिरूप हो जानी हैं।

> अहीनत्वं किमादायि त्वया वकत्वमीत्रुषा । भुज्जानोऽङ्गः ! सुहुभोगान् वहमीह नवीनताम् ॥१२॥

बकता (कुटिस्स्ता) को प्राप्त होने हुए क्या कभी तूने काहीनता (सर्प राजपना वा उव्ययना) को प्रहण किया है। जिससे कि है क्यंग, तूभोगों को बार-बार भोगने हुए भी नवीनता को घारण करना है।। १२।।

विशेषार्थ—इस स्होक का रलेप हम दूसरा अर्थ यह भी निक-छता है कि है आसम, तृत कुटिल्ला को अगीकार करते हुए अर्थात सर्प जैसी कुटिल्ल चाल को चलते हुए भी कभी आहि-(सर्पो-) के इतता अर्थात् स्थामीपने को नहीं धारण किया, आर्थात् शेषनाम जैसी जबता नहीं प्राप्त की। तथा पंचेन्द्रियों के विधय हम भोगों (सर्पों) को भोगते या अप्रण करते हुए भी कभी न बीतता अर्थात् गास-करता नहीं प्राप्त की। वह आध्यर्थ की बात है।

> स्वचेष्टितं स्वयं भ्रङ्क्ते पुमाझान्यच्च कारणम् । झलंझलावशीभृता समेति व्येति या घ्वजा ॥१३॥

पुरुष क्यपनी चेष्टाके फल को स्वय ही भोगता है, इसमें और कोई कारण नहीं हैं। जैने झंझा बायुके वश होकर यह अवजा स्वयं ही उलझती और मुलझती रहती है॥ १२॥

वस्त्रेण वेष्टितः कस्माद् ज्ञह्मचारी च सन्नहम् । दम्मो यक मवेत्कि मो ज्ञज्ञवर्तमीन बाधकः ॥१४॥ में अञ्चलारी होता हुआ। भी वस्त्र से वेष्टित क्यों हो रहा हूँ ? आरहो, क्या यह दम्भ मेरे बहा (आयत्म-प्राप्ति) के सार्ग में वाधक नहीं है ?।। १४।।

जगत्तत्त्वं स्युटीकर्तुं मनोग्रकुरमात्मनः । यद्ययं देहवानिच्छेकिरीहत्वेन मार्जयेत् ॥१५॥

यदि यह प्राणी अपने मनरूप दर्पण में जगन् के रहस्य को स्पष्ट रूप से देखने की इच्छा करना है, तो इसे अपने मनरूप दर्पण को निरीहना (बीतरागता) से मार्जन करना चाहिए॥ १४॥

आवार्थ —जगन के तस्वां का बोध सर्वज्ञता को प्राप्त हुए विना नहीं हो सकता और सर्वज्ञता की प्राप्ति बीतरागता के बिना संभव नहीं है। ऋतः सर्वज्ञता प्राप्त करने के खिए पढले बीतरागता प्राप्त करनी चाहिए।

> लोकोऽयं सम्प्रदायस्य मोहमङ्गीकरोति यत् । स्रुदुः प्रयतमानोऽपि सत्यवर्तमं न विन्दति ॥१६॥

यह संसार सन्प्रदाय के मोह को झंगीकार कर रहा है। यही कारण है कि वारन्वार प्रयत्न करता हुआ। भी वह सत्य मार्ग को नहीं जानता है।। १६।।

> गतातुगतिकत्वेन सम्प्रदायः प्रवर्चते । वस्तुत्वेनाभिसम्बद्धं सत्यमेतत्युनर्भवेत् ।।१७॥

सम्प्रदाय तो गतानुगतिकता से प्रवृत्त होता है। (उसमें सत्य-

श्रमत्य का कोई विचार संभव नहीं है।) किन्तु सत्य तो यथार्थ बस्तुत्व से सम्बद्ध होता है।। १७।।

> वस्तुता नैकपक्षान्तःपातिनीत्यत एव सा । सार्वत्वमभ्यतीत्यास्ति दुर्लभाऽस्मिश्चराचरे ॥१८॥

बस्तुता अयोत् यथार्थता एक पक्ष की अपना पातिनी नहीं है। बहुतो सार्वेल अयोत् मर्वेधमीत्मकर को प्राप्त होकर रहती है और यह अनेकातना या सर्वेधमीत्मकता इस चराचर छोक में दुर्ळंग है।। १८।।

सगरं नगरं त्यक्ता विषमेऽपि समे रसः ।

भगवान् विचार कर रहे हैं कि संसार की समस्त वस्तुएं विप-रीत रूप धारण किये हुए दिख रही हैं जिसे लोग नगर कहते हैं वह तो सगर क्यांन् विय-गुक है और जिसे लोग वन कहते हैं उसमें क्यवनतत्व है क्यांन् वह बाहिरी चकाचोंध से रहित है, किर भी उसमें क्यवनतत्त्व है क्यांन् उसमें सभी ग्राणियों की सुरक्षा है। इस जिए नगर को त्याग करके मेरा मन विचम (भीषण एवं विचमय) वन में रहने को हो रहा है। १६॥

> कान्ता लता वने यस्मात्सींघे तु लवणात्मता । स्यक्त्वा गृहमतः सान्द्रे स्थीयते हि महात्मना ।२०॥

वन में कान्त (सुन्दर) लता है, क्योंकि वह कान्तार है अर्थात् स्नी-सहित है। सौव में लवणात्मकता है, अर्थात् अमृत में सारापन है क्योर मुक्षा (चूना) से बने मक्षान में लावस्य (सौन्दर्य) है यह विरोध देखकर ही महास्मा लोग घर को छोड़कर सान्द्र (सुरम्य) वन में रहते हैं॥ २०॥

> विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदनाश्रयम् । उपैम्यहमपि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम् ॥२१॥

में भी नगर को-जो कि सदनाश्य है अर्थान् सदनों (भवनों) से विदा हुआ है, दूसरे अर्थ में—सद अनाश्य अर्थान् सज्जाों के आश्य से रहित है, ऐसे नगर को छोड़कर सन्त्रजों के लिए आनन्द-कन्द-चक्ष्म व नको अर्थाया सदा आनन्द देने बाले नन्दन बन की सन. बचन काय से प्रेम पूर्वक प्राप्त होना हूँ। २१॥

> इत्येवमनुसन्धान-तत्परे जगदीरवरे । सुरर्षिभिरिहाऽऽगत्य संस्तुतं प्रस्तुतं प्रभोः ॥२२॥

इस प्रकार के विचारों में तत्पर जगदीश्वर श्री वर्धमान के होने पर देवर्षि लौकान्तिक देवों ने यहां आकर के प्रभु की खुति की ॥२२॥

पुनरिन्द्रादयोऽप्यन्ये समध्टीभृय सत्वरम् । समायाता जिनस्यास्य प्रस्तावमनुमोदितुम् ॥२३॥

पुनः अपन्य इन्द्रादिक देव भी शीझ एकत्रिन होकर के जित-भगवान के इस गृहत्याग रूप प्रस्ताव की अनुमोदना करने के लिए आये॥ २३॥

> विजनं स विरक्तात्मा गत्वाऽप्यविजनाकुलम् । निष्कपटन्वमुद्धतुः पटानुज्ज्ञितवानपि ॥२४॥

उन विरक्तात्मा भगवान् ने ऋषि (भेड़) जनों से आकुछ अधीन् भरे हुए ऐसे त्रिजन (एकारत जन सूर्य) वन गें डाक निष्कपटता को पकट करने के लिए खपने वस्तों का परित्याग कर दिया, अधीन् बन में जाकर देगम्बरी दीक्षा ले ली। रश

> उच्चलान कचौर्यं स कल्मपोपममात्मनः । मौनमालक्षवानन्तरन्वेष्ट्रं दस्यसंग्रहम् ॥२५॥

उन्होंने सिलत पाप की उपमा को धारण करने वाले अपने केश:समृद्द को उलाइ डाला, अर्थान केशों का लोच किया और अपन-रंग में पैठे हुए चोरों के समुदाय की हुंडने के लिए भीन को अंगी-कार किया। देश।

> मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णा सा दशमी तिथिः । जयताज्जगतीत्येवमस्माकं भद्रताकरी ॥२६॥

यह मगस्ति मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि है, जिस दिन सगवान ने देगम्बरी दक्षिण महण की। यह हम सबके कल्याण करने बाळी तिथि जगत में जयवन्ती रहे।। २६॥

> दीपकोऽम्युदियायाथ मनःवर्ययनामकः । मनस्यप्रतिसम्पाती तमःसंडारकत्मभोः ॥२७॥

दीक्षित होने के पश्चान बीर प्रमुक्त मन में क्यप्रतिपाती (कभी नहीं बुटने वाला) श्रीर मानसिक अन्यकार का संहार करने वाला भन्न-पर्यय नाम का ज्ञान-दीपक अन्युद्ध को प्राप्त हुआ। अर्थान् अप्रवान के मनः पर्यय क्वांत्र प्रकट हो गया। २७॥ क्कुशीलवा गल्लकफुल्लकाः पुनर्हिमर्तुः राक्को विरदाख्यवस्तुनः । प्रजल्पनेऽनल्पतयेव तत्परा इवागरेशस्य च चारणा नराः ॥२६॥

इस समय गाओं को कुछ। कर बढ़बड़ाने वाले ऊंट छोग हिम ऋतु रूपी राजा की विरादावधी के बसान करने में ख़ूब श्रव्यक्टी तरह से इस प्रकार तरपर हो रहे हैं, जैसे कि राजा श्रमरेश की विरदावछी बारण छोग बखानते हैं ॥ २६॥

भावार्थ – यहां पर अपमरेश पद से कवि ने अपने रणोली प्राम के राजा अपमरसिंह का स्मरण किया है।

प्रकम्पिताः कीशकुलो हवास्ततं मदं समुज्झन्ति हिमोदयेन तम् । समन्तभद्रोक्तिरसेण कातराः परं परास्ता इव सीगनोत्तरा ॥२७॥

डंमे समन्तभद्र-स्वामी के स्कि-रम से सौगत (बौद्ध) खादि अय्य दार्शनिक प्रवादी लोग शास्त्राखें में परान्त होकर कायर वन अपने मद (अहंकार को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार इस समय हिम के डद्य से अर्थान हिमापत होने कीशकुद्धत वानर लोग भी कांप्रेड हए अपने मद को छोड़ रहे हैं। २७॥

रिवर्धनुः प्राप्य जनीमनांसि किल प्रहतुः विलसत्तमांति । समरो हिमैर्व्यस्तशस्त्रवृत्तिस्तस्यासकौ किङ्करतां विभर्ति ॥२८॥

ज्ञीतकाल के हिमपात से अस्त-व्यस्त हो गई है झर-संवालन की जड़ील जिसकी ऐसा यह कामदेव अभिमान से अति विलास को प्राप्त निज्यों के सन को हरू ने अस्तम हो रहा है, अत्यस्य उसकी सहायता के लिए ही मानों यह सूर्य चनुष तोकर अयोन् खुराशि पर आकर उस कामदेव की किंकरता (सेवकपना) को धारण कर रहा है, आर्थान उसकी सहायता कर रहा है ॥ २८॥

श्यामास्ति श्रीताकुलितेति मन्त्रा प्रीत्याम्बरं वासर एष दत्त्वा । किलाधिकं संकुचितः स्वयन्तु तस्ये पुनस्तिष्ठति कीर्चितन्तु॥२९॥

यह स्थामा (रात्रि रूप स्त्री) शीत से पीड़ित हो रही है, ऐसा समझ कर मानों यह दिन (सूर्य) शीत से उपके लिए अधिक अपन्यर (बस्त और समय हे देता है और स्वयं तो सकुचित होकर के समय बिता रहा है, इम प्रकार उमके माथ स्नेह प्रकट करता हुआ। सा प्रतीत होता है।। २६।।

भावार्थ:- शीतकाल में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होने लगती है, इसे लक्ष्य में रखकर किन उक्त उस्प्रेक्षा की है।

उष्मापि भीष्मेन जितं हिमेन गत्वा पुनस्तन्निखिलं क्रमेण । तिरोभवत्येव भुकोऽवटे च वटे मृगाक्षीस्तनयोस्तटे च ॥३०।।

भयक्कर हिम के द्वारा जीती गई वह समस्त उष्णता भागकर क्रम से पृथ्वी के कृत में, वट वृक्ष में ब्यौर मृगनयनियों के स्तनों में निरोडित हो रही है।। २०।।

भावार्थ:- शीतकाल में और तो सर्वस्थानों पर शीत ऋपना ऋषिकार जमा लेता है, तब गर्मी भागकर उक्त तीनों स्थानों पर छिप जाती है, अर्थान् शीतकाल में वे तीन स्थल ही गर्म रहते हैं।

सेवन्त एवन्तपनीव्मतुल्य-तारुण्यपूर्णामिइ भाग्यपूर्णाः । सन्तो हसन्तीं मृगञावनेत्रां किम्वा हसन्तीं परिवारपूर्णाम् ॥३१॥ इस झीतकाळ में सूर्व के समान अत्यन्त उच्चाता को घारण करने वाळी या अत्यन्त कान्तिवाळी, एत्रम् हंपती हुई तवा तारुख से परिपूर्ण प्रनानयनियों को और अंगारों से जगमगाती हुई वा परिवार के जनों से घिरी अंगीठी को भाग्य से परिपूर्ण जन ही सेवन करते हैं ॥ २१ ॥

शीतातुरोऽसँ तरणिर्निशायामालिङ्गच गाढं दयितां सुगात्रीम् । शेते समुत्थातुमथालसाङ्गस्ततस्स्वतो गौरवमेति रात्रिः ।।३२।।

इस शीतकाल में शीत से आतुर हुआ। यह सूर्य भी रात्रि में अपनी सुन्दरी स्त्री का गाड़ आलिङ्गन करके सो जाता है, अत: आलस्य के वश से वह प्रभात में शीव उठ नहीं पाता है, इस कारण रात्रि स्वत: ही गौरव को प्राप्त होती है, अर्थोत बढ़ी हो जाती है। १२।

भावार्थः - शीतकाल में रात बड़ी क्यों होती है, इस पर कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

हिमारिणा विग्रहमभ्युपेतः हिमतु रेतस्य करानथेतः । समाहरन् हैमकुलानुकूले ददाति कान्ताकुवर्गेलमूले ॥३३॥

यह हेमन्त ऋतु हिम के शत्रु सूर्य के साथ विमह (युद्ध) करने को उचत हो रही है, इसीलिए मानों उसके उष्ण करों (किरणों) को तो लंकर हैमकुछ की व्यक्तुकुलता वाले व्ययोग हिम से बने या सुवर्ण से बने होने के कारण हैमकान्ति वाले तिययों के कुच रूप कोळ के मूळ में रख देनी है। (इसीलिए तियों के कुच उष्ण होते हैं।)॥ २३॥ महात्मनां संश्रुतपादपानां पत्राणि जीर्णानि किस्रेति मानात् । प्रकम्पयन्ते दरवारिधारा विभावसुप्रान्तमिता विचाराः ॥३८॥

इस शीतकाल में संभुत (प्रसिद्ध-प्राप्त) दृक्षों के पत्र भी जीणें होकर गिर रहे हैं, ऐसा होने से ही मानों दर अर्थात् लसाची भी जल की घारा लोगों को कंपा देती है। तथा इस समय लोगों के विचार इर ससय विभावसु (अग्नि) के सभीप बैठे रहने के बने रहते हैं। दूसरा अर्थ यह कि इस समय प्रसिद्ध आर्थभंगों के पत्र तो जीणें हो गये हैं, अरः उमका अभाव सा हो रहा है और लोग पंठ दरवारीलाल की चिचार-पारा से प्रभावित हो रहे हैं और विकारी विचारों को अरीमार कर रहे हैं। देर।।

भावार्थः किन ने अपने समय के प्रसिद्ध रुधारक पं० दरवारी-छाछ का उन्लेख 'दरवारि-घारा' पद से करके बन के प्रचार कार्य को अनुचित बसलाया है।

न्नीतं वरीवर्त्ति विचार-लोपि स्वयं सरीमर्त्ति समीरणोऽपि । अहो मरीमर्त्ति किलाकलत्रः नरो नरीनर्त्ति कुचोष्मतन्त्रः ।।३४।।

इस हेमन्त ऋतु में वि आर्थोन् पहिल्यों के चार (संचार) का लोप करने वाला शीत जोर से पड़ रहा है, सभीरण (पवन) भी स्वयं जोर से चल रहा है, स्ती-रहित मनुष्य मरणोन्धुख हो रहे हैं और स्त्री के रुपनों की उपना से उष्ण हुए मनुष्य नाच रहे हैं, अर्थोन् आनन्द मना रहे हैं। ३४।।

नतञ्जु बो लब्बमहोत्सवेन समाहतः श्रीकरपञ्चवेन । स्रृहुर्नियत्योत्पततीह कन्दुर्मु दाऽधगेदाररसीव बन्धुः ॥३६॥ नतभु युवती के क्यानन्द की प्राप्त श्रीयुक्त कर-पल्लब से ताड़ित किया हुक्या यह कन्तुक रूप पुरुष नीचे गिरता है क्यीर हुएँ से युक्त होकर के उसके क्षायों के उदार रस्थाकि गान करने के इन्ह्युक पित के समान वार वार करर को उठता है।। २६।।

कन्दुः कुचाकारधरो युवत्या सन्ताब्यते वेत्यनुयोगधारि । पदोः प्रसादाय पतत्यपीति कर्णोत्परुं यन्नयनानुकारि ॥३७॥

कुच के स्थाकार को धारण करने वाला यह कन्दुक युवती स्त्री के द्वारा नाहिन किया जा नहां है, ऐसा निचार करने वाला स्त्रीर उनके नेत्र-कमल का स्त्रुकरण वाला यह कर्णोरल (कान का स्त्रायू-वण कनकुल । मानों उसे प्रसम्र करने के लिए स्वर्थान् स्त्री से स्वरम्य स्वराग्य माफ कनाने के लिए उसके पैरों में स्त्रा गिरता है।। ३०।

भ।वार्थ – गेन्द खेलते समय कनफूल स्त्रियों के पैरों में गिर पड़ताहै, उसे लक्ष्य करके कवि ने उक्त उलोक्षाकी है।

श्रीगेन्दुकेळी विभवन्ति तासां नितम्बनीनां पदयोर्विलासाः । ये ये रणन्नु पुरसाररासा युनां तु चेतःपततां सुभासाः ॥३८॥

श्री कन्दुक-कीड़ा में संलग्न उन गेन्द खेलने वाली नितन्त्रिकों क्रियों के शब्द करते हुए नुपूरों से युक्त चरणों के विलास (पद-निखेप) युवाजनों के चित्र कर पश्चियों के लिए गिद्ध पक्षी के खाकमण के समान प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥

वैद्वरूयमप्यस्त्वभिमानिनीनामस्तीह यावच निशा सुपीना । श्रीतानुयोगात्पुनरर्थरात्रे लगेववोडापि घवस्य गात्रे ।।३९।। इस शीतकाल में जब तक निशा (रात्रि) अच्छी तरह परिपुष्ट नहीं हो जाती है, तब तक भले ही अभिमानिनी नायिकाओं की पति से विमुखता बनी रहें। किन्तु अर्थ रात्रि के होने पर शीत लगने के बहाने से (प्रीहा की तो बान ही क्या) नवोड़ा भी अपने पति के शरीर से स्वयं ही संलग्न हो जाती हैं।। ३६॥

तुषारसंहारकृतौ सुदक्षा नो चेन्मृगाक्षी सम्रुपेति कक्षाम् । न यामिनीयं यमभामिनीति किन्त्वस्ति तेषां दृरितप्रणीतिः॥४०॥

तुपार के संहार करने में सुदक्ष सुगाक्षी जिसकी कक्षा (बगळ) में उपस्थित नहीं है, उसके लिए तो यह रात्रि यामिनी नहीं किन्तु हारण दुःख देने वाली यस-भामिनी ही है।। ४०॥

श्चीतातुरैः साम्प्रतमाशगीरं गृहीतमम्मोभिरपीह चीरम् । श्चनैरवस्यायमिषात् स्वभावाऽसी दंशनस्य प्रश्चता ऽह्नृता वा॥४१॥

इस जीतकाल में क्योंगें की तो बात ही क्या है, जीत से पीड़ित हुए जलाशयों के जलों ने भी वर्ष के बहाने से क्याने सारे जारीर पर बक्क प्रहण कर लिया है। क्यांन ठंड की क्यांविकता से वे भी जम गये हैं। यह जीतकानु की स्वाभाविक क्यद्भुत प्रभुता हो समझना चाहिए।। ४१।।

चकास्ति वीकासजुवां वराणां परिस्थितिः कुन्दककोरकारणाम् । स्ताप्रतानं गमिताऽत्र शीताङ्गीता तु ताराततिरेव गीता ॥४२॥

देखो, इस समय विकास के सन्मुख हुई उत्तम लताओं में संख्य कुन्द की कलियों की परिस्थित ऐमी प्रतीत होती है, मानों वे कुन्दकी कलियां नहीं है, व्यपितु ज्ञीत से भयभीत हुई ताराओं की पंक्ति ही है ॥ ४२ ॥

भाखिषु विपन्छवत्वमथेतत् संकुचितत्वं खलु मित्रेऽतः । कैत्यमुपेत्य सदाचरसेषु कहलमिते द्विजगसेऽत्र मे ग्रुक् ॥४३॥

इस शीतकाल को पाकर कुक्षों में पत्रों का स्वभाव, दिन में संकुचितता, स्थांन दिन का छोटा होना, चरणों का ठिटुतना सौर दानों का कल्ड, स्थांन किट-किटाना मेरे किए शोचनीय है। दूसरा स्थां यह है कि कुटुन्थी जनों में विपत्ति का प्राप्त होना, प्रित्र का रुठना सन्-स्थाचरण करते में शिथिलता या स्थालस्य करना सौर द्विज-गण (बाह्यण-वर्ग) में कलह होना, वे सभी बातें मेरे लिये विचननीय है। १४।

पुरनो बह्निः पृष्ठे भानुर्विधृत्रदनाया जानुनि जानुः । उपरि नूलधृतवस्त्रकतानु निर्वाते स्थितिरस्तु सदा नुः ॥४४॥

इस जीतकाल में दिन के समय तो लोगों को सामने छिप्ति और पुष्ट भाग की ओर सूर्य चाहिए। तथा रात्रि में चन्द्र-बदनी की की जंघाओं में जाण और जर से अच्छी रुई से भरे बक्त (रिजाई) से ढका हुआ। इतीर और बायु-रहित स्थान में अवस्थान ही सदा आवाश्यक है। ॥ ४४॥

एणो यात्रपकाण्डकाधरदलस्यास्वादनेऽपि श्रमं

सिंही हस्तिनमाक्रमेदपि पुरः प्राप्तं न कुण्ठकमः । वित्रः क्षित्रमुपाक्षिपत्यपि करं प्रातर्विधा नात्मनः

हा शीताऽऽक्रमणेन यात्यपि दशां संशोचनीयां जनः॥४४॥

इस समय छीत के मारे हिरण अपने पास ही प्रश्नी पर पड़ी पान को बठा कर खाने में अति अन का अनुभव कर रहा है। स्वयं सामने आते हुए हाथी पर आक्रमण करने के लिए सिंह भी कुष्ठित कम बाला हो रहा है, अर्थोन् पेर उठाने में अप्रसाद बन रहा है। और माझण पानकालीन संख्या-विधि के समय माला फेन के लिए अपने हाथ को भी नहीं उठा पा रहा है। इस प्रकार हा। प्रत्येक जन श्रीत के आक्रमण से अति शोजनीय दशा को प्राप्त हो रहा है। । अर्थ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्धुः नः सृषुवे भूरामलेत्याह्नपं वाणीभूषणवर्णिनं वृतवरी देवी च यं धीचयम् । वीरे स्वार्थसमर्थनैकपरगां लोकस्य संशोचित सम्मासस्य कथा तपारभगदोऽस्मिन नतकते भो कतिन् ॥९॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुज और पृतवरी रेत्री से उत्पन्न हुए बाणीभूषण, बाल-बहाचारी पं० भूगामल वर्तमान मुनि झान-सागर द्वारा निर्मित इस काल्य में लोगा की स्वार्थ-परायणना और की भयङ्करना का वर्णन करने वाला यह नवां मंग समाप्त हुआ। । है।



अथ दशमः सर्गः

श्रीमतो वर्धमानस्य चित्ते चिन्तनमित्यभृत् । हिमाज्ञान्ततया दृष्ट्वा म्लानमम्भोरुहत्रजम् ॥१॥

शीत के आक्रमण से सुरझाये हुए कमळों के समूह की देखकर श्रीमान् वर्धमान भगवान् के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ।। १॥

> भ्रुवने लब्धजनुषः कमलस्येव माद्यः। क्षणादेव विपत्तिः स्वात्सम्मत्तिमधिगच्छतः॥२॥

इस संसार में जिसने जन्म लिया है और जो सम्पत्ति को प्राप्त करना पाहना है, ऐसे मेरे भी कमल के समान एक क्षण भर में विपत्ति का सकती है।। २।।

दश्यमस्त्यभितो यद्वद्धनुरेन्द्रं प्रसत्तिमत् । विषादायैव तत्पश्चान्त्रस्यदेवं प्रपश्यते ॥३॥

यह इन्द्र-भतुष सर्व प्रकार से दर्शनीय है, प्रसन्नता करने वाला है, इस प्रकार से देखने वाले पुरुष के लिए तत्प्रश्चान नष्ट होता हुचा वही इन्द्र-भतुष बसी के विषाद के लिए हो जाता है ॥ ३॥

अधिकतु मिदं देही बृथा वाज्छति मोहतः । यथा प्रयतते भृमी गृहीतुं बालको विशुम् ॥४॥

संसार की ऐसी क्षण-भंगुर वस्तुकों को अपने अधिकार में

करने के लिए यह प्राणी मोह से वृक्षा ही इच्छ। करता है। जैसे कि बालक भूमि पर रहते हुए चन्द्र को प्रहण करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है।। ४।।

> संविदन्नपि संसारी स नष्टो नश्यतीतरः। नावैत्यहो तथाप्येवं स्वयं यमम्रखे स्थितम् ॥४॥

यह संसारी जीव, वह नष्ट हो गया, यह नष्ट हो रहा है, ऐसा देखता-जानता हुच्चा भी चाश्चर्य है कि स्वयं को यम के मुख में स्थित हुच्चा नहीं जानता है।। ४।।

> किमन्यैरहमप्यस्मि बञ्जितो माययाऽनया । धीनरोऽप्यम्बुपूरान्तःपाती यदिव झंझया ॥६॥

क्योरों से क्या, धोवर जर्थान् बुद्धि वाला भी में क्या इस माया से बंचित नहीं हो रहा हूं ? जैसे कि जल के प्रयाह के मध्य को प्राप्त हुआयां धीवर (कहार) झहाबात से ज्यान्दोलित होकर उसी पानी के पूर में हुव जाना है, उसी प्रकार में भी इस संसार में हुव ही रहा हुँ ॥ ६ ॥

> स्वस्थितं नाञ्जनं वेचि वीक्षतेऽन्यस्य लाञ्छनम् । चत्रर्थया तथा लोकः परदोषपरीक्षकः ॥७॥

जंसे खांख खपने भीतर लगे हुए खंजन को नहीं जानती है स्त्रीर अन्य के लंखन (खजन या काजल) को झट देख लेती हैं, इसी प्रकार यह लोक भी पराये दोषों को ही देखने वाला है, (किन्सु खपने दोषों को नहीं देखता है।)॥ ७॥ श्रोत्रबद्धिरलो लोके छिद्रं स्वस्य प्रकाशयन् । शृणोति सुखतोऽन्येषासुचितानुचितं ववः ॥८॥

श्रोत्र (कर्ण) के समान विरद्धा पुरुष ही मंसार में अपने छिद्र (खेद वा दोष) को प्रकाशित करता हुआ अन्य के उचित और अनु-चित वचन को सुख से सुनता है। दा।

जुगुप्सेऽहं यतस्तित्कं जुगुप्स्यं विश्वमस्त्यदः । शरीरमेव तादशं हन्त यत्रानुरज्यते ॥९॥

में जिससे ग्लानि करता हूँ, क्या यह यह विश्व ग्लानि-योग्य है ? सब से ऋषिक तो ग्लानि-योग्य यह शरीर ही है। दुख है कि उसी में यह सारा संसार अनुरक्त हो रहा है।। ६॥

अस्मिन्नहन्तयाऽमुख्य पोषकं शोषकं पुनः। बाञ्छामि संहराम्येतदेवानर्थस्य कारणम् ॥१०॥

सी खाज तक इस हारीर में खहंकार करके इसके पोषक को तो जाहता रहा, ख्यांने राग करना रहा, खोर गरीर के हो।यक से हुंच करके उसके संहार का प्रयस्त करना रहा। मेरी वह राग-द्वेप-सपी प्रवृत्ति ही मेरे लिए खनार्य का कारण हुई है।। १०॥

विषदे पुनरेतस्मिन् सम्पदस्तकलास्तदा । सञ्चरेदेव सर्वत्र विद्वायोच्चयमीरणः ॥११॥

किन्तु आप्तासासे इस झरीर को भिन्न समझ लेने पर सर्व वस्तुएं सम्पदाके रूप डी हैं। पवन उच्चय अर्वान् पर्वत को छोड़कर सर्वत्र संचार करता डी है। ११॥ भावार्थ — झाल्म-रूप उच्च तस्य पर जिनकी टिप्ट नहीं है और इरीर पर ही जिनका राग है, उनको सभी वस्तुएं विपत्तिमय बनी रहती हैं। किन्तु खाल्म-दुर्शी पुरुष को वे ही वस्तुएं सम्पत्तिरूप हो जाती हैं।

> अहीनत्वं किमादायि त्वया वकत्वमीदुषा । भुज्ञानोऽङ्गः ! मुहुभोंगान् बहसीह नवीनताम् ॥१२॥

वक्रता (कुटिलता) को प्राप्त होते हुए क्या कभी तृते आप्तीनता (सर्प प्रत्यपता) को प्रहण किया है। जिससे कि हे अपंत, तू भोगों को बार-बार भोगने हुए भी नवीनता को घारण करता है।। २२।।

विशेषार्थ—इस स्होक का श्लेप रूप दूसरा स्रथं यह भी निक-छता है कि है स्नास्त्रम्, तृतं कुटिल्ला को स्नंगिक्तर करते हुए स्वर्धात् सर्प जैसी कुटिल् चाल को चलते हुए भी कभी स्वर्धि-(सर्पो-) के इतना स्रथात् स्वामीपने को नहीं धारण क्या, स्वर्धात् रोकताग सैसी उक्ता नहीं प्राप्त की। तथा पंचीत्रचों के विषय रूप भोगों (सर्पों) को भोगते या भक्षण करते हुए भी कभी न बीतता स्वर्धात् गरुक-सकरता नहीं प्राप्त की। यह स्वाध्यये की बात है।

> स्वचेष्टितं स्वयं अङ्क्ते पुमाक्षान्यच्च कारणम् । झलंझलावशीभृता समेति व्येति या ध्वजा ॥१३॥

पुरुष अपनी चेष्टा के फल को स्वयं ही भोगता है, इसमें और कोई कारण नहीं हैं। जिथे झंझा वायु के वश होकर यह ध्वजा स्वयं ही उल्झावी और सलझती रहती है॥ १३॥

> बस्त्रीण वेष्टितः कस्माद् ब्रह्मचारी च सञ्चहम् । दम्मो यस मवेरिक भो ब्रह्मवर्त्मीन वाधकः ॥१४॥

में बद्धाचारी होता हुआ भी वस्त्र से वेष्टित क्यों हो रहा हूँ ? आहो, क्या यह दस्भ मेरे ब्रह्म (आल्स-प्राप्ति) के मार्ग में बाधक नहीं है ?।। १४॥

> जगत्तत्त्वं स्युटीकत्तुं मनोग्रक्करमात्मनः । यद्ययं देहवानिच्छेकिरीहत्वेन मार्जयेत् ॥१५॥

यदि यह प्राणी अपने मनरूप दर्पण में जगत् के रहस्य को स्पष्ट रूप से देखने की इच्छा करना है, तो इसे अपने मनरूप दर्पण को निरीहता (बीतरागना) में मार्जन करना चाहिए।। १४ ।।

भावार्थ — जगत् के तस्त्रों का बोध सर्वज्ञता को प्राप्त हुए विना नहीं हो मकता और सर्वज्ञता की प्राप्ति वीतरागता के विना संभव नहीं है। ऋतः सर्वज्ञता प्राप्त करने के लिए पहले वीतरागता प्राप्त करनी चाहिए।

> लोकोऽयं सम्प्रदायस्य मोहमङ्गीकरोति यत् । सुदुः प्रयतमानोऽपि सत्यवतर्म न विन्दति ॥१६॥

यह संसार सम्प्रदाय के मोह को अपगीकार कर रहा है। यहीं कारण है कि वारम्बार प्रयत्न करता हुआ। भी वह सत्य मार्गको नहीं जानता है॥ १६॥

> गतानुगतिकत्वेन सम्प्रदायः प्रत्रर्चते । वस्तुत्वेनाभिसम्बद्धं सत्यमेतत्पुनर्भवेत् ॥१७॥

सम्प्रदाय तो गतानुगतिकता से प्रवृत्त होता है। (उसमें सत्य-

असस्य का कोई विचार संभव नही है।) किन्तु सस्य तो यथार्थ वस्तुत्व से सम्बद्ध होता है।।१७॥

> वस्तुता नैकपक्षान्तःपातिनीत्यत एव सा । सार्वत्वमभ्यतीत्यास्ति दुर्लभाऽस्मिश्वराचरे ॥१८॥

बस्तुता अर्थान् यथार्थना एक पक्ष की अन्तः पातिनी नहीं है, यह तो सार्वत्य अर्थान् मर्वथयांश्मकस्य को प्राप्त होकर रहती है और यह अनेकान्तता या सर्वधर्माश्मकता इस वराचर छोक में दुर्छन है। १८॥

> सगरं नगरं त्यक्त्वा विषमेऽपि समे रसः । बनेऽप्यवनतत्त्वेन सकलं विकलं यतः ॥१९॥

अगवान् विचार कर रहे हैं कि संसार की समस्त वस्तुरं विप-रीत कर चारण किये हुए दिख रही हैं जिसे लोग नगर कहते हैं वह तो सगर अर्थोन् विष-पुक्त है और जिसे लोग बन कहते हैं वह से अवनतस्त्र है अर्थोन् वह बाहिरी चकाचेंश से रहित है, किर भी जसमें अबनतस्त्र है अर्थोन् उसमें सभी प्राणियों की सुरक्षा है। इस लिए नगर को लाग करने मेरा मन विषम (भीषण एवं विपमय) बन में रहने को हो रहा है। १६।।

कान्ता लता वने यस्मात्सीधे तु लवणात्मता । त्यक्तवा गृहमतः सान्द्रे स्थीयते हि महात्मना । १२०॥

वन में कान्त (सुन्दर) छता है, क्योंकि वह कान्तार है अर्थात् स्री-सहित है। सौघ में छवणात्मकता है, अर्थात् अपृत में खारापन है कौर सुघा (चूना) से बने मकान में छावस्य (सौन्दर्य) है यह विरोघ देखकर ही महात्मा लोग घर को छोड़कर सान्द्र (सुरस्य) वन में रहते हैं।। २०॥

> विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदनाश्रयम् । उपैम्यहमपि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम् ॥२१॥

मैं भी नगर को-जो कि सदनाशय है अर्थोन् सदनों (भवनों) से थिरा हुआ है, दूमरे अर्थ में — सद खनाश्रय अर्थान् सजनों के आयर हुआ है, दूमरे नगर को छोड़कर सरजनों के छिए आनन्द-कन्द-सहरप वन को अथवा सदा आनन्द देने वाले नन्दन वन को मन. वचन काय से प्रेम पूर्वक प्राप्त होता हूँ। २१॥

इत्येवमनुसन्धानःतत्परे जगदीश्वरे । सुरर्षिभिरिहाऽऽगत्य संस्तृतं प्रस्तुतं प्रभोः ॥२२॥

इस प्रकार के विचारों में तरपर जगदीश्वर श्री वर्षमान के होने पर देवर्षि लौकान्तिक देवों ने यहां आकर के प्रभु की स्तुति की ॥२२॥

पुनरिन्द्रादयोऽप्यन्ये समध्टीभूय सत्वरम् ।

समायाता जिनस्यास्य प्रस्तावमनुमोदितुष् ॥२३॥ पुनः ब्रान्य इन्द्रादिक देव भी शीघ्र एकत्रिन होकर के जित-॥च के इस गृहत्याग रूप प्रस्ताव की ब्यत्सोदना करने के

तुनः अर्थ हर्षायक ६४ चा साम रकाना हाकर का सम भगवान् के इस गृहत्याग रूप प्रस्ताव की व्यतुमोदना करने के छिए व्याये।। २३॥

विजनं स विरक्तात्मा गत्वाऽप्यविजनाकुलम् । निष्कपटत्वमुद्धतु^र पटानुज्झितवानपि ॥२४॥ डन विरक्तात्मा भगवान् ने ऋवि (भेड़) जनों से आकुछ अवीन् मरे हुए ऐसे विजन (एकान्त जन-शून्य) बन में जाक निष्कपटता को प्रकट करने के लिए अपने वक्तों का परित्याग कर दिया, अर्थान् बन में जाकर देंगम्बरी दीक्षा के छी।। रे४।।

उच्चलान कचौषं स कल्मषोपममात्मनः । मीनमालन्धवानन्तरन्वेष्टुं दस्युसंग्रहम् ॥२५॥

उन्होंने मिलन पाप की उपमा को धारण करने वाले ड्यपने केश-समूह को उलाड़ डाला, अर्थान केशों का लोच किया और डमन-रंग में पेठे हुए चोरों के समुदाय को ढूं ढेने के लिए भीन को आंगी-कार किया। २४॥

मार्गशिर्षस्य मासस्य कृष्णा सा दशमी तिथिः । जयताज्जगतीत्येवमस्माकं भद्रताकरी ॥२६॥

वह मगसिर मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि है, जिस दिन मगवान् ने देंगन्बरी दीक्षा प्रहण की । यह हम सबके कल्याण करने बाली तिथि जगत में जयधन्ती रहे॥ २६॥

> दीपकोऽम्युदियायाथ मनःपर्ययनामकः । मनस्यप्रतिसम्पाती तमःसंहारकृत्यभोः ॥२७॥

दीश्चित होने के पश्चान् वीर प्रभु के मन में बाशितपाती (कभी नहीं बूटने बाल) और मानशिक अन्यकार का संहार करने बाला मनःपर्यय को मान का झान-दीपक अन्युद्दय को प्राप्त हुखा। श्रव्यांन् भगवान् के मनःपर्यय झान प्रकट हो गया। २७॥ चिन्तितं हृदये तेन वीरं नाम बदन्ति माम् । किं कदैतन्मयाऽबोधि कीदशी मथि वीरता ॥२८॥

तद भगवान् इपपने इत्य में विचार करने छगे — छोग मुके वीर नाम से कहते हैं। पर क्या कभी मैंने यह सोचा है कि मुझमें कैसी वीरता है १ । २८ ।।

> वीरता शिक्षभावश्चेद्रीरुता किं पुनर्भवेत् । परापेक्षितया दास्याद्यत्र मुक्तिनं जातुचित् । २९॥

यदि झस्त्र सपालन का या शस्त्र प्रदुण करने का नाम वीरता है, तो फिर भीकता नाम किमका होगा? शस्त्र-मद्दण करने बाली वीरता तो परापेखी होने से दासता है। इस दासता में मुक्ति कदा-चित्र भी सम्भव नहीं है।। २६।।

> बस्तुतो यदि चिन्त्येत चिन्तेतः कीदशी पुनः। अविनाशी ममात्मायं दश्यमेतद्विनश्वरम् ।।३०।।

यदि वाश्यव में वश्यु के स्वरूप का जिल्लवन किया जाये, तो मेरी यह आहमा तो अधिनाशी है और यह सर्व दृश्यमान परार्थ विजन्मर हैं। किर मेमे जिल्ला कैसी॥ ३०॥

> विभेति मरणाईनो न दीनोऽथामृतस्थितिः। सम्पदयन्त्रिपदोऽपि सरितः परितश्रदेतः॥३१॥

दीन पुरुष मरण से ढरता है। जो दीन नहीं है, वह अमृत स्थिति है, अर्थात् वीर पुरुष मरण से नहीं ढरता है, क्योंकि वह तो आस्मा को श्वमर मानता है। उसके लिए तो चारों झार से श्वाने बाली विपत्तियां भी सम्यप्ति के लिए होती हैं। जैसे समुद्र को झीभित करने के लिए सर्वे श्वोद से श्वाने हीं जो निदयां उसे खुल्य न करके उसी की सम्यप्ति बन जाती हैं॥ ३१।

यां बीक्ष्य वैनतेयस्य सर्पस्येव परस्य च । क्रुरता दूरतामञ्चेच्छूरता शक्तिरात्मनः ॥३२॥

जैसे गरुड़ की झांक को देखकर सर्प की क्रूरता दूर हो जाती है, उसी प्रकार बीर की आयास-शांकि को देखकर शत्रु की क्रूरता दर हो जाती है, क्योंकि शुरता आयासा की शक्ति है।। २२।।

शस्त्रोपयोगिने शस्त्रभयं विश्वं प्रजायते । शस्त्र दृष्ट्वाऽप्यभीताय स्पृह्यामि महातमने ॥३३॥

इक्त का उपयोग करने वाले के लिए यह विश्व झक्त्रमध्य हो जाता है। किन्तु झक्त्र को देख करके भी निर्भय रहने वाले महान् पुरुष की मैं इच्छा करता हैं।। ३३।।

श्रपन्ति सुद्रजनमानो व्यर्थमेव विरोधकान् । सत्याग्रहप्रभावेण महात्मा त्वनुकूलयेत ॥३४॥

जुद्र-जन्मा दीन पुरुष विरोधियों को व्यर्थ ही कोसते हैं। महापुरुष तो सत्याशह के प्रभाव से विरोधियों को भी अपने अनु-कळ कर लेता है।। ३४॥

भावार्थः - इस ऋोक में प्रयुक्त महात्मा पद से गांघीजी धीर खनके सत्यात्रह की यदार्थता का किन ने संकेत किया है।

अथानेके प्रसङ्गास्ते बभृतुस्तपसी युगे। यत्कथा खुल धीराणामपि रोमाश्वकारिणी ॥३५॥

इसके प्रश्नात् उन वीर प्रभुके तपश्चरण के काल में ऐसे व्यनेक प्रसङ्ग व्याये, कि जिनकी कथा भी धीर जनों को भी रोमाव्यकारी है।। ३४।।

भावार्थ:- भगवान् के साहे बारह वर्ष के तपश्चरण-काल में ऐसी-ऐसी घटनाए घटों कि जिनके सुनने मात्र से ही धीर-बीरों के भी रोम खहे हो जाने हैं। परन्तु भगवान् महाबीर उन सब प्रसक्तों पर खरे उतरे श्रीर उन्होंने अपने ऊपर श्राये हुए उपसर्गों (आपिन्सों) को भली भांति सहन किया और उन पर विजय प्राप्त को। इन घटनाओं का उल्लेख प्रस्तावना में किया गाया है।

किन्तु वीरप्रभुवीरा हेलया तानतीतवान् । संसानिलोऽपि किं तावत्कम्पयेन्मेसपर्वतम् ॥३६॥

किन्तु बीर प्रभु तो सचसुच ही बीर थे, उन्होंने उन सब प्रसंगों को कुत्तुहरू-पूर्वक पार किया, क्यांत् उन पर बिजय पाई। कवि कहते हैं कि क्यां कभी संसाया भी सेठ पर्वत को कंपा सकती हैं। क्यांत्र कभी नहीं। 35।।

एकाकी सिंहवद्वीरो व्यचरत्स भुवस्तले। मनस्वी मनसि स्वीये न सद्वायमपेक्षते॥३७॥

वे वीरप्रभु इस भूतल पर सिंह के समान आकेले ही विहार करते रहे। सो ठीक ही है, क्वोंकि मनस्वी पुरुष अपने चित्त में दूसरे की सहायता की अपेक्षा नहीं करते॥ ३७॥ ये केऽपि सम्प्रति विरुद्धिषयो स्तरित त्वच्चेष्टितस्य परिकर्षम् तो हि सन्ति । आत्मन् पुराऽजनि तवैव विभावस् चिन् मुक्तासु सुत्रसमवायकरीव स्वी।।३८॥

आज जो कोई भी परस्पर बिरुद्ध खुद्धिवाले दिखलाई दे रहे हैं है झालम, वे सब तेरी पूर्व भव की चेष्टा के ही परिकर्म के धारक हैं, क्योंकि, तू ने पूर्व जन्म में अपने विचाद विभाव परिणति से परिणत किये, उसीके ये सब परिणाम है। जैसे कि मोतियों में एक सूत्रता करने वाली मुईहोती है। ३२ ॥

भावार्ध: - जैसे भिन्न भिन्न १ स्वतंत्र सत्ता वाले मोतियों में सूव (थागा) रिरोने का कार्य सुई करती है, उभी प्रकार विभिन्न व्यक्तित्व वाले पुरुषों में जो क्यपने विरोधी या क्राविरोधी दिलाई हेती है, यह क्यपनी रागः द्वेषमधी सूची (सुई) रूप विभाव परिणति का ही प्रभाव है।

गतमनुगच्छति यतोऽधिकांगः सहजतयैव तथा मतिमान सः । अन्याननुकूलयितुं कुर्यात्स्वस्य सदाऽऽदर्श्वमयीं चर्याम् ॥३९॥

संसार में श्रीशकांश जन तो गतानुगत ही चळते हैं, किन्तु श्रुद्धिमान् तो वहीं है जो श्रीरों को श्रुतकूळ करने के लिए सदा सहज रूप से श्रपनी श्रादर्शमंत्री चर्चा को करे।। ३६।।

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्श्वः स सुषुवे भूरामस्तियाह्नयं वाणीभूषण-वर्णिनं कृतकरी देवी च यं धीचयम् ।

तस्माल्लब्धभवे शगच्छति तमां वीरोदयाख्यानके । सर्गोऽसी दशमश्र निष्क्रमणवाक् वीरस्य तत्रानके ॥१०॥

इस प्रकार श्रीमान् सेढ चतुर्युः जारीर पृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीम्थण बाल-क्रम्यवारी भूगास्त्र वर्तमान सुनि ज्ञानसागर द्वारा विरचित बीरोदय ज्ञास्त्रान में बीर के निक्कमण कल्याणक का वर्णन करने वाला दशवां समो समाप्त हुआ। । १० ॥

अथैकादशः सर्गः

श्रृणु प्रवित् सिंहसमीक्षयेन प्राय्जनमञ्जलाधिगमी क्षयेन । सिजननगोपाञ्चितवारिपुरे मनस्तरिस्थो व्यचरत् प्रभूरे ॥१॥

हे बिडकन ! सुनो - अगवाम ने सिंहाबडोकन करते हुए (अविध बान से) एक क्षण मात्र में अपने पूर्व कम्मों के कुत्तान्तों को जान किया । तब वे नीव किस्बी हुई बाक्य-परम्परा से खंकित नहीं के पूर्व में मनरूपी नौका पर बैठकर विचरने को, अर्थान् इस प्रकार से विचार करने को ॥ १॥

निरामया वीतभयाः ककुल्पाः श्रीदेबदेवीद्वितयेन तुल्याः । आसन् पुरा भृतलवासिनोऽपि अनिष्टसंयोगघरो न कोऽपि ॥२॥

बहुत पूर्वकाळ में यहां पर सभी भूतळ-वासी प्राणी निरामय

(नीरोग) थे, अय-रहित थे, भोगोपभोगों से सुखी थे और देव-टेवियों के तुल्य सुखी युगल जीवन विताते थे। उस समय कोई भी अनिष्ट संयोग वाला नहीं था॥ २॥

नानिष्टयोगेष्टवियोगरूपाः कन्पद्वमेन्यो विश्वतोक्तकूपाः । निर्मत्तरा हुधतयोगगृहाः परस्परं तुन्यविधानरूहाः ॥३॥

उस काल में कोई भी प्राणी कानिष्ट-संयोग और इष्ट वियोग बाला नहीं था। कल्युक्कों से कई जीवनोपयोगी सभी वसूप्र प्राप्त होती थी। उस समय के लोग प्रस्तर भाव से रहित ये और परस्तर समान आयण्य-स्ववहार करते हुए कानि स्तेह से रहते थे।। ই।।

भावार्ध—उस समय यहां पर भोग भूमि थी और सर्व मनुष्य सर्व प्रकार से सुस्ती थे।

कालेन वैषम्यमिते नृवर्गे कौर्थे पश्तासुषयाति सर्गे । कन्यद्रमीघोऽपि फलप्रकार-दानेऽथ सङ्कोचसुरीचकार ॥४॥

तदनन्तर काळ-चक्र के प्रभाव से मनुष्य वर्ग में विषयना के काने पर और राष्ट्राकों के कर भाव को प्राप्त होने पर कल्पवृक्षी के समूह ने भी नाना प्रकार के फठों के देने में संकोच के शक्तिकार कर किया, कार्योग पर्य के समान फड़ टेना बन्द कर दिया। 18 ।।

सप्तद्वयोदारकुलङ्कराणामन्त्यस्य नामेर्मरुदेवि आणात् । सीमन्तिनी तत्र हदेकहारस्तत्कुक्षितोऽभृद् ऋषभावतारः ॥४॥

उस समय यहां पर क्रमशः चौदह कुळकर उत्पन्न हुए। उनमें क्रमितम कुळकर नाभिराज थे। उनकी स्त्री का नाम मस्टेवी था। उसकी कुक्षि से दोनों के हृदय के अद्वितीय हार-स्वरूप श्री ऋषभदेव का अवतार हुआ। । १॥

प्रजासु आजीवनिका÷गुपायमस्यादिषट्कर्मविधि विधाय । पुनः प्रवत्राज स मुक्तिहेतु-प्रयुक्तये धर्मगृहैककेतुः । ६॥

उन्होंने प्रजाझों की आजीविका के ज्यायभूत आसि, सिंध, कृषि आदि बद् कर्सी का विधान करके पुत: सुक्ति-मागे को प्रकट करने के लिए तथा श्ययं सुक्ति तो धर्म करने के लिए परिक्राजकता को खंगी-कार किया, क्योंकि तो धर्म कप प्रासाद के आदितीय केतु- (ध्यज-) सक्त्य थे। ६।।

एकेऽम्रना साकमहो प्रश्नुचास्तप्तुं न शक्ताः स्म चलन्ति इचात् । यदच्छयाऽऽहारविहारशीला द्युर्विचित्रां तु निजीयलीलाम् ॥७॥

उनके साथ सहनों लोग परिव्राजक बन गये। किन्तु उनमें से अनेक लोग उप नय को तपने के लिए समर्थ नहीं हुए और अपने चारिज से विचलित होकर स्वच्छन्द आहार-विहार करने लगे। तब उन्होंने अपनी मनमानी अनेक प्रकार की विचित्र लीलाओं को धारण किया। । ।।

भावार्थ - सत्य साधुमार्ग छोड़कर उन्होंने निविध वेधों को भारण कर धर्मका सनमाना आचरण एवं प्रचार प्रारंभ कर दिया।

पीत्रो ऽहमेतस्य तदग्रगामी मरीचिनाम्ना समभूच्च नामी । ययौ ममायं कपि-लक्षणेनार्जितं मतं तत्कपिल-क्षणे ना ॥८॥

उन उन्मार्ग-गामियों का अप्रगामी (मुखिया) मैं मरीचि नाम

से प्रसिद्ध भगवान् ऋषभदेव का पौत्र ही था। उस समय किप (बातर) जैमी चंचलता से मैंने जो मत प्रवारित किया, वही काला-न्तर में कपिलमत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।। पा

स्वर्भं गतोऽप्येत्य पुनर्द्विजत्वं धृत्वा परित्राजकतामतत्त्वम् । प्रचारयन् स्मास्मि सुदृष्टिहान्या समाद्दधानोऽप्यपथे तथाऽन्यान् ।।

सरीचि के अब से छात्रु समान कर मैं स्वर्ग गया। वहां से साक्ट द्विजल को धारण कर, अधीन माझण के कुछ में जन्म लेकर स्वीर निस्तार वाछी परिज्ञाजकता को नुसः धारण कर उसका प्रचार करता हुच्या सुदृष्टि (मन्यन्द्रीन) के स्वभाव से स्वन्य जनों की भी उसी कुषय में लगाना हुच्या विचरने लगा। । ।।

नानाकुयोनीः समवेत्य तेन इन्ताऽथ दुष्कर्मसमन्त्रयेन । शाण्डिन्य-पाराशरिकाद्वयस्य पुत्रोऽभवं स्थावरनाम शस्यः ।।१०।।

इस कमार्ग के भवार वा स्वय तथेव का वरण से मैंने जो दुष्कर्म क्यार्जन किया, उससे संयुक्त होकर उसके फलस्वरूप नाना प्रकार की कुमोनियों में परिभ्रमण करके अपने में शायित्वर श्रीक्षण और उसकी पराश्चरिका स्त्री के स्थावर नाम का शेटर पुत्र हुआ। १०॥

भूत्वा परिवाद् स गतो महेन्द्र-स्वर्गः ततो राजगृहेऽपकेन्द्रः । जैन्या भवामि स्म च विश्वभूतेस्तुक् विश्वनन्दी जगतीत्यपूते।।

डस मच में भी परिज्ञाजक होकर तप के प्रभाव से माहेन्द्र सर्वागया। पुतःवहाँ से च्युत होकर इस क्यायित जाता में परिश्रमण करते हुए राजगृह नगर में विश्वभृति जाहाण और वसकी जेनी नामक की के विश्वनन्दी नाम का पुत्र हुआ।। ११॥ विभासमृतेस्तनयो विश्वासनन्दी समैच्छत्यितुराचभासम् । यद्विश्वनन्दिप्रथितं किलासीदुधानमभ्रे श्वरसान्द्रभासि ॥१२॥

विश्वसूरि के आई विशासभूति का पुत्र विशासनस्री वा। वह पिता के द्वारा विश्वनन्दी को विथे हुए नन्दन वन जेंसे शोभायमान ज्ञान को चाहता था॥ १२॥

राजा तुजेऽदाचदहो निरस्प युवाधिराजं छलतो रणस्य । प्रत्यागतो ज्ञातरहस्पवृत्तः श्रामण्यकर्मण्यसकौ प्रवृत्तः ॥१३॥

विशासभूति राजा ने रण के बहाने से शुक्क विश्वनन्दी को बाहिर भेज दिया और यह उद्यान अपने पुत्र को दे दिया। जब वह मैं विश्वनन्दी युद्ध से बापिस आया और सर्व ब्रुचान्त को जाना, तो विश्वनन्दी शुक्क सामय्यकर्म में प्रवृत्त हो गया आर्थान् जिन-दीक्षा के ली॥ १९॥

तदेतदाकण्ये विश्वाखभूतिर्विचार्यं वृत्तं जगतोऽतिपूति । दिगम्बरीभृय सतां वतंसः ययी महाशुक्रसुरालयं स ॥१४॥

राजा विशासक्यूति यह सब बुत्तान्त सुनकर और जगत् के हाल को आरथन्त धृणित विचार कर दिगम्बर साधु बन गया और बह सज्जों का शिरासणि तप करके महाशुक्र नामक स्वर्ण को प्राप्त हुआ। 18 था।

श्रीविश्वनन्द्यार्थमवेत्य चर्यापरायणं मां मधुरानगर्याम् । विशाखनन्दी शपति स्म भृरि ततोऽगमं रोषमहं च सुरिः ॥१४॥६

जब मैं मधुरा नगरी में चर्चा के लिये गया हुआ था, उस समय

विशास्त्रन्दी ने मुझे विश्वनन्दी जानकर मेरा भारी अपपमान किया, जिससे साधु होते हुए भी मैं रोष को प्राप्त हो गया॥ १४॥

हन्ताऽस्मि रे त्वामिति भाववन्धमथी समाधानि मनःप्रवन्धः। तप्त्वा तपः पूर्ववदेव नामि स्वर्गं महाशुक्रमहं स्म यामि ॥१६॥

तक रोष में मैंने ऐसा माल-कम्म (निदान) किया कि रे विशास-नन्दी! में परभव में तुक्ते माहना। पुन चित्त में समाधान को प्राप्त होकर में (बह विश्वनन्दी) पहले के समान ही तपखरण करके महाशक नाम के स्वर्ग में गया। १६॥

वशासभृतिर्नभसोऽत्र जातः प्रजापतेः श्रीविजयो जयातः । मृगावतीतस्तनयस्त्रिपृष्ठ-नाम्नाऽप्यहं पोदनपुर्यथातः ॥१७॥

विश्वासभूति का जीव स्वर्ग से च्युत होकर यहां पोदनपुरी में प्रजापित राजा कौर जया रामी से श्री विजय नामक पुत्र हुआ। और मैं उन्हीं राजा की दूसरी सृगायती रानी से त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ।। १७।

भावार्थ — पूर्वभव के काका-भतीजे हम दोनों यहां पर क्रमङाः बळभद्र और नारायण हुए ।

विशासनन्दी समभृद् श्रमित्वा नीलंपशामात्रुदरं स इत्वा । मयुरराज्ञस्तनयोऽरवपूर्व ग्रीवोऽरुकायां धृतजनमद्र्वः ।।१८।।

विश्वालनन्दी का जीव बहुत दिनों तक संसार में परिश्रमण करके खठकापुरी में सबूर राजा और नीछंबशा माता के गर्भ में आकर अद्योगि नाम का पुत्र जटका हुआ, जिसका जन्मोत्सव जस्साह से मनाया गथा।। १८॥ सोऽसौ त्रिखण्डाधिपतास्रुपेतोऽश्वग्रीव आरान्मम तार्श्यकेतोः । मृतोऽसिना रौरवमम्यवाप गतस्तदेवाहमथी सपापः ॥१९॥

वह ब्रास्त्रप्रीय (प्रतिनारायण बनकर) तीन खण्ड के स्वामीपने को प्राप्त हुखा। (किन्तु पूर्व भव के वेर से) वह, गरुड़ की ध्ववा वाले युक्क विष्ठुष्ठ नारायण की तखवार से मर कर रीरव नरकते प्राप्त हुआ क्योर में भी पापयुक्त होकर बसी ही नरक में गया। १६॥

निर्गत्य तस्माद्धरिभ्यमङ्गं लब्ध्वाऽत्रजं चादिविलप्रसङ्गम् । ततोऽपि सिंहाङ्गमुपेत्य तत्र मयाऽऽपि कश्चिनमुनिराट् पवित्रः ॥

पुन: मैं उस नरक से निकल कर सिंह हुआ और मरकर प्रथम नरक गया। वहां से निकल कर मैं किर भी सिंह हुआ। उस सिंह अब में मैंने किसी पवित्र ग्रुनिराज को पाया, ज्यांन ग्रुमे किसी मुनिराज के सस्तंग का सथीग प्राप्त हुआ। २०॥

स आह भो भन्य ! पुरुरवाङ्ग-भिन्छोऽपि सद्धर्भवशादिहाङ्ग । आदीश्रपीत्रत्वस्रपागतोऽपि कटकप्रभावेण सवर्मछोपी ॥२१॥

सुमे देख कर वह मुनिराज बोले—हे अध्य, हे व्यंग (वस्त) तू पहिले पुरुरवा भीळ वा, फिर उत्तम धर्म के प्रमाव से क्यादि जिनेन्द्र के पुत्र भरत सम्राट् के पुत्र ने को प्राप्त दुव्या, अर्थात् प्रथम तीर्वहर का गरीव नाम का पोता हुव्या। फिर भी मिध्यादर्शन के प्रभाव से सुधर्म का छोप करने वाला हुव्या। ११॥

माऽगा विषादं पुनरप्युदारबुद्धे ! विश्ुद्धेर्गमिताऽति सारम् । परित्रजन् यः स्वलति स्वयं स चलत्ययोत्थाय सतां वतंसः ।।२२ किन्तु हे उदार खुद्धे ! काब तृ विधाद को सत प्राप्त हो, त् बहुत शीध विश्चद्धि के सार को प्राप्त होगा। जो चलता हुन्ना गिरसा है, वही सज्जन-फिरोमणि मनुष्य स्वयं उठकर चलने लगता है।। २२।।

उपाराजातिस्मृतिरित्यनेनाश्रुसिक्तयोगीन्द्रपदी निरेनाः । हिंसामहं प्रोज्झितवानथान्ते प्राणाँथ संन्यासितया बनान्ते ॥२३॥

साधु के उक्त बचन सुनकर जाति-स्मरण को प्राप्त हो मैंने अपन आधुआं से उन बोगीन्द्र के चरणों को सीचकर हिंसा को छोड़ दिया और पाप-रहित होकर जीवन के अन्त में उसी वन के भीतर संस्थास से प्राणों को छोड़ा।। २३ ।।

तस्मादनन्याप्सरसङ्गतत्वाङ्ग् त्वाऽमृताशी सुखसंहितत्वात् । आयुःसम्बद्धद्वितयोपमान-भणं स्म जाने भणमम्बिधानम् । २४॥

उस पुरुष के प्रभाव से मैंने अप्तत-भोजी (देव) होकर अनेकों अप्तराओं से युक्त हो सुख-परस्परा को भोगते हुए वहां की दो सागरोपस आयु को एक क्षण के समान जाना॥ २४॥

श्रीषातकीये रजताचले ऽहं जातः परित्यज्य सुरस्य देहम् । सुरेन्द्रकोणीयविदेहिन्छे तदुत्तरश्रीणगते विशिष्टे ।।२४।। श्रीमङ्गलावत्यभिषप्रदेश-स्थितं पुरे श्रीकनकाभिषे सन् । राजायशब्दः कनकोऽस्य माला राग्नी सहासीत्कनकेन बाला ।। तयोगीती ऽहं कुलसैं।थकेतुः सुराद्रिसम्युजनहेतवे तु ।

भूत्वा ग्रुनिर्जान्त वमम् प्रपेतस्त्रयोदशाब्ध्यायुरुपेत्य चेतः ॥२७॥

तराश्चान में देव की देह को छोड़ कर धातकी खंड के पूर्व दिका में उपस्थित पूर्व-विदेह के रजताचळ की उत्तर श्रेणी-नात विद्यास्य भी मराळावारी नामक देश में विश्वामात श्री कतकपुर में कतक राजा की कनकमाळा राती के बनके कुळकए भवन की ध्वा-व्यक्त पुत्र हुआ। उस भव में मैं सुमेरु पर्वत के जिल्लाळ्यों की शुजन के छिए गया। पुतः सुनि बन कर (और संन्यास से मरण कर) छान्तव नाम के स्वर्ग को शाम हुआ। और वहां पर मैंने तेरह सागर की आयु पाई।। २४-२७॥

साकेरनामा नगरी सुधामाऽस्यां चाऽभवं श्रीहरिषेणनामा । श्रीवज्रषेणावनिषेन श्रीलवस्याः कुमारोऽहमयो सलीलः ॥२८॥

पुन उत्तम अवनों वाली जो माकेन नाम नगरी है, उसमें मैं स्वर्गसे स्वृत होकर श्री बक्रयेण राजा से शीलवती रानी के श्रीहरि-या माम का पुत्र हुआ। और सैंत कुसार-काल नाना प्रकार की लीलाओं में मिलाशा। पर-॥

युवत्बमासाद्य विवाहितोऽपि नोपासकाचारविचारलोपी । सन्ध्यासु सन्ध्यानपरायणत्वादेवं च पर्वण्युपवासक्कत्वात् ॥२९॥

पुनः युवावस्था को प्राप्त कर में विवाहित भी हुआ, परन्तु उपा-पको (श्रावकों) के आवार विवार का मेंते छोप मही किया, अवीन् मेंते श्रावक धर्म का विधिवन् पाठन किया। तीनों संध्यान्काओं में संस्थ्या-काशीन कर्ताच्य ने परायण रहता वा और इसी प्रकार पत्र के दिनों में उपवास करता था। रेट।।

पात्रोपसन्तर्पणपूर्वभोजी भोगेषु निर्निण्णतया मनोजित् । अर्थे कदा श्रीश्रुतसागरस्य समीपमाप्त्वा बदतांवरस्य ॥३०॥ दिगम्बरीभृय तपस्तपस्यम्ममायमात्मा श्रुतसारमस्यन् । भ्रुक्तोज्ज्ञतं भोक्तु, प्रपाजनाम पुनर्भहाशुक्रसुपर्वधाम ॥३१॥

मैं पात्रों के सन्तपण-रूपक भोजन करता था, भोगों में बिरक्त होने से मन को जीतने वाला था। तभी एक समय खाचार्य-शिरोमणि श्री खुतसागर के समीप जाकर, दिगम्बरी दीक्षा लेकर बौर तप को तपता हुआ भीरा वह आरमा श्रुत के सार को प्राप्तकर भोग करके छोड़े हुए भोगों को भोगने के लिए पुनः महा शुक्र स्वर्ग की प्राप्त हुआ।। २०-११॥

प्राप्तातकीये सरसे विदेहे देशेऽथवा पुष्कलके छुगेहे । श्रीपुण्डरीकिण्यथ प्: सुभागी सुमित्रराजा सुत्रताऽस्य राह्मी !। भृत्वा कुमारः प्रियमित्रतामा तयोरहं निस्तुलरूपथामा । षट्खण्डभूमीरवरतां दवानो विग्ल्य राज्यादिह तीर्थभानोः ॥ गत्वान्तिकं घर्मसुधां पिपासुः श्रामण्यमाप्त्वा तपसाऽम्रुनाऽऽस्त । स्वर्ग सहस्रारस्रपेस्य देवीमैमि स्म सम्यविम्यापसेवी ॥३४॥

पुनः भातकी स्वयह के सरस पूर्व विदेह के उत्तम गृहां वाले पुष्कल देश में श्री पुण्डरीकियी पुनी के सुमित्र राजा और सुन्नता रानी के मैं सुन्न रूपक का सारी मित्र नाम का ब्रह्मार दुवारी वहां पर पट्ट स्वयह भूमि की देशारा को, क्यांने स्वामित को चारण करता हुवा पक्रवर्ती बनकर (राज्य-सुल भोगा। पुनः कारण पाकर) राज्य से विरक्त होकर तीयें के किए सूर्य-सहस्य व्यापायें के पास जाकर से विरक्त होकर तीयें के किए सूर्य-सहस्य व्यापायें के पास जाकर कीर यसे रूप व्यस्त के पीने का इच्छुक हो, सुनिपना क्यांकिय रहत हों हो सहसार का किये हुवे तपश्चरण के सक्त से श्रीग्र ही सहसार

स्वर्ग में उत्पन्न होकर निष्पाप प्रवृत्ति करने वाले मैंने देवी सम्पत्ति को प्राप्त किया॥ ३२–३४॥

छत्राभिषे पुर्यम्रकस्थलस्य श्रीवीरमत्यामभिनन्दनस्य । मुतोऽभवं नन्दसमाह्वयोऽहमाप्त्वा कदाचिन्मुनिमस्तमोहम् ॥

समस्तसस्वैकहितप्रकारि-मनस्तयाऽन्ते क्षपणत्वधारी । उपेत्य वै तीर्थकरत्वनामाच्यतेन्द्रतामप्यगमं सुदामा ॥३६॥

पुनः उमी धातकी खरण्डस्य पूर्व विरोह क्षेत्र के उस पुक्कर देश में छत्रपुरी के राजा आभिनन्दन और रानी भी वीरसती के नन्द नामका पुत्र कुछा। वहां किसी समय सीह-रहित निर्मन्य सुनि को पाकर, उनके सभीप क्षात्रणक्य (दिगम्बरस्त) को धारण कर छिया और समस्त प्राणियां की हितकारीणी मानस्कि प्रवृत्ति होने से तीर्थकरस्य नामकर्स का बन्धकर अच्छुत स्वर्ग की इन्द्रता की प्राप्त हुआ, अर्थांतृ उत्तम माछा का धारक इन्द्र हुआ।। ३४-२६।

यदेतदीक्षे जगतः क्रृष्ट्रचं तस्याहमेवास्मि क्रुबीजभृतं । चिकित्सिताऽज्यो भ्रुवि मचिकित्सा विना स्वभावादुत कस्य दित्सा।।

इस प्रकार खाज जगन् में जो यह कराचार देख रहा हूँ, उसका में ही तो कुबीजभूत हूँ, खबांत पूर्व भवों में मैंने ही जो सिप्या मार्ग का बीज बोया है, वही खाज नाना प्रकार के पतनतनरों एवस् स्मदावारों के रूप में हुख करकर एक-फूठ रहा है। इसिटए बगत् की चिकित्सा करने की इच्छा रखने वाले मुक्ते पहिले खपनी ही चिकित्सा करनी चाहिए। जब तक मैं सर्थ ग्रुद्ध (निरोग या निराग) नहीं हो जाऊं, तब क्याबाद दूसरे के छिए खीपि देने की इच्छा केसे सम्यव है ?॥ २७॥

सिद्धिमिच्छन् भजेदेवासहयोगं धनादिभिः । अपि कुर्याद् बहिष्कारं मत्मरादेरिहात्मनः ॥३८॥

आत्म-शुद्धि रूप सिद्धि की इच्छा करने वाले को धन-कुटु-म्वादि से असहयोग करना ही चाहिए, तथा अपनी आत्मा के परम शत्रु सत्सराहिक आयों का भी बहिष्कार करना चाहिए॥ ३८॥

स्वराज्यप्राप्तये धीमान् सत्याग्रहपुरन्धरः ।

नो चेत्परिस्त्वलत्येव वास्तव्यादात्मवर्त्मनः ॥३९॥

स्वराज्य (ब्रास्स-राज्य) शक्ति के छिए बुद्धिमान् पुरुव को सस्यामह्र रूप पुराका धारक होना चाहिए। यदि उसका सत्य के प्रति यथार्थ कामह न होगा, तो यह अपने वास्तविक व्यास्स-शुद्धि के मार्ग से परिश्रम हो जायगा। ३६।।

> बहुकृत्वः किलोपाचो ऽसहयोगो मया पुरा । न हि किन्तु बहिष्कारस्तेन सीदामि साम्प्रतम् ॥४०॥

पहिले मैंने अपने पूर्व भवों में घन कुटुम्ब खादि से बहुत वार . असहयोग तो किया, किनु राग-द्वेषादि रूप आत्म-शत्रुखों का बहिण्कार नहीं किया। इसी कारण से आज मैं दू ख भोग रहा हूँ ॥ ४०॥

> इद्मिष्टमनिष्टं बेति विकल्प्य चराचरे । सुधैव द्वेष्टि इन्तात्मक द्वेष्टि तत्स्थलं मनः ।।४१।।

. हे भारमन् ! इस पराचर जरान् में यह वस्तु इह है और बह भानिह है, ऐसा विकल्प करके तु रूपकं ही किसी से राग और किसी से हेप करता है। दु:का है कि इस राग देप के त्यळ-भून भ्रापने मनसे तु हेप नहीं कर रहा है ? ॥ धरे ॥ तद्य दुष्टभावानां मयाऽऽत्मवलशालिना । वहिष्कार उरीकार्यः सत्याग्रहसुपेयुवा ॥४२॥

इसलिए खात्म बलशाली सुक्ते सत्याम्ब्रह को स्त्रीकार करते हुए खपने राग-द्वेषादि दुष्ट भावों का बहिष्कार खङ्गीकार करना चाडिए ॥ ४२ ॥

> अभिवाञ्छिति चेदात्मन् सत्कर्त्तु संयमद्रुपम् । नैरारयनिगडेनैतन्मनोमर्कटमाधर ॥४३॥

हे श्राक्षमन् । यदि तुम सथम रूप वृक्ष ही सुरक्षा करना चाहते हो, तो श्रपने इस मनरूप मर्कट (बन्दर) को निराशा रूप सांकल से श्रम्ळी तरह जरुड़ कर बाधो ॥ ४३ ।ः

अपारसंसारमहास्वुराशेरित्यात्मनो निस्तरणैकहेतुम् । विचार्य चातुर्थपरस्परातो निबद्धवानात्मविद्धः स सेतुम् ॥४४॥

इस प्रकार क्यारम-बंभव के स्त्रामी बीर भगवान् ने विचार कर इस क्यार संसार रूप महा समुद्र के पार होने के एक मात्र हेतु-स्वरूप सेतु (वुल को क्यपनी चार्ड्य-परम्परा से बांधा॥ ४४॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्श्वः स सुषुवे भृरामलेत्या**ह्वयं** वाणीभृषणवर्षिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । तेनास्मिन्तुदिते स्वकर्मविभवस्यादभेवद् च्यञ्जकः। प्राग्जनमप्रतिवर्णनोऽर्दत इयान् एकादशस्थानकः ॥११॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भु जजी श्रौर घृतवरी देवी से उत्पन्न :

हुए बाणीमूचण बाढ ब्रह्मचारी पं॰ मूरामळ वर्तमान सुनि ह्वानसागर द्वारा विरचित इस काट्य में अपने कंभे-वैभव को खावशें (दर्पण) के समान प्रकट करने वाला श्री॰ भगनम् के पूर्व जन्मों का वर्णन करने वाला वह प्यारक्षों सांगे समाप्त हुआ। ११॥



अथ द्वादशः सर्गः

विलोक्य वीरस्य विचारवृद्धिमिहेर्ध्यवेवाथ बभूव गृद्धिः।
वृषाधिरुद्धस्य दिवाधिषस्यापि चार आचोरुतयेति शस्या ॥१॥

इस प्रकार चीर भगवाम् की विचार-वृद्धि को देखकर उनके प्रांत ईर्ष्या करते हुए ही मानों वृष राशि पर आरूढ़ हुए सुर्य देव का संचार भी दीर्घता को प्राप्त हुआ, अर्थान् दिन वहे होने छगे।। १।)

स्वतो हि संजृम्भितजातवेदा निदाधके रुग्ण इवोष्णरश्मिः । चिरादथोत्थाय करैरश्चेषान् स्सान्निगृह्यत्यनुवादि अस्मि ॥२॥

इस निदाघ काल में (मीष्म ऋतु में) स्वत: ही बढ़ी है कांग्रि (जठरामि) जिसकी ऐसा यह कण गरिन (सुर्य) रूण पुरुष के समान विपरकाल से उठकर स्वपने करों (किरणों वा हायों) से पूज्यी के समस्त रसों के। प्रहण कर रहा है, व्यर्थान् सा रहा है, मैं ऐसा कहता हैं। २।। भावार्थ:- जैसे कोई रोगी पुरुष चिरकाल के बाद शय्या से बढ़े कीर लटराप्ति प्रव्वलित होने से जो मिले उसे ही अपने हार्बों से उठारुर सा जाता है, उसी प्रकार सूर्व भी बहुत दिनों के प्रवास बीमारी से उठकर के ही मानों पृथ्वी पर के सर्व रसों को सुलाते हुए उन्हें सा रहा है।

वोढा नवोढापिव भूमिजातरछायाम्रुपान्ताम जहात्यथातः । अनारतं वान्ति वियोगिनीनां श्वासा इवोष्णाः श्वसना जनीनाम्।।

जिसे कोई नवीन विवाहित पुरुष नवोड़ा स्त्री को खपने पास से दूर नहीं होने देता है, इसी प्रकार इस प्रीप्सकाल में सूमि से उपल हुखा दृक्ष भी छावा को खपने पास से नहीं छोड़ता है। तबा इस समय वियोगिनी दित्रों के उच्च श्वासों के समान उच्च वायु सी निरन्तर पल रही है। 18 11

मितस्पचेषूत किलाध्वगेषु तृष्णाभिवृद्धि समुपैत्यनेन । हरेः शयानस्य मृणालबुद्धचा कर्षन्ति पुच्छं करिणः करेण ॥४॥

इस प्रीध्मकाल के प्रभाव से पविक जनों में कृपण-जनों के समान ही तृष्णा (प्यास कींग धनाभित्रणा) कीर भी शुंदि को प्राप्त हो जाती है। इस समय पीष्म से विद्वल हुए हावी कपनी सूंब से सोते हुए सांप को मुणाल (कमलनाल) की शुंदि से सीचने कराते हैं। ।।।।

वियोगिनामस्ति च विराष्ट्रचिरिवाभितप्ता जगती प्रक्लृप्ता । छाया कुञ्चल्वं विद्याति ताबद्वियोगिनीयं वनितेव द्या ॥५॥

इस समय यह पृथ्वी भी वियोगियों के चित्त-सदश सन्तप्त हो

आपती है। सूर्यकी छायाभी मानिनी वियोगिनी नायिका के समान कुछताको धारण कर लेती है।। ४।।

कोपाकुलस्येव प्रखं नृषस्य को नाम परयेद्रविविम्बमय । पयः पिबत्येव प्रहुर्मनुष्योऽधरं त्रियाया इव सम्प्रपद्य ॥६॥

इस समय कोप को शाप हुए राजा के मुख के समान सूर्य के विन्य को तो अव्यादेख ही कीन रुकता है ? मर्गी के मारे वरठ सूख-सूख जान से मानों मनुष्य वार-वार अपनी श्रिया को शाप होकर उनके अध्यय के समान जल को पीता है।। इ।।

ज्वाला हि लोलाच्छलतो बहिस्तान्नियोत्यविच्छिन्नतयेति मानात् । जानामि जागर्ति किलान्तरङ्गे वैश्वानरः सम्प्रति मण्डलानाम् ॥७॥

इस प्रीष्म ऋषु में कुतों के भीतर कांग्न प्रव्यक्तित हो रही है, इसीलिए मानों उनकी ज्याला लपकपाती जीभ के बहाने कांबिल्छन रूप से लगाकर वार-बार बाहिर निकल रही है, ऐसा मैं कानुमान करता हैं। ७ ॥

महस्रधासंगुणितत्विडन्धौ वसुन्धरां शासति पद्मवन्धौ । जडाश्रयानान्तु कृतो भवित्री सम्भावना साम्प्रतमाचमैत्री ॥८॥

इस समय सहस्र गुणित किरणों को लेकर पद्माबन्यु (सूर्य के बक्कुम्या का ज्ञासन करने पर जड़ाकार्यों (सूर्ख जनों स्त्रीर जलाक्रयों) की तो बने रहने की सम्भावना ही केसे हो सकती हैं। स्र्यान् गर्भी में सरोबर सख जाते हैं॥ मा

त्यक्त्वा पयोजानि लताः श्रयन्ते मधुत्रता वारिणि तप्त एते । छायासु एणः सञ्ज यत्र जिह्वानिलीटकान्तासुख एष शेते ॥६॥ इस समय सरोवरों का जल अत्यन्त तथ जाने पर भौरे कमछों को छोड़ कर लताखों का बाग्रय तेते हैं ब्यौर हिरण भी ठच्छी सचम छावा में बेठकर अपनी जिह्ना से विया (हिरणी) का मुख चांटता हुआ विशाम से रहा है॥ ६॥

मार्चण्डतेजः परितः प्रचण्डं सुखे समादाय मृणालखण्डम् । विराजते सम्प्रति राजहंसः कासारतीरेऽब्जतले सवंशः ॥१०॥

इस समय सूर्य का तेज क्षति प्रचएड हो रहा है, इसिल्ए कसल-पुक्त सृणाल के खरड को क्षपने मुख में लेकर सपरिवार यह राजहंम सरोवर के तीर पर बैठा हुआ राजहंस (श्रेष्ठ राजा) सा कोसित हो रहा है।। २०।।

मन्तापितः सँस्तपनस्य पादैः पथि ब्रजन् पांशुभिरुत्कृदङ्गः । तले मयरस्य निषीदतीति श्वसन्यहर्जिद्यगांतर्भ्यकृतः ॥११॥

सूर्य की प्रखर किरणों से सन्ताप को प्राप्त होता हुच्चा, मार्ग में चलने हुए उष्ण थूलि से प्रपने च्यंग को ऊंचा उठाता हुच्चा, बार-बार दीर्घ श्वास छोड़ता हुच्चा भुजंग कुंठित गति होकर छाया प्राप्त करने की इच्छा से मोर के तले जाकर बैठ जाता है। ११॥

भावार्थ गर्मी से संत्रक्त सर्पयह भूळ जाता है कि मोर तो मेरा शबु है, केवळ गर्मी से बचने का ही ध्यान रहने से वह उसी के नीचे जार्बठता है।

द्विजा वलम्यामधुना लसन्ति नीडानि निष्पन्दतया श्रयन्ति । समेति निष्टां सरसे विशासे शिखावलः सान्द्रनगालवासे ।।१२॥ गर्मी के सारे पश्चीगण भी छजों के नीचे जाकर खीर वहां के धोंसछों का निस्पन्द होकर आक्षय के लेते हैं, अर्थान् उनमें जाकर झान्य हो सुप-चाप के कता हैं। खीर मसूरगण भी किसी दृष्ट की सच्च सरम, विशाल खाहूं क्यांगे में जाकर खासन लगा के चुपचाप बैठ जाते हैं। १२॥

बाह्यद्वेषन् स्वामवगाहमानरछायामयं कर्दम इत्युदानः । विषयते पुलिमिरुण्णिकाभिरुदा क वा आन्तिमताम्रुताऽभीः ।१३॥

करवों से द्वेप रखने वाला प्रेंसा भी गर्मी से संतप्त होकर क्षपने ही कंग की छाया को, यह सचन की वह है, ऐसा समझकर वैठ जाता है कीर उसमें लोट-पोट होने लगता है। किन्तु वहां की बच्चा पृक्षि से उक्टा विपक्ति को हो प्राप्त होता है। सो ठीक हो है— भारित वाले लोगों को निर्भयता कहां मिल सकती है।। १३।।

उन्नीरसंत्रीरकुटीरमेके भूगर्भमन्ये त्रिश्चिरं विशन्ति । उपैति निद्रापि च पक्ष्मयुग्मच्छायां दशीत्येव विचारयन्ती ।।१४॥

गर्भी में कितने ही धनिक-जन तो उक्षीर (खस) से संभित इटी में निवास करते हैं, कितने ही शीतक भूमि-गत गम्नोलयों में प्रवेक करते हैं। ऐसा विचार करती हुई स्वयं निहा भी मतुष्यों की बोनों आंखों की बरीनी का खालय ले लेती है। १४॥

श्रीतालकुन्तभ्रमणं यदायुः सर्वातमना सेन्यत एव बायुः । भालम्बते स्वेदमिषेण नीरं शीतलं सम्यगुरोजतीरम् ॥१४॥

इस बीष्म काल में वायु भी शी ताल वृक्ष के बुन्त (इंडल) के

खालय को पाकर जीवित रहता है, इसिल्प वह सर्वोत्म रूप से समकी सेवा करता है। तथा समयें जल भी प्रीव्य से सम्तम होकर प्रावेद (पसीना) के मिथ से युवती स्त्रियों के शीवल स्त्रों के शीर का अले प्रकार चालय लेता है।। १४।।

अभिद्रवस्दनसर्चितान्तं कामोऽपि वामास्तनयोरुपान्तम् । आसाद्य सत्रस्तिजगद्विजेता निद्रायतेऽन्यस्य पुनः कथेता ॥१६॥

स्रौरों भी तो कथा ही क्या है, स्वयं सदाः (शीघता पूर्वक) त्रिज्ञगद्-विजेता कामदेव भी चंदन-रस से चर्चित नवोडाओं के सतनों के मुळ भाग को प्राप्त होकर निद्रा लेने छगता है।। १६।।

छाया तु मा यात्विति पादलमा प्रियाऽध्वनीनस्य गतिश्र ममा। रविस्त्ववित्ककंशयादपूर्णः कचित् स क्षेतेऽथ शुचेव तूर्णम् ॥१७॥

पथिक की गति रूप स्त्री तो नष्ट हो गई है और छावा रूप प्रिया 'क्यमी मत जाओ' ऐसा कहती हुई क्यपने पथिक पति के पैरों में पड़ जाती है, क्यीर डघर सूर्य निदंयता-पूर्वेक क्यपने कहोर पैर मारता है, क्यांन् क्यपनी नीक्ष्ण किरणों से सन्तम करता है। इस छिए सोच में पड़ करके ही मानों पथिक शीघ्र कहीं एकान्त में जाकर स्रो जाता है। १९॥

द्विजिह्वचिचोपममस्त्रुतप्तं ब्रह्माण्डकं आष्ट्रपदेन शतम् । केरयस्य सत्त्वं रविणाऽत्र लुप्तं यत्किञ्चिदास्ते स्तनयोस्तु गुप्तम् ॥

गर्मी में जल तो पिशुन के चित्त के समान सदा सन्तप्त रहता है और यह सारा ब्रह्मावह भाइ के समान ऋषि चच्याता को प्राप्त हो जाता है। इस समय शीत की मत्ता की सूर्य ने बिलकुल लुप्त कर दिया है। यदि कहीं कुछ बोड़ा-सा शीत शेष है, तो वह खियों के स्तर्नों में छिपा दुखा है।। १८।।

परिस्फुटत्त्रोटिपुटैर्विडिम्भैः प्राणैस्तरूणामित्र कोटराणाम् । कोक्र्यनान्यक्कगतैः क्रियन्ते रवेर्मयुखैर्ज्विटतान्तराणाम् ॥१९॥

सूर्य की अयंकर किरणों से जल गया है भीतरी भाग जिनका, ऐसे बुझों के कोटरों में छिपकर बेठे हुए और जिनके चेखु-पुट खुले हुए हैं, ऐसे पिद्धयों के बच्चे प्यास से पीक्षित होकर ऐसे क्याची शब्द कर रहे हैं भागों गर्मी से पीक्षित कोटर ही चिक्षा रहे हों।। १६।।

प्रयात्यरातिश्च रविर्हिमस्य दरीषु विश्वम्य हिमालयस्य । नो चेरक्षणक्षीणविचारवन्ति दिनानि दीर्घाणि कृतो भवन्ति॥२०॥

आपेरों की तो बात ही क्या है, जो हिम का महज वंशी है वह सूर्य भी हिमालय की गुफाओं में कुछ देर तक विशास करके आयो जाता है। यदि ऐसा नहीता, तो क्षण-श्लीण विचार वाले दिन आज कल टीर्च केंसे होते ॥ २०॥

भावार्थ — जो दिन ऋभी तक शीत ऋतु में छोटे होने थे — यही तेजी से निकल जाते थे, वे ही ऋव गर्भी में इतने लम्बे या बड़े कैसे होने लगे १ इस बात पर ही कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है।

पादैः खरैः पूर्णदिनं जगुर्विद्वर्या रवेर्निर्देलितेयम्रुवी । आश्वासिता मायमुपति रोषात्करैर्व्यक्तिश्वसितं विश्वोः सा ४१२१॥

सारे दिन सूर्य के प्रखर पादों (किरणों वा पैरों) से सताई

गई यह पूर्वी सायंकाल के समय चन्द्र के करों (किरणों वा हस्तों) से खा श्वासन पाकर रोप से ही मानों दीर्घ नि श्वास छोड़ने लगती है, ऐसा विद्वान लोग कहते हैं।। २१।।

सरोजिनीसौरभसारगन्धिर्मधौ य आनन्दपदानुबन्धी । रथ्या रजांसीह किरन् समीर उन्मचकल्पो भ्रमतीत्यधीरः ॥२२॥

बसन्त ऋतु में जो बायु सरोजिनी के सौरभ सार से सुगन्धित या, एवं सभी के ज्ञानन्त का उत्पादक था, बही बायु ज्ञाब गर्डियों की धृष्टि को चारों और फॅकता हुजा उन्मन पुरुष के समान आधीर होकर अभाग कर रहा है। ३२।।

नितान्तमुञ्ज्येस्तनशैलमूलञ्छायस्य किञ्चित्सवितानुकूलः । यःकोऽपिकान्तामुखमण्डलस्य स्मितामृतैः सिक्ततया प्रशस्यः॥

इस प्रीष्म ऋतु में यदि सूर्य किसी के कुछ अनुकूल है तो उसी के हैं, जो कि नियमों के खति उमत स्तनरूप शैल के मूल की छाया को प्रार है और पान्ना के मन्द हास्य रूप अनुत से सिंचित होने के प्राश्नमीय मीधाम्य बाला है। पर शा

शिवद्विषः शासनवत्पतङ्गः प्रयाति यावद्गगनं सुचङ्गः । नतम् वः श्रीकुचबन्धमङ्गः स्कीत्या म एवास्तु जये मृदङ्गः ॥२४॥

यह सुचन (उत्तम) पतंग कामहेव के शामन-पत्र (हुक्स नामा) के समान वेग से जाता हुचा जब आकारा में पहुँच जाता है, उस समय प्रसन्नता से दुवती बनों के कुचों का बंधन खुळ जाता है, सो मानों यह काम की विजय में मुदंग ही बन रहा है। २४।

पतङ्कतन्त्रायितचित्रवृत्तिस्तदीययन्त्रञ्जमिसम्प्रवृत्तिः । स्यामापि नामात्मजलालनस्य समेति सौल्यं सगुणादरस्य ॥२५॥

जिस की के काभी तक सन्तान नहीं हुई है, ऐसी श्यामा वामा की चित्त-वृत्ति जब पर्तग वड़ाने में संलग्न होती है बीर जब वह होरी से किपटी हुई उसकी पत्थीं को घुमाने में प्रकृत होती है, तब वह मुगुणों का आदर-भूत पुत्र-लालन का सोल्य प्राप्त करती है, लागेन् होरी की नवीं ने नों हायों में लिए उसे घुमाते समय वह पुत्र विकाल जैसा कानन्य पानी है। एस।

पतङ्गकं सम्मुखमीक्षमाणा करेण सोत्कण्ठमना द्रुतं तम् । उपाचनत्यम्बुजलोचनाऽन्या प्रियस्य सन्देशमिवाऽऽपतन्तम् ।

कान्य कोई कमलनयनी जी क्याने सम्बुख काकर गिरे हुए पतंत को देखकर 'यह सेरेपति का मेता हुआ। सन्देश ही हैं, ऐसा समझ कर क्यति उक्तरिष्ठत सन होकर के उसे झीब्र हाथ से उठा लेती हैं॥ २६॥

कुपावती पान्धनुपालनाय कृपीटमुष्णं तपसैन्यपायः । प्रपा त्रपातः किल सम्बिमत्ति स्वमाननं स्विन्नदशानुवर्ति ॥२७॥

पिक जर्नों के पालन के लिए बनाई गई दबामयी प्याक्त भी सूर्य से मेरा जल उपण हो गया है, आब उसके ठंडे होने का कोई जगय नहीं दे यह देख करके ही मार्नों लजा से अपने मुख को प्रस्वेद-पुष्त हहा का अनुसर्ती कर लेती है। २०॥

वातोऽप्यथातोऽतनुमत्तन्तामस्यङ्गमस्यङ्गकचन्दनं च । मङ्गक्षिसंरक्षणलक्षणं यद्विशोषयत्येवमिति प्रपञ्चः ॥२८॥ वर्तमान की बायु का भी क्या हाल है ? वह यह सोच कर कि इन युवतियों के शरीरों पर चन्दा-लेप हो रहा है, वह सुके खाने बाले समी की रहा करने वाला है, ऐसा विचार करके ही मानों उनके शरीर पर लेप किये हुए चन्दा को शीध सुखा देता है, यह बहा प्रचं है। २६।।

भावार्य—सर्पों का एक नाम पवनाशन भी है, जिसका आर्थ होता है पवन को खाने वाला। किन ने इसे ही ध्यान में रख कर चन्दन-लेप सुखाने की उत्प्रेक्षा की है।

वेषः पुनश्चांकुरयत्यनङ्गं नितम्बिनीनां सकृदाप्जुतानाम् । कण्ठीकृतामोदमयस्रजान्तु स्तनेषु राजाईपरिप्लवानाम् ॥२९॥

जिन नितन्त्रिनानों ने अभी-अभी स्नान किया है, सुगन्यस्यी पुष्प-माला करठ में धारण की है और सनों पर ताजा ही चन्दन लेप किया है, उनका के अवश्य ही पुरुषों के मन में अपने को अकुरित करता है, अयोग कुछ समय के लिए उन्हें आनन्द का देने बाला हो जाता है। उद्देश

जलं पुरस्तायदभृतु कूपे तदङ्गनानामिह नाभिरूपे । स्रोतो विमुच्य स्नवणं स्तनान्ताद् यूनामिदानीं सरसीति कान्ता ।।

जो जल पहिलो कुंए में या, वह इस प्रीच्मकाल में रित्रयों के नामि-रूप कुप में का जाता है। और जो जल-स्रोस (झरने) पर्वतों से झरते थे, वे काव क्यान छोड़कर दित्रयों के सनों के कामभाग में का जाते हैं। इस समय सरोवरी तो सुल गई है, किन्तु कामी जनों के किए तो मुक्युर स्त्री ही सरोवरी का काम करती है।। ३०।।

एतादृत्तीयं घरणी न्यवस्था प्रीयोऽप्यभृत्तीरसवस्तुसंस्था । रविर्मतोऽक्तरवदुज्ज्वलस्वं कविर्वदत्यत्र तदेकतत्त्वम् ॥३१॥

प्रीप्सकाल में घरणीतल पर इस प्रकार खबस्या हुई। प्रायः सभी पदार्थ नीरस हो गये. खबीन उनका रम सूख गया। खौर सूर्य खद्वार के समान उक्कलता को प्राप्त हुखा, खबीन लुब का का। ऐसी भीषण गर्भी के समय जो कुल घटित हुखा, इस खबितीय तस्व को कवि यहां पर कहता है। ३१।

सर्पस्य निर्मोक्तिवाथ कोशमसेरिवाऽऽनन्दमयोऽपदोषः । श्वरीरमेतत्वरमीक्षमाणः वीरो बभावाऽऽत्मपदैकशाणः ॥३२॥

ऐसी प्रवरह गर्भी के समय निर्दोप एव आध्मपद की प्राप्ति के छिए खडितीय झाण के समान वे बीर भगवान, खपने इस झरीर को सोप की कंवछी के स्मान, अथवा स्थान से खड़ के समान भिन्न देखते हुए आनन्दमय होकर विचर रहे थे। ३२॥

श्ररिरतोऽसँ। ममताविदीनः त्रजन् समन्तात्समतां शमीनः । उष्णं हिमं वर्षणमेकरूपं पश्यक्षभृदात्मरमैककूपः ।।३३ ।

आयासीय रम के आदितीय कूप-तुल्य वे शांति के सूर्यभीर प्रभू शरीर से समता रहित होकर और सर्वकोर से समताको प्राप्त होकर प्रीम्म, शीत और, वर्षाकाळ को एक रूप देखते हुए विहार कर रहे थे।। ३३।।

नात्मा प्रम्भसा ८ ऽर्द्रत्वमसी प्रयाति न शोषयेत्तं श्रुवि वायुतातिः । न विद्वना तप्तिग्रुपैति जात व्यथाकथामेष कृतः प्रयात ।।३४।। भगवान् सभी प्रकार के परीषद और उपसर्गों को सहते हुए यह विन्तवन करते ये कि यह झात्मा जल से कभी थीला नहीं होता, पवन का वेग इसे मुखा नहीं सकता और ऋषि इसे जला नहीं मकती (क्योंकि यह अमूर्त हैं)। किर यह जीव इस संसार में ऋषि जलादिक से क्यों न्यंब ही कष्ट की कथा को प्राप्त होवे, आर्थान् इसे होति-उच्चा परीयहादिक से नहीं हरना चाहिए।। २४॥

ग्रीष्मे गिरेः शृङ्गश्विष्ठितः सन् वर्षासु वा भृमिरुहाद्यः सः। विभृषणत्वेन चतुष्पथस्य हिमे बभावाऽऽत्मपदेकशस्यः॥३४॥

च्याःसीय पद में नहीन वे थीर मगवान मीष्म काल में पर्वत के शिवर पर बंठकर, वर्षाकाल में बृक्षों के तीचे रहकर चौर शीत-काल में चतुष्पय (चौराहे) के चाभूषण वनकर शोभायमान ही रहे थे ॥ ३४॥

न वेदनाऽङ्गस्य च चेतनस्तु नामामहो गोचरचारि वस्तु । तथापि संगारिजने न जाने कि रस्ति लग्नोऽर्त्तिकथाविधाने।।३६॥

शीत-उष्णादि की वेदना सहन करने हुए समझान् विचार करते थे कि शरीर के तो जानने की शक्ति (चेदना) नहीं है और यह चेदन आस्मा इन शीन-उष्णादि की वेदनाओं का विषयभूत होने या प्रार्थ नहा है। तो भी न जाने, क्यों यह संसारी जीव पीड़ा की क्या कहने में सल्प्रा हो रहा है।। ३६।।

मासं चतुर्मासमधायनं वा विनाऽदनेनाऽऽत्मपथावलम्बात् । प्रमन्त्रभावेन किलंकतानः स्वरिमकसूदेष सुवानिधानः ॥३७॥ स्मृत के निथान दे बीर अगवान् आस्म-पष का आस्म्य लेकर एक मास, चार मास खीर छह मास तक ओजन के बिना ही प्रसन्न चित्त रहकर और स्मृत आपमें माम होकर अपने छहास्य काल को बिता रहे थे।। २०।।

गत्वा पृथक्त्वस्य वितर्कमारादेकत्वमासाय गुणाधिकारात् । निरस्य घातिप्रकृतीरघातिवर्ती व्यमाञ्जीसुकृतेकतातिः ॥३८॥

जब छद्धस्थकाछ का अन्तिम समय आया, तब भगवान् अपक भेणी पर चढ़े और आठवें गुण स्थान में प्रयन्त्व वितर्क शुक्त ध्यान को आप्त होकर पातिया कर्मों की सर्व प्रकृतियों का अप करके अप (पाप) से परे होते हुए, अयवा अपाति कर्मों के साथ रहते हुए अस्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी के सीभाग्य-परण्यरा को धारण कर शोभित हुए।। ३८।।

मनोरथारूढतयाऽथवेतः केनान्वितः स्नातकताष्ठ्रपेतः । स्वयम्बरीभृततया रराज ग्रुक्तिश्रियः श्रीजनदेवराजः ॥३९॥

बस समय बीर प्रभु खपने मनोरब पर खाह्नद होकर के खबीन बाहमा से खबबा जल से समित्रत होकर स्नातक दशा को प्राप्त हुए, मानों मुक्ति श्री के स्वय बरण करने के लिए ही वे श्री जिनदेवराज बर-राजा से शोधित हो रहे थे ।। ३६।।

वैशासग्रुक्षाऽश्रविषृदितायां वीरस्तियौ केवलमित्यथायात् । स्वयं समस्तं जगदप्यपायादुद्धृत्य बतु सुससम्पदायाम्॥४०॥

वह समस्त जगत को उस समय पापों में संख्य था इसकी

पाप से दूर करने के लिए, तथा सुख-सन्पदा में लगाने के लिए ही मानों श्री वीर भगवान ने वैशाख शुक्रा दशमी तिथि में केवल झान को प्राप्त किया।। ४०॥

अपाहरत् प्राभवभुच्छरीर आत्मस्थितं दैवमलं च बीरः । विचारमात्रण तपोभृदय पूपेव कल्ये कुहरं प्रसद्य ॥४९॥

प्रात:काल जैसे सूर्य प्रसन्न होकर विचार मात्र से ही कुहरे को दूर कर देता है, उसी प्रकार उस समय प्रभावान कारीर वाले बीर भगवान ने अपने आस्त्र-स्थित देव (कर्महरूप) सल को दूर कर विद्या ४२ था

भावार्ध: इस स्होक में पठित सर्व विशेषण समान रूप से सूर्य और भगवान दोगां के लिए घटिन होते हैं. क्योंकि जैसे सूर्य प्रभावान शिर का धारक है, वैसे ही भगवान भी प्रभा वाले भामपळ से युक्त हैं। जैसे सूर्य त्योधमु ज्यान उच्छाता रूप ताए को धारण करता है, वैसे ही भगवान भी तप के धारक हैं। जैसे सूर्य विचार अर्थान अपने संचार से अन्यकार को दूर करता है, उसी प्रकार भगवान ने भी अपने विचार रूप प्रभाव हैं। इसे प्रमाव के सुर्व के स्वार्थ के प्रभाव के अर्थ के स्वर्ध के स्वर्ध के स्वर्ध के सुर्व के साम के सुर्व हो बाहिरी तमक्रण मूर्य के करता है, पर भगवान ने में अपने स्वर्ध के हर करता है, पर भगवान ने में अपने स्वर्ध के हिर का स्वर्ध के सुर्व के सहिर हो के स्वर्ध के सुर्व कि दूर करने में सुर्व समझ नहीं है।

अनित्यतेवास्ति न वस्तुभृताऽसौ नित्यताऽप्यस्ति यतः सुपूता । इतीव वक्तुं जगते जिनस्य दङ् निर्निमेषत्वमगात्समस्य ॥४२॥

केवछ ज्ञान प्राप्त करते ही अगवान के नेत्र निर्निमेच हो गरे

श्रावीत् काभी तक जो नेत्रों की पढ़कें खुळती कीर बन्द होती थी। उसका होना बन्द हो गया। इसका कारण बतळाते हुए किंव कहते हैं-पदार्थों में केवल श्रानित्यता ही वस्तुभूत धर्म नहीं, किन्तु निरयता भी वासतिबक धर्म है। यह बात जगन के कहते के लिए ही मानों चीर जिस के नेत्र निर्नियेषपने की प्राप्त हो गये।। ४२॥

भावाये:- ऋांखों का बार बार खुलना और बन्द होना बस्तु की ऋतिस्यता का सुचक है तो निर्तिभेषता निरयता को प्रकट करती है। इसका क्रांभिया यह है कि प्रत्येक पदार्थ में निरयत्व और ऋतिस्थल ये दोनों धर्म रहते हैं।

धर्मार्थकामामृतसम्भिदस्तान प्रवक्तुमर्थान् पुरुषस्य शस्तान् । बभार वीरश्वतुराननत्वं हितं प्रकतुं प्रति सर्वसत्त्वम् ॥४३॥

धर्म, ऋषं, काम और ऋधृत (मोक्ष) रूप पुरुष के हिनकारक चार प्रशस्त पुरुषार्थों को सर्व प्राणियों से कहने के लिए ही मानों बीर भगवान ने चतर्माखता को धारण कर लिखा॥ ४३॥

भावार्थ – केवल ज्ञान होते ही अगवान् के चार मुखदीखने लगते हैं, उसको लक्ष्य में रसकर कविने उनके वैसाहोने का कारण बतलाया है।

रूपं प्रभोरप्रतिमं वदन्ति ये येऽवनी विश्ववराश्च सन्ति । कुतः पुनर्मे प्रतिमेति कृत्वा निश्छायतामाय वपुर्दितस्वात् ॥४४॥

इस अवनी (पृथ्वी) पर जो जो श्रेष्ट झानी छोग हैं, वे वीग प्रभु के शरीर के रूप को अनुपम कहते हैं, किर सेग अनुकरण करनेवाछी प्रक्रिया (छावा) भी क्यों हो १ यह सोचकर ही मानों अगवान का इारीर तस्वतः छाया-रहितपने को प्राप्त हुआ, व्यर्थान् छाया से रहित हो गया ॥ ४४ ॥

अहो जिनोऽयं जितवान् मतन्त्रं केनाप्यजेयं स्ववि मोहमन्त्रम् । नवाङ्कुराङ्कोदितरोमभारमितीव हर्षादवनिर्वभार ॥४४॥

आहो, इन जिनदेव ने संसार में किसी से भी नहीं जीता जानेबाला महा बलझाली मोहरूपी महासक जीत किया, इस प्रकार के हर्ष को प्राप्त हो करके ही मानों सारी पुल्ली ने नवीन आंकुरो के प्रसट होने से रोमाञ्चपन को धारण कर लिखा। ४४॥

भावार्थ-सारी पृथ्वी हर्षे से रोमाख्रित हो कर हरी भरी हो गई।

समासजन् स्नातकतां स वीरः विज्ञाननीरै विलसच्छरीरः । रजन्वलां न स्पृशति स्म भूमिमेकान्ततो त्रक्षपदैकभूमिः ॥५६

विज्ञानरूप नीर से जिनके शरीर ने मुखीभांति स्तान कर लिया, श्रुतपुष स्तातकता को प्रान करने वाले, तथा एकानत अग्नपुर के श्राद्वितीय स्थान अर्थान् वाल-मुखाशारी ऐसे उन वीर भगवान् ने रतस्वला श्ली के समान भूमिका स्पर्श नहीं किया अर्थान् भूमि पर विज्ञार करना क्षोवकर अन्तरिक्ष-गांभी हो गये।। ४६॥

भावाई:-र्ज़से कोई ब्रह्मचारी और फिर स्तान करके रजस्वजा क्षी का स्पन्न नहीं करता, वेसे ही बाल-ब्रह्मचारी और स्नातक पृद् को प्राप्त करने वाले भगवान ने रजस्वला अर्थोन् पूर्विवाली पृथ्वी का भी स्पन्न करना छोड़ दिया। अब वे गागन-विदारी हो गये।

उपद्रुतः स्यात्स्वयमित्ययुक्तिर्थस्य प्रभावान्निरुपद्रवा पूः । तदा विपाकोचितत्रस्यतुल्या नलात्रकेशात्र न दृद्धिमापुः ॥४७ जितके प्रभाव से यह सारी गुण्यी ही उपह्रवों से रहित हो जाती है, वह स्वयं उपह्रव से पीड़ित हों, यह बात क्युक्त है, इसीखिए केवल जान के प्राप्त होते पर सपावान भी जितन हेव, सतुष्य, पद्युक्त पूर्व आकरिश्यक अचेतन-कृत सर्व प्रकार के) उपह्रवों से रहित हो गये। तथा परिपाक को प्राप्त हुई साव्य के ससाल सपावान के सल और केश भी बुद्धि को शाम नहीं हुए।। ४७।।

भावार्थं.- केवल ज्ञान के प्राप्त होने पर जगत् उपद्रव-रहित हो जाता है और भगवान् के नल और केश नहीं बढ़ते हैं।

बभूव कस्पैव ब्लेन युक्तश्च नाऽश्वनासौ कवले नियुक्तः । सुरक्षणोऽसावसुरक्षणोऽपि जनैरमानीति वधैकलोपी ॥४८॥

अगबान् उस समय कबल अथीन आत्मा के बल से तो युक्त हुए, किन्तु कबल अथीन अप्रत के प्राम से संयुक्त नहीं हुए, अर्थान् केवल ज्ञान प्राम होने के प्रधान मगवान् कवलाहार से रहित हो गये, फिर भी वे निर्वल नहीं हुए, प्रस्तुन आत्मिक अननत बल से युक्त हो गये। वे अगबान् सुरक्षण डोते हुए भी अपुरक्षण थे। यह विरोध है कि जो सुरों का थ्रण उत्सव-हर्ष करने बाला हो, वह असुरों का हर्ष-वर्षक केसे हो सकता है। इसका परिहार यह है कि वे देवों के हर्ष-वर्षक होते हुए भी असु-धारी पाणी मात्र के भी पूर्ण रक्षक प्रबं हर्ष-वर्षक हुए। समीक्षिप कोगों ने उन्हें वथ (हिसा) मात्र का लोप करने वाला पूर्ण आहितक माना। ४८ मा

प्रभोरभृत्सम्प्रति दिञ्यनोधः विद्याऽनशिष्टा कथमस्त्वतोऽधः। कलावरे तिष्ठति तारकाणां ततिः स्वतो ज्योम्नि धृतप्रमाणा।।

भयवान् को जब विक्य बोध (केवल ज्ञान) प्राप्त हो गया है, तो

फिर संभार की समस्त विद्याओं में से कोई भी विद्या अविष्ठह कैसे रह सकती थीं अर्थोत्त भगवान्त् सर्व विद्याओं के ब्राजा वा खासी हो गये वर्थोतिक आकाश में कळाथर (चन्द्र) के यहते हुए तार्थों की पंक्ति नो स्वत: ही अपने परिवार के साथ उदित हो जाती है तार्थी।

निष्कण्टकादर्श्वमयी धरा वा मन्दः सुगन्धः यवनः स्वभावात् । जयेति वागित्यभवस्रभस्त आनन्दपूर्णोऽभिविधिः समस्तः ॥

भगवान् को केवल झान प्राप्त होते ही यह सारी पृथ्वी कंटक-रहित होकर दर्पण के समान स्वच्छ हो गई। श्वभाव से ही मन्द सुगन्य पवन चलने लगा। श्राकाश जय जयकार करने वाळी अनि होने लगी और इस प्रकार सभी वातावरण श्रानन्द से परिपृष्ण हो गया। १०।।

स्नाता इवासः ककुभः प्रसम्भास्तदेकवेलासृतवः प्रक्शाः । गन्धोदकस्यातिशयात् प्रवृष्टिर्वतोऽभवद्धर्षमयीव सृष्टिः ॥४१॥

सभी दिशाएं स्नान किये हुए के समान प्रसन्न हो गई। सर्व ऋदुएं भी एक साथ प्राप्त हुई। । गम्बोदक की सातिशय वर्षा होने ठगों और सारी सृष्टि हर्ष-मय हो गई॥ ४१ ।।

ज्ञात्वेति शको धरणीयुपेतः स्ववैभवेनाथ समं सवेतः । निर्मापयामास समास्थलं स यत्र प्रभुष्टं किपथैकशंसः ॥५२॥

यह सब जानकर सुचेना इन्द्र भी अपने बैभव के साथ पृथ्वी पर आवा और जहां पर मुक्तिभागे के आदितीय कपरेष्टा विराजमान थे, वहां पर उसने एक समवक्षरण नामक सभा-मरस्वर का निर्माण किया ।। ४२ ।। सम्भोका भगवानभेयमहिमा सर्वज्ञच्हामणि— र्निर्माता तु चचीपतेः प्रतिनिधिः श्रीमान् कुवेगेऽप्रणीः । सन्दष्टाऽस्क्लिअञ्चनं सम्रदयो यस्या भवेत्संश्दः

पायाजातु रमस्थिति मम रसाऽप्येषाऽऽशु तत्सम्पदः॥

उस सभा-स्थल का निर्मां। तो श्राचीपति शक का अप्रणी श्रीतिनिधि श्रीसान कुचेर वा और उसके उपभोक्ता असेय महिना वाले सर्वक्क चूढ़ासणि वीर भगवान थे। तथा उस समास्थल का संस्था समस्य पृथ्वी पर उत्पन्न हुए जीवों का ससूह था। मेरी यह रसा (वाणी) भी शीब उस सम्पदा की रसस्थिति को कुछ वर्णन करने में ससर्थ होवे॥ ४२।।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भु जः स सुषुवे भूरामलेत्याह्नयं वाणीभृषण-वर्णिनं छतवरी देवी च यं धीचयम् । ग्रीष्मर्त् दयतोऽभवज्ञगवतः सद्बोघभानृदय-

स्तस्य द्वादशनाम्नि तेन गदिते सर्गेऽत्र युक्तोऽन्वयः॥१२॥

इस प्रकार श्रीमान धेठ चतुर्श्वजा और घृतवरी देवी से उत्तक हुए बाणीभूषण बाल-क्रक्रचारी, गं० भूरामल वर्तमान सुनि बानसागर हार्य विरचित इस काल्य में ग्रीध्म ऋतु चौर भगवान् के कंत्रल झान-प्राप्ति का वर्णन करने वाला बारहवां सर्गे समाप्त हुआ।। १२।।



अथ त्रयोदशः सर्गः

वृत्तं तथा योजनमात्रमञ्चं सार्द्धदयकोग्नसमुक्ततं च । ख्यातं च नाम्ना समवेत्य यत्र ययुर्जनाः श्रीशरणं तदत्र ॥१॥

कुवेर ने वीर भगवान् के लिए जो समवशरण नामक सभा-मण्डप बनाया, कवि उसका कुछ दिग्दर्शन कराते हैं—

वह सभा-मण्डप गोलाकार या, मध्य में एक योजन विस्तृत स्त्रीर खड़ाई कोश उनन था। उसमें बारों स्त्रोर साकर सभी प्रकार के जीव श्री थीर भगवान के शरण को श्राह होते हो, इसलिए वह 'समवदारण' इस नाम से संसार में शसिब हुआ।। १।।

आदौ समादीयत घूलिशालस्ततश्र यः खातिकया विश्वालः। स्वरत्नसम्पत्तिग्रुतोपद्दारः सेवां प्रभोरब्धिरवाचचार ॥२॥

उस समबदारण में सब से पहिले पूळिशाळ नाम से प्रसिद्ध कोट या. जो कि चारों कोर खाई से घिरा हुका था। बह ऐसा प्रतीन होता था, मार्नो कपनी रस्तादिक रूप सर्व सम्यवा को भेंट में लाकर समुद्र ही बीर प्रमुक्ती सेवा कर रहा है॥ २॥

त्रिमेखला-वापिचतुष्कयुक्ताः स्तम्भाः पुनर्मानहरा लसन्ति। रत्नत्रयेणर्षिवरा यथैवमाराधनाधीनहद्दो भवन्ति ॥३॥

पुनः तीन मेखलाक्यों (कटनियों) से क्यौर चार वापिकाक्यों से युक्त मान को इरण करने वाले चार मानस्तम्भ चारों दिशाक्यों में सुकोभित हो रहे थे। वे ऐसे मालूम पड़ते ये मानों जैसे रलन्त्रय से युक्त श्रीर चार श्राराधनाओं को हृदय में धारण करने वाले ऋषि-बर ही हैं।। ३।।

स्तम्मा इतः सम्प्रति खातिकायास्ततः पुनः पौष्पचयः शुमायाः । श्रीमारुतीमौक्तिकसम्बिधानि अनेकरूपाणि तु कौतुकानि ॥४॥

मानस्तम्भों के इधर और उस श्रेष्ठ खाई से उधर पुष्प-बाटिका बी, जिसमें कि मारुती, मोतिया, गुलाब, मोंगरा खादि खनेक प्रकार के पुष्प खिळ रहे थे ॥ ४ ॥

रत्नांशकैः पञ्चविधैर्विचित्रः मुक्तेश्च्युतः कङ्कणवत्पवित्रः । शालः स आत्मीयरुचां चयेन सजँस्तदैन्द्रं धनुरुद्धतेन ॥४॥

तस्य आत् पांच प्रकार के रत्नों से निर्मित होने के कारण चित्र-विचित्र वर्ण वाला प्रचम शाल (कोट) या, जो ऐसा प्रतीत होता था, मानों श्रुष्ठि क्ष स्त्री का कपर से गिंगा हुआ पंचित्र कहुण ही हो। वह शाल अपने रत्नों की किरणों के समुद से आकाश में उदित हुए इन्ट-धनत्व की कोसा को किस्ताद कहा था। ॥ ॥

नवाभिधीनित्यभिधारयन्तं समुद्धसत्तीरणतो बृहत्त्वात् । ततः पुनः प्रावरणं बदामि स्थाङ्गिचद्धे नर ! राजनत्त्वात् ॥६॥

हे पाठक गण, तत्पश्चान् नव निविधों को घारण करने वाला, विद्याल उच्छासमान तोरण-द्वार से संयुक्त राजतत्व बाला (चांदी से निर्मित) रवाङ्गी (चकी) के समान प्रावरण (कोट) या, ऐसा हम कहते हैं ॥ ६ ।;

भावार्थ--जैसे चक्रवर्ती नव निषियों को घारण करता है, उसी

प्रकार वह कोट भी नव-निषिषों से संयुक्त था। चक्रवर्ती तो रण के कीसल से युक्त डोग है, अह कोट तोरण-द्वार से युक्त था। चक्रवर्ती विशाल राज-नरव से संयुक्त दोता है, यह कोट भी राजतत्त्व से युक्त था, आर्थान् चांदी से बनाहुआ। था।

ततो मरालादिदशप्रकार-चिह्नै र्यु तानां नमसोऽधिकारः । प्रत्येकमभ्राभ्रविथूदितानामष्टाधिकानां परितो ध्वजानाम् ॥७॥

तदनन्तर हम, चक्रवाक आदि दश प्रकार के चिह्नों से संयुक्त स्रोग प्रयोक एक सी आउठ, एक सी आउ संख्या वाळी ध्वजास्त्रों की पत्ति थी, जो फड़गती हुई स्राकाश में स्रपना अधिकार प्रकट कर रही थी ॥ ७ ।।

सर्वेर्मेनुष्पेरिह स्वितन्यमितीव वप्रच्छलतोऽथ भव्यः । श्रीपुष्करद्वीपगतोऽद्विरेवाऽऽगत्य स्थितःस्वीकृतते स्म सेवाम् ॥

तत्पश्चान सर्व सनुष्यों को यहां आकर रहना चाहिए, मानों ऐसा कहता हुआ ही कोट के बहाने से पुक्कर-द्वीपवर्ती भव्य भागुपोत्तर पर्वत यहां आकर प्रभुक्ती सेवा को स्वीकार करके अप-स्थित है. ऐसा प्रतीत होता था।। ए।।

स मङ्गलद्रव्यगणं दधानः स्वयं चतुर्गोपुरभासमानः । यत्र प्रतीहारतयास्ति वानदेवैः प्रणीतो गुणसम्बिषानः ॥९।

बह दूसरा कोट आड़ संगळ द्रव्यों को स्वयं धारण कर रहा या, चार गोपुर द्वारों से प्रकाशसान या, सर्व गुणों से विराजनान या आदीर जिस पर प्रतीहार (द्वारपाळ) रूप से क्यन्तर देव पहरा देरहें में ॥ हा। भवन्ति ताः सम्प्रति नाट्यशाला नृत्यन्ति याद्यसम्देवबालाः । त्रिलोकनाथस्य यशोवितानं दृद्घोषयन्त्यः प्रतिवेशदानम्॥१०॥

इसके पञ्चान् न।ट्यशालाएं थीं, जिनमें देव-बाखाएं त्रिलोकी-नाय श्री बीर प्रभुके यशोवितान की सर्व कोर घोषणा करती हुई नाचरहीं थीं।। १०॥

सप्तच्छदाऽऽम्रोहकचम्पकोषपदैर्वनैर्धत्र कृतोपरोपः । मनोहरोऽनः समभूत्प्रदेशस्तचत्कचैत्यद्रमयुक्तलेशः ॥११॥

इसके बातन्तर सप्तपर्ण, बाझ, अशोक जीर चन्यक जाति के दुवों से युक्त चारों दिशाओं में चार बन ये। जिनमें उत्त-उन नाम बाले चेंत्य बुक्कों से संयुक्त मनोहर प्रदेश सुशीभिन हो रहे थे॥ ११॥

श्रीबीरदेवस्य यश्रीभिरामं वप्रं तपी राजतमाश्रयामः । यस्य प्रतिद्वारम्रशन्ति सेवामथाऽर्हती भावननामदेवाः । १२॥

पुनः उस समयशःण में हम श्री बीर भगवान के समान क्राभि-राम, राजत (चांदी निर्मित) कोट का आश्रय करते हैं, जिसके कि प्रत्येक द्वार पर भवनवासी देव अरहंत भगवान् की सेवा कर रहे थे। १२॥

विनापि वाञ्छां जगतोऽखिलस्य सुखस्य हेतुं गदतो जिनस्य । वैयर्ध्यमावेदयितुं स्वमेष समीपमेति स्म सुरह्रदेशः ॥१३॥

तत्पश्चात् कल्पवृक्षों का बन था. जो मानों छोगों से कह रहा था कि इम तो बांछा करने पर ही छोगों को बांछित वस्तु देते हैं, किन्तु ये भगवाप तो विना दी बांछा के सर्व जगन् के सुख के कारण को कह रहे हैं, अतगद अब हमारा होना ज्यबं है, इस प्रकार अपनी ज्यबंता को क्षत्र प्रकट करता हुआ। ही मानों यह कल्प वृक्षों का बन भगवान् के समीप में आया है।। (२।

अस्मिन् प्रदेशेऽग्त्यखिलासु दिज्ञु सिद्धार्थनामावनिरुट् दिद्जुः । भन्योऽत्र सिद्धप्रतिमास्रपेतः स्फूर्तिं नयत्यादरतः स्वचेतः ॥१४॥

इसी स्थान पर चारों दिशाओं में सिद्धार्थ नामक वृक्ष हैं,जो कि सिद्ध-प्रतिमाओं से गुक्त हैं और जिन्हें रेखने के लिए भव्य जीव खादर भाव से यहां खाकर खपने चित्त में स्कृति को प्राप्त करते हैं ।। १४ ।।

ततोऽपि वप्रः स्फटिकस्य शेष इवाऽऽवभी कुण्डलितप्रदेशः । संसेवमानो भवतिन्युसेतुं नमोगतत्वप्रतिपचये तु ।११४॥

तदनन्तर स्कृटिक मणि का तीसरा कोट है, जो ऐसा शोभित हो रहा है कि मानों रोपनाग ही अपने सर्पपना से रहित होने के छिए अथवा भोगों से विश्वक्ति प्राप्त करने के खिए भव-मागर के सेतु-(पुळ) समान इन वीर भगवान की सेवा करता हुआ कुरढळाकार होकर अवस्थित है। १४।।

ततः पुनर्हादश कोष्ठकानि जिनेन्द्रदेवं परितः शुभानि । स्म भान्ति यद्वद्रविमाश्रितानि मेषादिलयानि भवन्ति तानि ॥

पुन तीसरे कोट के खागे जिनेन्द्रदेव को घेर कर सब बोर उत्तम बादह कोठे सुशोधित हैं। (जिनमें चतुर्निकाय के देव, उनकी देवियां, सुनि, खार्थिका वा शविका, मनुष्य और पछु बैठकर सग-बाम का घर्मोपटेश सनते हैं।) वे सगवान को घेर कर खाविखत बारह कोठे ऐसे शोभित होते हैं. जैसे कि सूर्व को आश्रय करके चारों कोर श्रवस्थित मीन-मेष कादि लग्न राशियां शोभित होती हैं।। १६।।

मध्येसमं गन्धकुटीस्रपेतः सम्रुत्थितः पीठतलाचयेतः । बभौ विश्वद् ष्टमिदं विधानं समस्तम्रुच्छिष्टमिबोज्जिहान ॥१७॥

इस सभवशरण-सभा के मध्य में गन्ध कुटी को प्राप्त और सिंहासन के तलभाग से ऊपर अप्तरिक्ष अवस्थित भगवान इस समस्त आयोजन को (समवशरण की रचना विधान को) उच्छिष्ट के समान छोड़ने हुए से शोभायमान हो रहे थे।। १७॥

नाम्ना स्वकीयेन बभ्व योग्यस्तत्वष्ठतोऽशोकतरुर्मनोज्ञः । यो दृष्टमात्रेण हरञ्जनानां शोकप्रवन्धं सुमुदो विधानात् ॥१८॥

भगवान के पीठ पीछे अपने नाम से योग्य अवीन अपने नाम को सार्थक करनेवाला मनील अपनेक हुछ या, जो कि दहाँन-मान से ही सर्व जनों के शोक-ममृह को हरता हुआ, तथा हर्ष का विधान करता हुआ शोभिन हो गहा था। १८।।

पुष्पाणि भृयो वन्नुवर्नभस्तः नाकाशपुष्पं भवतीत्यशस्तः । जनैः प्रवादो न्यकथीत्यनेन स्याद्वादविद्याधिपते रसेण ॥१९॥

स्याद्वाद विद्या के अधिपति भी बीर भगवान के पुरयोदय से इस समवद्दारण में आकाश से पुरप बरस रहे थे। वे मानों यह प्रकट कर रहे थे कि ठोगों ने हमारा जो यह अपशाद फैंडा रखा है कि आकाश में कुछ नहीं होते, वह मुठ है।। १६॥

गङ्गातरङ्गायितसत्वराणि यक्षैर्विधूतानि तु चामराणि । द्वक्तिश्रियोऽपाङ्गनिभानि पेतुर्वीरप्रभोः पार्श्वरद्वये तु ॥२०। उस समय बीर प्रश्नु के दोनों पादव भागों मे गंगा की तरंगों के समान लम्बे कौर यक्षों के द्वारा दोरे जाने वाले चामर (चंवरों के समूह) ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों ग्रुक्ति-ळक्सी के कटाक्ष ही हों ॥२०॥

प्रमोः प्रमामण्डलमत्युदाचं न कोटिस्पैर्यदिहाभ्युपाचम् । यदीक्षये सम्प्रभवः क्षयेन म्मो नाम जन्मान्तरलक्षयेन ॥२१॥

बीर प्रभु के मुख का प्रभा-मण्डल इतना दीप्ति-गुक्त था कि वह दीप्ति कोटि सूर्यों के द्वारा भी संभव नहीं है। जिस प्रभा-मण्डल को हेस्बने पर एक क्षण में लोग खपने-खपने जन्मान्तरों को देखने में समर्थ हो जाते थे। २१।

भावार्थ:- भगवाम् का ऐसा खातिकय होता है कि उनके भामण्डल में प्रत्येक प्राणी को खपने तीत पूर्व के भव, तीन खागे के भव और एक वर्तमान का भव इम प्रकार सात भव दिलाई देने हैं। जगन्त्रयानन्द्रदशाममत्रं वदामि वीरस्य तदातपात्रम् ।

त्रकालिक।याब्धितुजे सुसत्रं सतां जरामृत्युजनुर्विपत्त्रम् ॥२२॥

वीर अगवान के उपर जो छत्रत्रय अवश्यित थे, वे मानों जगव्य के नेत्रों के आनन्द के पात ही थे, ऐमा मैं कहता हूँ । वह स्वत्रत्रय कैंगिक (सदा) रहने वाले अध्यक्षित वन्द्र के लिए उत्तम कांति देनेवाला उत्तम सन्न (सदायत) ही या और वह सज्ञन पुरुषों की जन्म. जरा और सरण रूप नीन विपनियों से त्राण (रहा) करने वाला था।। २२।।

मोहप्रभावप्रसरप्रवर्जं श्रीदुन्दुमिर्यं घ्वनिम्रुत्ससर्ज । समस्तभृज्यापिविधिं समर्जनानन्दवाराशिरिवाघवर्जः ।।२३।।

उस समवदारण में देव-दुन्दुभि, मोहकर्म के प्रभाव के विश्तार

को निवारण करने वाली, समस्त सू-च्यापी खानन्य विधि को करने बाली, पाप-रहित निर्दोष खानन्यरूप समुद्र की गर्जना के समान गम्भीर खनि को कर रहे थे॥ २३॥

वाचां रुचा मेघमधिक्षिपन्तं पर्याश्रयामो जगदेकसन्तम् । असण्डरूपेण जगजनेभ्योऽमृतं समन्तादिष वर्षयन्तम् ॥२४॥

उस समसकारण में भगवान की दिव्य ध्वित ऋखरह रूप से जरानू के जीवों को पीने के लिए सबे क्योर से अधून रूप जल की वर्षाती हुई और सेघ की ध्विन का निरस्कार करती हुई प्रकट हो रही बी।। २४।।

इत्येवमेतस्य सर्ती विभृति स वेद-वेदाङ्गविदिन्द्रभृतिः । जनैर्निशम्यास्वनिते निजीये प्रपूरयामास विचारहृतिम् ॥२५॥

इस प्रकार चारों कोर फेंडी हुई बीर भगवान् की इस विभूति को छोगों से सुनकर बेद-बेदाक का बेता वह इन्ट्रभूति ब्राइण कपने चित्र में इस प्रकार के विचार प्रवाह को पूरता हुआ विचारने स्थाग १३४॥

वेदाम्बुधेः पारमिताय महां न सम्भवोऽद्यावधि जातु येपाम् । तदन्त्रितस्याग्रपदं त एव भावा भवेतः स्मयस्रतिरेषा ।।२६।।

वेद-शास्त्ररूप समुद्र के पार को शाप्त हुए मुक्ते तो इस प्रकार की विभूतियों की शाप्ति आज तक भी संभव नहीं हुई है और उससे रहित अर्थोत् वेद-बाह्य आचरण करने वाले वीर के आगे ये सर्व वैभव समुर्थिखत है, चढ़ी यह वहा खाझ्य है। १६॥

चवारु दृष्टुं तद्तिप्रसङ्गमित्येवमाश्चर्यपरान्तरङ्गः । स प्राप देवस्य विमानभूमिं स्मयस्य चासीन्मतिमानभूमिः ॥ अतएव श्रिथिक सोच-विचार करने से क्या लाभ है ? (मैं चलकर स्वयं ही देख़ं कि क्या बात है ?) इस प्रकार विचार कर और श्राश्चर्य-परम्परा से ज्यात है अन्तरंग जिसका, ऐसा वह इन्द्रभूति भगवान् वीर के समवक्षरण की ओर स्वयं ही चल पड़ा। जब वह वीर जिनेन्द्रदेव की विमान-भूमि (समवक्षरण) को प्राप्त हुआ तो अमानभूमि (अभिमान से रहित) होकर परम श्राश्चर्य को प्राप्त हुआ।। २७॥

रेमे पुनश्चिन्तयितुं स एव शब्देषु वेदस्य कुतः प्रवेशः । ज्ञानात्मनश्चात्मगतो विशेषः संलम्यतामात्मनि संस्तुते सः ।।

भीर वह इस प्रकार विचारने छशा—इन बोले जाने वाले अब्दों में वेद (ब्राम) का प्रवेश केंसे संभव है ? ब्रामक्ष्पता तो आयास-गत विशेषता है और वह आश्या की म्तुति करने पर ही पाई जा सकती है। २८॥

मया ऽत्रुचेर्मच्यमतीत्य तीर एवाग्रयावत्कारुतः समीरः । कृतो ऽस्तु भ्रकाफलभावरीतेरुतावकाशो मम सम्प्रतीतेः ॥२९॥

मैंने आज तक समुद्र में जाकर भी उसके तीर का ही समीर (पबन) खाया है। समुद्र में गोता लगावे विना मेरी बुद्धि को भी जीवन की सफलना कैसे शाम हो सकती है ?।। २६।।

स्रुहुस्त्वया सम्पठितः किलाऽऽत्मन् वेदेऽपि सर्वज्ञपरिस्तवस्तु। आराममापर्यटतो बहिस्तः किं मौमनस्याधिगतिः समस्त ॥

हे आस्मन् ! तूने अपनेक वार वेद में भी सर्वक्र की स्तुति को पढ़ा, (किन्तु उसके बधार्थ रहस्य को नहीं जान सका) आरोर उस झान के उद्यान के बाहिर ही वाहिर पर्यटन (परिश्रमण) करता रहा। क्या बाहिर घूमते हुए भी उद्यान के सुन्दर सुमनों के समुदाय की प्राप्ति सक्थय है ? ।। ३०॥

वातवसनता साधुत्वायेति वेदवाचः पूर्तिमथाये । नान्यत्रास्ति साधनासरणित्रोद्युतयेऽयमेव अवि तरणिः॥३१॥

'बात-बसनना आयोग् दिगम्बरना ही सायुत्व के लिए कहीं गई हैं। इस बेद के बचन की पूर्ति को (यबार्य ज्ञान को) में आज प्राप्त हुआ। हूँ। यह दिगम्बरना ही संसार में आस्त-साथना की सर्पण (यब्रति) को प्रकट करने के लिए सूर्य है। इस दिगम्बरना के सिवाय वह सम्यव सम्यय नहीं है। ३१॥

> सत्यसन्देशसंब्रप्त्ये प्रसादं कुरु भो जिन । इत्युक्त्वा पदयोरेष पपात परमेष्टिनः ॥३२॥

(ऐसा मन में ऊहापोह करके) है जिनेन्द्र । सत्य सन्देश के ज्ञान कराने के लिए मेरे ऊपर प्रसाद करो (प्रसन्न होच्चो), ऐसा कहकर वह इन्द्रभृति गौतम वीर परमेक्षी के चरणों में गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

> लब्बेमं सुभगं बीरोऽभिददौ वचनामृतम् । यशाऽऽवाढं समासाय मचना वारि वर्षति ॥३३॥

इस सुभग इन्द्रभूति को पाकर वीर भगवान् ने उसे बचनामृत विदा। जैसे कि आमाश्व मास को प्राप्त डोकर इन्द्र खळ वरसाता है।। ३३।।

> यदाऽवतरितो मातुरुदरादयि स्रोभन । तदा त्वसपि जाससि समायातोऽस्यक्तिश्वनः ॥३४॥

हे क्षोअन ! जब तुम साता के उदर से अवतरित हुए, तब तुम अकिक्कन (तम्न) ही आये थे, यह बात नो तुम भी जानते हो ॥२४॥

गृहीतं बस्त्रभित्यादि यन्मायाप्रतिरूपकम् ।

माल्सर्यादिनिमित्तं च सर्वानर्थस्य साधकम् ॥३४॥

पुनः जन्म लेने के पश्चान् जो यह बस्त खादि महण किए हैं, वे तो माया के प्रतिरूप हैं, मास्मर्य, लोभ, मान खादि के निमित्त हैं और सर्व खनवों के साधक हैं॥ ३४॥

> अहिंसा वर्त्म सत्यस्य त्यागस्तस्याः परिस्थितिः । सत्यात्रयायिना तस्मात्संब्राह्मस्त्याग एव हि ॥३६॥

सस्य नस्त्र का मार्ग तो ऋहिंमा ही है और स्थाग उसकी परि-स्थिति है ऋर्थात् परिपालक है। ऋतएव सत्यमार्ग पर चलने वाले के लिए त्यागभाव ही संबाह्य है ऋर्थान् ऋाश्रय करने थोग्य है।। ३६।।

त्यागोऽपि मनमा श्रेयाश शरीरेण केवलम् । मूलोच्छेदं विना वृक्षः पुनर्भवितुमईति ॥२७॥

किसी बस्तु का मन से किया हुआ त्याग ही कल्याण-कारी होता है, केवल हारीर से किया गया त्याग कल्याण-कारी नहीं होता। क्योंकि मूल (जब) के उच्छेत किये बिना ऊपर से काटा गया हुछ पुन. पल्खांति हो जाता है। १७॥

वर्धमानादनश्राज एवं गौतमचातकः ।

लेमे स्कामृतं नाम्ना साऽऽषाढी गुरुपूर्णिमा ॥३८॥

इस प्रकार जिस दिन श्री वर्धमान रूप मेघराज से गौतम रूप चातक ने सत्य सुक्त रूप वचनामृत को प्राप्त किया, वह दिन खाषादी गुरु पूर्णिमा है।। ३८॥ भावार्थ:- यतः श्वाषाङ् सुदी पूर्णिमा को गौतम ने बीर भग-वाम् रूप गुरु को पाकर और स्वयं शिष्य बनकर वचनामृत का पान किया। अन तभी से लोग बसे गुरु पूर्णिमा कहते हैं।

बीरवलाहकतोऽम्युदियाय गौतमकेकिकृतार्थनया यः । अनुस्वनं स वारिसस्रदायः श्रावणादिमदिने निरपायः ॥३९॥

गौतम रूप मयूर के द्वारा की गई प्रार्थना से वीर सगवान रूप मेघ से जो वाणी रूपी जल का निर्दोष प्रवाह प्रकट हुच्चा, वह आवण मास के प्रथम दिन सर्व सुवन में ज्याह हो गया ॥ २६ ॥

भावार्थः – भगवान् महात्रीर का प्रथम उपदेश श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको हुन्चा।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्धुः सः सुषुवे भूरामत्तेरयाह्न्यं । वाणीभृषणवर्णिनं घृतदरी देवी च यं घीचयम् । श्रीमचीर्थकरस्य संबद्मगाच्छ्रीगौतमरुपुचरेऽ । स्मिन् दशमे च तेन रचिते शीरोदयस्योज्ज्वरे ॥१३॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुं जजी भीर पृतवरी देवी से वरस्त्र हुए दाणीभूषण, बाल-त्रज्ञचारी पं० भूरामल बतंमान सुनि ज्ञानसागर के द्वारा रचे गये इस वज्जवल बीरोद्द काव्य में भगवान् की सभा का भीर उसमें गीतम इन्द्रभूति के जाने का वर्णन करने वाला यह तेरहवां समें ससाम हुंच्या। १३॥



अथ चतुर्दशः सर्गः

श्रीवीरसन्देशसमर्थनेऽयं गणी यथा गौतमनामधेयः । दशाऽपरेऽपि प्रतिबोधमाषुस्तेषामथारूयाऽथ कथा तथा प्: ॥१॥

जिस प्रकार श्री बीर भगवान के सन्देश के प्रसार करने में गीतम नामक गणवर समर्थ हुए, उसी प्रकार अन्य भी दश गणवर प्रतिबोध को प्राप्त हुए। अब उनके नाम, नगरी आदि का कुछ वर्णन किया जाना है ॥ १ ॥

युतोऽप्रिना भृतिरिति प्रसिद्धः श्रीगौतमस्यानुज एविमद्धः । अभृद् द्वितीयो गणभृत्म वायुशृतिस्तृतीयः सफलीकृताऽऽयुः ॥२॥

श्री गौतम का छोटा भाई, जो कि ऋष्ठिभूति नाम से प्रसिद्ध एवं विद्याच्यों से ससृद्ध वा, वह भगवाम का दूसरा गणघर हुच्छा। अपने जीवन को सफल करने वाला वायुभूति तीसरा गणघर हुच्छा॥ २॥

सनाभयस्ते त्रय एव यज्ञानुष्टायिनो वेदपदाऽऽशयज्ञाः । गीर्वाणनाण्यामधिकारिणोऽपि समो समीपामपरो न कोऽपि ॥३॥

ये तीनों ही भाई यज्ञ यागादि के कतुष्ठान करने बाते थे, वेद के पदों और मंत्रों के कामिशय पवं रहस्य के ज्ञाता, तथा देववाणी संस्कृत भाषा के काभिकारी विद्वान्त्र थे। उस समय दनके समान भारतवर्ष में कीर कोई दसरा विद्वान्त्र नहीं था।। दे॥

श्रीगोबरब्रामिबद्धपयुक्तभृतेः पृश्विञ्याश्च सुताः सदुक्ताः । व्वनिर्यकान् स्पेच्छति पुत्रबुद्धचा स्वयम्बरस्वेन वृता विश्चद्वचा।।४।। ये तीनों ही मगध देशान्तर्गत गोवर माम-निवासी बसुभूति ब्राह्मण और पूर्विची देवों के पुत्र थें। इन्हें सरस्त्रती माता ने पुत्र-बुद्धि से स्वीकार किया और विश्वद्धि देवी ने स्वयन्त्रय रूप से स्वयं वरण किया था।। प्र।।

अभृचतुर्थः परमार्थ आर्यव्यक्तोऽस्य वप्ता धनमित्र आर्यः । कोल्लागवासी स्ववि वारुणीति माता द्विजाऽऽख्यातकुलप्रतीतिः ॥४।

परम द्वार्थ द्वार्यव्यक्त वौथे गणधर हुए। इतके पिता कोल्छाग प्रामवासी द्वार्थ धनिमत्र थे द्वीर माता वास्णी इस नाम से प्रसिद्ध बी। ये भी प्रसिद्ध श्राद्वण कुरु में उत्पन्न हुए थे।। ४॥

तत्रस्यधम्मिल्लघरासुरस्य पुत्रोऽभवद् भहिलया प्रशस्यः । भृतार्थवेदी गणभृत् सुधर्मः स पश्चमोऽवाप्य वृषस्य मर्म ॥६॥

उसी कोल्लाग प्राप्त के धन्मिल्ल नामक अट्टेब (बाह्यण) के महिला नाम की की से उत्पन्न प्रशंसनीय मुख्ये पांचवें गणपर हुए। जी कि धर्म के मर्म की प्राप्त होकर तत्त्व के यथायेवेत्ता बन करे थे।। है।।

मीर्यस्थले मण्डिकसंब्रयाऽन्यः बभृव षष्ठो गणभृत्सुमान्यः । पिताऽस्य नाम्ना धनदेव आसीत्स्याता च माता विजया शुभाशीः ।।

मौर्य नामक पाम में बत्पक्त हुए, मिखक नाम वाले छठे मुसान्य गणधर हुए । इनके पिता का नाम धनदेव या और शुभ-हृद्य वाळी आता विजया नाम से प्रसिद्ध थी ॥ ७॥ असृत माता विजयाऽथ पुत्रममीर्येण नाम्ना स हि मीर्यपुत्रः । वीरस्य साम्निध्यस्रपेत्य जातस्तत्त्वप्रतीत्या गणराडिहातः ॥८॥

सातवें गणधर मौबेपुत्र हुए। इनकी माता का नाम विजया स्त्रौर पिना का नाम मौबे था। ये भी वीर भगवान् के सामीप्य को प्राप्त कर तस्त्र की यथार्थ प्रतीति हो जाने से दीक्षित हुए ये ॥ ८ ॥

माता जयन्ती च पिता च देवस्तयोः सुतोऽकस्पितवाक् स एव । वीरस्य पार्श्वे मिथिलानिवासी वभूव शिष्यो यशसां च राशिः ॥९॥

मिथिला-निवासी खौर यहाँ की राक्षि ऐसे प्रकल्पित बीर भगवान के पास में दीक्षित हो हिष्य बनकर आठवें गणधर बने। इनकी माता का नाम जयनी और पिता का नाम देव था।। १॥

गणी बभूबाऽचल एवमन्यः प्रभोः सकाशाक्षिजनामधन्यः । बसुः पिताऽम्बाऽस्य बभौ च नन्दा सा कौशलाऽऽख्या नगरीत्यमन्दा ॥

नवें गणधर स्व-नाम-धन्य श्रचल हुए, जिन्होंने वीर प्रसु के पास जाकर शिष्यत्व स्वीकार किया था। इनके पिना का नाम बसु और माता का नाम नन्दा था। ये महा सीभाग्य वाली कौशलापुरी के निवासी थे।। १०॥

मेतार्यवाक् तुङ्गिकसन्निवेश-वासी पिता दच इयान् द्विजेशः । माताऽस्य जाता वरुखेति नाम्ना गणीत्रुपान्त्यो निलयः स धाम्नाम् ॥

परम कान्ति के निलय (गृह) सेतार्य उपान्त्य व्यर्थात् दशक् गणघर हुए। ये तुंगिक सिन्नवेश के निवासी ये। इनके पिता का नाम दत्त स्प्रीर माता का नाम वारुणी था। ये भी श्रेष्ठ श्राक्षण थे॥११॥

बलः पिताऽम्बाऽस्य च साऽस्तु भद्रा स्थितिः स्वयं राजगृहे किल द्राक् । प्रभासनामा चरमो गणीशः श्रीवीरदेवस्य महान् गुणी सः ।।१२॥

श्री बीर भगवान् के अन्तिम अर्थात् न्यारहवें गणधर प्रभास नाम के महान् गुणी पुरुष हुए। इनके पिता का नाम कल एवं माता का नाम भद्रा या और ये स्वयं राजगृह के रहने वाले थे।। १२॥

सर्वेऽप्यमी विष्रकुलप्रजाता आचार्यतां बुद्धिवरेषु याताः । अर्थे कमप्यरफुटमर्पयन्तः सम्माननीयत्वभिदाश्रयन्तः ॥१३॥

ब्राइक कुळ में उत्पन्न हुए ये सभी गणघर बुद्धिधारियों में सम्माननीयना को प्राप्त कर किसी तरव-विशेष के रहस्य को स्वष्ट रूप से यबार्ध नहीं जानते हुए भी ब्याचार्यपने को प्राप्त हो रहे थे ॥ १२॥

अन्तस्तले स्वामनुभावयन्तस्त्रुटि बहिभीनुकतां नयन्तः । तस्युः सम्बन्यांत्रिद्शां बहन्तः हृदार्तिमेतामनुचिन्तयन्तः ॥१४॥

ये सभी विद्वान् व्यपने व्यपने व्यन्तसन्तरु में व्यपनी व्यपनी बुटि को ब्यनुभव करते हुए भी, बाहिर भावुकता को प्रकट करते हुए व्योर हुन निष्यानी मानस्तिक पीड़ा का विन्तवन करते हुए पर में काटा क्यों व्यक्ति की ब्रह्मा को धारण करने वाले पुरुष के समान विचरते थे। ११।

अश्वामवद्यक्रविधानमेते निमन्त्रितास्तत्र सुद्स्थले ते । स्वकीयसार्थातिश्वयम्भूतिः सर्वेषु सुरूवः स्वयमिन्द्रभूतिः ॥१५॥ इस समय किसी स्थान पर विरोध यह का विधान हो रहा था, उस यह-विधान में वे उपयुंक सबं विद्यान अपनी-अपनी क्रिक्ट-मण्डली के साथ आमन्त्रित होकर सम्मिलित हुए। उन सबके प्रमुख स्वयं इन्द्रभूति थे॥ १४॥

समाययुः किन्तु य एव देवा न तस्थुरत्रेति किलाम्चदे वा । रुञ्चेन्द्रभृतिर्पजनं स नाम समाप्य तस्माननु निर्जगाम ॥१६॥

यह होने के समय धाकांश से देवगण काते हुए दिखे। (जिन्हें देखकर यह में उपस्थित सभी छोग काति हर्षित हुए। वे सोच रहे वे कि यह के प्रभाव से देवगण का रहे हैं)। किन्तु जो देव काये वे, उनमें से कोई भी इस यहस्थळ पर नहीं ठहरे कीर कागे को गये। तब सब को खेद हुआ। इन्द्रभृति यह देखकर आक्षर्य से चिकत हों यह को समात कर वहां से चल दिये। (यह देखने के छिए कि वे देव कहां जा रहे हैं)। १६॥

किमेवमाश्चर्यनिमप्तविचाः सर्वेऽपि चेलुः सम्रदायविचाः । जयोऽस्त सर्वेद्वजिनस्य चेति स्म देवतानां वचनं निरेति ॥१७॥

इन्द्रभूति को जाते हुए देलकर यह क्या है, इस प्रकार के विचार से आअर्थ-निमग्न-चित्त वे कप्रिभृति आदि शेष सर्व आचार्य अपने-अपने शिष्ट-परिवार के साथ चळ दिवे। आगे जाने पर उन्होंने 'सर्वज्ञ जिनकी जाय शे' ऐमा देवताओं के द्वारा किया गया जय-जय-कार शक्त सना। १७॥

एषो ऽखिलकः किम्रु येन सेवा-परायणाः सन्ति समस्तदेवाः । समाऽप्यमिन्यक्तनमास्वतोऽहस्करस्य मातीव विभो ममोहः ॥१८॥ क्या बह बास्तव में सर्वक है जिसके प्रभाव से ये समस्त हेव-गण सेवा-परायण हो रहे हैं। यह सभा भी सूर्य की प्रभा से ऋषिक प्रभावान होती हुई काकाश को ज्याप्त कर रही है। हे प्रभो! यह मेरे मन में विचार हो रहा है। १८॥

यथा रवेरुद्रमनेन नाशो ध्वान्तस्य तद्वत्सहसा प्रकाशः । मनस्य तेषामनुजायमानश्रमचकारादश्चतसम्बिधानः ।।१९॥

जैसे सूर्य के उदय होने से अध्यकार का नाश हो जाता है, बैसे ही उन छोगों के हृदय का अक्षान विनष्ट हो गया और उनके हृदयों में वित्त को चनकात करने वाछा प्रकाश सहमा प्रकृष्ट हुआ।। १६॥

यस्यातु तद्विप्रसतामनीकं उद्दिश्य तं साम्प्रतमग्रणीकम् । इन्द्रप्रभृतिं निजगाद देवः भो पाठकाः यस्य कथा मुद्दे वः ॥२०॥

जिसके पीछे उन जाङ्गण-चिद्वानों की सेना लग रही है, उनके आप्रणी उस इन्द्रभूति को वह रव करके श्री शीर जिनलेव ने जो कहा, उसे हे पाठको। सुनो, उसकी कथा तुम सब के लिए भी आनन्द-कारी है।। २०।।

हे गौतमान्तस्तव कीटगेष प्रवर्तते सम्प्रति काकुलेशः । शृरुपुत चेद्रुद्वदि जीवः परत्र घीः किन्न तवात्मनीव ॥२१॥

भगवान् ने कहा—है गौतम ! तुम्हारे मन में इस समय यह कैसा प्रस्त बरमा हो रहा है ? सुनो, यदि जीव जल के बबूला के समान है, तो फिर अपने समान दूसरे पाषाण चादि में भी वह अबि क्यों नहीं हो बाती। ११।। अहो निजीयामरताभिलाषी भवँश्र भूयादुपलब्धपाची । नरः परस्मायिति चित्रमेतत्स्वयं च यस्मात् परवानिवेतः ॥२२॥

आश्चर्य है कि अपनी अमरता का अभिलाणी होता हुआ। यह प्राणी दूसरे के प्राण तेने के लिए पाज लिए हुए है १ किन्तु आश्चर्य है कि स्वयं नू भी तो दूसरों के लिए पर है, ऐसा क्यों नहीं सोचता १॥ २२॥

बभूव तच्चेतमि एप तर्कः प्रतीयते ताबदयं स्विदर्कः । यतो ममान्तस्तमसो निरासः सम्भूय भूयादतुलः प्रकाशः ॥२२॥

भगवान् की यह वाणी मुनकर इन्द्रभृति के चित्त में यह तर्क (विचार) उत्पन्न हुन्ना कि यह वास्तव में सूर्य के समान सर्व तस्त्रों के यथार्थ प्रकाशक सर्वज्ञ प्रतीत होते हैं। इनके द्वारा मेरे अन्तरंग के अन्यकार का विनाह होकर मुझे अनुस्त्र प्रकाश प्राप्त होगा, ऐसी आवार है।। ३३।।

एवं विचार्याथ बभूव भूय उपाचपापप्रचयाभ्यस्यः । शुश्रुषुरीशस्य वचे।ऽतएव जगाद सम्पञ्जु जिनेशदेवः ॥२४॥

ऐसा विचार कर पुनः उपार्जन किये हुए पाप-समुदाय से मार्नो इंध्यो करके ही इन्द्रमूपि गीनस गणभर ने भगवान के बचन सुनने की भौर भी उच्छा प्रकट की, भावएव श्री वीर जिनेन्द्रदेख की मधुर वाणी प्रकट हुई ।। २५ ।।

सचेतनाचेतनमेदभिन्नं ज्ञानस्वरूपं च रसादिचिह्नम् । क्रमाद् द्वयं भो परिणामि नित्यं यतोऽस्ति पर्यायगुणैरितीत्यम्॥२५ हे गौतस ! यह समस्त जगन सचेतन और अचेतन इस दो प्रकार के जिल-भिक्न द्रव्यों से धरा हुआ है । इसमें क्रमणः सचेतन द्रव्य तो क्षानस्वरूप हैं और अचेतन द्रव्य ब्रानरूप चेतना से रहित रूप-रसादि चिक्क बाला है। ये दोनों ही प्रकार के द्रव्य परिणामी नित्य हैं, क्योंकि वे सब गुण और पर्यायों से संयुक्त हैं।। २४।।

भावार्य-गुणों की अपेक्षा सर्व द्रव्य नित्य हैं और पर्यायों की अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य या परिणामी हैं।

अनादितो भाति तयोहिं योगस्तत्रैक्यधीरचेतनकस्य रोगः । ततो जनुष्ट्रेत्यसुपैति जन्तुरुपद्रवायानुमवैकतन्तुः ॥२६॥

श्चनादि से ही सचेतन श्वास्था और श्चनेतन शरीरादि रूप पुद्गारू इच्य का संयोग हो रहा है। इन दोनों में ऐक्य बुद्धि का होना नैतन जीव का रोग है—वहीं भूट हैं। इस भूट के कारण ही वह जन्तु प्रत्येक सच में जन्म और सरण को प्राप्त होता है और यह भन-परम्परा ही उपन्न के लिए हैं, श्वायों दु:खदायक हैं। २६॥

श्वञ्जं रुपा कुन्धकताबलेन कीटादितां वा पश्चतां छलेन । परोपकारेण सुरश्चियं स सन्तोषतो याति नरत्वश्चंसः ॥२७॥

यह जीव क्यपने कोयरूप भाव से नरक जाता है, लुन्यकता से इसि-कीट व्यक्ति की पर्याय पाता है, छल-प्रपंच से पशुपना को प्राप्त होता है, परीपकार से देव-स्वक्षी को प्राप्त करता है और सन्तोष से सनुष्यपने को पाता है।। २७।।

लमेत मुक्ति परमात्मबुद्धिः समन्ततः सम्प्रतिपद्य ग्रुद्धिब् । इत्युक्तिक्षेत्रेन स गीतमोऽत्र बमुव सद्योऽप्युपलब्धगोतः ।।२८।। परमारम-बुद्धि वाला जीव सर्व प्रकार से अन्तरंग और वाह्य शुद्धि को प्राप्त कर अर्थोन् द्रव्य कर्म, (क्वानावरणादिक) आवक्रमें (राग-द्वेषादिक) और नोकर्म (शरीरादिक) से रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान् के अल्व वचनों से ही वह गौतम शीव सस्यश्चान को प्राप्त कर सन्मागं को प्राप्त हुआ।। २६।।

समेत्य तत्राऽप्यनुकूलभावं वीरप्रश्वः प्राह पुनश्च तावत् । भो भव्य ! चिचेऽनुभवाऽऽत्मनीने तत्त्वस्य सारं सुतरामहीने ।।

तदनन्तर अनुकूळ समय (अवसर) पाकर पुनः वीर प्रभु ने कहा — हे भव्य! अपने हीनता रहित उदार चित्त में तस्य के सार को अपनभव करो।। २६॥

जानाम्यनेकाणुमितं शरीरं जीवः पुनस्तत्प्रमितं च थीरः । भीरस्ति यस्मिन्नधिकारपूर्णा कर्मानुसारेण विलब्धघूर्णा ॥३०॥

यह शरीर अनेक पौर्गिलक परमागुओं से निर्भित है, इससे जीव मबंबा भिन्न स्वरूप बाला होते हुए भी उस शरीर के ही प्रमाण है। यतः जीव इस शरीर में रहता है, अतः लोगों की बुद्धि कर्म के अनुसार विपरीतता को धारण कर शरीर को ही जीव मानने लगती है।। २०।।

समेति नैष्कर्म्यम्रतात्मनेयं नैराश्यमस्येत्य चराचरे यः । निजीयमात्मानमथात्र पुष्यन् स एव शान्ति लभने मनुष्यः ॥

जो पुरुष इस चराचर जगत् में निराशा को प्राप्त होकर अपने आप निष्कर्मता को प्राप्त होता है, वही मनुष्य अपनी आल्मा को पुष्ट करता हुआ शान्ति को प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ नरस्य नारायणताऽऽप्तिहेतो र्जनुर्व्यतीतं भवसिन्धुसेतो । परस्य शोषाय कृतप्रयत्नं काकप्रहाराय यथैव रत्नम् ॥३२॥

अस्मामिरद्यावधिमानवायुर्व्यर्थीकृतं तस्य किमस्ति जायुः । इत्युक्तिलेशे सति गौतमस्य प्राह प्रश्वः सर्वजनैकशस्यः ॥३३॥

(भगवान् के यह दिज्य वचन मुनकर गौतम बोलें —) हे भव-सिग्धु-सेतु भगवन् । नारायणता (परमासन्दर्शा) की प्राप्ति के कारण-मृत इस मनुष्य के जन्म को मैंने यां ही ज्यतीन कर दिया। जात तक मैंने दूसरे के द्रोषण करने के लिए ही प्रयस्त किया। जिसे कोई काक को मारने के लिए रस्त को केंत्र देवे, उसी प्रकार मैंने भी आज तक तक यह समृत्य मनुष्य जीवन ज्ययं गयां दिया। जब इसकी कया जीविष है १ ऐसा गौनम के कहने पर सर्व जनों के द्वारा प्रशंस-मीय प्रमु पुतः योले — ॥ ३२-३३॥

गतं न शोच्यं विदुषा समस्तु गन्तव्यमेवाऽऽश्रयणीयवस्तु । सम्मालयाऽऽत्मानमतो द्विजेश! कोऽमीह ते कः खल कार्यलेशः॥

है डिजेश (शाहणोत्तम)! विद्वान् को बीत गई बात का शोच नहीं करना चाहिए। अब तो गन्तस्य सार्गपर ही चलना चाहिए क्यौर शास करने बोग्य बस्तु को पाने का श्यस्त करना चाहिए। अत-पद अब तू अपनी आत्मा की सम्भाल कर और विचार कर कि तूकोन है और अब यहां पर तेरा क्या कन्य है। ३४॥।

त्वं जाक्कणोऽसि स्वयमेव विदि क जाक्कणत्वस्य भवेत्प्रसिद्धिः। सत्यावधास्तेयविरामभावनिःसङ्गताभिः समुदेत् सा वः ॥३५॥ हे गीतम ! तुम बाइण कहडाते हो, किन्तू स्वयं प्रयने सीतर तो दिवार करों कि वह बाहणना की मसिद्धि कड़ां होती हैं। ब्यरे, बह बाहणना तो सरव, बहिंसा, बस्तेय, की-गरित्याग बौर निःसंगत से ही संभव हैं। ऐसी यह बाहणता तुम सबके प्रकट हो।। ३५॥

तपोधनश्राक्षजयी विशोकः न कामकोपच्छलविस्मयौकः । शान्तेस्तथा संयमनस्य नेता स बाह्मणः स्यादिह ग्रद्धचेताः ॥

आक्षण तो वही हो सकता है जो तपोधन हो. इन्द्रिय-जयी हो, शोक-रहित हो। जो काम, कीथ, छळ और विस्मय णानि दोधों का घर न हो। तथा जो शांति और संयम का नेता हो और शुद्ध चिन्न वाळा हो। ऐसा पुरुष ही संसार में आक्षण कहलाने के योग्य है। १६१।

पीढा ममान्यस्य तथेति जन्तु-मात्रस्य रक्षाकरणैकतन्तु । कृपान्त्रितं मानसमत्र यस्य स बाह्यणः सम्भवतान्त्रशस्य ॥३७॥

हे पुरुषोत्तम। जिसके यह विचार रहता हो कि जैसी पीड़ा सुमें होती है, वैसी ही ब्यन्य को भी होती होगी। इस प्रकार विचार कर जो प्राणिमात्र की रक्षा करने में सदा सावधान रहता हो, जिसका हृद्य सदा दया से यूज रहता हो, वही इस संमार में बाह्यण होने के योग्य है। 18 था।

सदाऽऽत्मनश्चिन्तनमेव वस्तु न जात्वसत्यस्मरणं समस्तु । परापवादादिषु मुक्तभावः स्यादु बाह्यणस्यैष किल स्वभावः ॥

जिसके सदा ही खात्मा का चिन्तन करना लक्ष्य हो, जो कदा-चित्त भी असत्य-संभाषण न करता हो, पर-निन्दा खादि में मौनभाव रखता हो। वही ब्राह्मण कहलाने के बीग्य है, क्योंकि ब्राह्मण का यही स्वमाव (स्वरूप) है।। २८।।

नानाविधानेकविचित्रवस्तुसमर्थिने भूमितले समस्तु । न किञ्चनाऽऽदातुमिहेहमानः स बाखणो बुद्धिविधानिधानः ।।

जो नाना प्रकार की व्यनेक विचित्र वस्तुकों से भरे हुए इस भूतल पर कुछ भी नहीं श्रहण करने की इच्छा रखता है, वही बुद्धि का निधान मानव बाह्मण है।। ३६।।

जलेऽन्जिनीपत्रवदत्र भिन्नः हस्टेऽप्यनिष्टेऽपि न जातु खिन्नः । कूमें यथा सम्बरितान्तरक्तः सर्वत्र स बाह्यणसम्पदकः ॥४०॥

जैसे जलमें रहते हुए भी कमिलनी उससे भिन्न (ऋखिन) रहती है, इसी प्रकार संसार में रहते हुए भी जो उससे ऋखिन रहे, इष्ट वियोग और काल्य-संशोग में भी कभी क्षेत्र-लिल न हो और ऋखुए के समान सर्वत्र अपने चित्र को सदा मंद्रत रस्तता हो, वही जालण कप सम्पर्या का धारी है।। ४०।।

मनोवचो उक्कैः प्रकृतात्मशुद्धिः परत्र कुत्राभिरुचेर्न बुद्धिः । इत्यं किलामैयुनतामुपेतः स बाक्कणो ब्रह्मविदाशमेऽतः ॥४१॥

इस प्रकार जिसने मन, वचन और काय से श्वासाविक आसन-शुद्धि प्राप्त कर छी है, अन्यत्र कहीं भी जिसकी न अभिकृति है और न जिसकी जुडि है, एवं जो निक्रय से द्वेतभाव से रहित होकर अर्द्धैतभाव को प्राप्त हो गया है, वही पुरुष श्रद्ध-ज्ञानियों के आश्रम में श्राह्मण साना गया है। प्रश्री। निशाचरत्वं न कदापि यायादेकाशनो ता दिवसे अप आयात् । मर्वं च मांसं मधुकं न अक्षेत् स जासाणी यो उन्नसृतं सुरक्षेत् ॥

जो कभी भी निझाचरता को प्राप्त नहीं होवा, खर्चात् रात्रि में नहीं खाता, जो दिन में भी एकाशन करता है, मदा, मांस, ब्वीर मखु को कभी नहीं खाता है, एवं सदा प्राणियों की रक्षा करता है, वहीं ब्राह्मण है।। ४२॥

परित्यजेद्वारि अगालितन्तु पिवेत्पुनस्तोषपयोऽपजन्तु । इयांत्र इत्रापि कदापि मन्तुं श्रीबाह्यणोऽन्तःश्रस्त्रभक्तितन्तुः ॥

जो अगालित जल को छोड़े और निर्जन्तुक एवं सन्तोषहर जल को पीये, कभी भी कहीं पर किसी भी प्रकार के अपराध को नहीं करे और अन्तरंग से प्रमु की भक्ति रूप तन्तु (सूत्र) को धारण करे। वहीं सक्षा आक्षण है। ४३॥

भावार्थः – जो उपर्युक्त गुणों से रहित है, केवल आह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। है, स्त्रीर गरीर पर सूत का वज्ञोपकीत धारण करता है, वह आक्रण नहीं कहाजा सकता।

जवादयः स्वर्णमिवीपलेन श्रीगौतमस्यान्तरभृदनेनः । अनेन वीरप्रतिवेदनेन रसोऽगदः स्नागिव पारदेन ॥४४॥

जिस प्रकार पारस पाषाण के योग से लोहा शोध सोना बन जाता है और जैसे पारा के योग से धातु शीध रोग-नाशक रमायन बन जाती हैं। ठीक उसी प्रकार भगवान् बीर प्रश्नु के उपयुंक्त विचेचन से श्री गीतम इन्द्रमृति का चिक्त भी पाण से रहित निर्दोध होगा। प्रश्ना अन्येऽप्रिभृतिप्रद्वसाथ तस्य तुल्यत्वमेवानुबद्धः समस्य । निम्बादयथन्दनतां लमन्ते श्रीचन्दनद्वीः प्रमवन्त् अन्ते ।।४४॥

उनके साथ के अन्य अप्रिमृति आदिक दशों विद्वान भी इन्द्र-भृति के समान ही तरक के यवार्थ रहरू का अनुभव कर आनन्दित हुए, सो ठीक ही है। श्रीचन्दनसुस के समीपम अवस्थित नीम आदि के भी चन्दनपने को प्राप्त होते हैं, इसमें कोई आअर्थ की बात नहीं हैं। ४४॥

वीरस्य पञ्जायृतबुद्धिमत्सु सकुत्यभावः समभूनमहत्सु । वृतं तदेतत्यससार लोकप्रान्तेषु शीघं प्रसुदामर्थाकः ॥४६॥

इन्द्रभूति खादि न्यारहों बिद्वानों का जो पांच हजार के लगभग क्रिय्य परिवार था, जब सबसे भी भगवान सहाशिर के वचनों का सहा प्रभाव पढ़ा, और उन सबके हृदय भी एकदम पलट गये। यह हुएँ-वर्षक समाचार संसार के सबें प्रालों में डीग्र केल गया। एडिं॥

समागमः क्षत्रियवित्रबुद्धचोरभृदपूर्वः परिरन्धशुद्धचोः । गान्नस्य वै याम्रुननः प्रयोग इवाऽऽसक्तौ स्पष्टतयोपयोगः ॥४७॥

परम द्वांढि को प्राप्त यह श्वनिय-तुद्धि महावीर कीर विश्व-तुद्धि इन्द्रभूति का अपनूतपूर्व समागम हुआ, वेंदि कि प्रयाग में गंगातल का यदुनाजल से संगम शीक्षर से परिणत हो गया। और आज म पुण्जी-संडळ पर ससका श्रष्ट रूप से उपयोग हो गड़ा है।। ४५ म

निसम्य सम्पङ् महिमानमस्याऽऽयाता तन्भृत्ततिरक्षिशस्या । यस्यां द्विजो बाहुज एव न सी द्वै रयोऽपि वा शिल्पजनः शुभाशी।। वीर प्रश्नु की ऐसी महिमा को सुनकर करके वर्शनार्व और धर्म अवणार्थ छोगों की दर्शनीय पंक्तियों का खाना प्रारम्भ हो गया, धर्म जिसमें केवल जाहण और स्नुतिय ही नहीं ५ खपितु वेरव भी ये और शुभ खाझा रखनेबाले शिलिपना (शुद्र) भी थे। ४%।

यो वा उन्तरङ्गे निजकल्मषस्य प्रक्षालनायानुभवत्समस्य । आयात एषो ऽपि जनः किलेतः वीरोदयं तीर्थमपूर्वमेततः ॥४९॥

जिस व्यक्ति ने भी सुना और जो भी व्यक्ति अन्तरंग के अपने पाप को धोने का अनुभव करता या, वे सभी जन आये और इस प्रकार ससार में यह 'वीरोद्य' रूप अपूर्व ही तीर्व प्रकट हुआ।।४६॥

नस्य नारी च पशुश्र पश्ची देवोऽथवा दानव आत्मलश्ची। तस्येव तस्मिन्नुचितोऽधिकारः परस्परप्रेममयो विचारः ॥५०॥

इस वीरोदय रूप तीर्थ में स्तान करने के लिए जो भी खाल-लक्षी नर-नारी, पशु-पशी खबबा देव-दानव खाया, उसको उसमें योग्य समुचित ही खायिकार मिला खौर सभी जीवों में परस्पर प्रेम मय विचार प्रकट हुआ।। ४०॥

सिंहो गजेनासुरथीतुकेन इकेण चाजो नकुलोऽहिजेन । स्म स्नेहमासाय वसन्ति तत्र चात्मीयभावेन परेण सन्ना ॥५१॥

उस समय इस समवशरण में सिंह गज के साथ, मूचक विडाड के साथ, वकरा मेड़िये के माथ, नीठा सांप के साथ वेर भूठ करके परस्पर रनेह की प्राप्त होकर ज्यपने विरोधी के साथ ज्यासीय भाव से बैंड रहे थें। प्र १७ ।। दिवा-निकोर्यत्र न अस्तु मेदः कस्मै ममुख्याय न कोऽपि खेदः।
बभव सर्वर्तसमागमोऽपि शीतातपादि-त्रतिवादलीपी ॥५२॥

इस समब्दारण में दिन-रात्रि का भेद नहीं था, न कभी किसी मनुष्य या पशु के लिए किसी प्रकार का कोई खेद था। वहां सदीं गर्मी आदि को दूर करने वाला सर्वे ऋतुओं का भी समागम इन्ना॥ ४२॥

भावार्थ: - उस समय सभी ऋतुक्षों के फल-फूल उरव्हा हो गये क्षीर बम्मन्त जैसा सुहाबना समय हो गया। किन्तु न बहां पर प्रीप्म ऋतु जैसी प्रचंदगर्भी थी, न शीतकाल जैसी उम सर्दी और न वर्षा-काल जैसी चनचोर वर्षा। सभी प्रकार का बातावरण परम शांत और सानन-बायक था।

समवशरणमेतकामतो विश्वताऽऽसी-

जिनपतिपदपूर्ता संसदेषा ग्रुभाशीः । जनि-मरणजदुःखाद खितो जीवराश्चि-

रिह सम्प्रगतः सन् सम्भवेदाश काशीः ॥४३॥

श्री जिनपति बीर १भु के चरण कमलों से पवित्र हुई यह ग्रुआ-कायबाकी संसद् (सभा)संसार में 'समबकारण' इस नाम से प्रसिद्ध हुई जिसमें कि जन्म-मरण जिनत दुःस से दुवित जीव-राशि आ-बाकर स्त्रीम काशी बन रही थी। क बधार्त प्रभाग की बाहा वार् आस-सक्य प्राप्त करने की श्रीमलाधिणी हो रही थी।। ४३॥

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्भु जः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं । वाणीभूषण-वर्णिनं वृतवरी देवी च यं धीचयम् । तत्त्रोक्ते गणिनां विवर्णनमभूच्छ्रीवीरनाथप्रभोः सर्वेऽस्मिन् खलु मार्गणोचितमितौ संपश्य तदु भन्य भोः॥१४॥

इस अकार श्रीमान सेठ चतुर्जु जबी और सृतवरी देवी से करान्न हुए बाणिश्रूषण बाल-नहाचारी पर भूरासक वर्तमान श्रुति झानसागर द्वारा रचे गये इस बीरोइय काव्य में गणवरों का बर्णन करने बाला बीटडवां सारी समाप्त हुआ।। ४॥

ब्राथ पञ्चदशः सर्गः

गर्जनं वारिदस्येत्र दुन्दुभेरिव गुजनम् । जगदानन्दनं जीयादणनं परमेष्टिनः ॥१॥

मेघ की गर्जना के समान, व्यवना दुन्दुभि की ध्वनि के समान गूंजने बाली खौर संसार के प्राणियों को व्यानन्द देने वाजी ऐसी परमेखी श्री वर्धमान स्वाभी की वाणी जयवन्ती रहे।। १।।

> वीणायाः स्वरसम्पत्तिं सिन्नश्रम्यापि मानवः । गायकः एव जानाति रागोऽत्रायं भवेदिति ॥२॥

बीणा की स्वर-सम्पत्ति को व्यक्षीत् उसमें गाये जाने वाले गीत के राग को सुनकर गान-रस का वेत्ता मानव ही जान सकता है कि इस समय इसमें अमुक राग प्रकट होगा। हर एक मनुख्य नहीं जान सकता ॥ रे॥ उदियाय जिनाधीशाद्योऽसौ दिन्यतमो ध्वनिः । विवेद गौतमो हीदमेतदीयं समर्थनम् ॥ ३ ॥

इसी प्रकार जिनाधीश वीर प्रमुसे जो ध्वनि प्रकट हुई, उसके यथाओं रहस्य को गौनम सहश विद्वान् ही समझ सके, सर्व साधारण जन नहीं समझ सके ॥ ३ ॥

> स्वाक्कतस्योत्तरं सर्व एवाभ्याय स्वभाषया । निःशेषं ध्वनिमीशस्य किन्त जग्राह गौतमः ॥४॥

यद्यपि समवजरण में अवस्थित सभी जन अपने प्रश्न का उत्तर अपनी भाषा में ही प्राप्त कर लेते थे, किन्तु बीर प्रभु की पूर्ण दिव्य-ध्वनि को गौतम गणधर ही प्रहण कर पाते थे ॥ ४ ॥

> पिबन्तीक्ष्वादयो वारि यथापात्रं पयोम्रुचः । अथ शेषमशेषन्तु वार्धावेच निर्धायते ॥ ५ ॥

जैसे मेघ से बरसने वाले जल को इन्त खादि दृक्ष अपनी पात्रता के अनुसार प्रहण करने हैं, किन्तु होए समस्त जल तो समुद्र में ही स्थान पाता है। इसी प्रकार प्रत्येक क्षोता अपनी खपनी चुद्धि के अनुसार भगवान् की वाणी को प्रकाण करता वा, परन्तु उसे पूर्ण कप से क्षदयक्रम तो गीतम गणवर ही कर पति थे।। ४।।

> पश्र्नां पक्षिणां यद्भदुन्कादीनां च शब्दनम् । स्कुनिः समिशम्यैतदर्थयत्येष तादशम् ॥ ६ ॥

जिस प्रकार एक शकुन-शास्त्र का वेता पुरुष पशु, पक्षी झौर विजली मादि के शब्द को सुनकर उनके यथार्थ रहस्य को जानता है, हर एक मनुष्य नहीं। उसी प्रकार भगवान् की वाणी के यथार्थ रहस्य को गौतम गणधर ही जान पाते थे, हर एक मनुष्य नहीं।।२।।

> वाणीं द्वादशमागेषु भक्तिमान् स विभक्तवान् । अन्तिमस्यान्तरध्यायाः सम्बभृतुश्रतु दश्च ॥ ७ ॥

उस महान् भक्त गौतम ने भगवान् की वाणी को छुनकर बारांग क्यादि बारह कंगों (भागों) में विभक्त किया। उसमें के बारहों के के पांच भाग किये। उममें से पूर्वगत के चौदह भेद किये॥ ७॥

> ग्रुश्रूषूणामनेका वाक् नानादेशनिवासिनाम् । अनक्षरायितं वाचा सार्वस्यातो जिनेश्विनः ॥८॥

नाना देशों के निवासी श्रोता जनों की भाषा अनेक प्रकार की यी। (यदि भगवान् किसी एक देश की बोली में उपदेश देते, तो उससे सब का कत्याण नहीं हो सकता या।) अतएव सर्व के हितेषी विनेन्द्रदेव की वाणी अनक्षर रूप से प्रकट हुई। (जिससे कि सभी देशवासी लोग उसे अपनी अपनी बोली में समझ लेवें, यह भग-वान् का अतिक्षय या)॥ स।

> वीरोक्तमनुबद्ति गर्णश्चे विश्वहेतवे । दूराद् दृरतरं निन्युर्नामनो मागधाः सुराः ॥ ९ ॥

वीर भगवान के द्वारा कवित तस्य को विरव-कल्याण के छिए गणभर अनुवाद करते जाते ये और मागभ जाति के देव उस योजन अ्यापिनी वाणी को दूरवर्ती स्थान तक फैंडा देते थे।। ६।। पतितोद्धारकस्यास्य सार्वस्य किस्र मानवाः । प्रेमणा पपुस्तिर्यञ्चोऽपि मिथो जातिविरोधिनः ॥१०॥

पतिसों के बढ़ारक खौर सर्व के हितकारक वीर प्रभु की वाणी को सनुख्यों ने ही क्या, परस्पर जाति-विरोधी निर्यचों तक ने भी प्रेम से पान किया, खर्यानु सुना ।। १० ।।

> यदेशवासिनां पुण्यं तत्राभुदस्य पर्यटः । निरीहचारिणो वारिवाहस्येव महात्मनः ॥ ११ ॥

जिस-जिस देश के निवासी जर्नों का जैसा पुरव था, उसके खानु सार इच्छा-रहित विहार करने वाले महात्मा महावीर का विहार मेच के समान कस उस देश में हुचा।। ११॥

> दिक्कुमारीगणस्यात्रे गच्छतो हस्तसम्पुटे । यात्रायाः समये रेजवंसमञ्जलसम्पदः । १२ ॥

भगवान् के विदार-समय अगो आगे चलने वाली दिक्कुमारी देक्षियों के इस्त-कमळों में चाष्ट्र मगळ द्रव्य परम शोभा को प्राप्त क्षेत्रे थे। १२।।

दिश्चि यस्यामनुगमः सम्भान्योऽभूजिनेशिनः । तत्रैव वर्मचकारूयो वर्त्म वर्तयति स्म सः ॥ १३ ॥

वीर जिनेश का विहार जिस दिशा में संभव होना था, उसी दिशा में धर्मचक ऋषी अपने अपना मार्ग बनाता चलता था।।१३॥

> चचाल यामिलामेषो ऽलङ्कुर्वन् पादचारतः । रोमाणीव पयोजानि घारयन्तीह सां बमौ ॥ १४ ॥

ये बीर भगवान् अपने पाद-संवार से जिस पृथ्वी को अलंकत करते हुए चलते थे, वहां पर वह रोमाञ्च के समान कमलों को वारण करती हुई शोभित होती थी।। १४॥

एवं पर्यटतोऽसुष्य देशं देशं जिनेशिनः । शिष्यतां जगृहर्भु पा बहुवरचेतरे जनाः ॥ १५ ॥

इस प्रकार प्राणि-मात्र को उनके कर्त्तव्य-पथ का उपदेश करते हुए देश-देश में विहार करने वाले वीर जिनेश का क्यनेकों राजा छोगों ने एवं क्यन्य मृतुष्यों ने शिष्यपना स्वीकार किया॥ १४॥

राजगृहाधिराजो यः श्रेणिको नाम भूपतिः । लोकप्ररूपातिमायातो बभुव श्रोतृषुत्तमः ॥ १६ ॥

बिहार प्रान्त के राजगृह नगर का अधिराज श्रेणिक नाम का राजा भगवान का शिष्य बनकर और श्रोताओं में अप्रणी होकर संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।। १६॥

> जाता गौतमसंकाशाः सुधर्माद्या दश्चपरे । वीरस्य वाचसुद्धतुँ क्षमा नानर्द्धिसंयुताः ॥ १७ ।

बीर भगवान् की वाणी का उद्घार करने में समर्थ एवं नाना ऋद्वियों से संयुक्त गौतम-तुल्य सुवर्मा आदि दश गणघर **और भी** हुए॥ १७॥

> चम्पाया भूमिपालोऽपि नामतो दिघवाहनः । पद्मावती प्रिया तस्य नीरमेतौ तु जम्पती ॥ १८ ॥

चम्या नगरी का प्रतिपालक द्विवाहन नाम का राजा और चसकी पद्मावती नाम की रानी ये दोनों ही दस्पती भगवान् के शिष्य बनकर जैन धर्म पालन करने लगे॥ १८॥

> वैशाल्या भूमिपालस्य चेटकस्य समन्वयः । पूर्वस्मादेव वीरस्य मार्गमाढौकितोऽभवत् ॥ १९ ॥

वैशाली के राजा चेटक का वश तो पहिले से ही बीर भगवान् के मार्ग का ऋनुयायी था। (अब भगवान् के वहां पर विहार होने से वह और भी जैन-धर्म में टढ़ हो गया)।। १६॥

काशीनरेश्वरः शंखो हस्तिनागाधिषः शिवः । चिलातिः कोटिवर्षेशो दशार्णेशोऽपि दीक्षितः ॥ २० ॥

काशी देश के नरेखर महाराज शंख, हस्तिनापुर के महाराज शिख, कोटि वर्ष देश के स्वामी चिळाति और दशाण देश के नरेश भी भगवान् के धर्म में दीक्षित हुए ॥ २० ॥

वीतभयपुराधीश उदायनमहीपतिः । प्रभावती त्रियाऽसुच्याऽऽपतुद्वीं वीरशासनम् ॥ २१ ॥

वीतभयपुर का ऋधीश उदायन राजा और उसकी प्रभावती रानी ये दोनों ही वीर भगवान के शासन को प्राप्त हुए ॥ २१ ॥

कौशम्ब्या नरनाथोऽपि नाम्ना योऽसौ सतानिकः। मृगावती प्रिया चास्य वीरांघी स्म निषेवते ॥ २२ ॥

कौशास्त्री का नरनाथ सतानिक राजा और उसकी पद्मावती राणी ने भी वीर भगवान् के चरणों की सेवा स्वीकार की ॥ २२ ॥ प्रधोतन उज्जिपिन्या अधिपोऽस्य शिवा प्रिया । बीरस्य मतमेतौ द्वौ सेवमानौ स्म राजतः ॥ २३ ॥ डब्जियनी का राजा प्रयोत और इसकी रानी शिवादेवी ये दोनों

ही वीर भगवान् के मत का सेवन करते हुए सुशोभित हुए ॥ २३ ॥ राजपुर्या अधीशानो जीवको महता महान् ।

राजपुरा जवासामा जायका महता महत् । आमण्यमुपयुद्धानो निर्दे ति गतवानितः ॥ २४ ॥ राजपुरी नगरी का जीवक अर्थान् जीवन्य स्थापना स्वीत्र

पुरुषों में भी महान्था,वह भी भगवान् से श्रमणपना कङ्गीकार करके भगवान् के जीवन-काल में ही मोक्ष को प्राप्त हुक्या॥ २४॥

श्रेष्टिनोऽप्यर्हदासस्य नाम्ना जम्बूकुमारकः । दीक्षामनः समासाध गणनायकतामगात ॥ २५ ॥

खर्रहान सेठ के सुपुत्र जम्बुकुमार तो (वसी दिन विवाह करके छाई हुई व्यपनी सर्व कियों को सम्बोध कर) भगवान से दीक्षा लेकर गण के खामीपन को प्राप्त हुखा ॥ २४ ॥

> विञ्च च्चौरोऽप्यतः पञ्चशनमंख्यैः स्वसार्थिभिः । समं समेत्य श्रामण्यमात्मबोधमगादसौ ॥ २६ ॥

इन्हीं जम्बूकुमार के साथ विद्यु कोर भी अपने पांच सौ लाविकों को लेकर आरि श्रमणपना अक्षीकार कर आस्मज्ञान की प्राप्त हुआ ।। २६॥

> सर्यवंशीयभूपालो स्थोऽभृद्शपूर्वकः । सुत्रभा महिषीत्यस्य जैनधर्मपरायणा ॥ २७ ॥

सूर्यवंशी राजा दशरथ और उसकी रानी सुप्रभा ये दोनों ही वीर शासन को स्वीकार कर जैन धर्म-परायण हुए॥ २७॥

मक्किका महिषी चासीत्प्रसेनजिन्महीपतेः।

दार्फबाहनभूपस्याभया नाम नितम्बनी ॥ २८ ॥

प्रसेनजित् राजा की रानी मल्लिकादेवी और दार्फवाहन नरेश की रानी अभवदेवी ने वीर-शासन को अङ्गीकार किया॥ २८॥

सुधर्मस्वामिनः पार्श्व उष्ट्रदेशाधिपो यमः।

दीक्षा जब्राह तत्पत्नी श्राविका धनवत्यभृत् ॥२९॥

जष्ट्रदेश के स्थामी राजायम ने (महावीर स्वामी के शिष्य) सुधर्मास्वामी से जिनदीक्षा प्रहण की श्रीर उसकी रानी धनवती आवक के ब्रत श्रद्धीकार कर श्राविका बनी॥ २६॥

श्रीवीरादासहस्राब्दीपर्यन्तमिह तद्-वृषः ।

बभूव भूषणं राज्ञां कुलस्येत्यनुमीयते ॥३०॥

इस मकार श्री वीर भगवान के समय से लेकर एक हजार वर्ष तक उनके द्वारा प्रचारित जैन धर्म राजाश्रों के कुछ का श्राभूषण रहा, ऐसा (प्राचीन इतिहास से) श्रुतमान होता है ॥ ३० ॥

एतद्-धर्मानुरागेण चैतदेशप्रजाऽखिला ।

प्रायशोऽत्र बसुवापि जैनवमितुयायिनी ॥३१॥ उपर्युक्त उन-उन राजास्रों के जैनवमीतुराग से ही इस देश की

समस्त जनता भी प्रायः जैनधमन्त्रियायिनी हो गई थी।। ३१।।

खारवेलोऽस्य राज्ञी च नाम्ना सिंहयशा पुनः । जैनधर्मप्ररोहार्थः प्रकमं भूरि चक्रतुः ॥३२॥ क लिङ्ग देश-नरेश महाराज सारवेल और उनकी महारानी सिंह-यशा देवी ने जैनधर्म के प्रवार के लिये बढ़ा पराक्रम किया॥ ३२॥

इक्ष्वाक्क्वंश्विपश्वस्य पत्नी धनवती च या । मौर्यस्य चन्द्रगुप्तस्य सुवमाऽऽसीद्याऽऽर्हती ॥३३।

इक्ष्वाकुवंशी राजा पक्ष की पत्नी धनवती ने तथा सम्राट्ट चन्द्र-गुप्त मीयं की पत्नी सुषमा देवी ने भी जैन धर्म को धारण किया ॥३३॥ महीशुराधिपास्तेषां योषितोऽद्यावधीति ताः ।

जैनधर्मानुयायित्वं स्वीकुर्वाणा भवन्त्यपि ॥३४॥

मेंस्र के नरेश और उनकी राजपत्नियां तो आज तक भी जैन-धर्म के अनुवायी होते आ रहे हैं ॥ ३४॥

पन्छवाधिपतेः पुत्री कदाञ्छी मरुवर्मणः । निर्गु-ददेशाधिपतेः परंतूरस्य चाक्रना ॥२४॥ कारयामासतुर्छोकतिरुकाख्यजिनारुपम् ।

यद्वचवस्थार्थमादिष्टं पूनन्लिग्रामनामकम् ॥२६॥ स्थानं श्रीपुरुषाख्येन हाज्ञा स्वस्नीनिदेशतः।

स्यान त्रापुरुवारुवन राज्ञा स्वस्तानद्वयः । भूरन्त्रव्यापिनी यस्मादासीद् धर्मप्रभावना ।।३७॥

पल्छव देश के नरेश की पुत्री और मरुवमां राजा की रानी कदाच्छी तथा निर्मुन्द देश के राजा परंत्र्र की रानी इन दोनों ने लोक तिकक नामका जिनालय बनवाया और अपनी पत्नी की प्रेरणा से उसके खामी पुरुवराज ने पुनल्लि नाम का ग्राम उस चैत्यालय की ज्यासा के लिए अपेण किया। इससे सारे संसार में जैन धर्म की महती प्रभावना हुई ॥ १४-२७॥ जाकियव्ये सचरस-नागार्जुनस्य भामिनी । श्रीशुभचन्द्रसिद्धान्त-देवशिष्या वभृत या ॥३८॥ सचरस नागार्जुन की घर्मपली लाकियव्ये श्री श्रुभचन्द्र सिद्धांत

देव की क्षिप्या हुई और उसने जनपर्म का पालन किया ॥ २८ ॥ निर्मापय्य जिनास्थानं तदर्थं भूमिदायिनी । महिपी नागदेवस्यातिमब्वेऽप्यतिधार्मिका ॥३९॥

नागदेव की महारानी व्यक्तिमञ्जे भी बड़ी धर्मास्मा बी, जिसने कि जिनालय बनवा करके उसके निर्वाह केलिए भूमि प्रदान की बी॥ ३६॥

वीरचामुण्डराजश्च तत्पत्नी तस्य चाम्बिका । श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचिकसेवकर्ता दधः ॥४०॥

बीर चामुण्डराज, उनकी पत्नी और उनकी माता ये तीनों ही श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के सेवक हुए और जैन धर्म का महान् च्छोत किया ॥ ४०॥

> चन्द्रमौलेस्तु या भार्या वीरबल्लालमन्त्रिणः । नामतोऽचलदेवी या बज़व दृढधार्मिका ॥४१॥

राजा वीरबल्लाल के मन्त्री चन्द्रमीलि की श्वचलदेवी नाम की जो भार्याथी, वह भी जैनधर्म का दृढ़ना से पालन करनी थी।।४१॥

या पत्नीकदम्बराज-कीर्त्तिदेवस्य मालला । श्रीपद्मनन्दिसिद्धान्त-देवपादाम्युपासिका ॥४२॥

कदम्बराज कीर्तिदेव की भार्या मालला भी श्रीपद्मनिन्दिसिद्धांत-देव के चरणों की उपासिका थी।। ४२॥ पन्छवराट् काइवेदी महिषी चट्टलाभिधा । जिनसबकृदेवं च साधसेवास तत्परा । ४३॥

पल्ळवराज काडुवेदी की चट्टला नाम की महारानी सदा जैन साधुओं की सेवा में तत्वर रहा कस्ती थी। उसने भी एक जिनमंदिर बनवाया था।। ४३।।

> दोर्बलगंगहेमाण्डि-मान्धातुर्या सधर्मिणी । श्रीपद्भदमहादेवी बभूव जिनधर्मधृक ॥४४॥

भुजवल गंगहेमारिड मान्धाता की सहधर्मिणी श्रीप**हदमहादेवी** भी जिनधर्म को धारण करने वाली हुई है ॥ ४४ ॥

माचिकव्वेऽपि जैनाऽभून्मार्सिगच्यभामिनी । शैवधर्मी पतिः किन्तु सा तु सत्यानुयायिनी ॥४४॥ मारसिंगच्य को भामिनी माचिकव्ये भी मत्य (जैन) धर्म की कडर श्वत्यायिनी थी, यथपि वसका पति शैवधर्मानयाथी था ॥ ४४॥

विष्णुवर्धन भूपस्य शान्तला पहुदेविका । श्रीप्रभाचन्द्रसिद्धान्त-देवशिष्यत्वमागता ।।४६॥ विष्णुवर्धन राजाकी पट्टगनी शान्तलादेवी श्रीप्रभाचन्द्र सिद्धान्त-देव की शिष्या बनी और जैंन भर्म पालती थी ।। ४६॥

हरियव्यरमिः पुत्री शान्तलाया जिनाम्पदम् । कारयामास द्वादस्यां शनाव्दयां विक्रमम्य सा ॥४७॥ भूमिदानं चकारापि तस्य निवांद्वदेतवे । मणिमाणिक्यसम्पक्ष-शिखरं समनोहस्य ॥४८॥ शान्तछारेवी की पुत्री हरियब्बरसी ने विक्रम की बारहरीं शताबदी में एक जिनालय बनवाया, जितका शिक्षर मणि-माणिक्य से सम्पन्न भीर भारि मनोहर था। उसने मन्दिर के निर्वाह के छिए भूमिदान भी किया था। ४५-४८ ।।

विष्णुचन्द्रनरेशस्यायजजाया जयकणिः । नित्यं जिनेन्द्रदेवार्चा कुर्वती समभादियम् ॥४९॥

विष्णुचन्द्र नरेश के बड़े भाई की स्त्री जयकणि जैन धर्म पालती की स्त्रीर नित्य जिनेन्द्रदेव की पजन करती थी।। १६॥

सेनापतिर्गञ्जराजश्चास्य लक्ष्मीमतिः प्रिया । जिनपादाञ्जसेवायामेवासन विसमर्जे तान् ॥४०॥

सेनापित गङ्गराज और उसकी पत्नी अक्सीमती ये दोनों ही जैन धर्म के धारक थे और उन्होंने जिन भगवान के चरण-कमलों की सेवा करते हुए ही अपने प्राणों का विसर्जन किया था।। ४०।।

> चौहानवंशभृत्कीर्चि-पालनाममहीपतेः । देवी महीबलाख्याना वभव जिनधर्मिणी ॥४१॥

पौहानवंशी कीर्त्तिपाल नामक नरेश की महीबला नाम की रानी भी जिनधर्म की धारण करने वाली हुई ॥ ४१॥

> परमारान्वयोत्थस्य धरावंशस्य भामिनी । शृङ्गारदेवी आसीच्च जिनभक्तिसुतत्परा ॥५२॥

परमार वंश में उत्पन्न हुए शजा घर।वंश की आसिनी शृङ्गारदेवी हुई। जो जिनदेव की भक्ति करने में तत्पर रहती थी।। ४२॥ राजवर्गमिहेत्येवं प्लावयन वीरमास्वतः ।

गोमण्डलप्रसारोऽभृद्भुवि तत्त्वं प्रकाशयन् ॥५३॥

इस प्रकार भारतवर्ष के बानेकों राज-वंशों को प्रभावित करता भगवान महावीर रूप धर्म-सूर्य के वचन रूप किरणों का समृद्द संसार में सत्य तरन का प्रकाश करता हुआ सर्व श्रोर फेळा।। ४३॥

भूमिपालेष्ट्रिनामीषु वैश्येषु ब्राह्मसेषु च । शृदकेष्ट्रपि वीरस्य बासनं समवातरन् ॥४४॥

वीर सगवान् का यह जिन-शासन राजाओं के समान बैरवों में, आइगों में और शुद्दों में भी फंछा। (आज भी घोड़ी बहुत संख्या में सभी जाति के छोग इस धर्म के अनुवायी दृष्टिगोचर होते हैं)।।१८८।।

> बीरस्य श्वासनं विश्वहिताय यद्यपीत्यभृत् । किन्त तत्प्रतियत्तारो जातास्तदनुयायिनः ॥४४॥ ।

यरापि वीर भगवान् का वह शासन विश्व मात्र के कल्याण के छिए था, किन्तु जिन छोगों ने उसे धारण किया, वे उसके अनुवासी कहे जाने छगे।। ४४।।

आवार्ध — स्त्राज वीर मतातुवायी श्वरूप संस्थक जैनों को देख कर कोई यह न समफ्रे कि बीर मगवान का उपदेश कुछ जाति विशेष वालों के लिए था, इसलिए जैनों की मंस्या कम है. नहीं, उनक उपदेश तो प्राशिमात्र के हितार्ष था, श्वीर एक छम्बे समय तक जैन धर्मोनुवायियों की सस्था भी करोड़ों पर थी। पर श्वनेक घटना-श्वकों से स्वाज उनकी मंस्या कम है।

> इतरेष्यपि लोकेषु तत्त्रभावस्त्वभृद् श्रु**बस् ।** येऽहम्मन्यास्त्रदोषेण तन्मतं नासुक्तकिरे ॥।४६॥

जिन बन्य कोगों ने अहस्मन्यता दोषवज्ञ वीर भगवान् कै मत का अनुकरण नहीं किया, उन लोगों पर भी वीर-भगवान् द्वारा प्रकृषित अहिंसा-धर्म का प्रभाविष्णच्ट टिंग्टगोचर हो गहा है। (यही कारण है कि हिंसा-प्रधान यक्षादिक करने वाले वैदिक घर्मियों मे भी बाज हिंसा टिंग्टगोचर नहीं होती है और वे लोग भी हिंसा से घृणा करने लगे हैं।)। ४६॥

> यत्र श्राद्धेऽपि गोमांमः ख्यातस्तत्सम्प्रदायिनः । बदेयुर्मातरं घेतुं प्रभावः सन्मतेरयम् ॥५७॥

जित वैदिक सम्प्रदाय वालों के यहां श्राद्ध में भी गोमांस का विधान था, वे लोग आज्राणों को माता कहते हैं कीर उसका वध नहीं करते. यह प्रभाव वीर-शासन का ही हैं॥ ४७॥

भावार्थ - वैदिक धर्म में ऐसा 'विधान् वा - कि 'महोजं वा महोज्ञं वा श्रोत्रियाय प्रकल्पवेन्'' अर्थान् ''श्राद्धे के समय महान् अन्य को अथवा महान् वैल को श्रोतिय ब्राह्मण के लिए सारे और उसका मास उसे खिलावें' - उस समय सबंत्र प्रचलित इस विधान का आज जो अभाव हरियोग्वर होता है, वह बीर भगवान के 'आईसा परमी धर्म: के सिंहनाइ कांब्री प्रमाव है।

> यद्वा सर्वे ऽपि राजानो वीरमार्गानुयायिनः । यतः प्रजाया रक्षायां यतन्ते मततं तके ॥५८॥

ष्मयना संसार के सभी राजा लोग नीर-मार्ग के ष्मनुयायी हैं, क्योंकि ने लोग प्रजा की रक्षा करने में निरन्तर प्रयत्तज्ञील रहते हैं।। ४८।।

> अन्तर्नीत्याऽस्त्रिलं विश्वं वीर्वत्माभिधावति । दयते स्वकुदुम्बादी हिंसकादपि हिंसकः ॥४९॥

क्षान्तरंग नीति से यदि देखा जाय, तो यह समस्त विशव ही वीर सगवान् के द्वारा वतळाये हुए क्षहिसा मागे पर वळ रहा है, क्योंकि हिंसक से भी हिंमक मनुख्य या पशु भी अपने कुटुस्व क्यादि पर दया करता ही है उनकी हिंमा नहीं करता। ४६।।

ततः पुनयों यावत्यां मात्रायाम्रुपढौकते । अहिंसामधिकं तावत स वीरमन्गच्छति ।।६०।।

इसलिए जो जीव जितनी भी मात्रा में ऋहिंसा धर्म को धारण करता है, वह उतनी ही मात्रा में भगवान् महावीर के मार्ग पर चलता है।। ६०।।

अभृत्युनः सन्मतिसम्प्रदायेऽपि तत्त्रभावः सहयोगिताये । यनो मृतश्राद्धमवश्यकर्म हीत्यादि घीरश्राति जैनमर्म ॥६१॥

समय-परिवर्तन के माथ सन्मित बीर भगवान् के सन्प्रदाय बार्डो पर भी अन्य महवर्ती सम्प्रदाय बार्लो का प्रभाव पड़ा कि जैन छोग भी मरे हुए, व्यक्ति का श्राद्ध करना आवश्यक करीव्य मानने छो, तथा उसी प्रकार की अन्य लैकिक कियाओं को करने छो, जो कि जैन प्रमा के समें पर बोट कहैं वाती हैं।। ६१॥

वीरेण यत्त्रोक्तमदृष्टपारमगाधमप्यस्ति किलास्य सारम् । रत्नाकरस्येव निवेदयामि य इष्यते कौस्तुभवत् सुनामी ॥६२॥

बीर भगवान् ने अपने दिख्य प्रवचनों में संसार के हित के जिए जो कुछ कहा, वह वस्तुत: रत्नाकर के समान, अगाध और अपार है। किन्तु उसमें कीसुज मणि के समान ग्रास्थ मुख्य तस्य हैं, जनका (बारांक्र में नियेवन करता हैं। १२।

साम्यमहिंसा स्याद्वादस्तु सर्वज्ञतेयम्रुचमवस्तु । अनुपमतयाऽनुसन्वेयानि पुनरपि चत्वारीत्येतानि ॥६३॥

भगवान् महाबीर के ब्यगाध प्रवचनों में से सान्यवाद, व्यहिसा, स्याद्वाद ब्यौर सर्वज्ञता ये चार ब्यतुषम उत्तम तरत्र हैं। जिज्ञासु जनों को इनका ब्यतुसन्धान करना जाहिए।। ६३।:

भाषार्थ-च्यागे इन्हींचारों तस्वों का कुछ विवेचन किया जायगा।

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्ध्वः स सुषुवे भूरामजेत्याह्नयं वाणीभूषणवर्षानं वृतवरी देवी च यं धीचयम् ! सर्गे ऽनेन कृते विवर्णनमभूत्यर्थं कसंख्यावति प्राप्ता केटिशरूपतोऽध्य जनता वीरोपदेशं सती ॥१५॥

इस प्रकार श्रीमान् सेट चतुर्धु जजी और पृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणी-मूलण, बाल-ब्रह्मचारी पंट भूरामळ वर्तमान मुनि ज्ञान-सागर रिचत इस बीरोट्य काच्य में बीर भगवान् के पसे का देश-देश-प्रमाय क्षीर प्रभाय का बर्णन करने वाळा पन्द्रहवां सगे समात हुआ। १४॥



अथ षोडशः सुर्गः

विश्वस्य रक्षा प्रभवेदितीयद्वीरस्य सच्छासनमद्वितीयम् । समाश्रयन्तीह घरातलेऽखक कोऽपि भ्यादसुलीति तेषु ।।१।।

भगवान् महावीर के शासन की यही सब से बड़ी ऋदितीय विशेषता की कि इस धरातळ पर कोई प्राणी तुःखी न रहे, सब छुंखी हों और सारे संसार की रक्षा हो ॥ १ ॥

आत्मन् वसेस्त्वं वसितुं परेश्यः देयं स्ववन्नान्यहृदत्र तेश्यः । भवेः कदाचित्स्वभवे यदि त्वं प्रवाञ्छसि स्वं सुखसम्पदित्वम् ॥

भगवान् ने कहा—हे आत्मन, यदि तुम यहां मुख से रहना चाहते हो, तो औरों को भी मुख से रहने दो। यदि तुम स्वयं दुसी नहीं होना चाहते हो, तो औरों को भी दुःख मत दो॥ २॥

भावार्यं —तुम स्वयं जैसा बनना चाहते हो; उसी प्रकार का व्यवहार दूसरों के साथ भी करो।

आपन्नमन्यं सम्रदीक्ष्य माम्थास्तुरुणीं वहेः किन्तु निजामिहास्थाम् । स्वेदे बहत्यन्यजनस्य रक्त-प्रमोक्षणे स्वस्य भवे प्रसक्तः ।।३।।

दूसरे को आपित में पड़ा देखकर तुम जुप मत बैठे रहो, किन्तु असके संबंद को दूर करने का शक्ति-भर प्रथल करो। दूसरे का जहां पसीना बह रहा हो, वहां पर तुम अपना ज्लून कहाने को तैयार रहो।। ३।।

बोढार एवं तब धूत्कमेते स्वयं स्वपाणाविष यायिने हे । छत्रं द्यांना शिरसि प्रयासाभित्यं भवन्तः स्वयमेव दासाः ॥४ जब तुम दूसरों की मलाई के लिए सरने को तैयार रहोगे, तब दूसरे लोग भी तुम्हारे थूक को भी ध्यनने हाथ पर मेलने को तैयार रहेंगे। वे तुम्हारे चलते समैंच शिर पर छन-पारण करेंगे और सदा तुम्हारी खाझा को पालन करने के लिए स्वयं ही दास समान प्रयतन-शील रहेंगे॥ ४॥

उच्छालितोऽकाय रजःसमृहः पतेच्छिरस्येव तथाऽयमृहः । कृतं परस्मै फलति स्वयं तम्रिजात्मनीत्येव वदन्ति सन्तः ॥४॥

जैसे सुर्थ के ऊपर फेंकी गई धूछि फेंकने वाले के सिर पर स्वाकर गिरती है, इसी प्रकार दुसरों के लिए किया गया खुरा कार्य स्वय अपने लिए ही जुरा फठ देता है। इसलिए दूसरों के साथ अला ही ज्यवहार करना चाहिए, यही सन्त पुरुषों का कहना है। ॥ ॥

यथा स्वयं वाञ्छति तत्परेभ्यः कुर्याजनः केवलकातरेभ्यः । तदेतदेकं खलु धर्ममूलं परन्तु सर्वे स्विद्धुष्य तुलम् ॥६॥

मनुष्य जैसा व्यवहार स्वयं अपने लिए चाहता है, बेसा ही व्यवहार उसे दूसरे दीन-कायर पुरुषों तक के साथ करना चाहिए। बड़ी एक तस्व धर्म का मूख है और रोण सर्व कथन तो इसी का विस्तार है। १।।

निहन्यते यो हि परस्य हन्ता पातास्तु पूज्यो जगतां समन्तात् † किमक्र ! न ज्ञातमहो त्वयैव हमञ्जनायाङ्गुलिरञ्जितैव ॥७॥

जो दूसरों को मारता है, वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारा जाता है ऋौर जो दूसरों की रक्षा करता है, वह सर्व जगत् में पूज्य होता है। हे वत्स, क्या तुन्हें यह ज्ञात नहीं है कि आंख में काजल लगाने वाली ऋंगुलि पहले स्वयं ही काली बनती है।। ७॥

तथाप्यहो स्वार्थपरः परस्य निक्वन्तनार्थं यतते नरस्य । नानाच्छलाच्छादिततस्त्रवेदी नरो न रौतीति किमात्मखेदी ॥८॥

तथापि आश्चर्य तो इस बात का है कि मतुष्य अपने स्वार्ध के वझ में तत्पर होकर दूसरे मतुष्य के मारते या कट पहुँचाने के लिए निरन्तर प्रथल करता है और नाना प्रकार के छलों से यथाई सत्य को छिपा कर दूसरों को थोखा देना बातव में अपने आपको घोखा देना वातव में अपने आपको घोखा देन हो है। ऐमा मतुष्य करणी के कल मिलने पर क्या नहीं रोवेगा। मा

अजाय सम्भाति द्घत् कृपाणं नाकं ददामीति परिमुवाणः । भवेत्स्ववंरपाय तथैव किन यथार्पयन् मोदकमप्यखिकाः ॥९॥

श्राख्रयें है कि लोग 'क्वर्ग भेज रहे हैं' ऐसा कहते हुए बकरे के गते पर तलवार चलाते हैं। किन्तु इस प्रकार यदि यहा में पशु के मारते पर सचमुच बसे खर्ग मिलता है, तो किर अपने बंहा बाते लोगों को ही क्यों नहीं खर्ग भेजते हैं जैसे कि लाहू बांटते हुए पहले अपने ही क्यों को सहर्ष देते हैं। ६॥

कस्मै भनेत्कः सुख-दुःख कर्ता स्वकर्मणोऽङ्गी परिपाकमर्ता । क्वर्यान्मनः कोमलमात्मनीनं स्वश्रमेखे वीक्ष्य नरोऽन्यदीनम् ।।१०

यदि वास्तव में देखा जाय तो कौन किसके लिए सुख या दु:ख देता है ! प्रत्येक प्राणी अपने अपने किये कमों के परिपाक को भोगता है। जब मनुष्य किसी के दुःख दूर करने के लिए कोमल चित्त करता है, तो उसका वह कोमल भाव उसे सुखदायक होता है और जब दूसरे के लिए कठोर भाव करता है, तो वह उसे ही दुःख-दायक होता है।। १०॥

संरक्षितुं प्राणभृतां महीं सा त्रजत्यतोऽम्बा जगतामहिंसा । हिंसा मिथो भक्षितुमाह तस्मात्सर्वस्य अत्रुत्वसुपैत्यकम्मात् ॥११

श्रद्धिसा सर्वे प्राणियों की ससार में रक्षा करती है, इसिक्य वह माता कहलाती है। हिंसा परस्पर में खाने को श्रद्धती है, श्रीर श्रक्तसान् (श्रकारण) ही सब से शबुता जरम करती है, इसिक्य वह राक्क्यती है श्रमत्यव श्रद्धिसा उपादेव है। ११।।

समन्ततो जीवचितेऽत्र लोके प्रकुर्वतः स्यादगतिः कुतोऽके । ततोऽस्त्वहिंसैयमगेहिधर्मः किलेनि वनत्राकलितं न मर्म ।।१२।।

कुछ छोग कहते हैं कि जब यह छोक सर्वत्र जीवों से व्याप्त है, तब उसमें गमनागमनाहिं धारम्भ करने वाला गृहस्थ पाप से कैसे बच सकता हैं आवरण वह ष्राहिसा गृह से रहित खाजुओं का धर्म भत्ने ही माना जाय, पर वह गृहस्थ का धर्म नहीं हो सकती। ऐसा कहने वालों ने षाहिंसा धर्म के मर्ग को नहीं समझा है।। १२।।

मवेञ्च कुर्याद्वधमत्र मेदः भावे भवान् संयततामखेदः । वृतः कृषीत्रादिषि धीवरः स्यादमं व पापीत्युचिता समस्या ॥१२॥

वस्तु-तस्य यह है कि हिंसा हो, और हिंसा करे, इन दोनों बातों में बाकाश-पाताल जैसा भेद है, इसे बांप खेद रहित होकर के भाव में जानने का प्रयत्न करें। देखों — खेत जोतते संभय जीवचात करने वाले किसान से घर पर बैठा हुआ और जीवचात नहीं करने बाला मच्छीसार धीवर अधिक पापी है और बस्तुतस्व की समस्या सबेबा उचित है। इसका कारण यह है कि किसान का भाव खेत जोतने का है, जीवचात करने का नहीं अत: वह अहिंसक है, और थीवर का प्राव पर बैठे हुए भी मछली मारने का बना रहता है, अत: वह हिंसक है।। १२।।

प्रमादतोऽसुन्यपरोपणं यद्वधो अवत्येष सतामरम्यः । अधोविधानाय तमेकमेव समासतः प्राह जिनेशदेवः ॥१४॥

प्रमाद से जीवों के प्राणों का विनाश करना हिंसा है, जो कि संस्पुरुषों के करने योग्य नहीं है, क्योंकि जीव को अधोगति ले जाने के क्षिप्र वह अफेकी ही पचीत है, जिनेन्द्र वीरदेव ने संक्षेप से धर्म-अधर्म का यही सार कहा है।। १४।।

दौरथ्यं प्रकृमीनुचित्कियत्वं कर्त्तव्यहानिश्च वहोन्द्रियत्वम् । संक्षेपतः पञ्चविधत्वमेति प्रमत्तत्ता यात्मपथाभिरेति ॥१४॥

मन की कुटिलता, कार्य का व्यक्तिमण, व्यतुष्ति कियाकारिया, कत्त्र व्य-हानि ब्येर क्योंजिन्द्रियना (इन्हियों को वहा में नहीं रखना) संक्षेप से प्रमाद के ये पांच भेद हैं, जो कि जीवको खात्म-कल्याण के मार्ग से अष्ट करने वाले हैं। १४ ।

अर्थानमनस्कारमये प्रधानमघं सघं संकल्तिः निदानम् । गैद्यो मवेद्र क्तिरुधेव घन्यः सम्पोषयन् खट्टिकको जघन्यः ॥

जीवका मानसिक अभिपाय ही पाप के संकलन करने या नहीं

करने में निदान अर्थात् प्रधान कारण है। रोगी के भोजन को रोक-कर छंघन करानेवाछ। बेदा धन्य है – पुरुष का वपार्जक है। किन्तु बकरे को खिला-पिछाकर पुष्ट करनेवाछ। खटीक जघन्य है। पाप का वपार्जन करनेवाछ। है।। १६॥

स्तनं पिबन् वा ततुजोऽनकाय स्पृत्रंथ कथिन्महतेऽप्यघाय । कुलाङ्गनाया इति नत्त्रचिन्ता न स्पृर्भवच्चेतिस विञ्च ! किं ताः।।

कुळीन की केस्तन को पीनेबाठा बाठक निर्दोष है। पाप-रहित है। किन्तु उसीके सन का रमग्ने करनेबाठा अन्य कामी पुरुष महा-पाप का उपार्जक है। हे बिझ! क्या आपके चिन्त में यह तास्विक विचार जागत नहीं होता है।। १७।।

स्त्रमात्रामतिक्रम्य कृत्यं च कुर्याचदेव प्रकर्माऽभ्यधुर्धर्मधुर्याः । प्रपाठोऽस्ति मौहचस्य कार्यं तदेवाऽऽनिशं धार्यमाणो विकारायते वा।।

करने थोग्य अपने कर्त्तच्य को भी सीमा का उल्लंघन करके अधिक कार्य करने को धर्म-बुरीण पुरुषों ने प्रकर्म कहा है। देखो— शिष्य का पदना ही गुरुष कर्त्तच्य है, किन्तु यदि वह रात-दिन पदन है और खान-पान शयनादि सर्व कार्य छोड़ दे, तो यह उसी के लिए विकार का बत्यादक हो जाता है। १९ ॥

गृहस्थस्य वृत्तेरभावो बक्कत्यं भवेत्त्यागिनस्तद्विधिर्दु ध्टनृत्यम् । नृषः सन् प्रद्धान्न दुष्टाय दण्डं क्षतिः स्यान्मुनेरेतदेवेम्य मण्डम् ॥

गृहस्य पुरुष के आजीविका का अभाव ही आकृत्य है और साधु की आजीविका करना भी आकृत्य है। राजा होकर यदि दुष्टों को दरह न दे, तो यह उसका ऋकृत्य है और यदि राज्यापराधियों को मुनि दरह देने छगे तो यह उसका ऋकृत्य है ॥ १६ ॥

भावार्थ – सब छोगों को अपने-अपने परोचित ही कार्य करना चाहिए। पद के प्रतिकूछ कार्य करना ही अनुचित क्रिया-कारिता कहछाती है।

न चौर्य पुनस्तस्करायास्त्ववस्तु गवां मारणं वा नृशंसाङ्गिनस्तु । न निर्वाच्यमेतद्यतः सोऽपिमर्त्यः कृतः स्यात्पुनस्तेन सोऽर्थःप्रवर्त्यः॥

यदि कहा जाय कि अपने पदोचित कार्य को करना सनुष्य का करांच्य है, तब तो चीर का चोरी करना और कसाई का गायों का मारना भी उनके पदानुसार करोंच्यासिख होता है, सो ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि चोरी और हिंसा करना तो मनुष्यमात्र का अकरोंच्य कहा गया है, किर उन अकरोंच्यों को करना करोंच्य कैसे माना जा सकता है ? इसलिए मनुष्य को सत्करोंच्य में ही प्रदृत्ति करना वाहिए, असलक्ष्येच्य में नहीं, ऐसा प्रकृत में अभिप्राय लेना करांच्य

पलस्याशनं चानकाङ्गिप्रहारः सनाग् वा पराधिष्ठितस्यापहारः । न कस्यापि कार्यः भवेज्जीवलोके ततस्तत्प्रवृत्तिः पतेत्किकासोऽके ।।

मांस का खाना, निरपराध प्राणियों को मारना, दूसरे की स्वामित्व बाळी वस्तु का अपहरण करना इत्यादि निश्व कार्य संसार में कि की भी प्राणी के छिए करने योग्य नहीं हैं। अत्यव इन दुष्कृत्यों में प्रवृत्ति करनेवाला क्यों न पाप-वार्त में गिरेगा ? अर्थान् अवस्य ही क्से पाप का फळ भोगना पहेगा।। २१।। यतो मातुरादी पयो अक्तवान स न सिंहस्य चाहार एवास्ति मासः विकारः पुनर्दु निमिचप्रभावात्समुत्थो न संस्थाप्यतां सर्वदा वा ॥२२

यदि कहा जाय कि सिंह का तो मांस खाना ही घमें है, सो भी ठीक नहीं, क्योंकि वह भी तो जन्म लेने पर प्रारम्भ में अपनी माता का ही दूध पीता है। इसलिए सिंह का आहार मांस नहीं है, किन्तु उसका विकार है, जो कि खोटे निमत्तों के प्रभाव से अपने मां-वाए आहि की देखा-देखी प्रकट हो जाता है, अतएव वह उसका स्वाभाविक और सर्वदा रहनेवाला धर्म नहीं मानना चाहिए।। २२।।

पत्ते वा दत्ते वाऽस्तु कोऽसीविशेषः द्वये प्राणिनोऽङ्गप्रकारस्य लेशः वदन्त्रित्यनादेयमुच्चारमच् पयोवन्न किंतत्र तत्मम्मवनु ॥२२॥

यदिकहा जाय कि मांस में और झाक-प्य में कौनमी विशेषना है ? क्योंकि दोनों ही प्राणियों के झरीर के ही अग है, तो ऐसा कहने वाले का वचन भी उपादेय नहीं है, क्योंकि गोदर और दूध ये दोनों ही गाय-मैंस आदि से उत्पन्न होने हैं, फिर मनुष्य दूध हो क्यों खाता है और गोबर को क्यों नहीं खाता ? इससे जात होता कि प्राण-जितन वस्तुओं में जो पत्रिय होनी है, वह प्राग्न है, अपविश्व नहीं। अतः शाक-पत्र और दूध प्राग्न है, मांम और गोबर आदि प्राग्न नहीं हैं। २३।।

दलाद्यक्रिना सिद्धमत्रासुकत्वं त्यजेदित्यदः स्थावराङ्गस्य तत्त्वम् । पर्लं जङ्गमस्याङ्गमेतच् पक्तमपि प्राघदं प्रासुकं तत्युनः कः ।।२४।।

शाक-पत्रादि तो अग्नि से पकने पर अप्रासुकता को छोड़ देते हैं अर्थात् वे 'अग्नि से पक जाने पर प्रासुक (निर्जीव) हो जाते हैं। दूसरे वे स्थावर एकेन्ट्रिय जीव का व्यंगहैं, किन्तु ग्रांस तो चळते-कितते जंगब जीवों के प्रारीर का व्यंग है, व्यतएव वह व्यक्ति से पकते पर भी प्राप्तक नहीं होता, प्रश्रुत पाप का कारण ही रहता है, व्यतएव शाक-पत्रादि प्राक्ष है, मांसादि नहीं ॥ २४ ॥

न शाकस्य पाके पलस्येव पूर्तिन च क्लेंद्रभावी जलेमात्तव्रतिः । इति स्पष्टभेदः पुनश्रापि खेदः दुरीहावतो जातुचिकास्ति वेदः ॥२५

और भी देखो — हाक के पकाने पर मांस के समान हुगैन्य नहीं आती तथा शाक पत्रादि मांस के समान जल से सहते भी नहीं हैं, क्योंकि उनकी उरवित जल से हैं। इस प्रकार शाक पत्रादि और मांस इन दोनों में राष्ट्र भेद है, फिर भी यह महान खेद हैं कि मांस खाने के दरागढ़ वाले को इसका कदावित भी विवेक नहीं है। रेस ॥

तदेवेन्द्रियाधीनवृत्तिस्वमस्ति यदज्ञानतोऽतक्यवस्तु प्रशस्तिः । विपत्तिं पतज्ञादिवत्सम्प्रयाति स पश्चात्तपन् सर्ववित्तुन्यजातिः ॥२६

इस प्रकार से सांस और शाक-पत्रादि के भेद को प्रस्यक्ष से देखता और जानता हुआ भी मांस खाना नहीं छोड़ता है, यही उसकी हिन्द्रियाधीन प्रवृत्ति है और उसके वश होकर खड़ान से कुतक करके मांस जेंसी निश्च बसु को उत्तम बताता है। जिस प्रकार पतेंगे आदि जन्तु इन्द्रियों के विषयों के आयीन होकर आग्नि आदि में गिरकर बिनाश को प्राप्त होने हैं, उसी प्रकार सबंबेचा परमास्मा के समान जातिबाला यह सनुष्य भी प्रभात्ताप का पात्र बने, यह महान् दु:ख की बात है। १६।

हिंसायाः सम्रुपेत्य शासनविधि वे चेन्द्रियराहताः । परयास्मिञ्जगति प्रयान्ति विवशा नो कस्य ते दासताम् ।।

यश्राज्ञामधिगम्य पावनमना घीराडहिंसाश्रियः

जित्वाऽक्षाणि समावसेदिह जगज्जेता स आत्मप्रियः ॥२७॥

देखो, इस जगन् में जीव हिसा के शासन-विधान को स्वीकार करके इन्द्रियों के विषयों से पीड़ित रहते हैं, वे परवश होकर किस किस मनुष्य की दासना को श्रद्धीकार नहीं करते ? अर्थान् उन्हें सभी की गुछामी करनी पढ़नी है। किन्तु जो पितन मनवाले बुद्धिमान् मानव अहिंसा भगवती की श्राङ्का को प्राप्त होकर और इन्द्रियों के विषय को जीतकर संसार में रहते हैं, वे जगड़जेता श्रीर सर्वास्प्रिय होते हैं। २७।

स्त्रस्त्रान्तेन्द्रियनिग्रहैकविभवो याद्यभवेच्छीर्यते –

स्तादक् सम्भवतादपि स्वमनसः सम्पत्तये भूपतेः । राज्ञः केवलमात्मनीनविषयादन्यत्र न स्याद रसः

योगीन्द्रस्य समन्ततोऽपि तु पुनर्भेदोऽयमेतादशः॥२८॥

अपने साध्य की सिद्धि के लिए जिस प्रकार एक साधु को अपने मन और इन्द्रियों का निम्मह करना आवश्यक होता है, बैसा ही निम्मह (गना को भी अपनी राज्य-सम्पिष के संस्क्षण करने के लिए भी आवश्यक है। किन्दु होनों की साधना में केवल जह भेद है कि राजा केवल अपने योग्य विषयों के सिवाय रोप अन्य विषयों में सस नहीं लेता है और थोगिराज के सभी विषयों में रस नहीं जाते हैं और थोगिराज के सभी विषयों में रस नहीं जाते हैं और समके सर्व विषयों से उदासीन हो जाते हैं। रहा।

अनएव कियत्याः स राजा भूमेर्भवेत्पतिः । विश्वस्य किन्तु साम्राज्यमधिगच्छति योगिराट् ।।२९॥ अतएव राजा तो कुछ सीमित भूमि का ही स्वामी बनता है, किन्तु योगिराज विश्व भर के साम्राज्य का स्वामी बन जाता है।।२६।।

खड्गेनायसनिर्मितेन न हती वज्रेण वै हन्यते तस्मान्त्रिज्ञजते नराय च विपद्देवेन तं तन्यते । दैंगे किन्तु निहत्य यो विजयते तस्यात्र संहारकः

कः स्यादित्यनुशासनाद्विजयतां वीरेषु वीरः सकः ॥३०॥

जो मनुष्य छोहे से बनी खड़ग से नहीं मारा जा सकता, वह बज से निश्चयतः मारा जाता है। जो बज से भी नहीं मारा जा सकता, वह देव से ब्यवस्य मारा जाता है, किन्तु जो महापुरुष देव को भी मारकर विजय प्राप्त करता है, उसका संहार करने वाछा फिर इस संसार में कीन है ? वह बीरों का बीर महाबीर ही इस संसार में सर्वोत्तम विजेता है, और वह सदा विजयशीछ बना रहे॥ २०॥

श्रीमान् श्रेष्ठि चतुर्ध्व जः म सुबुबे भूरामलेत्याह्वयं वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । प्रोक्ते न च षोक्तोडवोऽयमधुना सर्गः समाप्तिं गतः वीरोपवविद्धिसनस्य कथनप्रायोऽति संशेषतः ॥१६॥

इस प्रकार श्रीमान सेठ चतुर्भु जजी और पृनवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीमूण्ण, बाल-ऋचारी एं० सूरामल वर्तमान सुनि ज्ञानसागर विस्वित वीरोदय में श्री वीर भगवान् द्वारा उपदिष्ट ऋहिंस प्रकार संचेप से वर्णन करने वाला सोलहवां सगी समाग्न दुखा॥ १६॥

श्रंथ सप्तदशः सर्गः

अज्ञोऽपि विज्ञो नृपतिश्व दूतः गजोऽप्यजो वा जगति प्रयुतः । अस्यां धरायां भवतोऽधिकारस्तावान् परस्यापि भवेन्नुसार ॥१॥

हे पुरुषोत्तम, इस भूतल पर जो भी उत्पन्न हुमा है, वह चाहे मूखें ही या विद्वार, राजा हो या दास, गज हो या झज, (वकरा), इस दुष्थी पर तिजना झापका झपिकार है, उतना ही दूसरे का भी ऋषिकार है, ऐसा विचार करना चाहिए॥ ?॥

पूर्विभ्रणे चौरतयाऽतिनिन्धः स एव पश्चाज्जगतोऽभिवन्धः । यो नाम्यवाजुकत्कुलयोषितं स वेश्याधुगासीन्महतां वर्तसः ॥२॥

संसार के स्वरूप का विचार करो, जो विद्युष्य अपने जीवन के पूर्व समय में चोर हासे अति निंध था, वहीं पीछे जगन् का बन्दनीय महापुरुष बन गया। चौर जो सहापुरुषों का शिरोमणि चास्ट्रन सेठ अपनी विचाहिता कुछ स्त्री के सेवन की भी इच्छा नहीं करता था, वहीं पीछे वेश्यासेवी हो गया। कैसी विविचना है। २॥

गुणो न कस्य स्वविधो प्रतीतः सञ्या न कार्यं खलु कर्तरीतः । ततोऽन्यथा व्यर्थमश्रेषमेतद्वस्तुत नस्तुच्छतया सुचेतः ॥३॥

हे सुचेत: (समझदार), यह तुच्छ है और वह महान् है, ऐसा सोचना व्यर्थ है, क्योंकि अपने अपने कार्य में किसका गुण प्रतीत नहीं होता। देखो, कैंची से सुई छोटी है, पर सुई का कार्य कैंची से नहीं हो सकता। इससिए छोटे ऋगैर बड़े की कल्पना करना ज्यर्ब है॥३॥

स्वयुचमं सम्प्रति मन्यमानोऽन्यं न्यकरोतीति विवेकमानो । तवेयमारमभरिता हि रोगं-करी भवेत्रस्य न कोऽपि योगः ॥४॥

हे विवेक-सूर्य ज्ञात्मन्, इस समय तू अपने ज्ञापको उत्तम मानता हुआ दूसरे को तुच्छ समझ कर उसका तिरस्कार करता है, यही तो तेरी सब से बड़ी स्वायंपरता है और यही तेरे उस भव-रोग को उत्यन्न करने वाली है, जिसका कि कोई इलाज नहीं है।। ४।।

भावार्थ — स्वार्धी मनोकृत्ति से ही तो मनुष्य पतित बनता है क्षीर उसे छोड़ देने पर ही मनुष्य का उद्धार होता है, इसलिए हे क्षातमन्, यदि तृ अपना उद्धार वाहता है, तो अपनी स्वार्धपरा-यणता को छोड़ दे।

सम्मानयत्यन्यसतस्तु वर्तिं सैवाधुना मानवतां विभर्ति । स केन दश्योऽस्तु न पश्यतीति परानिदानीं समवायरीतिः ॥५॥

जो दूसरे सजज पुरुष की बात का सन्मान करता है, उसकी छोटी सी भी भली बात को बड़ी समझता है, वही खाज बास्तव में सनुष्यता को बारण करता है। जो कीरों को मुंच्छ समझता है, उनकी बोर देखता भी नहीं है, स्वयं कहंकार में कह रखता है, क्या उसे भी कोई देखता है। नहीं। क्योंकि वह लोगों की दृष्टि से गिर जाता है। खतरब दूसरे का सन्मान करना ही खांस्स-डत्थान का मार्ग है।। सा

मनुष्यता बात्महितानुवृत्तिने केवलं स्वस्य सुखे प्रवृत्तिः । आत्मा यथा स्वस्य तथा परस्य विश्वेकसम्बाद्विविवितस्य ॥६॥ आस्म-हित के अनुकूछ आचरण का नाम ही सनुष्यता है, केवछ अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नहीं है। जेसा आस्ता अपना समझते हो, वैसा ही दूसरे का भी समझना चाहिए। अत विश्व अर के प्राणियों के छिए हितकारक प्रवृत्ति करना ही मनुष्य का धर्म है, औरों के सुख में करटक बनना महान् अवर्म है। ६॥

भावार्ष — तुम जैसा व्यवहार अपने लिए चाहते हो, वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करो।

पापं विमुच्येव भवेत्पुनीतः स्वर्णं च किट्टप्रतिपाति हीतः । पापाद् ष्ट्रणा किन्तु न पापिवर्गान्मतुष्यतैवां प्रभवेक्षिसर्गात् ॥७॥

पाप को छोड़कर ही मनुष्य पित्रज कहला सकता है। (केवल उच कुल में जन्म ते लेने से ही कोई पित्रज नहीं हो जाता।) कीट-कालिमा से विद्युक्त होने पर ही सुवर्ण सम्माननीय होता है, (कीट-कालिमादी युक्त सुवर्ण सम्मान नहीं पाता।) इसलिए पाप से पृणा कराना चाहिए, किन्तु पापियों से नहीं। मनुष्यता स्वभाव से ही यह सन्वेज वेती है।। ७।।

दृद्धानुपेयादनुदृत्त्वचुद्धचाऽनुजान् समं स्वेन वहेत्त्रिशुद्धया । **कमप्युपेयाञ्च कदाचनान्यं मनु**ष्यतामेवमियाद्वदान्यः । ८।।

अतएव बुद्धिमानों को चाहिए कि अपने से बड़े बृद्ध जनों के साब अनुकूल आचरण करें, अपने से छोटों को अपने समान तन-मन-चन से सहायता पहुँचांने, किसी भी मनुष्य को टूसरा न समझें। सभी को अपना कुटुन्व मानकर उनके साथ उत्तम व्यवहार करें। इस प्रकार बदार नुज्य सभी मानवता को प्राप्त करें।। द ॥ प्रोद्धाटयेन्नैव परस्य दोषं स्वय्नितोऽपीह परस्य पोषम् । कुर्वीत मर्त्यत्वमियात्सजोषं गुणं सदैवानुसरेदरोषम् ॥९॥

दूसरे के दोष को कभी भी प्रकट न करे, उसके विषय में भौन भारण करे, अपनी वृत्ति से दूसरे का पालन-पोषण करे, दूसरे के गुणों का ईच्यों-रोपादि से रहित होकर अनुसरण करे और इस प्रकार सबी मनुष्यता को प्राप्त होवे।। है।

नरो न रौतीति विपन्निपाते नोत्सेकमेत्यभ्युद्येऽपि जाते । न्याय्यात्पयो नैवमथावसम्रः कर्त्तव्यमञ्चेत्सततं प्रसम्रः ॥१०॥

मनुष्य को चाहिए कि वह विपत्ति के आने पर हाय हाय न करे, न्यायोचित मार्ग से कभी च्युत न होवे और सदा प्रसन्न रहकर अपना करोड्य पालत करे।।। १०।।

स्वार्थाच्च्युतिः स्वस्य विनाशनाय परार्थतरचेदपसम्प्रदायः । स्वत्वं समालम्ब्य परोपकारान्मनुष्यताऽसौ परमार्थसारा ।।११।।

स्वार्ध से अष्ट होना खपने ही विनाश का कारण है और परार्ध (परोपकार) से च्युत होना यह सम्प्रदाय के विकट है। इसलिए सनुष्य को वाहिए कि अपने स्वार्थ को संभालते हुए दूसरे का उपन कार खबश्य करें। यही परमार्थ के सारमुत मनुष्यता है। ११॥

समाश्रिता मानवताऽस्तु तेन समाश्रिता मानवतास्तु तेन । पूज्येष्वथाऽमानवता जनेन सम्रत्थसामा नवताऽऽष्यनेन ॥१२॥

जिस पुरुष ने मानवता का आश्रय लिया, अर्थात् सत्कार

किया, उसने मानवता का खादर किया । तथा जिसने पूज्य पुरुषों में स्रभिमान-रहित होकर व्यवहार किया उसने वास्तविक मानवता को प्राप्त किया ॥ १२ ॥

भावार्य — पुत्र्य पुरुषों में मान-रहित विनम्न होकर, सर्व साधा-रण जनों में समान माव रखता हुत्रा सत्य-मार्ग को ऋपनाने वाला उत्तम पुरुष ही सदा मानवता के खादकों को प्राप्त होता है।

विषत्रिशेवाऽनुमिता भ्रवीतः सम्पत्तिभावो दिनवत्पुनीतः । सन्द्येव भाषाद् रुचिरा नृता तु द्वयोरुपाचप्रणयप्रमातुः ॥१३॥

संसार में मतुष्य को सम्यति का प्राप्त होना दिन के समान पुनीत (श्रानम्द-जनक) हैं, इसीं प्रकार विपत्ति का खाना भी रात्रि के समान खनुमीत (अवंश्यम्भावी) है। इन दोनों के मध्य में मध्य-रष रूप से उपस्थित एवं शेवस्थान को प्राप्त होने वाले महानुभाव के मनुख्यता सम्व्याकाव के समान रुचिकर (मनोहर) प्रतीत होना चाहिए। 1831

एवं सम्रत्थान-निपात पूर्णे धरातलेऽस्मिन् शतरज्ञतूर्णे । भवेत्कदा कः खलु वाजियोग्यः प्रवक्त मीशो भवतीति नोऽज्ञः।।

इस प्रकार उत्थान श्रीर पतन से परिपूर्ण, ज्ञतरंज के खेळ के समान इस भरातळ पर इम छोगों में से कब कौन मनुष्य बाजी मार जाय, इस बात को कहने के छिए यह श्रक्त प्राणी समर्थ नहीं है ॥१४॥

किमत्र नाज्ञोऽऋति विद्विधानं विज्ञोऽपि विक्षेपमिति प्रथा नः । संग्रोधयेपुर्मदमत्सरादीखना निजीयाम परोऽत्र वादी ।।१४॥ क्या इस संसार में खज्ञानी पुरुष विद्वत्ता को प्राप्त नहीं होता है खोर क्या विद्वान् भी वित्तेष-(पागळ-) पने को प्राप्त नहीं होता है ? (जब संसार की ऐमी दशा है, तब भाग्योदय से प्राप्त विद्वत्त्वा खादि का मनुष्य को खहंकार नहीं करना चाहिए। किन्तु मनुष्य को खपने मद, सस्सर खादि हुभोवों का संशोधन करना चाहिए। महान् पुन्त्य बनने का यही निर्विवाद मार्ग है, खन्य नहीं ॥ १४ ॥

भर्ताऽहमित्येष वृथाऽभिमानस्तेभ्यो विना ते च क्रतोऽथ शानः। जलौकसामाश्रयणं निपानमेभ्यो विनाऽमुख्य च बुद्धता न ॥१६॥

एक राजा या स्वाभी को छक्ष्य में रख कर कि कहते हैं कि हे भाई, जो त्यह व्यक्तिमान करता है कि में इन व्यक्षीतस्य छोगों का मरण-पोषण करने वाला हूँ, इन संवकों का स्वामी हूँ, सो यह तरा व्यक्तिमान वर्ध्य है, क्योंकि उन व्यक्तित जनों या संवकों के विका तेरी यह जान कहां संभव है ? देखों, मछिलयों का आअयदाता सरो-वर है, किन्तु उनके विना सरोवर के जल की हाइता संभव नहीं है, क्योंकि वे मछिलयों ही सरोवर की गन्दगी को खाकर जल को स्वच्छ रखनी हैं॥ १६॥

को नाम जातेश्र कुलस्य गर्वः सर्वः स्वजात्या प्रतिभात्यखर्वः । त्रिप्रोऽपि चेन्मांसभुगस्ति निन्धः सर्-बुत्तभावाद् वृषलोऽपि वन्धः १७

जाति का, या कुळ का गर्व करना कँसा १ सभी मनुष्य व्यपनी जाति में ब्रायने को बड़ा मानते हैं। मांस को खाने वाला शाह्मण जिंता है चौर सदाचारी होने से शह भी बंदा है।। १७॥

भावार्थ — जो लोग उच जाति या कुल में जन्म लेने मात्र से ही अपने को उच मानते हैं, किन्तु काम नीच पुरुषों जैसे करते हैं, उन्हें कभी उच्च नहीं माना जा मकता। इसी प्रकार भाग्यवज्ञ जो शूज़िद के कुछ में भी उराष्ट्र हुया है, किन्तु कार्य उच्च करता है, तो उसे नीच भी नहर कहा जा मकता। करते का मार यह है कि मदावाण से मनुष्य उरुच और श्रमदावरण में मनुष्य नीच कहलाने के योग्य है।

विवाहितो आत्जयाङ्गभाजा सम्माननीयो वसुदेवराजः । नारायणो नाम जगत्प्रसिद्धस्तस्यास्तन्ज्ञः सम ृत्यमिद्धः ॥१८॥

देखो, प्राणियों में सम्मान्त्रीय वसुदेव राजा ने ऋपने भाई उपसेत की लड़की देवकी में विवाह किया और उसके उदर से जगन् प्रसिद्ध और गुण-समृद्ध श्रीकृष्ण नाम के नारायण का जन्म हुआ। । १८ ॥

बेश्यासुता आतृतिवाहितापि भद्राधुना यत्र तयाऽऽर्यताऽऽपि । संसार एषोऽस्ति विगर्हणीयः स्या खासान म बर्हणीयः ॥१९॥

बेरबा नी लड़की अपने समे आई के द्वारा विवाही गई और क्वन्त में बह आर्थिता बनी। यह संसार ऐसा ही निन्दनीय है, जहां पर कि लोगों के परस्पर में बड़े विचित्र सम्बन्ध होने रहते हैं। इसल्बिये संमार से विश्वकि ही सारस्तृत है। १६।

भावार्थ किन ने इस अहोक-द्वारा अध्वारह नाते की कथा की स्रोर संकेत करके संसार के सम्बन्धांपर अपनी ग्लानि प्रकट की है।

आराधनायां यदि कार्त्तिकेयः पित्रा मुतातोऽजनि भृतके यः । म चेढिहाचार्यपदप्रतिष्ठः कोऽधो न हि स्याज्जगदेकनिष्ठः ॥ ।

आराधन। कथाकोश में वर्णित कथा के अनुसार ≯ार्त्तिकंय स्वामी इसी भुतळ पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए श्रीर उन्होंने ही यहां पर आयार्थ पर की प्रतिष्ठा प्राप्त की। यह घटना देखकेर जगत् एकनिष्ठ क्यों नहीं होगा ?॥ २०॥

आलोचनीयः शिवनाम भर्ता व्यासोऽपि वेदस्य समस्टिकर्ता । किमत्र दिक् तेन तन्भुनेति यः कोऽपि जातेरभिमानमेति ॥२१॥

शिव नाम से प्रसिद्ध रुट्न की और वेद के सम्बद्धकर्ती पास्डबों के दादा ज्यास ऋषि की उत्तरित भी विचारणीय है। ऐसी दशा में जो कोई पुरुष जाति के श्वभिमान की प्राप्त होना है, उस मनुष्य के साथ बात करने में क्या तथ्य है?।। २१॥

सर्वोऽपि चेद् ज्ञानगुणप्रशस्ति को वस्तुनोऽनादरभाक् समस्ति । यतोऽतिगः कोऽपि जनोऽनणीयान् पापप्रवृत्तिः खलु गर्हणीया॥२२

यदि सभी प्राणी ज्ञान गुण से संयुक्त हैं, तब वस्तुत: श्वनादर के योग्य कीन रहना है ? श्राथोन कोई भी नहीं। हां, पापों में प्रवृक्ति करना श्ववस्य निन्दनीय है, जो कोई मनुष्य उससे दूर रहता है, वहीं महान कहा जाता है।। २२।।

सत्यानुकूर्लं मतमात्मनीनं कृत्वा समन्ताद् विचरचदीनः । पापादपेनं विद्धीत चित्तं समन्ति शौचाय तदेकवित्तम् ॥२३॥

इसलिंग मनुष्य को नाहिए कि अपने मन (विश्वास) को सर्व प्रकार से सत्य के अनुकूल टढ़ बना कर दीनवान-हिंद हो निसंख दिवरण करता हुआ अपने चित्त को पाप से रहिन करे। बस, यही एक उपाय पवित्र या शुद्ध होने के लिए कहा गया है। २३॥ पराधिकारे त्वयनं यथाऽऽपित्रजाधिकाराच्य्यवनं च पापम् । अमानवं कर्म दुरन्तकुन्तिन् संक्षेपतः शास्त्रविदो वदन्ति ॥२४॥

पाप-चिनाश के लिए भाले के समान है भन्य, शास्त्रकारों ने पाप को संक्षेत्र से तीन प्रकार का कहा है — पहिला पराये ऋषिकार में जाना, आयोन अनधिकार चेच्टा करना, दूसरा ऋपने ऋषिकार से च्युन होगरे तीसरा विश्वासघात आदि ऋमानवीय कार्य करना।। २४॥

वैश्योऽहमित्यायभिमानभावाचिरस्करोत्यन्यमनेकघा वा । धर्मो वदेत केवलिनं हि सर्वं न धर्मवित्सोऽस्ति यतो द्यखर्वः॥२५

भी कुच्च वहा में उत्पन्न हुआ हूं, इस प्रकार के अभिमान से जो दूसरे को नाना प्रकार से तिरस्कार करता है, वह धर्म का स्वरूप नहीं जानता है, क्योंकि जैनधमें तो सभी प्राणियों को केवळझान की शक्ति से सम्पन्न कहता है। इसलिए सनुष्य को चाहिए कि वह गर्व से रहित' धर्म कीर अभिमान से कभी किसी का तिरस्कार न करें। २४।

वंशश्च जातिर्जन स्हय मातुः प्रसङ्गतः केवलमाविभ तयोः क्रिया किं पुनरेकरूपा विचार्यतामत्र विवेकप्रपाः ॥२६॥

पिता के पक्ष को यंश (कुछ) कहते हैं और माता के पक्ष को जाति कहते हैं, इस विषय में सब एक मत हैं। यदि माता और पिता के प्रसंग से ही केवळ जाति और कुछ की ज्यवश्या मानी जाय, तो हे विवेकशाय पुरुषों, इस विषय में विचार करों कि माता-पिना इन दोनों की किया क्या सर्ववा एक रूप रहनी हैं १॥ २६॥ चतुष्पदेषुत खगेष्वगेषु वदब्रहो क्षत्रियतायमेषु । विकल्पनामेव दषचदादिमसौ निराधार वचोऽभिवादी ॥२७॥

आश्चर्य है कि कितने ही लोग मनुष्यों के समान गाय, भैंस भादि चौपायों में, पश्चियों में भौर वृद्धों में भी क्षत्रिय आदि वर्णों की करपना करते हैं, किन्तु ने निराधार चचन बोलने वाले हैं, क्योंकि 'श्वत्रियाः क्षततत्र्वाणान्' अर्थोन् जो दूसरे को आपत्ति से बह क्षत्रिय है, इत्यादि आर्थ वाक्यों का अर्थ उनमें घटित नहीं होता है।। २७॥

रङ्गप्रतिष्डा यदि वर्णभङ्गी शौक्न्येन विप्रत्वमियात् फिरङ्गी । श्रु.द्रत्वतो नातिचरेच्च विष्णुनैकं गृहं चैकरुचेः सहिष्णुर्थ ।२८॥

कुछ लोगों का कहना है कि वर्ण-ज्यवस्था वर्ण अर्थात् रूप-रंग के आधित है, शुक्ल वर्ण वाले बाहण, रक्तवर्ण वाले क्षत्रिय, पीतवर्ण वाले वेश्य और कुण्णवर्ण वाले शुद्ध हैं। प्रत्यकार दंन लोगों कर्श्य करफे कहते हैं कि यदि वर्णज्यवस्था रंग पर प्रतिष्ठित है, तो फिर किरंगी (अंग्रेज) लोगों को बाह्यणपना प्राप्त होगा, क्योंकि वे रवेतवर्ण वाले हैं। तथा काले वर्ण वाले भी कुण्म नारायण शुद्रपते का अरितक्रमण नहीं कर सकेंगे, अर्थात् वे शुद्ध कहे वालेंगे। इसके खाति-रिक्त ऐसा एक भी घर नहीं बचेता। जिसमें अनेक वर्ण के लोग न हों। अर्थात् एक ही मां-वाप की सन्तान गीरी-काली आदि अनेक वर्ण वाली देखी जाती है, तो उन्हें भी आपकी ज्यवस्थानुसार भिक्त-भिक्त वर्ण का मानना पड़ेगा।। पट ॥

दशास्य-निर्मीषणयोश्च किनाप्येकाम्बयोरप्युत चिद्विभिना । न जातु जातेरुदितो विशेष आचार एवास्युदयप्रदेशः ॥२९॥ रेखो—एक माता के उदर से उत्पन्न हुए दशानन (रावया) श्रीर विभीषण में परस्प कितना श्रम्तर वा ? रावण रामज्य का वेरी, कृर और काला था। किन्तु उसी का समा भाई विभीषण राम का किही, ज्ञान कौर गोरा था। एक ही जाति और कुल में जन्म लेने पर भी दोनों में महान अन्तर था। अनएव जाति या कुल को मनुष्य की उन्नति या अवनति में साधक या बाधक बताना भूल है। जाति या कुल विशेष में जन्म लेने मात्र से ही कोई विशेषता कभी भी नहीं कहीं गई है। किन्तु मनुष्य का आवरण ही उसके अभ्युदय का कारण है। २६॥

आसुः प्रष्टुचौ न कदापि तुल्यः पश्चाननेनानुत्रयैकमूल्यः। तथा मनुष्येषु न भाति भेदः मुलेऽथ तुलेन किमस्तु खेदः॥३०

यदि कहा जाय कि मूचक ग्रावीरता की प्रवृत्ति करने पर भी सिंह के साथ कभी भी समानता के मूच्य को नहीं प्राप्त हो सकता वह इसी प्रकार शुद्ध मनुष्य कितना ही उच्च आपना करे, किन्तु वह कभी प्राष्ठणादि उच्चवर्ण वालों की समता नहीं पा सकता, सो यह कहना भी क्यर्थ है, क्योंकि मूचक और सिंह में तो मूच में ही प्राष्ट्र-दिक मेर हैं किन्तु ऐसा प्राष्ट्रनिक मेर शुद्ध और बाह्यण सनुष्य में स्परिकाम करने से क्या लाभ है।। ३०।।

भावार्थ: —जैसा प्राकृतिक जातिभेद चुहे श्रीर सिंह में देखा जाता है बेसा शुद्र श्रीर लाक्षणादि मतुष्यों में नहीं। यही कारण है कि इतिहास श्रीर पुराणों में ऐसे श्रमेक डवाहरण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है हि कच्च कुळ या जाति में जन्म खेने पर भी चक राजा जैसे पतित हुए श्रीर शुद्रक राजा जैसे उत्तम पुरुष सिद्ध हुए हैं। खनेक जाति वाले पहले जो छात्रिय थे, खाज वैश्य और शुद्ध माने जा रहे हैं। इसलिए जातिवाद को सहस्व देना ज्यवे है। उच्च खाच-रण का ही सहस्व है और उसे करने वाला ऊंच और नहीं करने वाले को नीच जाति का मानना चाहिए।

सुतासुजः किञ्च नराशिनोऽपि न जन्म किं क्षात्रकुलेऽथ कोऽपि। मिल्लाङ्गजश्चेत समभूतकृतकः गुरो ऋ णीत्थं विचरेदपिकः ।।३१

इतिहास में ऐसं भी ब्रानेक कथानक दृष्टिगोचर होते हैं जो कि स्वित्रय कुछ में जन्म लेकर भी ब्रापनी पुत्री के साथ विषयसेवन करने श्रीर नमुख्य तक का मांस खाने वाले हुए हैं। इसी प्रकार भीछ जाति में उत्पन्न हुआ गूद पुरुष में गुरुभफ, कृतक श्रीर बाण-विद्या का वेत्रा दृष्टि-गोचर होता है। 13 (।।

प्रयुम्नवृत्ते गदिनं भविनः छुनी च चाण्डाल उबाह किन्न । अण्वादिकद्वादशसद्वतानि उपासकोक्तानि शुभानि तानि ॥३२॥

हे संसारी प्राणी, प्रयुक्तचरित में कहा है कि कुसी ने और चारहाल ने सुनिराज से आवकों के लिए बतलाये गये क्यागुझतादि बारह जतों को धारण किया और उनका भली-मांति पालन कर सदगति प्राप्त की है। ३२।।

मुद्गे पु कङ्कोडुकमीक्षमाणः मणि तु पाषाणकरोष्यकाणः । जातीयतायाः स्मयमित्थमेति दुराग्रदः कोऽपि तमाम्रदेति ॥३३

मूंग के दानों में घोरडू (नहीं सीक्षने वाला) मूंग को खौर पाषाण-कणों में हीरा अगदि मणि को देखने वाला भी चल्लुप्मान् पुरुष जातीयता के इस प्रकार क्षिमिमान को करता है, तो यह उसका कोई दुराबह ही समझना चाहिए ॥ ३३ ॥

यत्राप्यहो लोचनमैमि वंशे तत्रैव तन्मौक्तिकमित्यशंसे । श्रीदेवकी यत्तनुजापिद्ने कंसे भवत्युग्रमहीपस्ने ।।।२४।।

जिस बांस में बंशलोचन उत्पन्न होता है, उसी बांस में भोती भी उत्पन्न होता है। देखो, जिस उन्नसेन महाराज के श्री देखकी जैसी सुशील लड़की पैदा हुई, उसी के कंस जैसा क़्र्य पुत्र भी पैदा हुआ। 188 ॥

जनोऽखिलो जन्मनि शूद्ध एव यतेत विद्वान् गुणसंग्रहे वः। भो सज्जना विञ्जतुगञ्ज एवमज्ञाङ्गजो यन्नवशाज्जदेवः॥३४॥

हे सजानो, देखो—जनम-समय में सबं जन शूद्र ही उरपन्न होते हैं, (क्योंकि इस समय वह उरपन्न होने वाला बालक क्योर उसकी माता दोनों ही अश्वरूप्य रहते हैं, पीछे स्नानादि कराकर नाम-करण क्यादि संस्कार किया जाता है, तब वह शुळ समझा जाता है। विद्वान पुरुष का लड़का भी आज देखा जाता है और आज्ञानी पुरुष का लड़का विद्वान देखा जाता है। इसलिए सनुष्य को चाहिए कि बहु जातीयता का श्वामिमान न करके गुणों के उपार्जन में प्रयस्त करें।। ३४॥

चुद्धिकात्वमगाधत्र देवकी धीवरीचरे । पामरो स्रुनितां जन्मन्यौदार्यः वीक्ष्यतां च रे ॥३६॥

श्रीकृष्ण की माता देवकी ने अपने पूर्व जन्म में धीवरी के भव

में चुल्लिका के ब्रत घारण किये ये और पद्मपुराण में वर्णित अफिन भूति बायुभूति की पूर्व भव की कवा में एक दीन पामर किसान ने मी मुनि दीक्षा महण की थी। हे भाई, जैनथमें की इस उदारता को देखों। ३६॥

विमलाङ्गजः सुदृष्टिचरोऽपि व्यभिचारिण्या जनुर्घरोऽपि । पश्यतोहरोऽपि स्निनामाप जातेरत्र न जात्वपि शापः ।।३७॥

सुदृष्टि सुनार का जीव अपनी न्यभिचारिणी स्त्री विमला के ही उदर से उत्पन्न हुसा, पीछे सुनि बनकर मोक्ष गया । उसके मोक्ष में जाने के लिए जानि का शाप कारण नहीं बना ॥ ३७॥

भावार्थ - आराधना कथाकोश में एक कथा है कि एक सुदृष्टि नाम का सुनार था। उसके कोई लड़का न था, उसलिए किसी अन्य जाति के लड़के को उसने काम मिस्राने के लिए अपने पास्त्र लिया। कुछ समयवाद सुनार की स्त्री उस लड़के के साथ कुकमें करने लगी और अपने पति को अपने पाप में बाधक देखकर उसने उस लड़के से उसे मरवादिया। वह सुनार मर कर अपनी इसी व्यक्तियां रिणी क्री के गर्भे से उदलब हुआ और अन्त में सुनि बन कर मोझ गया। इस कथानक से तो जानीयता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। कथा मन्यों में इस प्रकार के और भी कितने ही उदाहरण देखने में आतं हैं।

नर्तक्यां मुनिरुत्पात्र सुतं कुम्मकारिणीतः पुनरतु तम् । राजसतायाम्रत्पात्र ततः ग्रुद्धिमेत्य तैः सह म्रुक्तिमितः ॥३८॥

हरिषेणकथाकोश में राज मुनि की कथा है, तदनुसार उन राजमुनि ने पहिले एक नर्तकी के साथ व्यभिचार किया श्रीर उससे

१ देखो--- बृहत्कथा कोष कथा दू १५३। पृष्ठ ३४६।

एक पुत्र उत्पन्न हुन्या। पुतः एक कुम्भार की पुत्री के साथ व्यभिनार किया जौर उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुन्या। पुतः एक राजपुत्री से व्यभिनार किया और उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुन्या। पीछे वह कत्त नीनों ही पुत्रों के साथ प्रायक्षित लेकर मुनि वन गया और ज्यन्त में वे चारों ही तपश्चरण करके मोक्ष गये'। ३६॥

हरिषेणरचितवृहदारूयाने यमपाशं चाण्डालं जाने । राज्ञाऽर्थराजदानपूर्वकं दत्वाऽऽत्मसतां पूजितं तकम् ॥३९॥

उसी हरियेण-चित बृहत्कथाकोश में एक और कथानक है कि स्निहिंग प्रमें को पालन करने के उपलक्ष्य में यमपाश चाय्डाल को राजा ने अपने आधे राज्य के दान-पूर्वक अपनी ळड्की उसे विवाह ही और उसकी पजा की 1 1 दें।

धर्मेऽथात्मविकासे नैकस्यैवास्ति नियतमधिकारः । योऽतुष्ठातं यतते सम्माल्यतमस्त स उदारः ॥४०॥

सबं कथन का सार यह है कि धर्म-पारण करने में, या आसन-विकास करने में किसी एक व्यक्ति था जानि का अधिकार नहीं है। जो नोई धर्म के अनुष्ठान के लिए यस्त करना है, वह उदार मनुख्य संसार में सबका आपरणीय बन जाता है।। ४०।।

तुल्यावस्था न सर्वेषां किन्तु मर्वेऽपि भागिनः । सन्ति तम्या अवस्थायाः सेवामो यां वयं भ्रवि ॥४१॥

यशिप वर्तमान में सर्व जीवों की अवस्था एक सी समान नहीं है—हमारी अवस्था कुछ और है, दूसरे की कुछ और । किन्तु आज

१ देखो — बृहत्कया कोष कथाक ९८ । पृष्ठ २३८ । २ देखो — बृहत्कथा कोष कथाक ७४ । पृष्ठ १७८ ।

हम संसार में जिस अवस्था को घारण कर रहे हैं, उस अवस्था को भविष्य में दूसरे लोग भी घारण कर सकते हैं और जिस अवस्था को आज दूसरे लोग प्राप्त हैं, उसे कल हम भी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि कमें के उत्थ से जीव की दशा कभी एक सी नहीं रह पाती, हमेशा परिवर्णन होना रहता है, इसलिए समुख्य को अपनी वर्तमान उन्ह जाति या कुलादि का कभी गर्ब नहीं करना चाहिए॥ ४१॥

अहो जरासन्धकरोत्तरैः शरैर्ष्वरारिरासीत्स्वयमक्षतो वरैः। जरत्कुमारस्य च कीलकेनवा मृतः किमित्यत्र वलस्य संस्तवाः॥४२

जिस प्रकार जाति का श्रीभमान करना न्यवं है, उसी प्रकार बळ का गव करना भी न्यवं है। देखो—जगसन्ध के हावों से चळाये गये उन सहावाणों से श्रीकृष्ण स्वयं श्राह्मत हारोर रहे, उनके हारीर का बाळ भी बांका नहीं हो सका। वेह श्रीकृष्ण जरस्कुसार के एक सावारण से भी बाण से सरण को प्राप्त हो गये। अतएव बळ का गवं करना क्या महत्त्व रस्ता है। १२।।

वर्हस्वाय न शक्तोऽभृत्तपस्यन्नपि दोर्बलिः। चक्रिणा क्षण एवाऽऽप्तं किन्तु वाच्यमतः परम् ॥४३॥

बाहुबळी दीर्घकाळ तक तपश्चरण करते हुए जिस आहुंन्त पद को पाने में शीव समये नहीं हो सके, उसी आहुंन्त पद को भरत चक्री ने क्षण भर में ही शाप्त कर खिया। इससे आधिक और क्या कहा जाय ? तपस्या का मद करना भी ठवर्ष है। ४३।।

नो चेत्परोपकाराय सम्रुप्तं गुप्तमेव तु । धनं च निधनं भृत्वाऽऽपदे सद्भिर्निवेद्यते ॥४४॥ पूर्व पुरुषोदय से प्राप्त घन यदि परोपकार में नहीं छगाया गवा और उसे भूमि में गाइकर अत्यन्त गुप्त भी रखा गया, तो एक दिन वह घन तो नष्ट होगा ही, साथ में अपने स्वामी को भी आपित के छिए होगा और उसके प्राणों का भी विनाश करेगा, ऐसा सभी सन्त जन कहते हैं। और आज छोक में भी हम यही देख रहे हैं। अत्यन्त धन कहते हैं।

इत्येवं प्रतिषद्ध यः स्बहृद्यादीम्यामदादीन् हरन् हर्षामर्थानिमित्तयोः सममतिर्निङ न्द्वभावं चरन् । स्वात्मानं जयतीत्यहो जिन् हथन्नाम्ना समाख्यायते तत्कर्राच्यविधिर्हि जैन इति वाक धर्मः प्रसारे भितेः ॥४४॥

इस प्रकार जाति, कुळ चौर धनादिक को निःसार समझ कर जो मनुष्य अपने हृदय से ईप्यो, अहंकार आदि को दूर कर चौर हर्ष या क्रोध के निमानों में समान बुद्धि रहकर निहंद्ध भाव से विचरता हुआ अपनी आत्मा को जीतता है, वह संसार में 'जिन' इस नाम से कहा जाता है। उम जिनके द्वारा प्रतिपादिन करोज्य-विधान को ही 'जैनधमें' इस नाम से कहते हैं।। प्रश्न।

पिता पुत्रश्चायं भवति गृहिणः किन्तु न यते— स्वथैवायं विद्रो वणिगिति च बुद्धिं स लभते। य आसीक्षीतिकोऽभ्युचितपरिवाराय मतिमान्। प्रसो गैतिकः स्यानु विकलविकन्पप्रगतिमान्।।४६।।

यह पिता है ऋौर यह पुत्र है, इस प्रकार का न्यवहार गृहस्थ का है, साधु का नहीं। इसी प्रकार यह ब्राह्मण है और यह वैश्य है, इन प्रकार की मेर-बुद्धि को भी स्वीकृत परिवार के ब्यवहार के लिए वही नीनिज बुद्धिमान गृहस्य करना है। किन्तु जो घर-बार छोड़कर स्थान मार्ग को अंगीकार कर रहा है, ऐमा जिन प्रसु की रीति का जानने वाल साधु इन मब विकल्प-जालों से दूर रहता हुआ। सम-भाव को घारण करता है॥ ४६॥

श्रीमान् श्रेष्टिवतुर्ध्वः स सुषुवे अरामलेत्याद्वयं वाणीभ्रणवर्णिनं छृतवरी देवी च यं घीचयम् । तेनास्मिन् रचिते मतीन्दुपमिते सर्गे समावर्णितं सर्वेद्वेन दयावता भगवता यत्साम्यमादेशितम् ॥४७॥

इस प्रकार श्रीवान सेठ चतुर्भुज श्रीर घृतवरी दंवी से उत्पन्न हुए, वाणीभूषण, बालब्ब्राचारी पं० भूरामल वर्तमान सुनि झानसागर द्वारा विराचित इस चीरोवय काव्य से सर्वेझ भगवान के द्वारा उप-दिघट साम्यभाव का प्रतिपादन करने वाला यह सन्गहवां सगै समाग्न हुझा। १७॥

अथ अध्यादशः सर्गः

हे नाथ केताथ कृतार्थिनस्तु जना इति प्रार्थित आह वस्तु । सन्द्रुयते स्वस्य गुणक्रमेण कालस्य च प्रोब्लिस्तितअमेण ॥१॥

हेनाथ, संक्लोश से भरे हुए ये संसारी प्राणी किस उपाय से इटार्थ हो सही हैं इपयोन् सक्लोश से ऋटकर सुखी कैसे बन सकते हैं १ गौतम स्वामी के ऐसा पूछते पर बीर सगवान, ने कहा—प्रत्येक बस्तु खपने खपने गुण और पर्यायों के द्वारा सहज ही स्वयं परिण-मनझील है और बाह्य कारण काल की सहायना से यह परिवर्तन होता रहता है।। १।।

न कोऽपि लोके बलवान विभाति समस्ति चैका समयस्य जातिः। यतः सहायाद्भवताद्भृतः परो न कश्चिद्गवि कार्यदृतः।।२॥

यवार्थ में इस संमार का कोई कक्षा वा नियन्ता ईश्वर नहीं है। एक मात्र समय (काल) की ही ऐसी जाति है, कि जिसकी सहा-बंता से प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण नवीन नवीन पर्याय जनम होती रहती है और पूर्व पर्याय विनष्ट होती रहती है इसके सिवाय सम में और कोई कार्यहत क्यांता कार्य कराने वाला नहीं है।। २॥

रथाङ्गिनं बाहुबिलः स एकः जिगाय पश्चाचपमां श्रिये कः । तस्यैव साहाय्यमगात्स किन्तु क्षयोन लेभे महतां महीन्तु ॥३॥

श्वकेले बाहुबळी ने भरत चक्रवर्ती को जीन लिया। पश्चान् बह् तपस्त्री बन गये। योर तपस्या करने पर भी जब केवळ ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। तब बही भरत चक्रवर्ती बाहुबळी की सदायान को प्राप्त हुए। किन्तु उन्होंने स्थये क्षण मात्र में महापुरुयों की भूमि आहंत्य पद्वी को प्राप्त कर लिया। यह सब समय का ती प्रभाव है।। २।

मृत्युं गतो हन्त जरत्कुमारैकवाणतो यो हि पुरा प्रहारैः । नातों जरासन्धमहीरवरस्य किन्नाम मृल्यं बलविकमस्य ।श।।

जो श्रीकृष्ण जरासन्ध त्रिखरुडेश्वर के महान प्रहारों से भी

परास्त नहीं हुर, वे जग्कुमार के एक बाण से ही मृत्युको प्राप्त हो गये। यहांपर बल-विकस वाक्या मृल्य रहा⁹ कुछ भी नहीं।यह सब समय की ही बलिहारी है।।४।।

आत्मा भवत्यात्मविचारकेन्द्रः कर्तुः मनाङ् नान्यविधि किलेन्द्रः । कालप्रभावर्षय परिस्तवस्तु यदन्यतोऽन्यत्प्रतिमाति वस्तु ॥४॥

यह खारमा खपने विचारों का केन्द्र बना हुआ है। रात-दिन नाना प्रकार के विचार किया करना है कि खब यह करूंगा, खब बह करूंगा। किन्तु पर की कुछ भी खम्यथा विधि करने के लिए यह समर्थ नहीं है। यह तो काल के प्रभाव की बात है कि वस्तु कुछ से कछ और प्रतिमासित होने लगती है। ४।।

इत्येकदेटक् समयो बभूव यतो जना अत्र सुपर्वभूवत् । निरामया वीतभयाः समान-भावेन मेजनिजजन्मतानम् ॥६॥

इस प्रकार काल-चक्र के परिवर्तन से यहां पर एक बार ऐसा समय उपस्थित हुच्चा जब कि यहां के मर्च लोग स्वर्गलोक के समान तिरामय (नीरोग) निर्भय खीर समान रूप से ऋपने जीवन के ऋगतन्त्र को भोगते थे ॥ ६ ॥

दाम्पत्यमेकं कुलमाश्रितानां पृथ्वीसुतैरर्पितसंविधानाः । सदा निरायासभवत्तयात्रास्त्रमादमीषां खलु जन्मयात्रा।।७॥

उस समय बालक और बालिका युगल ही उत्पन्न होते थे खीर य परस्पर सी-पुरुष वन रह दास्पर जीवन ज्यतीत करते थे। कल्पपृक्षों से उनको जीवन-पुनि प्राप्त होती थी। उनकी जीवन-पात्रा सदा मानन्द विना किसी परिश्रम या कष्ट के सम्पन्न होती थी।।णी स्वर्गप्रयाणक्षण एव पुत्र-पुत्र्यो सम्रत्याय तकावमुत्र । सञ्जग्मतुर्दम्यतितामिहाऽऽरादेतौ पुन सम्बजतोऽभ्युदाराम् ॥८॥

उस समय के स्त्री-पुस्त श्वर्ग जाने के समय ही पुत्र और पुत्री को उत्पन्न करके परलोक चले जाते थे और थे पुत्र पुत्री दोनों बड़े होने पर पति-पत्नी बनकर उदार भोगों को भोगते रहते थे॥ मा

चतुर्गु णस्तत्र तदाग्रसार एवं द्वितीयस्त्रिगुणप्रकारः । सत्याख्योः स्त्री-धवयोरिवेदं युगं समाप्तिं समगादसेद .

उक्त प्रकार से इस बावसार्थिणों काल के ब्यादि में गुगल जन्म लेने वाले जीवों का चार कोझ-कोझे सागरोपस का प्रथम काल ब्योर तीन कोझ-कोझी सागरोपस का दूसरा काल था, जो कि सत्य गुग के नाम से कहा जाना है। इस समय में उत्पन्न होने वाले सी ब्योर पुरुष इंप्यो-देश ब्यादि से रहित मदा प्रसन्न चिक्त रहते ये ब्योर कल्पवृक्षों से प्रदक्त भोगोपभोगों को खानन्द से भोगते थे। समय के परिवर्तन के साथ यह वंग समाग्र हुआ।। ६॥

त्रेता पुनः काल उपाजगाम यस्मिन् मनः संकुचितं वदामः । निवासिनामाप शनैस्ततस्तु सङ्कोचधुर्वीतनयाख्यवस्तु ।।१०।।

पुनः त्रेतायुग नाम का काल आया, अर्थान् तीमरा काल प्रारंभ हुआ, जिसमें यहां के रहने वाले लंगों का मन धीरे-धीरे संकुचित होने लगा। इसके फलस्करण पृथ्वी के पुत्र कल्यवृक्षों ने भी फल देने में संकोच करना प्रारम्भ कर दिया।। १०।।

ईष्पामदस्वार्थपदस्य लेशमगादिदानीं जनसभिवेशः । नियन्त्रितुं तान् मनवो बग्रस्ते घरातलेऽस्मिन् समनाप्त दुस्थे ।।११ जब कल्पनुजों से फळादिक की प्राप्ति कम होने छगी, तब यहां के त्रिवासी जतों में भी ईंप्यों, मह, स्वार्षपरायणना ब्रांदि दोष जागृत होने छो, तब उक्तों प्रेयन्त्रण करने के छिए दुरबस्था को प्राप्त इस प्रशातक पर कम से चौदह मनु उत्पन्न हुए, जिन्हें कि कुळकर भी कहा जाता है।। ११।

तेष्वन्तिमो नाभिरमुष्य देवी प्राम्हत पुत्रं जनतेकसेवी। बभुव यस्तेन तदस्य नाम न्यगादि वृद्धेन्द्रः यभोऽभिरामः ॥१२॥

उन सनुकों में क्रान्तिस मनु नाभिराज हुए। इनकी स्त्री सर-देवी ने एक महान् पुत्र को जन्म दिया, जो कि जनता की क्राहितीय सेवा करने वाला हुआ और जिमे पुराण-पुरुषों ने 'ऋषभ' इस सुन्दर नाम से पुकार।। १२॥

वीक्ष्येदशीमङ्गभृतामवस्थां तेषां महात्मा कृतवान् व्यवस्थाम् । विभज्य तान् क्षत्रिय-वैश्य-ग्रु.द्र-मेदेन मेघा-सरितां सम्रुद्रः ॥१२॥

उस समय के लोगों की ऐसी पारस्परिक कलह-पूर्ण दुखित दीन-दुशा को देखकर चुदिकपी सरिताओं के समुद्र उस महास्मा ऋपभ ने उन्हें चुत्रिय, बैरव और शुद्र इस तीन जमों में विभक्त कर उनके जीवन-निर्वाह की समित्र व्यवस्था ती !! ११॥

यस्पानुकम्पा हृदि तृदियाय स शिल्पकल्पं वृषलोत्सवाय । निगद्य विड्म्यः कृषिकर्म चायमिहार्थशास नृपसंस्तवाय ॥ १४॥

लोगों के दुःख देखकर उन ऋषभदेव के हृदय में व्यनुकन्पा प्रकट हुई जिससे द्रवित होकर उन्होंने सेवा-परायण शृद्ध लोगों को नाना प्रकार की शिल्प कछाएं सिलाई, वैस्थों को पशु पाछना, स्वेती करना सिलाया तथा क्यांशास्त्र की शिक्षा देकर प्रजा के अरण-पोषण का कार्य सेंपा। स्वीर क्षत्रियों को नीति शास्त्र की शिक्षा देकर वन्हें प्रजा के संस्क्षण का आर सेंपा। १४॥

लोकोपकारीणि बहुनि कृत्वा शास्त्राणि कष्टं जगतोऽथ हत्वा। योगस्य च क्षेमविधेः प्रमाता विचारमात्रात्समभूद्विघाता॥१५॥

उन ऋषभदेव ने समय के विचार से छोकोपकारी अनेक शाओं की रचना करके जगन के कब्दों को दूर किया, उन्हें योग (आवश्यक बस्तुओं को जुड़ाना) और क्षेम (प्राप्त वस्तुओं का संरक्षण करना) सिलाया। इस प्रकार प्रजा की सर्व प्रकार जीविका और और सुरक्षा विधि के विधान करने से वे ऋषभदेव जगन के विधाना, सस्द्रा बा क्षक्रा कहलाये। १५॥

यथा सुर्खं स्पादिह लोकपात्रा प्रादेशि सर्वं विधिना विधात्रा । प्रयत्नवानचरलोकहेत-प्रव्यक्तये मस्वहितैकसेतः । १६॥

पुनः प्रवत्राज स लोकघाता भान्तेरबाह्ये विषयेऽनुमाता । गतानगत्या कतिचित्त्रयाताः परेऽपि ये वस्तुतयाऽनुदानाः ॥१७॥

इस लोक की जीवन-यात्रा सब लोगों की सुख्यूबंक हो, इसके लिए प्राणि-मात्र के हितेषी उन आदि विधाता ऋपसदेव ने सभी बीग्य उपायों का विधिय्वुंक उपरेश दिया। पुनः लोगों को परलोक के उत्तम बनाने के साधनों को प्रकट करने के लिए प्रयत्नहील एवं स्मान्तिरक झानित के अनुसम्बान करने वाले उस लोक-विधाता औ ऋपसदेक सानित के अनुसम्बान करने वाले उस लोक-विधाता औ ऋपसदेक ने प्रकृष्या को अगीकार किया, अर्थान् सबैराज्यपाट आदि छोड़कर साबु बन गये। कितने ही खन्य छोग भी चनकी देखा-देखी दनके गतानुगतिक बनकर चले; खर्बात् साबु बन गये, किन्तु वे छोगे साबु बनने के वास्तविक रहस्य से खपरिचित ये॥ १६-१७॥

समस्तविये किविभृतिपाताप्यतीन्द्रियज्ञानगुणैकघाता । अलौकिकी वृत्तिसुपाश्रितोऽपि न सम्भवंन्लोकहितैकलोपी ॥१८॥

सर्व विद्याओं के एक मात्र विभूति के धारक, आतीन्द्रिय झान गुण के ब्राहितीय स्वामी और ब्रालीकिक वृत्ति के ब्राचरण करने बाले वन म्ह्यभरेंच ने सर्व लोक के उपकारक अनेक महान् कार्य किये। ऐसा एक भी कार्य नहीं किया, जो कि लोक-हित का लोग करने बाला हो।। १८।।

ज्ञुधादिकानां सहनेष्वशक्तात् कर्त्तव्यमृढानम्रुकस्य भक्तात् । त्यक्त्वाऽयनं स्वैश्तया प्रयातात् सम्बोधयामास पुनर्विधाता ॥१९॥

भगवान् ऋषभदेव के साथ जो लोग प्रवृजित हुए थे, वे लोंग भूक-प्यास खादि के सहन करने में अनमर्थ होकर कर्तक्य-विभूद हो गये, सायु-मार्ग को लोंद कर स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने लोगे खोर जिस किमी के भक्त हो गये, अथवा भव्याभस्य का विचार न करके जिस किमी भी वस्तु को खाने लगे। उन लोगों की ऐसी विपरीत दशा को देखकर धर्म के विधाता भगवान् ऋषभदेव ने पुन: सम्बो-धित किया और उन्हें धर्म के मार्ग पर लगाया॥ १६॥

हे साधवस्तावदबाधवस्तु-सिद्ध्ये प्रयत्नो भवतां समस्तु । द्वैष्यं पुनर्वस्तुनि सत्त्वया तु जाडयं विदाहयत्वमपि प्रभातु ॥२०॥ ऋपअरेव ने जनसे कहा — हे साधुन्नो, न्याप छोग पहले निर्दोष बस्तु-नक्षर समझने के लिए प्रयत्न करें। बत्ता रूप से जो एक तक्ष्य है वह जह श्रीर चेतन के भेद से दो वस्तु रूप है, इस बात को ज्ञाप छोग हुद्यंगत करें।। २०।।

तयोस्तु सम्मिश्रणमस्ति यत्र कलङ्कहेमोच्चययोर्विचित्रम् । हेमारमनीवेदमनादिसिद्धं संसारमाख्याति धिया समिद्धः ॥२१॥

जिस प्रकार मुवर्ण-पाषाण में मुवर्ण और कीट-कालिमादि सम्मिश्रण अनादि-सिख है, कभी किसी ने उन दोनों को मिलाया नहीं है, किन्तु अनादि से दोनों स्वयं ही मिले हुए वले आ रहे हैं। इसी श्रकार जब पुद्राल और चेतन जीव का विचित्र सम्बन्ध भी अनादि का आ रहा है और इसे ही बुद्धि से सम्पन्न लोग संसार कहते हैं॥ २१॥

भावार्थ – जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से ही संसार की यह विचित्रता और विविधता दृष्टिगोचर हो रही है इसे समझने का प्रत्येक बढ़िसान को प्रयत्न करना चाहिए।

सिद्धिस्तु विश्लेषणमेतयोः स्यात् सा साम्प्रतं ध्यातिपदैक्षपोध्या । स्वाध्यायमेतस्य भवेदथाधो यज्जीवनं नाम समस्ति साधोः ॥२२॥

इत परस्रर मिले हुए जीव और पुद्गाल के विश्लेषण का—िसझ-सिझ कर लेने का—नाम ही सिद्धि या मुक्ति है। यह सिद्धि एक मात्र प्यान (आस्म-सक्स चिन्तन) के द्वारा ही सिद्ध को जा सकते हैं। (अत्यक्त साबु को सदा आस्म-प्यान करना चाहिए।) जब प्यान में चित्त न लो, तब स्वाप्याय करना चाहिए। वही साबु का सन्- जीवन है। (इस स्वाध्याय और ध्यान के अतिरिक्त सर्व कार्य हेव हैं, संसार-वृद्धि के कारण हैं)॥ २२॥

सिद्धिः प्रिया यस्य गुणप्रमातुरुपक्रिया केवलमाविभातु । निरीहचित्त्वाक्षजयोऽथवा तु प्राणस्य चायाम उदर्कपातुः ॥२३॥

जिस गुणी पुरुष को सिद्धि प्राप्त करना अभीष्ट हो, उसे चाहिए कि वह सांसारिक वस्तुओं को चाह छोड़ कर अपने चित्त को निरीह (निस्दृह) बनावे, अपनी इन्द्रियों को जीते और प्राणायाम करे, तभी उसका भविष्य सुन्दर बन सकता है। ये ही कार्य सिद्धि प्राप्त करने के लिए एक मात्र उपकारी हैं।। २३।।

सरीरहानिर्भवतीति भूयात्साघोर्न चैतद्विषयास्त्यस्या। षुनर्न मंयोगमतोऽप्युपेयादेषामृतोक्तिः स्फुटमस्य पेया ॥२४॥

कात्म-साधना करते हुए यदि शरीर की हानि होनी है, तो भले ही हो जाय, किन्तु साधु के शरीर-हानि होते हुए भी द्वेष, खेद या असूया भाव नहीं प्रकट होना चाहिए। साधु का तो आप्म-साधना करते हुए यही भाव रहना चाहिए कि इस जह शरीर का मेरे पुनः संयोग न होवे। यही अपृतोक्ति (अपर बनाने वाले बचन) साधु को निरन्तर पान करते रहना चाहिए॥ २४॥

लुप्तं समन्वेषयितुं प्रदावदस्मै स्नुनेर्नीतिरघीतिनावः । जिम्बर्निजोदेशसमर्थनायाऽनुहिष्टरूपेण समर्पिता या ॥२५॥

चिर काल से वितुप्त या मुक्ति आत्म-धन का अन्वेषण करने

के छिए साधु खपने शरीर को ओजन देता है। ओजन-प्राप्ति के छिए वह अपने उद्देश्य का समर्बन करने वाली खनुहिष्ट एवं अफि-पूर्वक दाता के द्वारा समर्पित भिक्षा को खंगीकार करता है॥ २४॥

भावार्थ-जैसे कोई धनी पुरुष अपनी खोई हुई वस्तु को द्वंदने के लिए रखे हुए नौकर को बेनन या मजदर को मजदरी देता है. इसी प्रकार साधु भी अपने अनादिकाल से विस्पृत या कर्म रूप चोरों से अपहर आला-धन को ढंढने या प्राप्त करने के लिये शरीर-रूप नौकर को भिक्षा रूपी वेतन देकर सदा उसके द्वारा अपने अभीष्ट साधन में लगा रहता है। साध शरीर की स्विति के लिए को भिक्षा लेते हैं वह उनके निमित्त न बनाई गई हो, निद्रिष हो, निर्विकार और सास्विक हो, उसे ही अल्प मात्रा में गृहस्थ के द्वारा अक्ति-पर्वक एक वार दिये जाने पर दिन में एक वार ही ब्रहण करते हैं। यदि भोजन करते हुए किसी प्रकार का दोष उसमें दिखा या कान्तराय आ जावे, तो वे उसका भी त्याग कर उस दिन फिर दबारा आहार नहीं लेते हैं। पानी भी वे भोजन के समय ही पीते हैं, उसके पञ्चातुनही, ऋर्यात्भोजन व जल-पान एक वार एक साथ ही लेने हैं। रात्रि में तो वे गमन, संभाषण तक के त्यागी होते हैं, तो आहार की तो कथा ही दूर है। इस अलोक के द्वारा एषणा समिति का प्रति-पादन किया गया है, जिसका कि पालन साधु का परम कर्त्तव्य है।

स्योंदये सम्बिचरेत् पुरोदृक् शकुन्तवन्नैकतलोपभोक्ता । हितं यथा स्यादितरस्य जन्तोस्तथा सदुक्ते : प्रभवन् प्रयोक्ता ॥२६॥

साघु को सूर्य के उदय हो जाने और प्रकाश के भली-भांति फैंळ जाने पर ही सामने भूमि को देखते हुए विचरना 'चाहिए । पक्षी के समान साधु भी सदा विचरता ही रहे, किसी एक स्थान का उप- भोक्ता न बने। श्रौर दूसरे जीव का हित जैसे संभव हो, वैसी सद्-चक्ति वाली हित मित भाषा का प्रयोग करे ॥ २६ ॥

भावार्ष साधु को आगम की आज्ञा के अनुसार वर्षा ऋतु के विवाय माम में एक दिन और नगर में तीन या पांच दिन से अधिक नहीं ठहरना चाहिए। वर्षा भुद्ध में चार मास किसी एक एसे खान पर रहना चाहिए, जो कि कीचक नगरे में रहित हो, जहां बरसाती जोवों की उत्पत्ति कम हो और नीहार आहि के छिए हरियाछी से रहित बंजर भूमि मुख्य सो साधु को किसी के पूछने पर ही हित मित भिय बचन बोलना चाहिए, बिना पूछे और आनावस्थक या अनवसर तो बोलना ही नहीं चाहिए। इस स्कोक के पूर्वार्थ द्वारा स्मावस्थित और उत्तरार्थ के द्वारा भाषासमिति और उत्तरार्थ के द्वारा भाषासमिति का प्रतिपादन किया गया है।

मनोवचःकायविनिग्रहो हि स्यात्सर्वतोऽसुष्य यतोऽस्त्यमोही । तेषां प्रयोगस्त परोपकारे स चापवादो मदमत्सरारेः ॥२७॥

यतः साधु मोह-रहित होता है और अपने मद-मस्तर आदि भावों पर विजय पाना चाहता है, अतः उसे अपने मन, वचन और काय की सकल्प-विकल्प एवं संभाषण और गमनादि रूप सभी प्रकार की किशाओं का विनिमह करना चाहिए। वही साधु का प्रधान कर्षा-च्य है। यदि कदाचिन संभाषण या गमनादि करना पड़े, तो उनका उपयोग परोपकार में ही होना चाहिए। किन्तु यह उसका अपवाद मांग है। उस्तरों मांगे ते साधु का यही है कि वह मौत-पुकं आस्य-साधना करे और अपने अस्तरंग में अवस्थित मद, सस्तर, राग, द्वेषादि विकारों को निकालने के लिए निरन्तर प्रयत्मक्षील रहे। १९०॥ भावार्ष-इसक्तोक द्वारा साधु को बनोगुपि, वचनगुप्ति और कायगुप्ति रखने का विधान किया गया है। यही उसका प्रधान कार्य है। किन्तु निरन्तर सन-चचन-काय को गुप्त रखना संभव नहीं है, ऋतः प्रयोजन-वस्न मन, वचन, काय की क्रिया कर सकता है, किन्तु वह भी अय्यन्त सावधानी-पूर्वक। इसी सावधान प्रवृत्ति का नाम ही समिति है।

कस्यापि नापिकारं यथा स्याचथा मलोत्सर्गकरो महात्मा । संशोध्य तिष्ठेद्रुवमात्मनीनं दहं च सम्पिच्छिकया यतात्मा ॥२८॥

साधु महात्मा को चाहिए कि वह ऐसे निर्जन्तु और एकान्त स्थान पर मळ मूजादि का उत्समों करे, जहां पर कि किसी भी जीव को किसी भी प्रकार की आपत्ति न हो। वह संवतात्मा साधु भूमि पर या जहां कहीं भी बैठे, उस स्थान और अपने देह को पिछि-का से अकी भांति संकोधन और परिमार्जन करके ही बैठे और सावधानी-पूर्वक ही किसी बस्तु को उठावे या रखे।। २८।।

भावार्थ ---इस श्लोक के पूर्वार्ध-द्वारा व्युत्सर्ग समिति का और उत्तरार्ध-द्वारा खादान-निज्ञेपण ममिति का निरूपण किया गया है।

निःसङ्गतां वात इवार गुपेयात् ख्रियास्तु वार्तापि सदैव हेया । शरीरमात्मीयमवैति भारमन्यत्किमङ्गी कुरुतादुदारः ॥२९॥

साजु को चाहिए कि वह नि.सगता (अपरिग्रहता) को वायु के समान स्थीकार करे अर्थान् वायु के समान मदा नि.संग होकर विचरे। क्रियों की तो वात भी सदा त्याच्य है, वस्त में भी उनकी याद न करे। जो उदार साजु अपने क्सीर को भी भार-भूत मानता है, वह दूसरी वस्तु को क्यों अंगीकार करेगा॥ २६॥ एकं विहायोद्वहतोऽन्यदङ्गं गतस्य जीवस्य जडप्रसङ्गम् । भवाम्बुधेरुचरणाय नौका तत्रुर्नरोक्तेव समस्ति मौका ॥३०॥

यह प्राणी जड़ कर्मों के प्रसंग को पाकर चिरकाल से एक शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को धारण करता हुआ चला आ रहा है। इसके लिए इस मानव-देह का पाना एक बढ़िया सीका है आधीत् अपूर्व अवनर है और यह मनुष्य भव संसार-समुद्र से पार होने के लिए नीका के समान है। १०॥

तनो नृजन्मन्युचितं समस्ति यत्त्राणिमात्राय यशःप्रश्नस्ति । अव्यं पुनर्निर्वहणीयमेतद्वदानि युक्तावगमश्रियेऽतः ॥३१॥

इसलिए इस नर-भव में प्राणिमात्र के लिए जो उचित और यशकर प्रशस्त कर्चाञ्च है, उसे में उपयुक्त और हितकर शब्दों से वर्णन करता हूँ, उसे पुनता चाहिय, युक्तकर पारण करना चाहिए और भारण कर मली मॉति निभाना चाहिए॥ ३१॥

कौमारमत्राधिगमय्य कालं विवातुयोगेन गुरोरथालम् । मिथोऽनुभावात्सहयोगिनीया गृहस्थता स्यादुपयोगिनी या ॥३२॥

कुमार-काल में गुरु के समीप रहकर विद्या के उपार्जन में काल व्यतीत करें। विद्यार्थ्यास करके पुनः युवावस्था में योग्य सहयोगिनी के साथ विवाह करके परस्पर प्रेम-पूर्वक रहते हुए (तथा न्याय पूर्वक आजीविकोपार्जन करते हुए) उपयोगिनी गृहस्य-अवस्था को वितावे।। २२।।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्रिष्टेषु जीवेषु तदर्तितोदम् । साम्यं विरोधिष्वधिगम्य जीयात् प्रसादयन् बुद्धिमहो निजीयाम् ॥३३

गृहस्य श्रवस्था में रहते हुए प्राणिमात्र पर मेत्री भाव रखे, गुणी जनों पर प्रमोद भाव श्रीर दुखी जीवों पर उनके दुख दूर करने का करुणामाव रखे। बिरोधी जनों पर समता माव को प्राप्त होकर श्रीर श्रपती बुद्धि को सदा ग्रसन्न (निर्मष्ट) रखकर जीवन-वापन करें।। ३३।।

समीक्ष्य नानाप्रकृतीनमनुष्यान् कद्धिभावः कमथाष्यनुस्यात् । सम्भावयक्षित्यनुकूलचेता नटायतामक्षित्रु यः प्रचेता ॥३४॥

संसार में नाना प्रकृति वाले मनुष्यों को देखकर जापने हृदय में स्रोटा भाव कभी न ज्याने देवे, किन्तु उनके जातुकूल चित्त होकर उनका समादर करते हुए सावधानी के माथ बुद्धिमान मनुष्य को सब प्राणियों पर या प्रवास मा क्यांचे स्वास करना चाहिए, रूला या जावर-गेंद्र राय या किसी भी मनुष्य के साथ न कहें ॥१४॥

सम्बुद्धिमन्वेति पराङ्गनासु स्वर्णे तथान्यस्य तृणत्वमाशु । धृत्वाऽखिलेस्यो सृदुवाक् समस्तु सुक्तापृतेनानुगतात्मवस्तु ॥३५॥

पर क्षियों में सद्बुद्धि रक्षे अयोत् उनमें यथोयोग्य माता, वहिन श्रीर पुत्री जैमा भाव रत्नकर अपने हृदय को शुद्ध बनावे, पराये सुवर्ण में धनादिक में तुण जैसी बुद्धि रक्षे, बृद्ध अनों के आदेश और उपदेश को क्षादर से श्लीकार करे, सबके साथ सद्ध वाणी बोळकर वचनामृत से सब को तुप्त करे, उन्हें अपने अनुकूळ बनावे और उनके अनुकूल आचरण कर अपने ज्यवहार को उत्तम रह्ये ॥ ३५ ॥

क्कर्यान्मनो यन्महनीयमञ्चे नमधश्नः संस्तवनं समञ्चेत् । दृष्ट्वा पलाशस्य किलाफलत्वं को नाम वाञ्क्केच्च निशाचरत्वम् ॥ ३६

हे भड़यो, यदि तुम संसार में पूजनीय बनना चाहते हो, तो मन को सदा कोमल रखो, सब के साथ भद्रता और नम्रता का ज्यवहार करो, मद्य खादिक मादक बस्तुओं का सेवन कभी भी न करो। पलाश (द्याक पृक्ष) की खफलता को देखकर पल अधीत मांस का खशन (अक्षण) कभी मत करो और रात्रि में भोजन करके कीन भला खादमी निशाचर बनना चाहेगा ? खब्दीत कोई भी नहीं।।३६॥

भावार्ध—पलाझ स्पर्धान् टेसू या ढाक के फूछ लाल रंग के बहुत सुन्दर होते हैं, पर न तो उनमें सुगन्य होती हैं और न उस मुझ में फल हो लगते हैं उस बुझ का होना निष्फल ही है। इसी फार जो पल (भांस) का अक्षण करते हैं, उनका वर्तमान जीवन तो निष्फल है ही प्रस्तुत अविषय जीवन दृष्कलों को देने वाला हो जाता है, स्वत्य सांस-अक्षण का विचार भी स्वप्न में नहीं करना चाहिए। रात्रि में साने बालों को निशाचर कहते हैं स्वीर 'निशाचर' यह नाम राक्षमों तथा उल्ले स्वादि पात्र-संचारी पिक्षमों का है। उन्हें लक्ष्य में रखकर कहा गया है कि कीन स्वास्त-हितेषी मनुष्य रात्रि में साकर निशाचर बनना चाहि हो, वा निशाचर कहलाना पसन्द करोगा ९ स्वत-एव रात्रि में कभी भी सान-पान नहीं करना चाहिए।

वहावशिष्टं समयं न कार्यं मनुष्यतामञ्च कुलन्तु नार्य ! नार्थस्य दासो यशसश्च भृयाद् धृत्वा त्ववे नान्यजनेऽम्यस्र्याम् ॥३७ हे खार्य, सदा सांसारिक कार्यों के करने में ही मत लगे रहो, कुछ समय को भी बचाको और उस समय धर्म-कार्य करो। मनु-ध्यता को प्राप्त करो, उसकी कीमत करो, जाति और कुल का मद मत करो। सदा आर्य (धन या स्वार्य) के दास मत बने रहो, किन्तु लोकोपकारी यहा के भी कुछ काम करो। अन्य मनुष्यों पर ईच्यों, हेष आदि धारण कर पाप से अपने आपको लिक्र मत करो। 13 ७।।

मनोऽधिकुर्यात्र तु बाह्यवर्गमन्यस्य दोषे स्विदनाग्विसर्गः । सुञ्चेदहन्तां परतां समञ्चेत्कृतज्ञतायां-महती-प्रपञ्चे ॥३८॥

सांसारिक बाह्य वस्तुकों पर अधिकार पाने के लिए मन को अपने अधिकार में रखो। (भाग्योदय से महज में जो कुल प्राप्त हो जाब, उसमें सन्तोष धारण करो।) दूमरे के दोषों को मत कही, यदि कहने का अवसर भी आवे, तो भी मौत धारण करो। अहन्भाव को छोड़ो। इस छल-छिट्टों और प्रवंचनाओं से भरे महा प्रपंचमय सेंसार में कुलजाग प्रकट करो. कुतकी मत बनो।। देव।

श्रुतं विगाल्याम्बु झाधिकुर्यादेतादशी गेहभृतोऽस्तु चर्या । तदा पुनः स्वर्गल एव गेहः कमोऽपि भृयादिति नान्यश्रेह ॥३९॥

सुनी हुई बात को जल के समान छान कर स्वीकार करे, सहस्रा किसी सुनी बात का मरोसा न करे, किन्तु खूब छान बीनकर बचित ऋदुवित का निर्णय करे। इस उपयुक्त प्रकार की चर्या गृहस्य की होनी चाहिए। यदि वह ऊपर बतलाई गई विधि के ऋतु-सार आवरण करता है, तो बह यहां पर भी स्वर्गीय जीवन बिताता है चौर क्षगले जन्म में तो खबरब ही स्वर्ग का सागी होगा। अन्यवा इससे विपरीत आवरण करने बाला गृहस्य यहां भी नारकीय वा या पशु-तुल्य जीवन विताता है ऋषीर ऋगले जन्म में भी वह नरक या पशु गति का मागी होगा॥ ३६॥

एवं सम्रुल्लासितलोकयात्रः संन्यस्ततामन्त इयाद्थात्र । सम्रुज्झितारोषपरिच्छदोऽपि अम्रुत्र सिद्धर्ये दुरितैकलोपी ॥४० ।

इस प्रकार भली भांति इस लोक-यात्रा का निर्वोह कर, ज्यन्त समय में परलोक की सिद्धि के लिए सबै परिजन और परिज्ञहादि को लोक्कर, तथा पांचों पारों का सबैधा स्थाग कर संन्यास नृज्ञा को स्वीकार करें आर्थान् साधु बनकर समादि पूर्वक अपने प्राणां का विसर्जन करें ॥ ४०॥

निगोपयेन्मानममात्मनीनं श्रीध्यानवत्रे सुतरामदीनम् । इत्येष भ्रयादमरो विपश्चित्र स्यात्युनर्गारियताऽस्य कश्चित् ।।४१॥

संस्थास दशा में माधक का कर्च ट्य है कि वह आने मन को टड़ता-पूर्वक श्री बीतराग प्रमु के ध्यान रूप कोट में सुरक्षित रक्षे और सबे सकर-विकर-गें का त्याग करे। ऐसा करने वाला साधक विद्वान नियम से आजर-अगर वन जायगा, किर इसे समार में मारने वाला कोड़े भी नहीं रहेगा। ४१॥

सम्बोधयामास स चेति शिष्यान् सन्त्रार्गगामीति नरो यदि स्यात् । तदोक्ततेरुच्चपदं त्रगच्छेदन्मार्गगामी निपतेदनच्छे ॥४२॥

इस प्रकार श्री ऋषभदेव ने ऋपने शिष्यां को सभझाया और कहा कि जो मनुष्य सन्मार्गगामी बनेगा, वह उझति के उच्च पद को ऋपस्य प्राप्त होगा। किन्तु जो इसके विषयीत ऋगचरण कर उन्मार्ग- गानी बनेगा, वह संसार के दुरन्त गर्त में गिरेगा ऋौर दुःख भोगेगा।। ४२॥

एवं पुरुमीनवधर्ममाह यत्रापि तैः संकलितोऽवगाहः। त्रेतेतिरूपेण विनिर्जगाम कालः पुनर्दापर आजगाम ॥४३॥

इस प्रकार भगवान् ऋषभ ने तास्कालिक छोगों को मानव-धर्म का उपदेश दिया, जिसे कि यहां पर संखेर से संकालित किया गया है। भगवान् के उपदेश की उस समय के छोगों ने बहै आदर के साथ अपनाया। इस प्रकार बेता गुग ज्यांने तीसग काल समाम हुआ और द्वापर नाम का चौथा काल ज्या गया।। ४२।।

त्रेता बभ्व डिगुणोऽप्ययन्तु कालो मनागृतगुणैकतन्तु । यस्मिन् शलाकाः पुरुषाः प्रभृया बश्चश्च दुर्मार्गकृतास्यस्रयाः ॥४४॥

त्रेता युग दो कोइा-कोइी सागरीपम काल प्रमाण वाला था। यह द्वापर युग कुछ कम अर्थान् चौरासी हजार वर्ष कम एक कोइा-कोइी सागरीपम काल का था। इस द्वापर युग में नीर्थ हुर, चक्रवर्ती आदि शलाका नाम से प्रसिद्ध महापुरुष हुए, जो कि संसार में फैंडने वाले हुमोंगे के विनाशक एवं सन्मागं के प्रचारक थे। ४४।।

पुरूदितं नाम पुनः प्रसायापृष्मिस्तु धर्माधिश्ववोऽजितायाः । प्रजादुरीहाधिकृतान्यभावं निवारयन्तः प्रवसुर्यथावत् ॥४४॥

इस द्वापर युग में श्रजितनाथ आदिक तेईस तीर्थद्वर श्रीर भी हुए, जिन्होंने गुस्टेव भगवान् ऋषभ के द्वारा प्रतिपादिन धर्म का ही पुन: प्रचार और प्रसार करके प्रजा की दुव नियों की दूर करते हुए सन्मार्ग का संरक्षण किया है ॥ ४४ ॥

तत्रादिमश्रकिषु पौरवस्तुक्-शताग्रगण्यो भरतः समस्तु । दाढचे न धर्मामृतमाषुश्रत्म्वनाहृय तांस्तत्र परं युयुत्सुः ॥४६॥

सम्मानयामास स यद्मसूत्र चिह्नेन भद्रं ब्रजतामसुत्र । कर्मेदमासील पुरोरबाह्मः प्रमादतश्रकभृताऽत्रगाह्मः ॥४७॥

उन शलाका पुरुषों में के चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती भरत हुए, जो कि ऋषभदेव के सी पुत्रों में सब से बहे थे। उन्हांने क्यपनी प्रजा में से धर्मामृत पान करने के इच्छुक पढ़ों परकी धुधार की चिन्ता रखते वाले लोगों को बुळा कर बक्रोपबीत रूप रूप पुत्र-चिक्र रेकर उनका सन्मान किया और उन्हें 'ब्राह्मण' नाम से प्रसिद्ध किया। यहारि यह कार्य भगवान ऋषभदेव की दृष्टि से बाह्य या, आर्थोन् ठीक न था। किन्तु भरत चक्की ने प्रमाद से यह कार्य कर लिया। ४६-४७।

यतस्त आशीतलतीर्थमापुराँचित्यमस्मात् पुनरुन्मनस्ताम् । आसाद्य जातीयकतां त्रजन्तः प्रथासुरीचकुरिहाप्यशस्ताम् ।:४८॥

भारत चक्रवर्ती ने जिन ब्राह्मणों का एक धार्मिक वर्ग प्रस्थापित किया था, वह दशवें तीर्थेंड्स शीतलनाथ के समय तक तो अपने धार्मिक कर्त्त व्यव शयोचित रीति से पालन करता रहा। पुन: इसके पश्चात् धर्म-विमुख होकर जातीयता को प्राप्त होते हुए उन्होंने इस भारतवर्थ में अपशस्त प्रवाधों को स्वीकार किया और सन-माने क्रियाकारख का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।। ४८।। धर्माधिकर् त्वसमी द्धाना बाह्यं क्रियाकाण्डमिताः स्वमानात् । गुरोरमीध्वेकतराद्धीत-विदोर्विवादः समभू ह वीतः ॥४९॥

धीरे-शीरे जातीयता के अभिमान से इन ब्राझणों ने अपने आपको भर्म का अधिकारी घोषित कर दिया और बाहिरी क्रिया-कारड को ही घम बता कर उसके करने-कराने में ही लग गये। बीसवें तीर्थंहर मुनि मुजतनाय के समय में जाकर उनमें एक ही गुरु से पहे दुए से ब्राह्मण विद्वानों में एक वाक्य के आर्थ पर विवाद खड़ा हो गया। ४६॥

समस्ति यष्टव्यमजैरमुष्य छागैरियत्वर्वत आह दृष्यम् । पुराणधान्यैरिति नारदस्तु तयोरभृत्सङ्गरसाध्यवस्तु ॥५०॥

दोनों विद्वानों में से एक का नाम या पर्वत और दूसरे का नाम या नार । विवाद का विषय था 'क्य जैयंट्टयमे' (क्य जो से यह करना चाहिए)। पर्वत 'क्य जे पर का अपने छान (करना) करना था कोर नार दक्त करना चाहिएकों होने हैं के स्वीद करना था कि उस पर का अपने वान ने या उरन्त होने के क्यांग्य पुराना थान्य है। जब आपस में विवाद न मुख्या, तब उसे मुख्याने के खिए उन्होंने आपन में प्रतिज्ञान्य हो कर अपने सहाध्यायी वीसरे गुरु आई वसु राजा को निर्णायक न्यायाधीश नियक्त किया। भरा।

न्यायाधिषः प्राह च पार्वतीयं बचो बसुर्वाग्विवशो महीयम् । मिस्राऽगिरत्सम्भवतीतमाराद् यतोऽश्रनाऽभूज्जनता द्विघारा ॥५१॥

(पर्वत की मांने पहिले ही जाकर वसु राजाको अपपने पुत्र के पक्कामें मत देने के छिए वचन-वद्ध कर लिया, अपतः मतदान के समय) वचन-वड होने से विवश न्यायाधोश वसु राजा न कहा कि पर्वन का बचन सत्य है। उसके ऐसा कहते ही अर्थान क्यस्य पक्ष का समर्थन करने पर तुरन्त प्रजी कटी और वह राव्य-सिहासन के साथ ही उसमें घस गया। उसी समय उपस्थित जनता दो घानों विभक्त हो गई। जो तदत्र के तहस्य को नहीं जानते थे, वे पर्वन के पक्ष में हो गये और जो तत्त्रज्ञ थे, वे नारद के पक्ष में हो गये।॥४१॥

यथा दुरन्तोच्चयमभ्युपेता जलस् तिर्म् नमशक्तरेताः । इत्यत्र सम्पादितसम्पदा वाऽनुमातुमर्हन्ति महानुभावाः ॥५२॥

जैसे बीच में किसी चड़े पर्वत के का जाने पर जल का प्रवाह उसे न हटा सकते के कारण दो आगों में विभक्त होकर बहुत कराती हु, इसी प्रकार उस वसु राजा के व्यस्त्य पक्ष का समर्थन करने से भार्तिक नता के भी दो भाग हो गये। ऐसा महापुरूष कहते हैं। सरेश।

निवार्यमाणा अपि गीतवन्तः सत्यान्वितरागमिभिह् दन्तः । वाक्यावळीचोरगणोदरीर्थास्त्रे ये पुनः पर्वतपक्षकीयाः ॥५३॥

ञ्यासर्षिणाथो भविता पुनस्ताः प्रयत्नतः सङ्कलिताः समस्ताः । यथोचितं पञ्जविताश्च तेन सङ्कल्पने बुद्धिविभारदेन ॥५४॥ इसके प्रश्चान पांडवों के दादा ज्यास ऋषि ने, जो कि नवीन कल्यना की रचना में बुद्धि-विशारद थे, — अति चतुर बे—पारण्यागत इन सब गीतों का बड़े प्रथन से संकलन किया, वर्ड यशोचित पल्छ-वित किया और उनको एक नया ही रूप ट्रेटिया। ४४॥

तत्सम्प्रदायश्रयिणो नरा ये जाताः स्विद्याविष सम्पराये । सर्वे ऽपि हिंसापरमर्थमापुर्यतोऽभितस्त्रस्त्रिमिताऽखिला पूः ॥५५॥

उस सम्प्रदाय का श्राध्य करने वाले श्राज तक जितने भी बिद्धान हुए हैं, वे सभी उन मन्त्रों का हिंसा-परक श्रर्थ करते हुए चले श्राये, जिससे कि मकल प्रजा श्रायन त्रास को प्राप्त हुई ॥ ४४॥

बाढ भग्ने चोपनिषत्समर्थेऽभूचर्कणा यश्वि ताबद्र्ये । तथाप्यहिसामयवाचनाया नामीत्प्रसिद्धिः स्फुटरूपकायाः ॥५६॥

वश्पि उपनिषरकाल में उनके रचिता क्याचार्यों के द्वारा हिंसा-परक मंत्रों के विषय में तर्क-वितके हुआ। और उन्होंने उन मन्त्रों का आहिसा-परक कार्य किया। तथापि उन आहितासयी स्पष्ट अर्थ करने वाली वाचना की जैसी नाहिए—शिसिद्ध नहीं हो सकी और कोस हिंसा-परक कार्य भी करते गई।। ४६।।

स्वामी दयानन्दरवस्तदीयमर्थं त्वहिंसापरकं श्रमी यः । कुत्वाय शस्तं प्रचकार कार्यं हिंसामुपेक्ष्येव चरेत्किलार्यः ॥५७॥

हां, खभी जो स्वामी दयानन्द सरस्वती हुए, जो कि ख्रध्ययन-शीळ परिश्रमी सज्जन ये, वन्होंने उन्हीं मन्त्रों का ऋहिंसा-परक खर्व करके बतळा दिया कि हिंसा करना खप्रशस्त कार्य है। खतः आर्य- जन हिंसा की अपेक्षा करके आहिसक घर्माचरण करें। उन्होंने यह बहुत प्रशस्त कार्य किया, जो कि घर्मात्मा-जनों के द्वारा सदा प्रशंस-नीय रहेगा।। ४७॥

स्वप्ने अपि यस्य न करोति नरो विचारं

सम्पद्मते समयमेत्य तदप्यथाऽरम् ।

कुर्यात्त्रयत्नमनिशं मनुजस्तथापि न स्थात्कलं यदि पलप्रतिकलताऽऽपि ॥४८॥

सनुष्य स्वप्न में भी जिस बात का विचार नहीं करता है, समय पाकर वहीं बात आसानी से सम्पन्न हो जाती है। यदि समय प्रति-कृळ है, तो मनुष्य निस्न्तर प्रयस्त करे, तो भी वसे आभीष्ट कळ की प्राप्त नहीं होती है। ४२।।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्धुः सं सुषुवे भ्रामलेत्याह्नयं वाणीभृषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । तस्यानन्दपदाधिकारिणि शुभे वीरोदयेऽयं क्रम-प्राप्तीऽत्येतितमामिद्वाष्टविधुमान् सर्गोऽधुनासत्तमः ॥१८॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्यु जजी और शुनवरी देवी से उत्पन्न हुए बाणी भूषण, बाल महावारी पै० सूरासल वर्तमान सुति ह्वानसारार इसा विश्वित इस भीरोदय कात्रय में सत्ययुगादि तीनों युगों का वर्णन करने वाला यह स्थारदवां सर्ग समाह हुखा।। १८॥

अथैकोनविशः सर्गः

श्रीवीरदेवेन तमामवादि सत्सम्मतोऽयं नियमोऽस्त्यनादिः । अर्थक्रियाकारितयाऽस्तु वस्तु नोचेत्पुनः कस्य क्रुतः स्तवस्तु ॥१॥

श्री सहावीर भगवान ने बतलाया कि प्रत्येक पदार्थ सत्यक्षर है। वस्तु-स्वभाव का यह नियम व्यनादि है और जो भी वस्तु है, वह व्यविक्याकारी है, व्यवान कुछ न कुछ कियाबिरोप को करती है। यह बार्वकियाकारित वस्तु का स्वरूप न माना जाय, तो कोई उसे मानेगा ही क्यों ? और क्यों किसी वस्तु की सत्ता को स्वीकार किया जायगा। १।

प्राग्-रूपमुज्झिस्य समेत्यपूर्वभेकं हि वस्तुत विदो विदुर्वः । हे सज्जनान्तत्त्रयमेककालमतो विरूपं वदतीति बालः ।।२।।

प्रत्येक वस्तु प्रति समय अपने पूर्व कप (अवस्था) को छोड़कर अपूर्व (जतीन) रूप को धारण करती है फिर भी वह अपने मूळ स्व-रूप को नहीं छोड़ती है, ऐसा झानी जानों न कहा है, सो है सजाते, आप छोग भी वस्तु को वह कराव-ज्यव-प्रोट्यात्मक त्रिक्रता एक एक बाक में ही अनुभव कर रहे हैं। जो बस्तु-खरूप से अनभिज्ञ हैं, ऐसे बाळ (मूर्ज) जन ही इससे विपरीत स्वरूप वाळी वस्तु को कहते हैं। १ ।।

भावार्थ—को केवल उत्पाद या व्यथ या ध्रीव्यरूप ही वस्तु को मानने हैं, वे वस्तुके यथार्व स्वरूप को न जानने के कारण व्यक्षानी ही हैं। प्रवर्षते चेत्पयसाऽऽमशक्तिस्तद्धानये किन्तु द्धिप्रष्नुक्तिः । द्वये पुनर्गोरसता तु भाति त्रयात्मिकाऽतः खलु वस्तुजातिः ॥३॥

देखो — दूध के सेवन करने से आमशक्ति बढ़ती है और उसी दूध से बने वही का प्रयोग आम को नष्ट करता है। किन्तु वस वृक्ष वही होनों में ही गोरसपना पाया जाता है, खत: समस्त बन्तु-बावि करताद-जबर-अजियक्त जवात्मक है, वह बात तिव्ह होती है। ३॥

नरस्य दृष्टौ विद्यमध्यवस्तु किरेस्तदेतद्वरमध्यमस्तु । एकत्र तस्मात्सद्मत्त्रतिष्ठामङ्गीकरोत्येव जनस्य निष्ठा ॥४॥

मनुष्य की दृष्टि में विष्टा श्रभक्ष्य वस्तु है, किन्तु सुकर के सी वह परम अक्ष्य वस्तु है। इसलिए एक ही वस्तु में सन् श्रोर श्रसम् की प्रतिष्ठा को ज्ञानी जन की श्रदा श्राक्षीकार करती ही है।। श्रा

रेखेंकिका नेव लघुर्न गुर्वी लघ्व्याः परस्या भवति स्विदुर्वी । गुर्वी समीक्ष्याथ लघुस्तृतीयां वस्तुस्वभावः क्षुतरामितीयान् ॥४॥

कोई एक रेखा (लकीर) न स्वयं छोटी है और न बही है। यदि इसी के पास उससे छोटी रेखा सीच दी जाय. तो वह पहिली रेखा बही कहला के जाती है, जीर यदि उसी के टूमरी और बही रेखा औच दी जाय, तो वही छोटी कहलाने लगती है। इस प्रकार बहु पहिली रेखा छोटी और बही दोनों रूपों को, ष्रपेक्षा-बिरोप से धारण करती है। बस, बस्तु का स्वभाव भी ठीक इसी प्रकार का जानना चाहिए॥ ॥ ॥

भावार्ष - इस प्रकार अपेक्षा-विशेष से वस्तु में अस्तित्व और

नास्तित्व धर्म सिद्ध होते हैं। प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, खेत्र, काळ और भाव की अपेक्षा अस्ति रूप है और पर द्रव्य, खेत्र, काळ, भाव की अपेक्षा नास्ति रूप है।

सन्ति स्वभावात्परतो न यावास्तस्मादवाग्गोचरकृत्त्रभावाः । सहैत्यतस्तित्वयात्प्रयोगाः सप्तात्र विन्दन्ति कलावतो गाः ॥६॥

जैसे यद (जी) अपने यवरूप स्वभाव से 'हैं', उस प्रकार गेहूँ आदि के स्वभाव से 'पहीं' हैं। इस प्रकार वब में अदिस्त और सारित्वल कोर सारित्वल कोर सारित्वल कोर सारित्वल कोर सार्थ कहने की विवक्षा की जाय, तो उनका कहना संभव नहीं है, अतः उस यव में अवस्कट रूप तीसरा धर्म भी मानना पड़ता है। इस प्रकार वस्तु में आसि, नासित और अवस्त्रव्य से तीन धर्म सिद्ध होते हैं। इसके द्वित्वयोगी तोन धर्म और विसंवोगी एक धर्म इस प्रकार सब मिला कर सात धर्म सिद्ध हो जाते हैं। ज्ञानी-जन इन्हें ही सम भंग नाम से कहते हैं। इसी

सप्तप्रकारत्वय्वरान्ति मोक्तुः फलानि च त्रीण्यधुनोपयोक्तुम् । प्रथककृतौ व्यस्त-समस्ततातः न्यनाधिकत्वं न भवत्यथातः ॥७॥

बेसे हरद, बहेड़ा और खांवला, इन तीनों का खला-खलग स्वाद है। द्विसंयोगी करने पर हरह और खांवले का मिला हुखा एक स्वाद होगा, हरड और बहेड़े का मिला हुखा दूसरा स्वाद होगा और बहेड़े खांवले का मिला हुखा तीसरा स्वाद होगा। तोनों को एक साथ मिला कर खाने पर एक चौथी ही जाति का स्वाद होगा। इस प्रकार मुळ रूप हरड, बहेड़ा और खांवला के एक संयोगी तीन मंग, द्विसंयोगी तीन मंग और त्रिसंयोगी एक मंग, ये सब मिल कर सात भंग जैसे हो जाते हैं, उसी प्रकार आस्ति, नास्ति और आवक्तस्य केभी दिसंयोगी तीन भंग और त्रिसयोगी एक भंग, ये सक मिछा कर सात भंग हो जाते हैं। ये भग न इससे कम होते हैं और न अधिक होते हैं॥ ७॥

भावार्थ — खरित १, नारित २, खावकच्य ३, खरित-नारित ४, क्रावित-खवकच्य ५, नारित-खवकच्य ६ और क्रावित-नारित-खवकच्य ७ ये सात भंग प्रत्येक वस्तु के यवार्थ स्वरूप का निरूपण करते हैं। प्रत्येक भंग का क्यन किसी क्रयोद्धायिशेय में ही किया जाता है, कतः उस अपेक्षा को प्रत्य करने के लिए प्रत्येक भंग के पूर्व 'स्थान्' यह का प्रयोग किया जाता है। इसे ही स्याद्धाद रूप समभंगी कहते हैं। इस स्थाद्धाद रूप समभंग वाणी के द्वारा ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कथन सभव है, अप्तया नहीं।

अनेकशक्त्यात्मकवस्तु तत्त्वं तदेकया संबदतोऽन्यसत्त्वम् । समर्थयत्स्यात्पदमत्र भाति स्याद्वादनामैबमिहोक्तिजातिः ॥८॥

वस्तुतस्त अनेक शक्त्यात्मक है, अयोत् अनेक शक्तियों का पुत्त है। जब कोई मतुष्य एक शक्ति की अपेक्षा से उसका वर्णन करता है, नव वह अन्य शक्तियों के सस्य का अन्य अपेक्षाओं से समर्थन करता ही है। इस अन्य शक्तियों की अपेक्षा को जिन सिद्धांत 'स्वान्' यद से प्रकट तरा है। वस्तु तस्य के कवन में इस 'स्थान्' अयोत् क्यञ्चित् यद के प्रयोग का नाम ही 'स्थाह्यद' है। इसे ही कथिंद्विद्-याद या अनंकान्तवाद भी कहते हैं।। म।

भावार्थ-प्रत्येक वस्तु में खातेक गुण, धर्म या शक्तियां हैं। उन सब का कथन एक साथ एक शब्द से संभव नहीं है, इसिटए किसी एक गुण या धर्म के कथन करते समय यदापि वह गुख्य रूप से विव- श्चित होता है, तथापि शेष गुणों या धर्मों की विवक्षा न होने से जनका स्थमाय नहीं हो जाता, किन्तु उस समय उनकी गीणता रहती है। जैसे गुलाब के फूल में रूप, रस, गण्य, स्पर्श ख्राहि खनेक गुण विवसान हैं, तो भी जब कोई मनुष्य यह कहता है कि देखों यह फूल कितना कोमल है, तब उसकी विवक्षा स्पर्श गुण की है। किन्तु फूल की कोमलता को कहते हुए उसके गण्य आदि गुणों का ब्यमाय नहीं हो जाता, प्रखुत यही कहा जायगा कि उस समय गेण गुणों की विवक्षा नहीं है। इस विवक्षा को चरिका से जो कथन होता है, उसे ही स्वाह्माद, अनेकानवाद, अपेक्षावाद खादि नामों से कहा जाता है।

द्राक्षा गुडः खण्डमथो मिनाऽपि माधुर्यमायानि तदेकलापी । वैशिष्टचमित्यत्र न वक्तुमीशस्तस्मादवक्तव्यकथाश्रयी सः ॥९॥

दास्त मिस्ट है, गुड़ मिस्ट है, सांह मिस्ट है और मिश्री मिस्ट है, इस प्रकार इन चारों में ही रहने वाले माधुर्य या मिठास को 'मिस्ट' इस एक ही झवद से कहा जाता है। किन्तु उक्त चारों ही बलुकों में मिस्टना की जो नर-नममाश्यात विशिष्टता है, उसे कहने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। (वर और तम शब्द भी माधारण स्थिति को ही शकट करने हैं, पर उनमे परस्पर कितनी मिस्टना का अपनार है, इसे वे भी ब्यक्त नहां कर सकते।) इसलिए उक्त भाव के अभिव्यक करने को 'अवक्तक्य' पर के कथन का ही आश्रय लेना पड़ता है। ॥।

तुरुष्कतास्येति कुराननारादीशायिता वाविलयेकथाम । ततीस्तु वेदेऽपशुपैति विप्रः स्पाद्वाददृष्टान्त इपान् सुदीप्रः ।।१०।६

तुरुष्क (मुसलमान) 'कुरान' का बादर करता है, किन्तु ईसाई

डसे न मानकर 'बाइबिल' को मानता है। इन दोनों का ही 'बेद' में में आदर आब नहीं है। किन्तु बाइल बेद को ही प्रमाण मानता है, कुरान और बाइबिल को नहीं। इस प्रकार 'स्वाइवर' सिद्धान्त उक्त इच्टान्त से बहुत श्रन्थी तह दैरीप्यमान सिद्ध होता है। १०॥

भावार्थ — सुमलमान और ईसाई ऋपने-ऋपने वर्म प्रन्थ को ही प्रमाण मानते हैं, एक के प्रन्य को दूसरा भगाण नहीं मानता है, इस खपेक्षा एक प्रत्य एक के लिए स्वाप्त है । दिन्द के लिए स्वाप्त है । किन्तु नाह्यण दोनां को ही ऋपनाण मानते हैं और वेद को प्रमाण मानते हैं। इस टप्टान्त में सुसलमान और ईसाई परस्पर विरोधी होने हुए भी वेद को प्रमाण नहीं मानते में दोनों खांदिगेही, अवांत एक हैं। इस प्रकार एक की क्षपेक्षा जो मन्य प्रमाण है, अवांत एक हैं। इस प्रकार एक की क्षपेक्षा जो मन्य प्रमाण है, वहीं दूसरे की अपेक्षा अपनाण है और तीसरे को खोसा दोनों ही क्षप्रमाण हैं। इस स्थित को एक मान स्याहाद सिखान्त ही यवार्थतः कहते में समर्थ है, खन्य एकानवादी सिखान्त नहीं। इसी से स्याहाद की प्रामाणकता सिक्ष होती है।

गोऽजोष्ट्रका बेरदलं चरन्ति वाम्बुलम्रष्ट्रश्लगलोऽप्यनन्तिन्। समिति मान्दारमजो हि किन्तु तान्येकभावेन जनाः श्रयन्तु ॥११॥

गाय, बकरी श्रीर ऊंट ये तीनों ही बेरी के पत्तां को खाते हैं, किन्तु बबूछ के पत्तां को ऊंट श्रीर बकरी ही खाते हैं, गाय नहीं। मन्दार (आकड़।) के पत्तां को बकरी ही खाती है, ऊंट श्रीर गाय नहीं। किन्तु मनुष्य बेरी, बबुछ श्रीर खाक इन तीनों के ही पत्तां को नहीं। किन्तु मनुष्य बेरी, बबुछ श्रीर खाक इन तीनों के ही पत्तां को नहीं खाता है। इमलिए हे श्रानन धर्म के मानने वाले अठव, जो बस्तु एक के लिए अस्व या उपादेय है, बही दूसरे के लिए आसक्य या हैय हो ताती है। इस समझना ही स्थादाद है, सो सब लोगों को इसका ही एक भाव से आंक्षय लेता चाडिए ॥ ११ ॥

हंसस्तु शुक्रोऽसुगम्रुष्य रक्तः पदोरिदानीमसकौ विरक्तः। किंह्पतामस्य वदेदिवेकी भवेत्कर्यं निर्वचनान्वयेऽकी ॥१२॥

यदापि इंस बाहिर से शुक्त वर्ण है, किन्तु भीतर तो इसका रक्त खाल वर्ण का है, तथा उसके पेर रवेत और लाल दोनों हो वर्णों के होते हैं। ऐसी स्थिति में विवेकी पुरुष उसको किस रूप वाला कहें। अस्तपन कथांब्राद्वाद के स्थीकार करने पर ही उसके ठीक निर्दोष रूप का वर्णन किया जा सकता है। १२॥

घूकाय चान्ध्यं दददेव भास्त्रान् कोकाय शोकं वितरन् सुश्रावान् । श्ववस्तके किक पुनर्धियापि अस्तित्वमेकत्र च नास्तितापि ।।१३।।

देखो- इस भूतल पर प्राणियों को प्रकाश देने वाला सूर्य उल्लू को अभ्यपना देता है और सब को ज्ञानित देने वाला चन्द्रमा कोक पश्ची को प्रिया-वियोग का शोक प्रदान करता है ? फिर बुढिमान् लोग यह बात सस्य क्यों न मानें कि एक ही वस्तु में किसी अप्रेष्ठा असितद धर्म भी रहता है और किसी अप्रेष्ठा नास्तित्व धर्म भी रहता है। १३।

परं किमञ्चेद् घटभाष्तुमुक्तः नोचेत्त्रबन्धः क इह प्रयुक्तः । घटस्य कार्यः न पटः श्रियेति घटः स एवं न पटत्वमेति ॥१४॥

पड़े को छाने के लिए कहा गया पुरुष क्या कपड़ा लायगा ? नहीं। क्योंकि पड़े का काम कपड़े से नहीं निकल सकता। अर्थोत् प्यासे पुरुष की प्यास को घड़ा ही दूर कर सकता है, कपड़ा नहीं। यदि ऐसा न माना जाय, वो किर इस प्रकार के वाक्य-प्रयोग का क्या अर्थ रहेगा ? कहने का साथ यह है कि पड़े का कार्य कपड़ा नहीं कर सकता। और न घड़ा पट के कार्य को कर सकता है। घड़ा अपने जल-आहरण आदि कार्य को करेगा और कपड़ा अपने शीत-निवा-रण आदि कार्य को करेगा॥ १४॥

घटः पदार्थश्च पटः पदार्थः शैत्यान्त्रितस्यास्ति घटेन नार्थः । पिपासुरभ्येति यमात्मश्रक्त्या स्याद्वादमित्येतु जनोऽति भक्त्या ॥१४

घट भी पदार्थ है और पट भी पदार्थ है, हिन्तु जीत से पीड़ित पुरुष को घट से कोई परोजन नहीं। इसी प्रकार व्यास से पीड़ित पुरुष घट को चाहता है, पट को नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि पदार्थपना घट और पट में समान होते हुए भी प्रायेक पुरुष क्षपने अभीष्ट को ही प्रहण करता है, अपनेभीप्सित पदार्थ को नहीं। इस प्रकार प्रायेक मनुष्य को स्याद्वाद सिद्धान्त भक्ति से स्वीकार करना चाहिए।। १९॥

स्यूतिः पराभृतिरिव श्रु बत्वं पर्यायतस्तस्य यदेकतत्त्वम् । नोत्पद्यते नश्यति नापि वस्त सत्त्वं सदैतद्विद्धत्तममन्त ॥१६॥

जंसे पर्योव की खपेक्षा वस्तु में स्पूति (जर्राक्त) और पराभूति (विपत्ति वा विनाश) पाया जाता है, उसी प्रकार इच्च की खपेक्षा भ्रुवपता भी उसका एक्च की, जो कि उररांकि और विनाश में बराबर खरुत्यून रहता है। उसकी खपेक्षा अस्तु न उरपल होती है और न विनन्ध होती है। इस प्रकार उत्पाद, ज्यब और भ्रुव इन तीनों हमों को धारण करने वाली वस्तु को ही यथार्थ मानना चांदिश। इस

भाष्ये निर्जाये जिनवाक्यसारम्यतञ्जलिरचैतदुरीचकार । तमामसीमांसकनाम कोऽपि स्ववार्तिके भट्टकुमारिलोऽपि ॥१७॥ जिन भगवाण के स्थादाद रूप इस सार वाक्य को पतःखालि महर्षि ने भी अपपने भाष्य में स्वीकार किया है, तथा मीमांसक मत के प्रधान न्यास्थाता कुमारिल भट्ट ने भी अपने स्थोक-वार्त्तिक में इस स्थादाद सिद्धान्त को स्थान दिया है।। १७।।

भु बांशमारूयान्ति गुरोति नाम्ना पर्येति योऽन्यवृद्धितयोक्तधामा । इच्यं तदेतत् गुणपर्ययाभ्यां यद्वाऽत्र सामान्यविशेषताऽऽभ्याम् ॥१८

झानी जल वस्तु-गत ध्रुवांश को 'गुण' इस नाम से कहते हैं और श्वन्य दोनों घर्मों को अर्थान् उत्पाद और ब्यय को 'पर्याय' इस नाम से कहते हैं। इस प्रकार गुण और पर्याय से संयुक्त तस्व को, अपवा सामान्य और विरोप धर्म से पुक्त तस्व को 'द्रब्य' इस नाम से कहा जाता है। १⊏॥

सद्भिः परेरातुलितं स्वभावं स्वव्यापिनं नाम द्घाति तावत् । सा ान्यमुर्ध्वः च तिरस्च गत्वा यदम्ति सर्वे जिनपस्य तस्वात् ॥१९

जो कोई भी वस्तु है वह आगे पीछे होने वाली अपनी पर्यायों में अपने स्वभाव को ज्याप्त करके रहती है, इसी को सन्त लोगों ने अर्ज्यात सामान्य कहा है। तथा एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के साथ जो समानता रखता है, उसे तिर्थक् सामान्य कहा हैं। इस प्रकार जिन-वेब का उपनेत्र है। है। ।

भावार्ष सामान्य हो प्रकार का है—तिर्यक्त सामान्य चीर कब्बेता सामान्य । विभिन्न पुरुषों में जो पुरुषल-सामान्य रहता है, वसे तिर्यक् सामान्य कहते हैं। तथा पक ही पुरुष की बाल, युवा चीर इस ध्यवस्था में जो असक व्यक्तित्व रहता है, उसे कब्बेता सामान्य कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में यह दोनों प्रकार का मामान्य धर्म पाया जाता है।

अन्यैः समं सम्भवतोऽष्यमुष्य व्यक्तित्वमस्ति स्वयमेव पुष्यत् । यथोक्तरं नृतनतां दधान एवं पदार्थः प्रतिभासमानः ॥२०॥

अन्य पराधों के साथ समानता रखते हुए भी प्रत्येक पराधे अपने क्यक्तिस को स्वयं ही काशम रखता है, अर्थान दूसरों से अपनी मिल्रता को प्रकट करना है। यह उसकी व्यतिरेक कर विशेषता है। नया वह पराधे प्रति समय नवीनता को बारण करता हुआ प्रति भास-मान होता है, यह उसकी पर्योगक्ष विशेषता है।। २०।।

भावार्थ — वस्तु में रहते वाला विरोध धर्म भी दो मकार का है-व्यतिरेक रूप और पर्याय रूप। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में जो असमानता या विलक्षणता पाई जाती है, जसे व्यतिरेक कहते हैं और प्रत्येक द्रव्य प्रति तसय जो नवीन रूप को धारण करता है, उसे पर्याय कहते हैं। यदार्थ नेतां प्रकार का विरोध धर्म भी अत्येक पदार्थ में प्राया जाता है।

समस्ति निन्यं पुनरप्यनित्यं यत्प्रत्यभिज्ञाख्यविदा समित्यम् । कुनोऽन्यथा स्याद् ब्यवहारनाम स्र्तिः पवित्रामिति संभयामः॥२१

प्रज्य की अपेक्षा वस्तु नित्य है और पर्याय की अपेक्षा वह अनित्य है। यदि वस्तु को सर्वेषा नित्य कृटस्य माना जाय, नो उसमें अर्यक्रिया नहों बनती है। और यदि सर्ववा क्षण-अगुर माना जाय, तो उसमें 'यह वही है' इस प्रकार का प्रायमिक्कान नहीं हो सकता। अताय वस्तु को क्यांज्रिन् नित्य और क्यांज्रिम् अनित्य मानना पड़ता है। अन्यया लोक-व्यवहार कैसे संभव होगा। इसलिए लोक-व्यवहार के संचालनार्थ हम भगवान महावीर के पवित्र अनेकान्तवाद का ही आश्रय लेते हैं॥ २१॥

दीपेऽञ्जनं वार्दकुले तु श्रम्पां गत्वाऽम्युघी वाडवमप्यकम्पा । मेवा किलाम्माकिमयं विभाति जीयादनेकान्तपदस्य जातिः ॥२२॥

दीपक में ऋकान, बादलों में बिजली और समुद्र में बदवानल को देखकर हमारी बुद्धि निःशङ्क रूप से स्वीकार करती है कि भग-बान का ऋनेकानवाद सदा जयवन्त है।। २२॥

सावार्थ—दीपक आसुराकार है, तो भी उससे काला काजल जरन होता है। बादक जलमब होते हैं, किर भी उनसे अपितरण विज्ञली पैदा होती है और समुद्र जल से भरा है, किर भी उनसे अपितरण बाहबाप्ति प्रकट होती है। इन परस्य-विशोधी तक्षों को देखने से यही सानना पड़ता है कि प्रत्येक पदार्थ में अपनेक धर्म हैं। इसी अपनेक धर्मात्मकता का दूसरा नाम अपनेकान्त है। इसकी सदा तर्बज विज्ञव होती है।

सेना-त्रनादीन् गदतो निरापद् दारान् खियं किञ्च जलं किलापः । एकत्र चैकल्बमनेकताऽऽपि किमक्कमत्र ने घियाऽभ्यवापि ।।२३।।

जिसे 'सेना' इस एक नाम से कहते हैं, उसमें अनेक हाथी, घोड़े और पयादे होते हैं, जिसे 'बन' इस एक नाम से कहते हैं, उनमें नाना जाति के कुछ पाये जाते हैं। एक जी को 'दार' इस बहुवचन से, तथा जल के 'अप' इस बहुवचन से कहते हैं। इस प्रकार एक से वस्तु में एकत्व और अप्नेक्टब की प्रतीति होती है। किर हे अक्क (बरत), क्या तुम्हारी बुद्धि इस एकानेकारमक रूप आनेकान्ततस्य को स्वीकार नहीं करेगी। आधीन तुम्हें चक ज्यवहार को देखते हुए अनेकान्ततस्य को स्वीकार करना ही चाहिए॥ २३॥

द्रव्यं द्वियेतिबद्दित्त्रमेदाबिदेष जीवः प्रश्ररात्मवेदात् । प्रत्यङ्गमन्यः स्वकृतैकभोक्ता यथार्थतः स्वस्य स एव मोक्ता ॥२४॥

जो द्रव्य मत्मामान्य की छापेक्षा एक प्रकार का है, वही चेतन कौर अचेतन के भेद से दो प्रकार का है। उनमें यह जीव चेतन द्रव्य है जो अपने आपपका वेदन (अनुभवन) करने में समर्थ है, प्रत्येक शरीर में भिज-भिज प्रतीत होता है, अपने किये हुए कर्मी का स्वय ही भोक्ता है और यदार्थत: अपने आपका विमोक्ता भी यही है।। २४।।

मश्राङ्गद्भृतसमागभेभ्यश्रिच्चेत्र भृयादसमोऽम्रुकेभ्यः । क्रुतः स्पृतिर्वा जनुरन्तरस्थानवद्यरूपाद्य च भृरिद्यः स्यात् ॥२५॥

कुछ छोग एमा कहते हैं कि मदिरा के खंग-भूत गुढ़-गीठी खादि के संयोग से जैसे मदक्षिक उराक हो जाती है, उसी प्रकार प्रश्नी खादि को स्वेग से एक चेतन शिंक उराक हो जाती है, वस्तुत चेतन शीव नाम का कोई पदार्थ नहीं है। किन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि गुढ़-गीठी खादि में तो कुछ न कुछ मद शिंक एडती ही है, वहीं उनके संयोग होने पर खाविक विक-सित ही जाती है। किन्तु प्रश्नी खादि भूत चुठक्यों से कोई विनाशक प्रतार होती ही है, वहीं उनके संयोग होने पर खाविक विक-सित ही जाती है। किन्तु प्रश्नी खादि भूत चुठक्यों से कोई विनाशक परिताश की कार्य उनसे बढ़ विरुद्ध में तो कोई उत्तरा हो कार्य हो से वह विरुद्ध में तो कोई उत्तरा हो सकता है। इस विरुद्ध में तो कार्य उनसे बढ़ विरुद्ध में तो कोई विनाश कार्य हों से कार्य हो से ता सकता है। इस तहीं जाती हो तो किर छोगों को जो जन्मान्तर की स्मृति

जाज भी निर्दोष रूप से देखने में जाती है, बह कैसे संमय हो। तथा भूत-भेतादि जो ज्यपने पूर्व भवों को कहते हुए रहिशोचर होते हैं, उनकी सरवा कैसे बने। जतप्त यही मानना चाहिए कि ज्ञचेवन पुण्जी ज्यादि से चेतन जीव एक स्वतन्त्र पदार्थ है। २२।।

निजेक्किताचाक्कविशेषभावात्संसारिणोऽभी ह्यचराश्वरा वा । तेषां श्रमो नारकदेवमर्त्यतिर्यक्तया तावदितः प्रवर्त्यः ॥२६॥

अपने जुभाजुभ भावों से उपार्जित कर्मों के द्वारा शरीर-विशेषों को पारण करते हुए ये जीव सदा संमार में परिश्रमण करने हुए मले आ रहे हैं, अतः इन्हें संसारी कहते हैं। वे संसारी जीव दो प्रकार के हैं चर (त्रस) और आवर (स्वावर)। जिनके केवल एक शरीर रूप स्पर्शनेन्द्रिय के साथ रमना आदि दो, तीन, चार या पांच इन्द्रियों होती हैं कन्हें पर या त्रस जीव कहते हैं और तिनके स्पर्शनेन्द्रिय के साथ रमना आदि दो, तीन, चार या पांच इन्द्रियों होती हैं कन्हें पर या त्रस जीव कहते हैं। नारक, तिर्वेच, सनुष्य और देवगांति के भेद से वे जीव चार रकार के होते हैं। नारक, देव और मनुष्य तो त्रस जीव हैं और तिर्वेच त्रस तथा स्वावर होनों प्रकार के होते हैं। इस प्रकार से जीवां के और भी भेद-अभेद

नरत्वमाप्त्वा स्ववि मोहमायां स्वज्वेदस्वज्वेच्छित्रतामधायात् । नोचेत्युनः प्रत्यववर्तमानः संसारमेवाञ्चति चिन्निधानः ॥२०॥

संसार में परिश्रमण करते हुए जो जीव मतुष्य भव को पाकर मोह-साथा को छोड़ देता है, वह शिवपने को प्राप्त हो जाता है अर्वात् कर्म-बन्धन से छुट जाता है। किन्तु जो संसार की मोह-साथा को मही छोड़ता है, वह चंतन्य का सिधान (भरवरा) होकर भी चतुर्गीत में परिश्रमण करता हुन्या ससार में हो पड़ा रहता है। २७।। भृतिः पृथिव्याः कणशः सचित्तास्तत्कायिकैराईतस्कविचात् । अवतने मर्दम सुधादिकन्तु शिवाधीमतन्तुनयः अयन्तुनीर्देश।

(वपयु क देव, नारकी और मतुष्यों के सिवाय जितने भी संसारी जीव हैं, ये-सब तियंव कहलाने हैं। वे भी भांच प्रकार के हैं—पक्रेन्ट्रिय, प्रीन्ट्रिय, प्रीन्ट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्गिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, चतुर्मिट्रिय, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक । ग्रंपिकी चे पूर्वि की पूर्वि, पर्या के कण आदिक सन्विक हैं, व्योक्ति चतुर्थ हो स्वर्णिट्र आपास में इंक्यानित चतुर्थ के स्वर्णम क्षेत्र कर्मिट्र क्षाप्ति के स्वर्णम चतुर्गिट्र के स्वर्णम चतुर्गिट क्षाप्ति के स्वर्णम चतुर्गिट क्षाप्ति के स्वर्णम चतुर्गिट क्षाप्ति का स्वर्णम चतुर्गिट क्षाप्ति का स्वर्णम चतुर्गिट्र के स्वर्णम स्वर्णम चतुर्गिट्र के स्वर्णम स्वर्णम चतुर्गिट्र का स्वर्णम स्वर्णम चतुर्गिट्र के स्वर्णम स्वर्णम चतुर्गिट्र के स्वर्णम स्वर्णम चतुर्गिट्र का स्वर्णम चतुर्गिट स्वर्णम चतुर्गिट्र का स्वर्णम चतुर का स्वर्य का स्वर्णम चतुर का स्वर्णम चतुर का स्वर्णम

संगालिते वारिणि जीवनन्तु तत्कायिकं किन्तु न तत्र जन्तुः । ततः सम्रुष्णीकृतमेव वारि 'पिवत्यदों संयमिनामधारी' ॥२५॥

सभी मकार के जल के भीतर जलकायिक जीव होते हैं, जल ही जितका शरीर है जह जलकायिक कहते हैं। वक से गालित (छाते हुए) जल में भी जलकायिक जीव'र हते हैं। हो; कालकीय पर कहतें। उस जीव नहीं हरतें ! स्वतिक वक-गाविक जुक को कालकीय तरह जल्म करके प्राप्तक बना लेन पर ही संयमी नाम भारी पुरुष उसे पीती हैं। स्टार में

नान्यत्र सम्मिश्रणकृत्त्रशस्त्रवृद्धिश्च सल्वीवनशृत्सम्बद्धाः । मोज्यादिकमार्चपदस्यजीवर्गाचे मजेडी सुतर्गयदीवः ॥३०॥ स्रि ही. दिन्का सरीर है उन्हें स्विप्तकायिक तीय कहते हैं। वैसे काष्ठ, कोयला स्वादि के जलाने से उत्पन्न हुई सभी प्रकार की स्वित, विवल्को, दीपक की ली सादि। किन्तु को स्वप्ति भोक्य पदार्थों में प्रकार हो। पर को स्वप्त पदार्थों में प्रकार हो। है, वह सजित नहीं है, किन्तु स्वित्त है। पर को स्वप्त पदार्थों में मिल्का को नहीं गात हुई है, ऐसे घथकते स्वार सादि सजित है है, ऐसा जान कर हे सुतपत्नी जनो, साप लोग स्वित्त की है, ऐसा जान कर हे सुतपत्नी जनो, साप लोग स्वित्त स्वप्ति का उपयोग करें।। २०।।

प्रत्येक साधारणभेदभिन्नं वनस्पतावेवमवेहि किन्न । भो विज्ञ ! पिण्डं ततुमचन्तां चिदस्ति चेत्रे सुतरामद्ना ॥३१॥

बृक्ष, फल, फूल चादि में रहने वाले एकेन्द्रिय जीव बनस्पति काविक कहलाते हैं। मध्येक और साधारण के भेद से बनस्पति कायिक जीव दो प्रकार के होते हैं। हे विक्र जनो, क्या तुस लोग बनस्पति के पिरह को सचेतन बड़ी मानते हो है अग्नि-यक या ग्रुष्क हुए बिना पत्र, पुष्प, कलादि सभी प्रकार की बनस्पति को सचित्त हो जानना चाहिए॥ २१॥

रकस्य देहस्य युपेक एव प्रत्येकमाहेति जिनेशदेवः । यवैकदेहे बहवोऽक्मिनः स्युः साधारणं तं भवदुःखदस्युः ॥३२॥

जिस एक वनस्पति रूप देह का एक जीव ही स्वामी होता है, बसे जिनेम्द्रदेव ने प्रत्येक वनस्पति कहा है। जैसे नारियळ, खजूर जाति के कुछ । किस एक वनस्पति रूप देह में मनेक वनस्पति जीव एहते हैं, बसे साम्बारण सनस्पति कहते हैं। जैसे रूप सूछ आदि। सामारण वनस्पति का प्रद्युण संसार के जानन दु:सो को देने वाका है। देर। यदिशिसिद्धं फलपत्रकादिं तत्त्रासुकं श्रीविश्वना न्यगादि । यच्छुष्कतां चाभिदचचुणादि खादेचदेवासुमतेऽभिवादी ॥३३॥।

जो पज, फल आदिक आदि से पक आते हैं, अववा ह्यू की. गर्मा, आदि से झुफ्तता को गाम हो जाते हैं, उन्हें ही भी जिनेन्द्रेच मानुक्त (निर्जीव) कहा है। शाणियों पर दया करने बाले संबंधी जनों को ऐसी श्राहुक वनक्षाति ही खाना चाहिए।। ३३।।

वातं तथा तं सहजप्रयातं सचित्तमाहाखिलवेदितातः । स्यात्स्पर्धनं हीन्द्रियमेतकेषु यत्त्रासुकत्वाय न चेतरेषु ॥३४॥

बातु (श्वन) ही जिनका शरीर है, ऐसे जीवों को बायुकायिक कहते हैं। सहज स्थान से बहने बाजी बायु को सर्वेज्ञ हैं ने सिच्छ कहा है। सभी बायुकायिक जीवों के एक स्पर्शनिद्धि है होती हैं। यह बायु भी अयोग-विशेष से प्राप्तुक या अधिक हो बाती है किन्सु इतर त्रस जीवों का शरीर कभी भी व्यक्ति नहीं होता हैं।। देश।

कृमिर्पु पो ऽलिर्नर एवमादिनेकैक्ट्रद्धेन्द्रप्युग् न्यगादि । महात्मिमत्त्वतुरत्र जातु केनाप्युपायेन विविक्त भातु ॥३४॥

क्रमि (कट). पुण, कीड, अगर बीर मतुष्य बारि के एक-एक क्रमिक इत्त्रिय होती हैं। अबोत् कट, संल, में शुक्रा-काहि क्रीक्रिय क्रोबों के सर्वान, कीट रहता वे रो. क्ष्रियां होती हैं। क्रुक, क्रीक्री-नकोड़ा कादि जीतिय कीचे अगर्वात, रब्लन, क्ष्रीर-काल में त्रीव इत्तियां होती हैं। क्रमर, सर्वान, प्रतंत्रा बादि चतुरित्त्र कीचें के रार्वान, रसना, प्राण बीर पक्त वे चार इत्त्रियां होती हैं। सतुष्क, रेव, नारकी और गाय, सेंस, घोड़ा आदि पंचेत्रिय जीवों के कर्ण सहित चक बारों इत्तियां होती हैं 1.इन द्वीन्त्रियादि जीवों का ऋरीर किसी भी ज्याद से अवित्य भेहीं होता, सदा सचित्र ही बना उहता है।विस्तामहर्षे अपी ने कक्क है। तथा।

अभित्युनः पञ्चविधत्वमेति रूपादिमान पुद्गल एव चेति । मर्वेदेषु स्कन्यतया स एव नानेत्यपि प्राह विश्वप्रुद्धे वः ॥३६॥

अनेतन इन्य पांच प्रकार का होता है—पुद्गाल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। इनमें युद्गाल इन्य ही स्पादिवाला है, अयोत् पुद्गाल और स्वा पाया जाता है, अतः वह स्पादी मामूर्य कहलता है। रोग चार इन्यों में स्पादि गुण नहीं चार करी का मूर्य कहलता है। रोग चार इन्यों में स्पादि गुण नहीं चार जाते, अतः वे सस्यी या अपूर्य कहलते हैं। युदाल के आयु और कल्य है स्पाद स्वस्य चार कहलते हैं। युदाल के आयु और कल्य है स्पाद ने में हैं। पुनः स्कृत के सी बादर, सुदस आदि की अपेश नामा भेद जिन अगवान् ने कहें हैं। आप लोगों के समोद-चर्चक जितना कुछ दिलाई देता है, वह सब पुद्गाल इन्य का ही बैमय है। ३३।

गतेर्निमित्तं स्वसु-पुरुत्तेस्यः धर्मु जगद्-च्यापिनमेतकेस्यः । अधर्ममेत्रद्विरीतकीयः जगादः सम्बद्धकरोऽहरायः ॥३७॥

जीव और पुराक हत्यों को गमन करने में जो निमन कारण है, बसे-धवें अंध्य कहते हैं। इससे कियरीत कार्य करते थाले हत्य को, अवीस जीव कार पुराजों के उदरने में 'सहायक निमन्न कारण की खेकी क्षा कहते हैं। जोपोमों ही हत्य सबी जाना में उसार हैं, बेसा क्षिये आप कहते हैं। जोपोमों ही हत्य सबी जाना में उसार हैं, बेसा कि की करते हुए है। नमोऽवकाशाय किलाखिलेम्यः कालः परावर्तनक्रुचक्रेम्यः । प्र एवं तु षड्द्रच्यमयीयमिष्ट्रियतः सम्रत्था स्वयमेव सृष्टिः ॥३८॥

जो' समस्त द्रव्यों को अपने भीतर अवकाश देता है, इसें आकाश द्रव्य कहते हैं। और जो सबे द्रव्यों के परिवर्तन कराने में निमत्त कारण होता है, उसे काल द्रव्य कहते हैं। इस प्रकार यह समस्त जरान् यह द्रव्यमय जानना चाहिए। इसी से यह सब सृष्टि स्वतः सिद्ध उत्पन्न बुई जानना चाहिए। ३८।।

भावार्थ—इस षट्टंडयभयी ठोक को किसी ने बनाया नहीं है। यह स्वत: सिद्ध अनादि-निधन है। इसमें जो भी रचना दृष्टि-गोचर होती है, वह भी स्वत: उत्पन्न हुई जानना चाहिए।

न सर्वथा तत्नसुदेति जातु यदस्ति नश्यचदयोः न भातु । १०० निभित्त-नैमित्तिकसावतस्तु रूपान्तरं सन्दधदस्ति वस्तु ॥३९॥

कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं.होती। इसी प्रकार जो वस्तु विषयान है, वह भी कभी नष्ट नहीं होती है। क्लिनु निमिन्त-निमित्तक आब से प्रथेक वस्तु नित्य नवीन रूप को बारण करती हुई परिवर्त्तित होती रहती है, बढ़ी वस्तु का वस्तुल्लु अभे है।। है।

भावार्य - यद्यपि वस्तु के परिणमन में उसका उपादान कारण ही प्रभात होता है, तथापि निमित्त कारण के विना उसका परिणमन वहीं होता है, अरुपव निमित्त-नीमित्तिक भाव से वस्तु का परिणमन कहा जाता है।

समस्ति वस्तुत्वमुकाटयमेवन्नोचेत्किमात्रवासनमेतु चेतः । 👵 अ यदमितः पाचनमेति कर्तुं जलेन तृष्णामथवाऽपहर्तुम् ॥४०॥ प्रत्येक वस्तु का वस्तुत्व धर्म अकाट्य है, वह सबंदा उसके साथ रहता है। यदि ऐसा न माना बाय, तो मनुष्य का चित्त कैसे किसी बस्तु का विश्वास करें ? देखो—किसी वस्तु के पकाने का कार्य अग्नि से ही होता है और प्याम दूर करने के लिए जल से ही प्रयोजन होता है। अग्नि का कार्य जल नहीं कर सकता और जल के कार्य की अग्नि नहीं कर सकती। वस्तु की वस्तुता यही है कि जिसका बो कार्य है, उसे वही सम्यक करे।।। ४०:।

वीजादगोऽगाहृत बीज एवमनादिसन्तानतया मुदे वः । सर्वे पदार्थाः पश्चो मनुष्या न कोऽष्यमीपामधिकार्यनु स्यात् ॥४१

बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है। यह परस्परा स्नाविकाल से बराबर सम्तान रूप चली आ रही है। इसी प्रकार पशु, मनुष्य सादिक सभी पदार्थ अपने-अपने कारणों से उत्पन्न होते हुए स्नावि से चले आ रहे हैं। इन पदार्थों का कोई अधिकारी या नियन्ता ईश्वर आदि नहीं है, जिसने कि जगन के पदार्थों को बनाया हो। सभी चेतन या अचेतन पदार्थ सनादिकाल से सम्बंध निज्ञ हैं। ॥१॥

चेत्कोऽपि कर्तेति पुनर्यवार्थं यवस्य भ्याद्वपनं व्यपार्थम् । प्रमावकोऽन्यस्य भवन् प्रमाव्यस्तेनार्थं इत्येवमतोऽस्तु भाव्यः ॥४२

बिर जगन् के पदार्थों का कोई ईरवरादि कत्ती-धत्ती होता, तो फिर की के लिए जी का बोना ज्यंथ हो जाता। क्योंकि वही ईरवर विना ही थीज के जिस किसी भी प्रचार से जी को उराज़ कर देता। फिर विवहित कार्य को उराज़ करने के लिए उसके कारण-कलार्यों के अप्येषण की क्या जावस्यकता रहती? अत्रदय यही मानना गुफि- संगत है कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं प्रभावक भी है और स्वयं प्रभाव्य भी है, अयांत् अपने ही कारण कलापों से उराज होता है और अपने कार्य-विदोध को उराज करने से कारण भी बन जाता है। जैसे बीज के लिए दृक्ष कारण है और बीज कार्य है। किन्तु वृक्ष के लिए यहां कार्य हुए बीज कारण बन जाता है और वृक्ष उसका कार्य बन जारे हुए बीज कारण बन जाता है और वृक्ष उसका कार्य बन जारे हु। यही नियम विश्व के समस्त पदार्थों के लिए जानना चाहिए। ४२।।

ह्यर्यस्य वर्मत इहोत्थितमस्ति पश्य वाष्पीभवद्यद्गि वारि जलाशयस्य । तस्यैव चोपरि पतेदिति कारणे किं

वारार पतादात कारण का विश्वप्रवन्धकनिवन्धविधाभृदक्किन् ॥ ४३ ॥

देखां — जलाशय (सरोबरादि) का जल सूर्य के घाम से भाष बन कर उठता है और आकाश में जाकर बादल बन कर उसी के ऊपर बरसता है और जहां आवश्यकता होती है, वहां नहीं बरसता है, इसका क्या कारण है? यदि कोई हेश्वरादिक विश्व का प्रवस्थक या नियामक होना, तो किर यह गड़बड़ी क्यों होती। इसी प्रकार इंश्वर को नहीं मानने वाला मुखी जीवन व्यतीव करता है और दूसरा रात-दिन इंश्वर का भजन करते हुए भी दुखी रहता है, सो इसका क्या कारण माना जाय? अतरख वही सानना चाहिए कि प्रयोक जीव अपने ही कारण-कलायों से मुखी या दुखी होता है, कोई इसरा सल या दन्त को नहीं देता। १६ ।।

यदभावे यत्र भवितुमेति तत्कारणकं तत्सुकथेति । कुम्भकृदादिविनेव घटादि किभितरकल्पनयाऽस्त्वभिवादिन् ॥५४॥ न्याय शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जिसके स्थान में जो कार्य न हो, यह तत्कारणक माना जाता है। जैसे कुन्भकार स्नादि के विना यहा स्टरफ नहीं होता, तो वह उसका कारण या कर्ता कहा जाता है। इस मकार यह सिद्ध हुसा कि प्रत्येक कार्य स्थाने स्थाने स्विना-भावी कारणों से उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में हे स्रभिवादिन्, ईर्बरादि किसी सन्य कारण की करणना करने से क्या लाभ है। १९४॥

इस विषयका विस्तृत विवेचन प्रमेथकमलसार्तरह, बाह्न-परीक्षा, काष्ट्रसहस्री बादि न्याय के प्रन्यों में किया गया है। बातः यहां पर क्षिक कथन करने से विराम लेते हैं।

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्श्वः स सुषुवे भ्रामसेत्याह्नयं
... बाणीभूषणवर्णिनं वृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
सर्गेऽङ्केन्द्रसमङ्किते तदुदितेऽनेकान्ततत्त्वस्थितिः

श्रीवीरप्रतिपादिना समभवत्तस्याः पुनीतान्वितिः ॥१९॥

इस प्रकार श्रीमान सेठ चतुर्भुज र्ष्वार पृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणीभूषण, बाल-ब्रह्मचारी एं० भूरामल वर्तमान सुनि ब्रान-सागर-विरचित इस वीरोद्य काल्य में बीर-भगवान् द्वारा प्रति-पादित क्रोनेकान्त्रवाद कीर वस्तुतस्य की स्थित का वर्णन करने बाल यह क्योसवां सगंसमाम हुआ।। १६॥

अथ विंशतितमः सर्गः

जिना जयन्तुत्तमसौख्यकूषाः सम्मोहदंशाय समुख्यभूषाः। . . विश्वस्य विज्ञानि पदैकभूषा दर्पादिसर्पाय तु तार्क्यरूषाः ॥१॥

को उत्तम ऋतीन्द्रिय सुख के अग्रहार हैं, मोह हर डांस-मध्छरों के लिए दक्षांगी धूप से उठे हुए धूम्न के समान हैं, जिन्होंने विश्व अर के होय पदाओं को जान कोने से सर्वक्र पद को ग्राप्त कर लिया है और को दर्भ (ऋहंकार) मासर्थ आदि सर्पों के लिए गरुड्-स्वरूप हैं, ऐसे जगजवी जिनेन्द्र देव जयवनन रहें ॥ १ ।

सम्रुत्थितः स्नेहरुडादिदोषः पटेऽञ्जनादीव तदन्यपोषः । निरीहता फेनिलतोऽपमार्यं मन्तोषवारीत्युचितेन चार्य ! ।।२।।

जैसे रवेत बन्ध में आंजन (काजल) खादि के निमित्त से मिल-नता खा जाती है, उसी प्रकार निर्मेट खासमा में भी स्नेह (राग) हेष खादि दोश भी अन्य कारणों से उत्पन्न हुए समझना चाहिए। जैसे बन्ध की कालिमा साजुन खीर निर्मेल जब से दूर की जाती है, उसी प्रकार हे खायें, निरोहता (बीनराग) रूप केनिल (साजुन) और मन्तीय रूप जल में खासमा की मलिनता को दूर करना चाहिए।।२।।

नक्रादिभिर्वक्रमथास्त्र यडक्षदस्य ते ज्ञानमिदं च तद्वत् । मदादिभिर्माति ततो न वस्तु-सम्बेदनायोचितमेतदस्तु ॥३॥

जैसे मगर-मच्छों के द्वारा उन्मधित जल वाले नदी-सरोवरा-दिक के अन्तरतल में पड़ी हुई वस्तुएं स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होती, डसी प्रकार मद-मात्सर्यादि के द्वारा उन्मधित तेरा यह झान भी अपने भीतर प्रतिबिम्बित समस्त झेयों को जानने में असमर्थ ही रहा है।। ३।।

नैरचल्यमाप्त्वा विलसेद्यदा तु तदा समस्तं जगदत्र भातु । यदीक्ष्यतामिन्धननाम बाह्यं तदेव भृयादुत बह्विदाह्यम् ॥४॥

जब यह श्वारमा क्षोभ-रहित निखलता को प्राप्त होकर विलमित होता है, तब उसमें प्रतिविभिन्नत यह समस्त जगन् स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है, क्योंकि क्षेत्र पदार्थों को जानना ही ज्ञान रूप श्वारमा का स्थमाव है। जैसे बारित दाहा इत्यन को जलाना दाहक रूप श्रमिक का काम है, उसी प्रकार वाहिरी समस्त क्षेत्रों को जानना ज्ञायक रूप श्वारमा का स्वस्माव है।।।।।

भविष्यतामत्र सतां गतानां तथा प्रणालीं द्धतः प्रतानाम् । ज्ञानस्य माहात्म्यमसाववाधा-वृत्तोः पवित्रं भगवानथाऽधात् ॥४॥

भविष्य में होन वाले, वर्तमान में विद्यमान खीर भूतकाल में बदलब हो खुके ऐसे कालिक पदार्थी की परस्परा को जानना निरा-खरण ह्वान का माहास्पर्व है। ह्वान के खावरण पूर हो जाने से सार्वेकालिक वस्तुओं को जानने वाले पवित्र ह्वान को सर्वेझ भगवान पारण करते हैं, खतः वे सर्व के झाता होते हैं। १।

भृतं तथा भावि खपुष्पवद्वा निवेशमानोऽपि जनोऽस्त्वसद्वाक् । तमग्रये त्विन्धनमासमस्य जलायितत्त्वं करकेषु परयन् ॥६॥

जो कार्य हो चुका, या खागे होने वाला है वह खाकाश-कुसुम

के समान खसद्-रूप है और खसन् पदार्थ को विषय करने वाला क्वान सम्परजान की हो सकता है ? ऐसा कहने वाला मनुष्य भी सम्पक् भाषी नहीं है, क्योंकि अग्नि के लिए इस्पन एकत्रित करने वाला मनुष्य इस्पन में खाती होने वाली खग्नि पर्याय को देखता है ख्रीर करकां (खोलों) में जल तक्ष्य को वह देखता है, खर्यात वह जानता है कि जल से खोले बने हुए हैं। किर यह कीसे कहा जा सकता है कि मून और भाषी वस्तु खनद्-रूप है, कुल भी नहीं है।। ह।।

त्रैकालिकं चासमतिश्च वेचि कुतोऽन्यथा वार्थ इतः क्रियेति । अस्माकमासाय भवेदकम्पा नाप्त्वा प्रजा पात्रस्पैति कंका ॥७॥

उपर्युक्त कथन से यह बात सिद्ध होती है कि सबैज के ज्ञान की तो बात ही क्या है, हमारा-चुन्हारा इन्द्रिय जन्य ज्ञान भी कथं-विन्तु कुछ त्रिकालवर्ती वस्तुष्ठां को जानता है। खन्यवा महाप्य किसी भी पदार्थ से कोई काम नहां ते नकेंगा। देखो—पानी को देखकर प्यासा मनुष्य क्या उसे पीने के लिए नहीं दीइता ? खबांन् दीइता ही है। इसका खमित्राय यही है कि पानी के देखने के साथ ही उसके पीने से मिटने वाली प्यास का मी ज्ञान उसे हो गया है। जिल्लाक होकर उसे पीवेगा खोर इसपनी प्यास को ज्ञावोशा। ७।।

प्रास्कायिकोऽङ्गान्तरितं यथेति साँगन्धिको भूमितलस्थमेति । को विस्मयस्तत्र पुनर्यतीशः प्रच्छकवस्तुचितसम्मतिः सः ।।८॥

इसी प्रकार प्रच्छन्न (गुम) वस्तुष्यों का ज्ञान भी छोगों को होता हुज्जा देखा जाता है। देखो—प्रास्कायिक-(श्रङ्ग-निरीक्षक) एक्स रे यन्त्र के द्वारा झरीर के भीतर छिपी हुई वस्तु को देख लेता है और सौगन्धिक (भूमि को सृंघ कर जानने बाला) मनुष्य पृथ्वी के भीतर छिपे या दवे हुए पदार्थों को जान लेता है। फिर यदि कातीन्द्रिय झान का घारक बतीश्वर देश, काल कौर भूमि कादि से प्रच्छम सुस्म, क्यानरित कौर दूर-वर्ती पदार्थों को जान लेता है, तो इसमें विस्मय की क्या बात है।। पा

यथैति द्रेक्षणयन्त्रशक्त्या चन्द्रादिलोकं किस योगभक्त्या। स्वर्गादिङ्ग्टावशुनातियोगः सोऽतीन्द्रियो यत्र किलोपयोगः । ९।।

देखो — दूर-दर्शक यन्त्र की शक्ति से चन्द्रलोक आदि में स्थित बस्तुओं को आज मनुख्य अत्यक्ष देख रहे हैं। फिर योग की शक्ति से स्योन-दर्गक आदि के देखने में क्या आपत्ति आती है ? योगी पुरुष असीन्द्रय ज्ञान के धारक होते हैं, ये स्वर्गीद के देखने में उस आदी-दिय ज्ञान का उपयोग करते हैं, ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।। ६।

एको न स्वीमपि दृष्टुमईः विमन्ददृष्टिः कलितात्मगर्हः । परो नरश्चेत् त्रसरेखुदकुकः किन्नाम न स्यादखुमाद्धत्कः ॥१०॥

एक सन्द रिष्ट वाला पुरुष सूई को भी देखने के लिए समर्थ नहीं है, इसलिए वह अपनी मन्द रिष्ट की निन्दा करता है और दूसरा सूक्म रिष्ट वाला सनुष्य त्रसरेगु (अपित सूक्म रजींत्र) की मेरेखता है और अपनी सूक्म रिष्ट पर गर्ब करता है। फिर योग-रिष्ट से हुएव परमागु जैनी सूक्म वस्तु को क्यों नहीं जान लेगा॥ १०॥

न्यसादि वेदे यदि सर्ववित्कः निषेत्रयेतं च पुनः सुन्तित्कः। श्रुत्येव सस्यादिति तुसक्लृप्तिः शासेन किं वा द्यदोऽपि दप्तिः ॥११ यदि येद में सबेवेता होने का उल्लेख पाया जाता हैं, तो फिर कीन सुनेता पुरुष कम मध्ये का निषेव करेगा ? यदि कहा आप कि श्रुति (येद-यावप) से ही वह सबज़ हो सकता है, अन्यया नहीं, को यह तथी सम्भव है, जब कि मनुष्य में मबंब होने की शक्ति विद्यान हों। वे शक्ति विद्यान हों। वे शक्ति विद्यान हों। वे शक्ति विद्यान हों। वे शक्ति की साम के मीतर चनक होने पर ही वह हाज से मक्ट होती हैं। क्वा सावारण पापाण में बह चनक शाण से मक्ट हो सकती हैं। कि मनुष्य में जब संखें बहने की हों कि मनुष्य में जब संखें का बनने की शक्ति है, नभी वह श्रुति के निमित्त से प्रकट हो सकती है। ११॥

सची कमादश्वति कीतुकानि करण्डके तत्क्षण एव तानि । भवन्ति तद्वद्व वि नस्तु बोध एकैकशो क्षक्त इयात्र रोधः ॥१२॥

जैसे सूई माछ। बनाते समय कम-कम से एक-एक पुष्प को महण करती है किन्तु हमारी हरिट तो। टोकरी में रखे हुए समस्त पुष्पों के एक साथ हो। एक मामये में बहुण कर तेती है। इसी मकार इसारे छहण्य जीवों का इन्द्रिय-जान कम-कम से एक-एक प्रवाध को जानता है। किन्तु जिनका ज्ञान आवरण से गुक्त हो गया है, वे समस्त प्रवाध को एक-साथ जान के हैं, इसमें कोई विरोध मही है। १२%।

किलालुग्रुबाति जगण्जनोऽपि सेना-बनाय केपदन्तु कोऽपि । समस्तर्वस्तुन्युपयातु तहत् विरोधनं भाति जनाः किपदः ।।१२।।

हमारे जैसा कोई भी संसारी महुष्य सेना, वन श्वादि एक पद को ही सुनकर हायी, घोड़े, रब, रियादों के समृह को वा नाना प्रकार कु. हुम्हें के सहुद्राय के एक साथ बान लेव व है, नेसा सर्वेक प्रमु अतीन्द्रिय ज्ञान यदि समस्त वश्तुओं को एक साथ जान लेवे, तो इसमें आप छोगों को कौनसा विरोध प्रतीत होता है।। १२॥

समेति भोज्यं युगपन्मनस्तु ग्रुखं क्रमेणाचि तदेव वस्तु । ग्रुकान्ययोरीदशमेव मेदग्रुवैमि भो सज्जन नष्टखेदः ॥१४॥

हे सज्जनो, देखो — बाली में परोसे गये समस्त भोज्य पहार्षों को हमारा मन तो एक साव ही महण कर लेता है, अर्थान प्रत्येक बस्तु के मिन्न-भिन्न स्वादों को एक साव जान लेता है, किन्तु उन्हीं बस्तु को को सुख एक-एक ग्रास के कम से ही खाता है। बस, इसी प्रकार का मेद आवरण-विमुक्त अतीन्द्रिय झानियों के और आवरण-युक्त इन्द्रिय झान वाले अन्य लोगों के झान में जानना चाहिए।।१४॥

उपस्थिते वस्तुनि विचिरस्तु नैकान्ततो वाक्यमिदं सुवस्तु । स्वप्नादिसिद्धरिह विश्रमस्तु भो भद्र ! देशदिकृतः समग्तु ॥१५

यदि कहा जाय कि वर्तमान काळ में उपस्थित वस्तु का तो हान होना ठीक है, किन्तु जो वस्तु है ही नहीं, ऐसी भूत या भविष्य-स्काठीन अविध्यमान वस्तुओं का झान होना कैसे संभव है ? तो यह कहाना भी एकान्त से ठीक नहीं है, क्योंकि स्वप्नादि से अविध्यमान भी वस्तुओं का झान होना सिद्ध है। यदि कहा जाय कि स्वप्नादि का ज्ञान तो विश्वम रूप है, मिण्या है, सो हे अन्न पुरुष, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि स्वप्न में देखी गई वस्तु का देश-काठादि-कृत भेद हो सकता है, किन्तु सब्बेश वह ज्ञान मिण्या नहीं होता।। १४॥

भावार्य-स्वप्त में देखी गई वस्तु अते ही उस समय उस देश में न हो, किन्तु कहीं न कहीं किसी देश में और कसी काल में तो उसका अस्तित्व है ही । इसलिए वह सर्वथा मिथ्या रूप नहीं है ।

यद्वा स्पृतेः साम्प्रतमर्थजातिः किमस्ति या सङ्गतये विमाति । सा चेदसत्याऽनुमितिः कथं स्यादेवन्तु चार्वाकमतप्रशंसा ॥१९॥

अथवा स्थन हान को रहते हो। स्मरण झान का विषयभूत परार्थ - समूह क्या बर्जमान में विद्यमान है। वह भी तो देशान्वर और कालान्वर में ही रहता है। फिर खिवसान वस्तु के झान को सत्य माने विना स्कृति झान के प्रमाणता की संगति के लिए क्या खाधार मानोगे। यदि कहा जाव कि स्वृति तो असस्य है, प्रमाण रूप नहीं है, तो फिर खुनुमान झान के प्रमाणता कैसे मानी जा सकेगी ? क्योंकि कार्य-कारण के खिनामाबी सम्बन्ध के सरण-पूर्वक ही तो खुनुमान झान उत्पन्न होता है। यदि कहो कि खुनुमान झान भी अवस्तु है— अप्रमाण रूप है—तब तो चार्वोक (सारितक) मत्त ही प्रशंसनीय हो जाता है, जो के केवल एक प्रत्यक्ष क्सु के झान को ही प्रमाण मानता है। १६॥

स चात्मनोऽभीष्टमनिष्टहानि-पुरस्सरं केन करोतु मानी । ततोऽनुमापि प्रतिपादनीया या चाऽविनाभृस्मृतितो हि जीयात् ॥१७

यदि कहा जाय कि अनुसान झान को प्रमाण नहीं भानना हमें सभीष्ट है, तो हम पूछते हैं कि किर खनुसान के विना खाप चार्वोक स्मेगों के छिए खनिष्ट परकोक सादिका निषेच कैसे स्मेश होगा है इसिंडिये चार्वोकों को भी स्वपने खभीष्ट सिद्धि के किये खनुसान की प्रमाण सानने पर स्वृति को प्रमाण मानना ही पहेगा, क्योंकि खनुमान तो साज्य-साचन के स्रविनाभाव-सम्बन्ध की स्वृति से ही जीता है। इस प्रकार जब बीती हुई बात को जानने वाला हम छोगों का १मरण-झान प्रमाण किन्द्र होता है, तब सूत और अजिष्य की बातों को जानने वाला सर्वेड का श्रातीवृद्ध झान कैसे प्रमाण न माना जायगा १ - अत्यवस्त्र के सूत-जायी बस्तु-विवयक झान को प्रमाण माजना ही न्यादिए ॥ १०॥

श्रुताधिगम्यं प्रतिपश्च वस्तु नाध्यक्षमिच्छेदिति कोऽयमम्तु । दुराब्रहोऽपास्य गुरुं विनेयमभीच्छतो यहदहो प्रसेयः ॥१८॥

परीक्ष ज्योतिय शास बादि से ज्ञान हान वाले सूर्य-प्रहण, पनद-प्रहण बादि सता को स्वीकार करके भी यदि कोई कातीन्त्रय प्रस्यक्ष ज्ञान के द्वारा बात होने काली नस्तुकों को स्वीकार न करे, तो उसे दुराग्रह के सिवाय और क्या कहा जाय ? क्योंकि प्रत्यक्ष- इस्टा के वचनों को ही शास्त्र कहते हैं। इसिक्ट प्रत्यक्ष-इस्टा सर्वेज्ञ को स्वीकार करना ब्याहिए। जैसे गुरु के विना विषय नहीं हो सकता, उसी प्रकार सर्वेद्धी शास्त्रा के विना शास्त्र का होना संभव नहीं है। १९॥

यदस्ति वस्तुदितनामधेयं ब्रेयं न भूयाचु कुतः प्रशेयम् । ब्रेयं तद्व्यसमयीति नीतस्तन्त्वकन्तादयंग्प्रणीतेः ।(१९॥

जो कोई भी वस्तु है, वह जेय है, और जेय को किसी न किसी जान को विवस आवरण होना कोहिए। अदि असु को जेय ने भाग जीवा, 'सो 'सफ्के के अर्थ पहोंचा कोहिए। अदि असु को जेय ने भाग जीवा, 'सो 'सफके के अर्थ (जानक क्या वर्षन स्थाप) किस माना जा संकेगा। अर्थ वर्ष प्रदेश कर्ता के प्रदेश कर कर्ता के अर्थ के किसी के अर्थ क्षेत्र होंगी हैं। जार कर के किसी के अर्थ के जानी के अर्थ के जीवा है। किसी के अर्थ के अर्थ के जीवा है। किसी के अर्थ के अर्थ के जीवा है। किसी के अर्थ के अर

खत सम्पूर्ण पदार्थों का प्रत्यक्ष-रुष्टा भी कोई न कोई खबरब है, यह बात निश्चित होती है।। १६ म

नालंकिमापेक्षमुक्तजातेर्ज्ञानं दृगुत्पत्रनहो यथा ते । नासन्नतापेक्ष्यमिदं भविन्नः प्रत्यक्षमीगस्य समस्तु किन्न ॥२०॥

यदि कहा जाय कि आलंफ (प्रकाश आदि बाहियी साधमां की महायदा से ही हमें पदार्थों का ज्ञान कोता है, तब उनके बिना अमिन्दिय जानी को पदार्थों का ज्ञान कोन है, तब उनके बिना अमिन्दिय जानी को पदार्थों का ज्ञान कोन है। जायगा ? सो यह कहना भी ठीक नहीं है, कारण कि उन्लर आदि राजियर लीवों को आलंकों के आदि के बिना भी ज्ञान होता हुआ देखा जाता है। इस-लिए आलंके आदि दी अपेक्षा से ज्ञान होता है, यह कबन दृषित सिद्ध होता है। यदि कहा जाव कि आसकता (निकटता) की अपेक्षा पदार्थों का ज्ञान होता है, मो यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि दूर-वर्गी पदार्थों को ज्ञान शिला एवं दूर-वर्गी पदार्थों को होता हुआ। देखा जाता है। जब इन उन्लर्गिय आदि को भी प्रकाश और साभीप्य के बिना अपनकार-स्थित एवं दूर-वर्गी पदार्थों का ज्ञान होना संभव है जिस अपनकार-स्थित एवं दूर-वर्गी पदार्थों का ज्ञान होना संभव है, तब हे अन्य प्राणी, सर्व-दर्शी ईस्वर को सब का प्रत्यक्ष ज्ञान होना संभव है, तब हे अन्य प्राणी, सर्व-दर्शी ईस्वर को सब का प्रत्यक्ष ज्ञान होना स्था

आत्मानमक्षं प्रति वर्तते यत् प्रत्यक्षमित्याह पुरुः पुरेयत् । यदिन्द्रियाद्ये रुपजायमानं परोक्षमर्थो द्ववतीह मानम् ॥२१॥

विश्वहत्या सर्वज्ञ का ज्ञान प्रत्यक्ष होकर भी इन्द्रिय, व्यालोक व्यादि की सहायना के विना ही उराज होता है। भगवान पुरु (ऋषभ) देव ने 'क्यक्षं व्यात्मानं प्रति यद् वर्तते, तत्मत्यक्ष' ऐसा कहा है। श्रवीन् जो झान केवल श्रास्मा की सहायता से उराज हो, वह प्रस्थक्ष झान नहलाना है और जो झान इन्ट्रिय, खालोक खादि की सहायता से उस्पन्न होना है, वह झान बंनारास से वस्तुन: परोक्ष ही सामा गया है। २१।

सर्वज्ञतामाप च वर्षमानः न आद्धिकोऽय विधिरेकतानः । ताथागतोक्ते ऽध्ययनंऽपि तस्य प्रशस्तिभावाच्छ्णु भो प्रशस्य॥२२

श्री वर्षमान स्वामी न मर्बज्ञना को प्राप्त किया था, यह बात क्षेत्रक अद्धा का ही विषय नहीं है, व्यपित्त इतिहास से भी सिद्ध है। है हो - ताबानात वौद्ध-) प्रतिपादित मिक्समिनकाय व्यादि प्रश्यों की भी निमांव नाठपुन भगवान महाबीर को दिश्य झानी चौर जन्मा-न्तरों का बेचा कहा गया है। व्यत्यव हे भश्योचम, बौद्ध प्रश्यों की वक्त प्रशक्ति से तुम्हें भी भगवान् महाबीर को सर्वज्ञ मानना व्यक्तिए। १२।।

भावार्थ — इस प्रकार जब एक महाबीर के मर्बेहाता मिछ हो जाती है, तब उन जेंसी बीतरागता को प्राप्त करने वाळों के भी सर्ब-हता मानने में कोई ज्यापिन नहीं रह जानी है। खत: सर्बेह्न का सदभाव मानता चाहिए।

ष्ट्याऽभिमानं वजतो विरुद्धं प्रगच्छतोऽस्मादपि हे प्रबुद्ध । प्रषुचिरेतत्पथतः समस्ति ततोऽस्य सत्यानुगता प्रशस्तिः ॥२३॥

इसलिए हे प्रबुद्ध (जागरूक) भव्य, व्यर्थ के ऋभिमान को प्राप्त होकर भगवान् महावीर वे द्वारा प्रतिपादित मार्ग से विरुद्ध चलना ठीक नहीं है। क्योंकि उनके द्वारा प्रतिपादिन ऋनेकान्तवाद के मार्ग से ही लौकिक, दार्शनिक एवं श्राध्यात्मिक जगत् की प्रवृत्ति :समी-चीन हर से चन्न सकती है, श्रद्यचा नहीं। इसलिए भगवान् महा-बीर की सर्वेतना-मन्यन्थी प्रशस्ति सरवातुगत (सन्यी) है, यह श्रामायाग ही स्वतः मिछ हो जाता है॥ २३॥

> ज्ञानाद्विना न सद्वाक्यं झानं नैराश्यमश्रतः । तस्मान्त्रमो ननोहाय जगतामतिवर्तिने ॥५४॥

पूर्ण या सत्य ज्ञान के विना सद्-बाक्य संभव नहीं हैं श्रीर निराज्ञा, निरीहना एवं वीनरागता को प्राप्त पुरुष के ही पूर्ण सत्य ज्ञान हो सकता है, अस्य के नहीं। इस्तिष्ण ज्ञान से पर-वर्षी अर्थान् जा 3 जा अप ने हिन जम विमोडी महास्मा के लिए हमारा नमस्कार है। २४॥

यज्ज्ञानप्रस्तप्तकलप्रतिबन्धभावाद् व्याप्नोति विश्वगपि विश्वभवाश्च भावान् । भद्रं तनोतु भगवान् जगते जिनोऽसा-बङ्के ऽस्य न स्मयस्याभिनयादिद्योषाः ॥२४॥

जिनका ज्ञान समस्त प्रतिबन्धक कारणों के दूर हो जांन से सर्व विश्व भर के पदार्थों को ज्याम कर रहा है, क्रयोग जात रहा है और जिनके भीतर मद, मस्सर, क्रायेग, राग, देशदि दोष नहीं हैं, ऐसे वे जिन भगवान् समस्त संसार का कल्याण करें।। २४

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्श्वजः स सुदुवे भूरामलेत्याह्वयं वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।

सर्वज्ञत्वसुताह वीरभगवान् यत्त्राणिनां भूषणं सर्गे खाक्षिमिते तदीयगदिते व्यक्तं किलाद्षणम् ॥२०॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चनुर्धुं ज श्रीर घृतवरी देवी से उथ्यक्ष दुए, वाणी-भूषण, वाल क्रावारी, प० भूरामल वनेमान सुनि ज्ञान-सागर-विरचित इस वीरोट्य कात्र्य में मगवान् महाबीर की सर्वेक्षना का प्रतिपादन करने वाला बीसवां सर्गा समात्र हुआ। ॥ २०॥



भयेकविंशः सर्गः

शिवश्रियं यः परिखेतुमिद्धः समाश्रितो वन्त्रभूतां प्रसिद्धः । धरातले वीक्षितुमर्हतां तं पति शरत् प्राप किलैककान्तम् ॥१॥

जो शिव-छहमी को विवाहने के लिए उपत हैं, सर्व जनों की बल्छभता को प्राप्त हैं, कागन में प्रमिद्ध हैं, अरहनतों के स्वामी हैं चौर क्षद्वितीय सुन्द हैं, ऐसे भगवान महाधीर को देखने के लिए डी मानों करड़ च्युत बरातल पर क्षवतीय हुई। ११

परिस्फुरचारकता ययाऽऽपि सिताम्बरा गुप्तपयोधरापि । नलाशयं सम्प्रति मोदयन्ती सरन्नशेढेयभथात्रजन्ती ॥२॥

यह शरद्-श्रतु नव-विवाहिता की के समान जाती हुई झात हो रही है। जैसे नवोदा भी के नेत्रों की तारकाएं (पुनलियां) चंचल होती हुई ज्यमकरी हैं, उसी प्रकार यह शरद-धतु भी खाकाश में ताराखों की ज्यमक से युक्त हैं। जैसे नवोड़ा वधू प्रकट्ट वक्त जारण करती हैं, उसी प्रकार यह शरद-खतु भी श्वच्छ आकाश्च को चारण कर रही है। जैसे नवोड़ा अपने पयोधरों (स्वतां) को ग्रुप रखती है, उसी प्रकार यह शरद-खतु भी पयोधरों (बादखों) को अपने भीतर छिपा कर रख रही है। और जैसे नवोड़ा छोगों के हृदयों को प्रमुद्धित करती है, उसी प्रकार यह शरद-खतु भी जलाशयों में कमलों को विकमित कर रही है। २॥

परिस्कृत्त्वष्ठिशरव् धराऽमी जाता परिभ्रष्टपयोघरा बीः । इतीव सन्तप्तत्या गभस्तिः स्वयं यमाशायुगयं समस्ति ॥२॥

जग्दू-खतु में साठी घान्य पक जाती है, आकाश बादकों से संहित हो जाता है और सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन हो जाता है। इस स्थिति को छक्ष्य में रख कर इस ऋगेक में उथंग्य किया गया है कि अपनी घरा रूप की को माठ वर्ष की हुई देखकर, तथा ची नाम की क्षी को अच्छ-पयोधरा (लटकते हुए स्तर्गे वाली) देखकर ही मातां सूर्य सन्तर्ग वित्त होकर स्थयं भी यमपुर जाने के छिए तस्पर हो रहा है। है।

पुरोदकं यद्विषदो द्रवत्वात्सुधाकरस्यायकरेष्ट्रीतत्वात् । पयस्तदेवास्ति विभृतिपाते बलीयसी सङ्गतिरेव जातेः ॥४॥

वर्षो ऋतु में जो जल विषद श्रवीत मेथों से. पक्षान्तर में विष देने बालों से उराज होने के कारण लोगों को श्रातील कस्ट-कारक प्रतीत होता था, नहीं श्रव शारद्-ऋतु में सुधा-(श्रवृत-) मय कर (हाथ) वाले सुधाकर (चन्द्रमा) की किश्मों का सम्पर्क पाने से दूध जैसास्वच्छ एवं सुस्वादु बन गया। नीतिकार कहते हैं कि जाति की चपेक्षा संगति ही बळवती होती है ॥ ४ ॥

विलोक्यते हंसरवः समन्तानमौनं पुनर्भोगश्चजो यदन्तात् । दिवं सनाकामति सत्समृहः सेवं जरवीगिसभाऽस्मरृहः ॥५॥

किव कहते हैं कि हमारे विचार से यह हारदु-ऋतु योगियों की सभा के समाज प्रतीन होनी है। जसे थोगियों की सभा में भंडा हंस. (में बही परमात्म-रूप हूँ) इस प्रकार ध्यान में प्रकट होने वाला दाइद होना है, उसी प्रकार इस दारदु-ऋतु में हॉर्स का मुन्दर शब्द प्रकट होने लगता है। तथा जंस योगियों की मभा में भोगों को भोगों चाले भोगी-जन मौत-धारण करते हैं, उसी प्रकार इस शाददु-अतु में भोगों अर्थात सर्वों के ब्या जाने वाले मयूर गण बोळना बन्द कर सीन धारण कर लेने हैं। इसी प्रकार जंसे योगियों की सभा में सजनों का समूह स्था पाने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार इस शाददु अपने साराण आकाश में चमकते हुए सारी वहते का प्रयत्न करते हैं। हा। अ

स्फुरत्पयोजातमुखी स्वभावादङ्के शयालीन्द्रकुशेशया वा । शरच्छियं दण्डमपङ्कपात्री विस्कालिताक्षीव विभाति धात्री ॥६॥

शरदु-ऋतु में पृथ्वी पर कमल खिलने छगते हैं और उन पर ष्ठाकर भोने बंदने हैं, तथा सारी पृथ्वी कीचड़-रहित हो जानी है। इस खिति को देखकर कवि उपोक्षा करते हुए कहते हैं कि निमेख पात्र वाली पृथ्वी विकसित कमल-मुखी होकर अमर रूप नेत्रों को धारण करती हुई मानों घमने नेत्रा को खोल कर शरद् ऋतु की शोमा देखती हुई शोमित हो रही है।। ६।। इत प्रसादः कुसुदोदयस्य श्रीतारकाणान्तु ततो वितानम् । मरालबालस्तत इन्द्रचालः सरोजलं न्योमतलं समानम् ॥७॥

अरद् ऋतु में सरोवर का जल श्रीर गगन-तल एक समान दिखने हैं। देखो—इघर सरोवर में तो कुगुद-(श्वेत कमल) के वदय का प्रसाद होता है, अर्थान् श्वेत कमल खिल जाते हैं श्रीर वधर ताराश्रं। का कान्ति का विस्तार हो जाता है। इधर सरोवर में मराल-(हम-) ा वालक चलता हुआ ट्रिटगोचर होता है श्रीर बधर चन्द्रमा की चाल ट्रिटगोचर होती है॥ ७॥

नभागृहे प्राव्यिषदेँश्रृहे चान्द्रीचयैः क्षालननामगृहे । विकोर्य नत्तारकतन्दुलानीन्दुदीपम≂वेरक्षणदा स्विदानीम् ॥८॥

जो आकाश रूप गृह पहिले विष-(जल) दायी मेघों से उपगृह व्याप्त - अयोग् विष-दूषिन था, वह अप चिन्न्द्रका रूप जल-समृह में प्रश्नालिन हो गयो है। अतग्व उसमें इस समय मगल के लिए हो मानों शित्र ने चन्द्रमा रूप दीपक स्वकर नारा रूप चांवलों को विसेंग रिया है । मा

नाराषदेशान्यणिमुन्दिमारान्त्रतारयन्ती विगताधिकारा । सोमं शरस्यम्य वर्गाक्षत्राणा रुपेत वर्षा तु कृतप्रयाणा ॥९॥

सोम (चन्द्रमा) को शरह उछतु के सन्सुख गथा हुआ देखकर इसरेन अपिकार से परित हुई वर्षा उछतु ग्राता रोष से ताराओं के बहाने सुद्दी में भरे हुए मणियां को फेंक कर प्रतारणा करनी हुई वहां से कीच बळी गई॥ ६ त जियांसुरप्येणगणः ग्रुसानाष्ट्रपान्तसृष्ट्यालिकानाम् । सुगीतिरीतिश्रवयेशितेति न शास्त्रिमालं स पुनः समेति ॥१०॥

धान्य चरने के छिए काया हुका ग्रग-समूह धान्य रखाने वाली खुन्दर बाळिकाओं के द्वारा गावे जाने बाले अधुर गीनों के युनने में इस मशर तल्खीन हो जाता है कि वह धान्य को चरना भूछ जाता है और फिर धान्य की क्यारियों में नहीं आता है। १०।।

जिता जिताम्भोधरसारभामां रुतैस्तामी पतताम्रदासाः । उन्मूलयन्ति स्वतन्त्रहाणि शिखावला आश्विनमासि तानि ॥११॥

इस झारदीय आदिवन साल में मेचों की भी गम्भीर वाणी को जीतने वाले हमें के झस्ट्रों से इस लोग पराजित हो गये हैं, यह सीच करके ही मानों उदास हुए समूर गण अपने अधीर की पांचों को उलाक-उलाइ कर फेंग्ने जानी हैं। ११॥

क्षेत्रेभ्य आकृष्य फलं खलेषु निक्षिष्यते चेनकृषकैन्तु तेषु । फलेशवेषः कुनरेशदेशः को वाऽनयोरम्तु निथो विशेषः ॥१२॥

जब किमान लोग उराज हुई थान्य को खेनों में में लान्लाकर खळों (खळियानों क्षीर पक्षान्तर में दुर्जन पुरुषों) में फेंट रहे हैं, सब यह शरद काल खोटे राजा के देश के मानत है, क्षेत्रक उन दोनों मैं परस्पर क्या किरोगता है? श्रुष्योग छड़ भी नहां तु १२ ॥

स्मरः शरद्यस्ति जनेषु कोषी तपस्त्रिनां वैर्थेगुणो व्यलोपि । यतो दिनेशः सम्रुपैति कन्याराशि किलासीमतपोधनोऽपि ॥१३॥ शरद् ऋतु में कामदेव मतुष्यों पर कुपित होता है और तपसी कमों के भी येंथे गुण का लोग कर देता है। क्योंकि असीम तपोधम बाला अर्थोत प्रमुग ताप को धारण करने वाला सूर्व भी इस समय मिंह-गशि को छोड़ कर कम्या-गशि की प्राप्त होता है।। १३ श

भावार्थ सूर्य जैसा तेजस्वी देव भी इस शस्त् काल में कामा-सक्त होकर अपनी सिंह बुक्ति को छोड़ कन्याओं के समूह पर आप पहुँचता है। यह आश्चर्य की बात है।

ते शारदा गन्धवहाः सुवाहा वहन्ति मप्तच्छदगन्धवाहाः । मन्मैयुनम्खानवधृविद्यागतिमन्थगमोदमयाधिकाराः ॥१४॥

वे अरन्-काठीन हवाएं, जो मग्रपण वृक्षां की सुगन्ध को लेकर वहा करती हैं, वे इस समय मंत्रुत-प्रसंग में शिविल हुई चयुक्षों के समीप विहार करने से जित सन्धर समझ भिन्न वाली और आसोद-युक्त अधिकार वाली होकर काम-यासना को बढ़ाने में और भी अधिक सहायत हो जाती हैं। १४॥

मही-प्रहाङ्के मधुबिन्दुबुन्दैः सुषिच्छिले पान्थ इनोऽपि विष्वक् । सरोजिनी चुम्बति चञ्चरीके निक्षिप्तदृष्टिः स्खलतीति शस्वत् ।।१४

कृत्यों के समु-विन्दुओं के समृद से श्रीत पिष्छिछ (कीचक्-युक्त) हुए इस भूगएडक पर चलते बाला पिषक जब कमिलिमी को सूमते हुए असर के ऊपर खानी एप्टि डालता है, तब श्रमसी प्राप्त विद्या की याद कर पम-पम पर स्वलित होते लाता है।। १५।।

तन्लीनरोलम्बपमाजराजि-च्याजेन जाने शरदाऽङ्कितानि । नामाक्षराणीव मनोमत्रस्यानिषेशले पश्चदलेऽर्षितानि ।।१६॥ श्रति सुन्दर कमऊ-दल पर आकर निश्चल रूप से बैठे हुए भ्रमर-पंक्ति के बहाने से मानों शरद ऋतु ने कामदेव की प्रशस्ति के अन्तर ही लिख दिये हैं, ऐसा प्रतीन होता है ॥ १६ ॥

रमा समासाय भ्रजेन सख्याः स्कन्धं तदन्यार्घश्रयात्तमध्या । पन्धानमीषन्महता धृतान्तःकुचाञ्चला कस्य कृतेऽक्षिकृया ॥१७॥

इस शश्दु ऋतु में मन्द-मन्द चलती हुई हवा से जिसके स्तनों का आयेल किम्पत हो रहा है, ऐसी कोई प्रीपित-मर्जुका नारी एक हाथ अपनी सखी के रहमें पर रख कर और दूसरा हाथ अपनी कसर पर रख कर लड़ी होकर किस भाग्यवान के लिए प्रतीक्षा करती हुई मार्ग को देख रही है। १७॥

स्त्रयं शरच्चामग्पुष्पिणीयं छत्रं पुनः सप्तपलाशकीयम् । इंसध्वनिर्वन्थनतो विद्युक्तः स्मग्स्तु माम्राज्यपदे नियुक्तः ॥१८॥

इस जरट्-ऋतु मे ऐमा प्रतीन होना है, मानों कामदेव साम्राज्य पद पर नियुक्त हुआ है, जिसके चबर नो फूले हुए कांस हैं और सम-पर्ण के पत्र ही मानो छत्र है। तथा राज्याभिषक की खुद्दी में कारा-मार के बण्य नियुक्त हमें की ध्वनि ही गाई जाने वाळी विक्तवावळी है।। १६॥

सनन्यजन्यां रुचित्रापः चन्द्रः आत्मित्रियायामिति कोऽस्त्वमन्द्रः । इत्येवमेकान्ततयाऽनुराग-सम्बर्धनोऽभूच्छरदो विभागः ॥१९॥

इस समय चन्द्रमा भी अपनी प्राणित्रया रात्रि में ऐसी अनन्य-जन्य कान्ति को धारण कर रहा है, जैसी कि उसने शेष पांचों ऋतुओं में कभी नहीं घारण की थी। इस ममय कीन चालमी पुरुष चपनी प्राण-प्यारी के प्रति उदामीन रहेगा है इस प्रशार डारदू-च्छु का यह, समय-विभाग एकान्त रूप से लोगों में चपनी नियों के प्रति अनुराग बद्दाने वाला हो रहा है।। १६॥

अपि मृदुभावाधिष्ठशरीरः सिद्धिश्रियमनुसर्तुं वीरः । कार्त्तिकरुष्णान्धीन्दुनुमायास्तिथेनिशायां विजन स्थाऽयात् ॥२०॥

ऐसी शरद-ऋतु में ऋति सुदुल शरीर को धारण करने वाले भगवान् महाबीर भी मुक्ति-लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए कर्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि में एकान्त स्थान को प्राप्त हुए।। २०।।

पावानगरोपवने मुक्तिश्रियमनुगतो महावीरः । तस्या वर्ग्मानुसरन् गतोऽभवत् सर्वथा धीरः ॥२१॥

उसी रात्रिके अपनितम समय में वे धीर बीर सहाबीर पावा-नगर के उपवन में मुक्ति-सक्ष्मी के अपनुगामी वने आरीर उसके मार्ग का अपनसरण करते हुए वे सदा के लिए चले गये॥ २१॥

प्रापाथ तादगनुबन्धनिबद्धभावं

प्रत्यागतो न भगवान् पुनरद्य यावत् । तस्या मुखाम्बुरुहि सङ्गतदृष्टिरम्मान्

तस्येव भाक्तिकजनानपि दृष्ट्रमस्मान् ॥ २२ ॥

तस्पत्र भाक्तिकजनानाप दृष्टुमस्मान् ॥ २२ ॥ इसकं प्रश्चान् भगवान् महावीर उस सिद्धि-वधू के माथ ऐसं अनुराग भाव से निबद्ध हुए कि वहां से वे आज तक भी छौट कर बापिस नहीं आये। वे उस सिद्धि-वधू के मुख-कमल पर ऐसे आसक्त दृष्टि हुए कि हम भक्त जनों को देखने की भी चन्हें याद नहीं रही ॥ २२ ॥

देवैर्नरेरिप परस्परतः समेतै-

दींपावली च परितः समपादि एतैः ।

तद्वरर्म शोधितुमिवाथ तकैः स हुतः

नव्यां न मोक्तुमशकत्सहसात्र पूतः ॥२३॥

भगवान् सहावीर के मुक्ति-वधू के पास चले जाने पर उनका मार्ग शोधन करके के लिए ही मार्नो देवों और मनुष्यों ने परस्वर मिलकर चारों और दीपाबली प्रचलित की, उन्हें हुं द्वा और पुकारा भी। किन्तु वेषित्र भगवान् उस नत्य दिन्य मुक्ति-वधू को सहम। छोडने के लिए समर्थ न हो सके।। २३।।

मो ऽमी स्वशिष्यगृहगीतममात्मनीने

कैवल्यशर्मणि नियुक्तमगादहीने ।

कृत्वेति सिद्धिवनितामनुतामचिन्तः

रेमे स्म कि पुनहदीक्षन इङ्गिनीं तत् ॥ २४ ॥

वे भगवान् महाबीर ऋपने महान् केवलज्ञान सथी अनन्त सुख रूप मिंहासन पर ऋपने प्रधान शिष्य गीतम गणवर को नियुक्त करके गये, इमलिए उन्हें हम लोगों के संभावने की चिन्ता न रही और इसी काग्य वे इस क्यानन्य-दायिनी सुक्ति-वथ के प्रेस में अनन्य रूप से मंखन्न हो गये ॥ रेश ॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्श्वजः स सुषुवे भ्रामलेत्याह्वयं वाणी५्षणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।

तस्या साबुपयाति मर्ग उत सा चन्द्राक्षिसंख्ये कृतिः सम्प्राप्ते शरदागमेऽनु मत्र बृद्धीरत्र शुनिवृतिम् ॥२१॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चनुर्भु ज खौर घृतवरी देवी से उत्पक्त हुद, वाणी भूषण, बाल-बद्धावारी, प० भूरामल वर्तमान सुनि झान-सागर विरचित इस बीरोदय काव्य में भगवान् महावीर के निर्वाण-गमन को वर्णन करने वाला इकीसवां सर्ग समाप्त हुखा ॥ ९१ ॥



अथ दार्विशः सर्गः

बीरस्तु घर्ममिति यं परितोऽनगायं विज्ञानतस्तुलितमाह जमि्द्रताय । तस्यानुयाथिष्टतविस्मरणादिदोषा-द्याऽभृदृशा क्रमगतोच्यन इत्यद्वी सा ॥१॥

बीर भगवान ने सर्व भकार से निर्दोप और विज्ञान-सन्तुष्ठिक जिस भर्म का उपरेश जगन् भर के प्राणियों के दिन के छिल दिया या, उन धर्म की जो दशा भगवान् महावीर के दी क्युत्वियों से विस्मरण क्यादि दोव से हुई, वह क्रम से वहां पर कही जानी है।।री॥

भो भो प्रपरयत पुनीतपुराणपन्था विश्वस्य शैत्यपरिहारकृदेककन्था ।

आभद्रबाहु किल वीरमतानुगाना-मेका स्थितिः पुनरभदसकी द्विदाना ॥२॥ हे पाठको देखो-बह पवित्र, पुगानन (सनातन) धर्म-पन्य (मार्ग) विश्व ही शीतता (बड़ता) को परिहार करने के लिए ऋहिनीय कन्या (रिजाई) के साना था। उस धर्म के अनुवायियों की स्थिति महस्राहु अन्केवली तक तो एक रूप गर्ही, पुनः वह दो धागाआ में परिणत हो गई।। २॥

कर्णाटकं स्थलमगात् स तु भद्रवाहु-यं वीगवाचि कुशलं सुनयः सप्ताहुः । स्थौल्येन भद्र इति कोऽपि तदर्थवेता वीरस्य वाचमत्रसन्धृतवान् सचेताः ॥३॥

जिन भद्रबाहु को सुनिजन वीर-वचन-कुगळ (अन केवळी) कहते थे, ये भद्रबाहु तो उत्तर-प्रान्त में दुर्भिक्ष के प्रकोप से दक्षिण-प्राप्त के कणीटक देश को चले गये। इनर उत्तर-प्रान्त में रह गये खुळभद्र सुनि ने—जो कि अपने को वीर-वाणी के अपने वेता और सुनिता मानने थे—उन्होंने महायीर के प्रवचनों का संम्रह् किया।। रै।

ये स्पष्टशासनविदः खब्बु भद्रबाही-स्तैरस्य कर्म सतुषं गदितं तदाही। संशोधितं न निजचेष्टितमित्यनेन तेषां समं न समभूनिमलनं निरेतः॥४॥

जो सुनिजन भद्रबाहु श्रुतकेवली के शासन के स्पष्ट जानकार ये, उन्होंने स्यूलभद्र के उक्त समह को उस समय सदोष कहा और उसे संशोधन करने के लिए निवेदन किया। किन्तु उन्होंने खपनी इति का संशोधन नहीं किया श्रीर इसी काम्ण उनका परस्पर निर्देखि मस्मिलन नहीं हो सका॥ ४॥

यत्मम्प्रदाय उदितो बसनग्रहेण मार्थ पुरोषवसनादिविधी ग्येण । यो बीरभावमतिबर्ध सुकोमलस्ब-शिक्षां प्रदातमधितिष्ठति सर्वक्रत्यः ॥४॥

इन स्वृत्भद्र के उपरेश एवं आदेश से जो सम्प्रदाय भकट हुआ, वह बीर-भाव (सिंह ग्रुनि) को गीण करके बन-बास छोड़कर पुर-नगरादि से रहने छता और कठिन नपश्चरण एवं न्यान के स्थान पर बक्त-धारणादि गुकुमारना की शिक्षा देने के छिए वेग से सर्वे और पेंछ गया। ४॥

देवर्दिराप पुनरस्य हि मस्प्रदायी
यो विक्रमस्य शरवर्षश्रेतोचरायी ।
मोऽङ्गास्त्रयया प्रकृतशासूविधिस्तदीयाऽऽस्नायं च पुष्टिमनयज्ञगनामितीयान् ॥६॥

पुन: इन्हीं स्थूलभद्र की सम्प्रदाय वाले देवद्धि गणी उनसे पांच सी बर्ष पीछ हुए। उन्होंने खाचाराङ्ग खादि खगनास से प्रसिद्ध खागमां की रचना कर स्थूलभद्र के खानावा की पुष्टि की, जिससे कि उनका सम्प्रदाय जगन् में इतना खाधिक फिल गया।। है।।

काँश्रित् पटेन सहितान् सम्रदीक्ष्य चान्या-नाहुर्दिगम्बरतया जगतोऽपि मान्याः ।

स्वाभाविकं सहजवेषसुपाददानान् वेदेऽपि कीर्त्तितगुणानमनुजास्तथा तान् ॥७॥

इस समय कितने ही थीर-मतानुयायी साधुर्कों को स्वेत पट-सहित देशकर छोग उन्हें सितपट या श्वेतान्यर कहत छोग और येद में भी जिनके गुणों का गान किया गया है ऐसे जगन्मान्य, महज (जन्म-जात) स्वाभाविक तम येप के धारक क्षन्य साधुक्यों को जग्नाट या दितन्यर कहते छगे।। ७॥

बीरस्य बर्त्मीन तकैः समकारि यत्नः
स्थातुं यथावद्य कः खल्ज मर्त्वयत्नः ।
भान्वेऽवि यौवनवयस्यपि दृद्धतायां
तन्यत्वमेव वस्थावरुचे सदाऽयातु ।।८।।

उन छोगों ने भगवान् महाबीर के मार्ग पर यथावन् स्थिर रहने के छिए भर-पूर प्रयत्न किया, किन्तु काळ-रोष से वे उन पर यथापूर्व स्थिर न रह सके। बेंकी कि कोई पुरुष-रत्त (श्रेष्ट्र-प्रकृष्ण) प्रयत्न करने पर भी बाळपन में, यौबन वय में और बृद्धावस्था में काळ के निमित्त से होने बाले परिवर्तन में तुल्या रखने के छिए इस भूतळ पर कभी भी समर्व नहीं हो सकता है॥ पा

पार्श्वस्थमङ्गमबञ्जेन दिगम्बरेषु शैथन्यमापनितमाञ्ज तपःपरेषु । तस्मात्तकेश्वकथिकैने बने निवासः

कार्यः कलेरिति तमां समभूद्विलामः ॥ ९ ॥

शिषिलता को पान हुए समीपकर्ती साधुकों की संगति के बझ से तप में तरस् दिगम्बर साधुकों में भी शीब शिषिलता का गई। इसलिए उनमें भी कितने ही आवायों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि साधुकों के इस काल में बन में निवास नहीं करना चाहिए। यो यह कलिकाल का ही महान विलाम है, ऐना जानना चाहिए।। है।

मन्दत्वमेवमभत्रतु ्यतीरवरेषु

तद्रच्छनैश्च गृहमेश्विनुमाधरेषु । यादङ् नरे जगति दारवरेऽपि तादक्

पाडक् नर जगात दारवर अप ताडक् भूयात कमः किनिति नेति महात्मनां हक ॥१०॥

इस प्रकार जैसे बड़े मुनि-यतीश्वरों में शिविखना आई, उसी प्रकार थीरे-थीरे मुहस्व शावजों में भी शिविखना आ गई। सो सहा-पुरुषों का यह क्यन सत्य ही है कि जैभी प्रश्नि इस जगन् में सनुष्यों की होगी, बेसी ही प्रश्नि क्षोजनों में भी होगी।। १०॥

श्रीमद्भवाहपदपद्ममिलिन्द्रमाव-

भाक् चन्द्रगुप्तनुपतिः स बभूव तावत् ।

सम्पूर्णभारतवरस्य स एक शास्ता

तद्राज्यकाल इह सम्पद एव तास्ताः ॥११॥

श्री भद्रवाहु के चरण-कमलों के असर-भाव को धारण करते बाला चन्द्रगुत नाम का राजा उस समय हुआ। वह सम्पूर्ण भारत-वर्ष का छांद्रशीय शासक था। उसके राज्य-काल में यहां पर को सुस्व देने वाली सभी प्रकार की सम्पन्तियां प्राप्त को ॥ ११॥ मीर्थस्य पुत्रमथ पाँतप्रपेत्य हिन्दु-स्थानस्य संस्कृतिरभृद्रधृनैकविन्दुः ।

पश्चाद नेकनरपालतया विभिन्न-विश्वामवाञ्जनगणः समभूत् खिन्नः ॥१२॥

चन्द्रगुप्त मीर्य का पुत्र विन्दुसार और उसका पीत्र अक्षरीक और तराआन् सम्प्रति आदि अष्ट राजाओं का आश्रय पाकर इस भारत देश की संस्कृति एक विन्दु वाली रही, अवान् उक्त राजाओं के समय सारे भारतवर्ष की सस्कृति और सभ्यता अहिंगा धर्म-प्रधान बनी रही, क्यांकि ये सब राजा गिर्ज जी समृत्याभी थे। पीत्र अनेक धर्मानुवाभी राजाओं के होने से यहां के सनुष्य-गण भी भिन्न-भिन्न धर्मी के विश्वान वाले हो गये। १२।।

हिंसां स दूषयति हिन्दुरियं निरुक्तिः

श्रीवीरराट्समनुयायिषु यत्प्रयुक्तिः । युक्ताऽथ वैदिकजनेष्वपि तत्प्रयोगः

केर्देहिभिः पुनरमानि न योग्ययोगः ॥१३॥

'जो हिंसा को रोप-युक्त कहे' वह हिन्दू है, ऐसी हिन्दू शब्द की तिहिक्त ऋदिंसा को ही धर्म मानने वाले बीर भगवान के ऋदु-बाबी छोगों में ही युक्त होती थी। हिनने ही छोग 'दिन्दू' इस तहद का प्रयोग बेंदिक जानें में करते हैं और उसे ही युक्ति-युक्त बतळाते हैं। हमारी दृष्टि से तो उनका यह कथन युक्ति-संगत नहीं है। १२॥

> अत्युद्धतत्विह वै देकसम्प्रदायी प्राप्तोऽभव र् कुवलये वलयेऽम्युपायी ।

तत्स.कोधनपरः परमाईनस्तु विष्यग्ध्रवोऽधिकरणं कलहैकवस्तु ॥१४॥

भौर-बंभी राजाओं के पश्चात् इस भूमग्रहल पर वैदिक सम्भ-दायी पुन पशु-बिल और हिंमा प्रभान यहाँ का प्रचार कर काति बद्धतना को प्राप्त हुए। तब उनका निषेश परम प्रार्हत (क्राहंन सत्ता-तुयाथी) जैन लोग करने लगे। इस प्रकार यह सारा देश एक मात्र कलह का स्थान बन गया। १४॥

बीरस्य विक्रमधुपेश्य तयोः पुनस्तु सम्पर्कजातनतुष्ठामनकैषयवस्तु । यद्वत्तुवासु निषयोर्जगतौ हताय श्रद्धाविधिः स्वयनिद्वापन्तरागकाय ॥११॥।

पुनः परम प्रशापशाली बीग विकागदित्य के शासन को प्राप्त कर उक दोनों सम्प्रगण्य वाले एक ही अनुशासन में बढ़ हो मेल-मिलाप संगदने को। जो कि चूरा और हन्ही परस्पर मिलकर एक रंग की प्रस्था कर लोडें हैं॥ १४॥

स्नानाऽऽचमादिविधिनस्युग्गस्य तेन् वह्व रुपासनमुरीकृतमाहतेन । यक्षादिकस्य परिपृज्ञननप्यनेनः साढस्वरं च विद्वितं मधुरे मते नः ॥१६॥

इस राजा के शामन-काल में वैदिक-सम्प्रदाय-मान्य स्तान, आचमन आदि बाह्य किया-काण्ड की विधि को स्वीकार करके जन परम आहूं न-मतानुगायी जैन लोगों ने आफ्रिकी ष्पासनाको भी आह्वतिकार कर लिया, यादिक ज्यन्तर देवों की पूजन को भी इस निराहत्वर, सञ्चर प्रवास्त्र जैन सत में स्थान मिला और याहिक वेदानुवायी जनों की अध्यय भी बहुत सी वानों को जैन लोगों ने अपना लिया।। १६।।

त्यक्तं कतौ पशुबद्धेः करणं परेण निर्दिसनैकसमये सुप्तमादरेण । देवानपेक्त्य नवरस्तवनाय चेतः

कृत्वाऽवतारविधिरुत्कलितोऽथवेतः ॥१७॥

इधर यहाँ में पशु-विल करने वाले वैदिक जनों ने भी आहिंसा सय जैन धर्म में अति आदर-भाव प्रकट करके यहा में पशुआों की बिल करना छोड़ दिया और नाना प्रकार के देवी-देवताओं की उपेक्षा करके श्रेष्ठ मनुक्यों के स्वयन में अपना विच लगा कर मानव-पूजा को स्थान दिया और नभी से उन्होंने महापुरुषों के आस्वतार कोने की करना भी ती। १७॥

जातीयतामदुबभूव च जैनधर्नः

विश्वस्य यो निगदितः कलितुं सुशर्म । आगारवर्तिषु यतिष्वपि हन्त खेद-

स्तेनाऽऽश्वभृदिह तमां गण-गच्छमेदः ॥१८॥

जैन और वैदिक जनों के इस पारस्परिक खादान-प्रदान का यह फल हुआ कि विश्व का कल्याण करने वाला यह जैन धर्म जातीयता का खनुभव करने लगा। खर्यात् वह धर्म न रहकर सम्प्रदाय रूप से परिणत हो गया और उसमें बानेक बानि-उपजातियों का प्राहुमाँव हो गया। अरथना दु:स को बात है कि इसके प्रश्नात् गुहस्वों में और पुनियों में शीप्त हो गण गच्छ के भेद ने स्थान ग्राप्त किया और एक सेन धर्मे ब्योक गण-गच्छ के भेदी में विभक्त हो गया।। रैस।।

तस्मात्स्वपक्षपरिरक्षणवर्धनायाऽ-

हङ्कारितापि जगतां हृदयेः∓ग्रुपायात् । अन्यत्र तेन विविकत्सन्तरप्यकारि

सत्यादपेतपरताशनकरिधारि ।।१९॥

जैत धर्म में गण-गच्छ के भेद होते से प्रत्येक पक्ष को खपते पक्ष के रीति-रिवाजों की गक्षा करने का भाव प्रकट हुखा, इससे छोगों के हृदय में खहड़ार का भाव भी बहित हुखा, खयोत्, प्रत्येक पक्ष खपत ही रीति-रिवाजों को श्रेष्ठ मानते लगा और खन्य पक्ष के रिवि-रिवाजों को खपने से हलका मान कर उससे ग्लान करने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे लोग सहय से दर होते गये। १९॥

नस्माद दराग्रहवतीर्षणशीलताऽऽपि

अन्योन्यतः कलहकारितया सदापि ।

एवं मिथो हतितया बलहानितो नः क्षेत्रे बभूव दुरितस्य न सम्भवो न ॥२०॥

इस गण-गच्छ-भेद के फल स्वरूप जंन धर्म-धारकों में दुराग्रह स्वीर ईच्यों ने स्थान प्राप्त किया, तथा परसर में कल्डहकारिता भी बहु। इस प्रकार जंग की पारसारिक लड़ाई से उनके सामाजिक बल (ज्ञक्ति) की हानि हुई स्वीर हमारे इस पत्रित्र भारतवर्ष में स्वतेक प्रकार की बुराइयों ने जन्म लिया।। २०॥ धर्मः समस्तजनताहितकारि वस्तु यदाह्यस्त्वरम् भित्य सद्ग्तरस्तु । तस्मायदेकविशस्त्यमदायि लोकेन

र्याभ्यत विक्रियत उपेन्य सर्गा म रोऽकैः ॥२१॥

को धर्म समस्य जनता का हितकारी है श्रीर जो बाहिरी श्राह-म्बर से रहित श्राम्तरिक वस्तु है, अर्थान जो अपने मन को मद-मस्सारित दुर्भोवों से जितना श्रीयक हूर रखेगा, वह धर्म के जनने ही समीर पहुँचेगा, पित्र विज्ञ धर्म को भी टोगों ने अर्थेक प्रशार के बाहिरी रूप प्रशान किये, जिनके जक में पड़कर सरहरूगें का मन भी ताना प्रशास के विकलों से संलिम रहने छगा।। २१।।

बिम्बार्यनश्च गृहिणोऽपि निषेत्रपन्ति केचित्परे तु यतयेऽपि विशेषपन्ति । तस्मै सदन्दुयसनाधिषे के ानाह्-नीत्योऽभिषेचनविषाविष लब्धवाहः ॥२२॥

हितने ही लोग गृरस्थों के लिए भी प्रतिमा-पूजन का निषेष करते हैं और किनने ही लोग मुनियों के लिए भी उसकी आवर्यकता बतलाते हैं। किनने ही लोग चीवराग परमास्या को मूर्ति को भी बकाभूरुणादि पहिराना आवर्यक मानते हैं, ता क्तिने ही लोग मूर्ति का अभिषेक आदि करना अनावर्यक बतला कर उनका निषेष करते हैं। र र।।

कश्चित्त्वसिद्धमपि प्त्रकलाद्यचित्तं सं.सिद्धमाजुकमलादि पुनः सचित्तम् ।

निर्देष्टुमुत्रतमना न मनागिदानीं सङ्कोचनञ्चति किलात्ममताभिमानी ॥२३॥

डम पवित्र जैन धर्म को मानने वाळों की खात्र यह दशा है कि कोई नो अग्नि से शीमे विना ही पत्र-कल खादि की खिवल मानता है खोर कोई भड़ी-भांति खानि से पकाये गये खालु खादि की भी साम है। इस प्रकार छोग खपने-खपने मत के खांभानी बनकर खोर खम्या प्रकृषण करने के लिए उत्तत वित्त होकर खाज कुछ भी महोच नहीं करते हैं।। २३।।

क्रुगादिनंखननमाह च को ऽपि पापं लग्नस्य वाश्रयश्चनः शमनेऽपि शापम् । इस्मादि मूर्तिननाननदुःस्थिनस्या-सर्वेकस्यमनिक जनो यम्रपैति तस्यात् ॥२४॥

हिनने ही जैन लोग क्र्य-वावड़ी खादि के खुदवाने को पाप कहते हैं और हिसी खान पर लगी हुई खाग के बुझाने में भी पाप बनलाते हैं। इत्यादि हर से नाना प्रकार की मन मानी करनाएं करके खाज का यह मानव र.एर का खन्यबा प्रतिपादन कर रहा है। १४८॥

भावार्य — जनता को पीने का पानी मुख्य करने के खिए कुं आ-बावदी आदि का खुदवाना पुरुष-कार्य है। पर कितने ही जेनी उसे आरम्भ-समारभ्य का कार्य बनाकर पाप-कार्य बन्दछाने हैं। इसी प्रकार किसी स्वान पर ख्री आग को जसमें चिरे हुए प्राणियों की रक्षार्य बुक्षाना पुरुष-कार्य है। परन्तु चे छोग जसमें जलकापिक तथा आप्रि कासक जोवा की विराधना बन्छाकर उसे पाप-कार्य कहते हैं। चन लोगों को ज्ञात होना चाहिए कि जब तक आवक आरम्भ का स्थाभी अप्टम प्रतिमा घारी नहीं बन बाता है, तब तक उसके लिये चक्त कार्य विधेय हैं और वह उन्हें कर सकता है। अन्यवा सभी लोकोपकारी कार्यों का करना असम्भव हो जायगा हां आगम्भ-त्याभी हो जाने पर गृहस्ब को उनके करने का जन-कागम में निषेय किया गया है।

सत्त्वेत्र सम्निगदतः करुणापरत्वं

भूत्वानुयाय्यपि वदेचदिहाद्रुतत्वम् । यत्साधनोऽन्यपरिगक्षणमेव पापं

हा हन्त किन्तु समुपेनि कलेः प्रतापम् ॥२५॥

जो धर्म प्राणिमात्र पर मंत्री और करणाभाव रखने का उपरेश देता है, उसी के अनुवाधी कुछ जैन छोग कई कि साधु के सिवाय अन्य किसी भी प्राणी थी रक्षा करना पाप है। सो हाय यह बड़े हुन्स भीर आक्षय की बात है। अथवा में तो इसे कहन का ही स्वताप मानता हूँ कि छोग जीव-रक्षा जैसे धर्म-वार्ष को भी पाप-कार्य बतकाते हुए सकोच का अनुभव नहीं करते। १२४॥

यः क्षत्रियेश्वरवरैः परिधारणीयः

सार्वः प्रपावहति यश्च किलानणीयः सैवाऽऽगतोऽस्ति वणिजामहहाय हस्ते वैश्यस्वभेव हृदयेन सरन्स्यदस्ते ॥२६॥

जो धर्म उत्तम क्षत्रिय राजाश्रों के द्वारा धारण करने योग्य या, श्रीर द्यपनी सर्व कल्याणकारी निर्दोग प्रवृत्ति के कारण सब का दित- कारी या, यही जैन धर्म काज ज्यावार करने वाले वन वैश्यों के हाथ में का गया है, जो धर्म के विषय में भी हृदय से विणक्-वृत्ति का काअय कर रहे हैं ॥ २६॥

भावार्ष - बाज तक संमार में जितने भी जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्यहर हुए हैं, वे सब क्षत्रिय थे और क्षत्रिय उसे कहते हैं जो दूसरों के तात कर । देना अत्रियों के द्वारा धारण करने योग्य यह जीन धर्म उन उथापारी वेश्य वर्ग के हाथों में खावा है, जिनका कि खपनी वस्तु को निर्मे खोग दूसरों की वस्तु को लोटी बताना ही काम है। यही कारण है कि जिन-धर्म खाज जहां प्राणि-मात्र का हितेषी होने के कारण लोक-धर्म या राज-धर्म होना चाहिए था, वह खाज एक जाति या सम्प्रदाय वालों जा धर्म माना जा रहा है, यह बड़े दु:ख की बात है।

वेषां विभिन्नविषणित्वमनन्यकर्म स्वस्योपयोगपरतोद्धरणाय मर्म । नो चेरपुनस्तु निह्न्छात्मसु तुल्यमेव धर्मं जगाद न वर्ष जिनगजदेवः।।।२७।।

अपनी-अपनी जुरी दुकान लगाना ही जिनका एक मान्न कार्य है और अन्यों से अपना निरालापन प्रकट कर अपनी उपयोगिता सिद्ध करना ही जिनका धर्म है, ऐसे वेंश्यों के हाथों में आकर यदि यह दिश्य धर्मे आज अनेक गण, गन्छ आदि के मेरों में निमक्त हो रहा है, तो इसमें आज थें की क्या है है थी जिनगज देव ने तो समस्त लोवों में सागन आव से जीव-रख्ना को ही धर्म कहा है, जीव-धात को नहीं।। २७।।

इदानीमपि बीरस्य सन्ति सत्यातुयायिनः । येषां जितेन्द्रियं जनम परेषां दुखदायि न ॥२८॥

इतना सब कुछ होने पर भी खाज भी भगवान महावीर के सच्चे खुरायी पाये जाते हैं, जो जितेन्त्रिय है खीर जितका जीवन दूसों के लिए दुःखदायी नहीं है, प्रतुत सर्व प्रकार खीरों का कल्याण करने वाला ही है। १८॥

> सुखं सन्दातुमन्येभ्यः कुर्वन्तो दुःखमात्मसात् । छायावन्तो महात्मानः पादपा इव भृतले । २९॥

जंसे भूतल पर छायायान वृक्ष झीत-उच्चाना खादि की स्वयं बाधा सहते हुए औरों को सुभ प्रदान करते हैं, उसी प्रकार महापुरूव भी खाते वाले दुःखों को स्वयं आरममानु करते (सेलने) हुए से की सुख प्रदान करते के किए इस भूतल पर विचयते दहते हैं।। २६।।

> मक्षिकावज्जना येषां वृत्तिः सम्प्रति जापते । जीवनोत्सर्गमप्याऽऽप्त्वा परेषां विमहेतवे ॥३०॥

कुछ छोगों की प्रवृत्ति आज सकवी के समान हो रही है, जो अपना जीवन उल्पर्ग कर दूसरों के वसन का कारण बनती है।।३०।।

भावार्थं - जैसे सक्स्वी किसी के मुख में जाकर उसके खाये हुए निष्टान्न का बमन कराती हुई स्वयं मीन को प्राप्त होती है, इसी प्रकार भाज कितने ही लोग इस बृत्ति के पाये जाते हैं कि जो अपना मुकसान करके भी दूमरों को हानि पहुँचाने से संलग्न रहते हैं। ऐसे लोगों की मनोबृत्ति पर प्रत्यकार ने अपना हार्दिक दुःख प्रकट किया है।

दुःखमेकस्तु सम्पर्के प्रददाति परः परम् । दुःखायापसरन् भाति को भेदोऽस्त्वसतः सतः ॥३१॥

आरहो देखो — एक तो सम्पर्कहोने पर दूसरेको दुख देता है आरीर दूसरादूर होताहुआ। दुख देताहै, दुर्जन और सज्जन का यहः क्याविलक्षण भेद प्रतीत होताहै॥ ३९॥

भावार्थ—हुर्जन का तो समागम दुखदाथी होता है चौर सज्जन का वियोग दुखदायी होता है, संसार की यह कॅसी विलक्ष्यण दशा है।

प्रत्यकार का लघुना-निवेदन

मत्राऽमृदुगुरङ्कोऽयं सोमत्त्राद्तिवर्त्यपि । विकासयतु पूषेत्र मनोऽम्भोजं मनस्विनाम् ॥३२॥

मेरा यह काट्य-प्रबन्ध यशाप स्टुता-रहित है, क्टूफि होने से सीम्यता का भी उल्लंघन कर रहा है, तथापि मस्ताप-जनक सूर्य के समान यह मनस्वी जनों के हृदय-कमलों को विकसित करेगा ही, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ३२॥

योऽकस्माद्रयमेत्यपुंसकतया भीमे पदार्थे सति
एकस्मिन् समये परेण विजितः स्त्रीभावमागच्छति ।
भीणं वीक्ष्य विजेतुमभ्युपगतः स्पीतो नरत्वं प्रति
नित्यं यः पुरुषायतानदस्वानः वीरोऽसकौ सम्प्रति ॥३३॥

साधारण जन प्राय भयंकर पदार्थ के अवस्थात् सम्मुख उप-स्थित होने पर नपुंसकता से भयभीत हो कायर बन जाता है, वहीं दूसरे समय में अन्य से पराजित होने पर खसकी व्याना प्रकार की आवुत्तम्य विनय करता हुआ की भाव को धारण करता है, काळान्तर में बही मनुष्य किसी क्षीण (दुर्वट-अक्षक) मनुष्य को देशकर उसे जीतने के किए अपना पौरव दिखाता हुआ। हिंगोचर होता है। किन्तु जो निरन्तर ही पुरवार्धी है, निर्भय है और दूसरे जीवों के संस्कृण के लिए सदा उग्रव रहता है वही पुरव वास्तद में आज संस्कृण के लिए सदा उग्रव रहता है वही पुरव वास्तद में आज संस्कृण के लिए सदा उग्रव हता है वही पुरव वास्तद में आज संस्कृण के लिए सदा जगत में स्वीर कहाने के योग्य है और ऐना बीर पुरव ही जगत में सन्य है। दें।

सुपकार इवाहं यं कृतवान वस्तु केवलम् । तत्स्वादत किलास्वादु वदेषुः पाठका हि तत् ॥३४॥

में तो स्पकार (रसोइया) के समान केवल प्रवन्यहर भोज्य बातु का निर्माता हूँ। वह बस्तु स्वादु है, अथवा अस्वादु है, यह तो भोजन करने वार्लों के ममान पढ़ने वार्ल पाठक-गण ही अनुभव करके कड़ी ॥ 3ए ॥

भावार्थ — मेरी यह काठ्य-कृति कैसी बनी है, इसका निर्णय तो विज्ञ पाठकगण ही करेंगे। मेरा काम तो रमोइये के समान प्रबन्ध-रचना शत्र था, सो मैंने कर दिया।

कलाकन्दतयाऽऽह्यादि काव्यं सद्-विधुविम्बद्यत् । अदोषभावमध्यक्षीकुर्यादेतनमहा<u>त्र्</u>तम् ॥३५॥

नाना प्रकार वी कला क्यों का पुश्च हो कर काव्य पूर्ण इस्बन्द्र-विस्व के समान जगत् का आ छा दक हो और आदरोप भाव को भी काङ्गीकार करे,यह सबसुच में महाच् आध्यर्थ की बात है।। ३४॥

भावार्थ—दोषानाम रात्रिका है, सम्पूर्णकळात्रों का धारक चन्द्रमाभी खदोष भावको नहीं धारण करता, खर्यात् वह भी कर्लक से युक्त रहता है। फिर मेरा यह काव्य सर्व काव्य-गत कलाव्यों से युक्त भी हो ब्रौर सर्वया निर्दोग भी हो, यह व्ययंभव सी बात यदि हो जाय, तो वास्तव में ब्राश्चर्यकारी ही समझना चाहिए।

अनन्यभावतस्तद्धि सद्भिरासेव्यते न किम् । केवरुं जडजैर्यत्र मौननालम्ब्यते प्रमो ॥३६॥

है प्रभो, फिर भी क्या वह सकलंक चन्द्र-बिन्च सदा सर्व श्रीक से नक्षत्रों के द्वारा चित्र रहकर खनन्य भाव से सेवित नहीं होता है ? खर्यान् होता ही है। हां, केवल जड़त्रों (कसल्ले) दूसरे पक्ष में जड़ बद्धियों के द्वारा ही भीन का खालस्वन लिया जाता है। 12 से।

भावार्ष —चन्द्रमा कलक-युक्त होने पर भी अपने नक्षत्र-मण्डल से मदा सेवित रहता है, अले ही कमल उसे देख कर भीन रहें, क्यार्ग विकत्तित को। इसी प्रकार मेरे इस सदाव प्रवस्त्र की ब्रानी जन तो पढ़ेंगे ही। अले ही कमलों के समान कुछ विश्वष्ट ज्यक्ति उसके पढ़ने में छपना आदर भाव न दिखां और मौन रखें।

रमयन् गमयत्वेष वाङ्घये सत्रयं मनः । नमनागनयं द्वेष-धाम वा समयं जनः ॥३७॥

(गोमूत्रिकमिदं पद्म)

ज्ञानी जन ऋरना मन शुद्ध वाङ्मय में संख्य कर समय व्यतीत करें। वे ऋपने मन को ईषों, द्वेष, भय और ऋन्याय मार्ग की कोर किंचिन्सात्र भी न जाने देवें॥ ३७॥

विशेष-इस पदा की गोमुत्रिका रचना परिकाष्ट्र में देखें।

नमनोद्यमि देवेम् गेऽईद्रचः सम्बजतां सदा । दासतां जनमात्रस्य भवेदण्यद्य नो मनः ॥३८॥

(यानवन्धरूपमिदम्)

सदा से ही सर्व साधारण जनों थी दासता करने वाले हम जैसे छोगों हा मन काज भगवान् काइत्त वेद के चरण-इमलों थे। नम-स्कार करने के लिए प्रयत्नजील हो कीर उनका गुणानुवाद करें, यह हमारे सीभाग्य की बात ही है।। ३८।।

विशेष – इस पद्य की यानवन्ध-रचना परिशिष्ट में देखें ।

विनयेन मानहीनं विनय्टैनः पुनम्तु नः । स्रनये नमनस्थानं ज्ञ.नध्यानधनं मनः ॥३९॥

(पदावनधरूपमिदम्)

हमारा यह मन विनयके द्वारा अभिमान-रहित होकर पाप-रहित निर्देश वन जाय, महा मुनियों को नमस्कार करे, पर्व सदा क्वान क्वोर प्यान में तन्मय रहे. ऐसी हमारी भावना है ॥ ३६ ॥

विशेष-इस पदा की पदाबन्ध-रचना परिशिष्ट में देखें।

सन्तः सदा समा भान्ति मर्जूमति नुतिप्रिया । अपि त्ययि महावीर ! स्कीतां करु मर्जु मयि ॥५०॥

(तालकृतबन्धमिदं वृत्तम्)

हे महावीर प्रभो, ऋापके विषय में सन्त जन यद्यपि सदा सम-माव रखते हैं, तथापि ऋति भक्ति से वे ऋापको नमस्कार करते हैं, क्यों कि खाप बीतराग होते हुए भी विश्व-भर के उपकारक हैं, निर्दोष हैं और मकीर्णना से गहित हैं । हे भगवन , आपकी क्रण से खापकी यह निर्देषिता मुक्ते भी प्राप्त हो, ऐमी मुझ पर क्रपा करें ॥ ४० ॥

विशेष-इस पद्य की तालवृन्त-रचना परिशिष्ट में देखें।

मङ्गल-कामना

भूगालाः पालयन्तु प्रश्नितमकलोपहवां भृतधात्रीं काले काले समन्ताद्विकिरत् मववा बृष्टिनानन्दपात्रीम् । एतद्वि प्राथराणामसुभवतु पुननानां वाच्यवस्तु सव्यानां जैनमार्गप्रणितिसम्बन्धां प्राप्यतं भद्रमस्त ॥४१॥

शासक लोग प्रजा को सकल उपद्रवों से रहित करते हुए इस भूमण्डल ण भली भाति पालन करें, इन्द्रदेव समय-समय पर आनन्द-दायिनी जल-वर्षा करते रहें, विहानों का मन इस काल्य के पढ़ने में मदा लगा रहे और भज्य जनों का मन जन मार्ग पर आप्रे-सर हो, अर्थान् भल्य जन जन घमं घारण करें और सारे संसार का सटा कल्याण होवे। ४१।

जिनेन्द्रवर्मः प्रभवे समन्तावतः स्वकर्तेच्यपथानुगन्ता । भ्रयाज्जनः कर्मठतान्वयीति धर्मानुकूला जगतोऽस्तु नीतिः ॥४२

श्री जिनेन्द्रदेव प्रह्मपत यह जैन धर्म सर्व क्रोर प्रसार को प्राप्त हो, जिससे कि जनजन क्याने क्लंब्य-मार्ग पर चलें, समस्त लोग करें व नें औं। यमें के क्षतुकूल बनकी नीति हो, ऐसी मेरी भावना है। ४९।

नीतिर्विरोदयस्येयं स्फुरद्रीतिश्च देहिने। वर्धतां क्षेममारोग्यं वात्सन्यं श्रद्धया जिने ॥४२॥

बीरोदय काव्य की यह नीति प्राणि-मात्र के कल्याण के लिए स्कुरायमान रहे. जगत् में हेम श्रीर श्रारोभ्य क्ट्रें, एवं जिन भगवान् में श्रद्धा के साथ प्राणिमात्र पर वास्सल्य भाव रहे।। ४३।।

श्रीमान् श्रेरिक्वतुर्भु जः स सुप्रुवे भ्रामक्तेत्याह्मयं वाणीभूवणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् । तेनेदं रचितं समर्थखचितं भद्रैः पदेरश्चितं जीयाद्वीरमहोदयस्य चरितं युग्नाभिसर्गैर्मितम् ॥२२॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्मुजजी श्रीर घृतवरी देवी से बत्पन्न हुए, वाणी-भूषण, बाल-ब्रह्मचारी प० भूगमल वर्तमान सुनि ज्ञान-सागर के द्वारा रचित भद्र पदों से संयुक्त, बीर भगवान् के इस चरित में वह बाईसवां सर्ग समाग्र हुआ।। २२।।

वीरोदय काव्य समाप्त ॥



वीरोदयकाव्यम्

स्वोपज्ञ-टीका-सहितम्

प्रथमः सर्गः

श्रीवीरदेवमानस्य प्रमाविकमञालिनम् । भक्त्या तदुदयस्येय मया वृत्तिर्विधीयते ॥ १ ॥

श्रिय इत्यादि—जयित सर्वेत्वर्यंण वर्तते स जिनोऽह्मँ स चात्र प्रवच्यविषये श्रियं खांतिकक्षणाये तहस्तं, ऋतु सङ्गलको भवतु । बस्येयं यदीया, सा चार्मा सेवा चीत यमः । समस्ताञ्च ते संश्रोतास्त्र्य तेयां जताय समृहाय वाऽयया से महास्पि रसने समास्वाहते हाचेव यथा गोस्त्रनी तथा सुद्धी सुदुप्रायाऽनुभूयते तथा हृदोऽपि हृदयस्यापि प्रसादिनी प्रमादकर्जी भवति हाक्षातुरुवेय । किञ्चात्रास्त्रम् विषये अमोऽपि मानोव न भवति ततोऽसौ मेवा खलु इति प्रचित्तमायानु-करणात् ॥ १ ॥

कामारितेत्याव — येन महोदयेन नोऽभाक कामिनस्य बाध्य-स्वादि विद्ये मम्पादनाथं कामारिता वाध्य्वतिकारिया समर्थिता स्वी-स्वादि विदोधसत्यरिद्यास्तावन् कामस्य पञ्चाणस्यारिता स्वीहृति । स्व भगवान् अभिजातः सुभगोऽपि नाभिजातः सौन्दयंदित इति विरोधस्तसाझामेनीन्नो महागजस्य जानः पुत्र इति । अभिधातो नामतो वृष्यो क्लोवर्षः स एव सम्र अझसनीयेर अञ्चार्यमान्य इति विरोधस्तरः समाजेन जनसमूहेन माननीयः स वृष्यो नाम प्रवमसीर्थकरो गृह्यते । अन्न विरोधभामाण्डशर ॥ २ ॥ चन्द्रप्रभमित्यादि — चन्द्रप्रभमष्टमतीर्षकरं नौमि यस्याङ्गस्य सारः कानिसीष्ठवादिरूपः स सी प्रिषयां गुरस्तोमं हर्षप्रकर्षग्रुरीचकार प्रसा-रितवान्, यतश्र प्रणस्वचमश्यया मोहस्याभावेगाःशीयगर्द स्वसक्तं सस-स्व कच्याऽसी जनः सुखं कश्री गन्द्रपक्षे कुमुरागां समृहः कीमुद्शासी स्तोमश्च तं तथा सुख्यानां नाम चक्रीरपश्ची ; स्त्रेणः ॥ ३॥

समिस्वस्यादि — भो मनुजाः । पाश्वंप्रभोक्षवोविंशास्यतीर्थंकर-स्य सित्रयये सामीप्यार्थं वो युष्पाकं चिन्तं बहुलाश्च ते उड़ा वितक्षेश्च तेवां भावो सुद्धिंचपाः समस्य यतः काञ्चनानिर्वचनीयां सम्प्रवृत्ति कञ्चा प्रसत्ति प्रसक्तां संक्षेपंच । पाश्वंपाणास्य सित्रयये बहुलोहस्त् बाऽस्तु वतः कञ्चनस्येयं काञ्चना सा चासी सम्प्रवृत्तिञ्च तां सुवर्णेक्ष्यतां भृत्वा प्रसत्ति बहुमूल्यतां संल्येभ्वमिति च ॥ प्र ।।

बीर इत्यादि—हे बीर! स्वमानन्दभुवामुस्सवस्थानानामवीरः
सुगिचिनुर्णबर् मसि। खलु गुणानां भ्रमावियोदीनां मीरः 'भीरोऽधिय-हेळ-नीरेषु' इति विश्वकोचनकोशः। समुद्र एव हिन्तु ज्ञानां भागि मध्ये क्षमीरः सर्वश्रेष्ठः। इ एव इकः कामः स्थारो वा स न विद्यते यस्य स नेकस्तस्य मन्त्रोचनम्। त्यमेकः केवलो मुख्यश्र भवन्ननेकान्तमतेन स्थाद्वादीनांनेकलोकान् पासिनमां श्रातिश्येन पाल्यसि। शाब्दिकवि-रोजाळहारः।। ४॥

क्षानेनेत्यादि—ये पथि सन्मागें सन्वस्तिष्टन्त इत्यतश्च झानेन विवेकेन हेतुनाऽजन्दसुपाध्यन्तः समसुख्यनुभवन्तः सदा ब्रह्म चरन्ति श्वास्मानमेवानुशीळयन्ति, तेषां गुरूणां दिगन्द-परमर्थणां तथा च झानानन्दनामधारकाणां परमब्द्राचारिणां विद्यागुरूणां सदनुष्ठहः इपा-कटाक्षु एव मम कवित्वस्त्रकों कविताकरये तथेव कं वैचीति कवितृतस्य भावः कवित्तरं तस्य शकावात्पसम्येदनेऽपि विक्नळोपी भूयान् ॥ ६॥ बोरोबयानस्यावि व्यक्तिमं बोरोदयं नाम अगवबारियं विद्धानुं पूर्णत्या वर्णिश्तुं श्रीणणाज्ञंत्रो गौ । सस्यान्येव शक्तिमान्नामून् तस्य-तीदानीमहं विद्यानुम्बद्धः सन् जलं गच्छतीति जलगञ्जासाबिन्दुञ्च तस्य तस्यं जलगन्यन्द्रश्रिय्य वहन बालसस्यम् बालकवद्धानभावमेव विद्यानुसिय । त्र्याया पुरालसस्यम् वालकवद्धानभावमेव विद्यानुसिय । त्र्याया पुरालसस्यमंय स्वीकरोसि, यतः कर्तुं न शको-मीति लाचयम् ॥ ७॥

इक्त इत्याबि — श्रथम तु पुनरुपायपद्दमिष शक्तो भवितास्मि युक्तिबलेन समर्थविष्यामि, यनः हिल ते श्रीगुरबः सद्दाया भवन्तु ताब-दिखेतदेव पुष्णाति-यथा शिशुरेव शिशुरो लघुनरबालकोऽपि पितुः सम्बन्धिनो बिल्ड्या सधुनाऽङ्गालिमूलस्य तातिः पङ्क्तियैनेत्येताहक् सन् यथेष्टदेशं वान्छिनस्थान यास्येषेति। दृष्टान्तोऽलङ्कारः ॥ द्र॥ द्रा॥

मन इत्यादि —यशाङ्गनां संमारिणां मनो यस्य श्रीवीरभगवतः पदे चरणी तयोश्चिननेन स्मरणमात्रेणेवानेनः पापविज्ञतं सन् किलाम-छतां स्वच्छतां समिति तत्र तदीयवृत्तस्य चित्रसर्थकमनन्यतया समर्थनं यस्यां सा मे वाक वाणीयमात्तः सुवर्णानां शोभनवर्णानां भावो ययैता-इशी किन्न समस्तु स्योदेव । यदि-पर्शकेकारहेनामरुख्यं ऋदिकःखं तदा-वृत्तीनोकानेककारदालकेन सुवर्णाना कि ख्लु दुर्छभीत यावन् रख्योर-भेदादसरतां देवस्वमेति भव्यानां मन इति च ।। ६॥

रज इत्यादि—ग्राविलं मिलनं च रजो यथा पुष्पसमाभ्रयेण किल सतां गलस्यालङ्करणाय भवित तथँवेदं भद्रचनमपि किलास्तु भवस्येव, येनेदं वीरोदयस्य श्रीमद्वीरप्रभोश्चिवितमाणकरणस्य योऽसावुदार-विचारः स एव चित्तं यस्येत्येताहक् समस्ति । वक्रोक्तिर्द्रशास-आलङ्कार. ॥ १०॥ स्त्रमन्तीत्याबि — अवापि, पुनर्यवाऽयो होइघातुः रसैः पारदा-दिमिः संयोगान् सुवर्णस्त्रमुर्यित तथैव निस्सारमप्यस्मद्रचनं येन वचने-नाईतः परमेष्ठिनो वृत्तस्य चरित्रस्य विधानं निर्माण तदापि स्त्रीकृतं तदिप भवतु यस्योपयोजनाय स्त्रीकरणाय सन्तः परदुःखकातरा जना लसन्ति वर्तन्तेऽश्मिन्मूनले, इति शेषः॥ ११॥

सतामित्यादि — सतां साऽनिर्वचनीया गुणश्रहणहृपा शुद्धिः सह-जेन स्वभावेनानायासेनेव भवति यनसेषां बुद्धिर्वचारशक्तः परोपकारे परेषां प्राणिनामनुष्वह एव निरना तक्षीना भविन वर्षपोऽस्वरादीनां ह्वस्वसुप्यानस्वरुष्ठाः स्व अवद्वनः पाषाणादिनोपहनोऽपि सन् तस्याबुद्धनुने प्राणिन त्रिकाल सर्वदेव यथा स्थानथा स्सालं सर्मसं फलं श्रणित द्दानि, न तु रुष्टो भविन। १२॥

यत्रेत्यादि - यश्य साधार्यु किः मईवान्यगुणाय परगुणप्रहणाय परस्मिश्च गुणसम्पादनाय वा भवति तस्य सूक्तिमंद्रजुवागिष धुधेव रुचिरामुम्बारेबोपयोगिती, स्त्रय चुधेव चूणेरुळिकेब गुणवती यवा-युरागार्थ प्रीत्यर्थ के समनायहेता प्रत्यस्य सम्भेत्र स्त्रुतिस्वस्थाक चेताऽन्त करणं कर्तुं, तन् हारिष्ठव्यव हारि समोहर च तद्ववस्त्रं चाथवा हरिष्ठाया इदं हारिष्ठं तहस्त ताबदुर्वति ॥ १३ ॥

सुबूत्त शांबेनेत्यावि— सन्ता ये सर्युक्त । भवन्ति ते सुबूत्तभावेन सबिग्नत्वेन समुद्धमन्तो हर्षयुकः यथा स्थात्त्वया भवन्तो जनस्य सर्व-साधारणस्य गुणमेनातुभवन्ति जानन्ति, ते न तु तस्य दोषं कदाचिद्रपि, स्वात्यव ते मुक्ताफलत्वं मुक्तनं वनदरकत्वं च तन्युक्ताफलत्वं सफल-स्वात्त्व्यवेत्तवा च मौक्तिकत्वं प्रतिगादयन्तः सन्ति मौक्तिकमपि वर्तुलं भवन् गुणं सूत्रमतुभवति तक्तसार्वेष कारणात्रश्चन सत्युक्षयेषु स्वाद्-रिस्वं विजीतभावं प्रवहानि । रत्योपमा ॥ ११६ । । साधोरित्यावि—साधोः सत्युरुवस्य विनिर्माणविधानुत्यादनकाले विधानुनीमकर्मणः कराद्वस्ततो या तृत्करसम्बिधा निस्सारांशतिवश्युता पतिना तथैवामी अन्ये उपकारिणः श्रीचन्द्रनाद्या थे जगति दृश्यन्ते चन्द्रन-नदीचन्द्रप्रमुख्यस्ते जाता इतीवाहं मन्ये । उद्यक्षालङ्कारोऽयम् ॥ १४ ॥

साधूरित्यादि—साषुः सञ्जनः स गुणस्य प्राहकोऽतप्रवेष तु पुन-रास्तां तावन्, किन्तु मम तु गाः का श्रपि श्राधासासासास्त्राक्षेत्र, सर्वप्रिय-प्राचाना भवोङ्गसुन्दर्भवोदितस्य श्रवन्थस्य यं कञ्चिदपि प्रमादादि-नाऽत्रविष्टदं दोष तं ततः समुद्दण्टय वर्रकरस्यास्माकमनुकूळमाचर-तोऽसत एव सन्तु ॥ १६ ॥

सद्द कुराणामित्यादि — तुर्मेनुष्यय गीवांणी मा कामधेतुर्गीदिव सा चेह मतां सम्ययुरुषाणामक् कुराः कुपारुषाश्तवा मन्तस्र तेऽक कु-राश्च तृणानि तेषां मसुरायते ममागमे सनि यथा पुष्टा भवति तथेव सा सक्य दुष्टस्य निकविकारस्य च जीकनेन समागमेन पयस्विनी सरमा दुश्यदात्री भवनीत्यनेन हेतुना तस्य स्कस्येवोपयोगो महा-नस्त ॥ १७ ॥

कर्णेजपित्यादि—है विधे, यक्तिल स्वं कर्णेजपं पिशुनं इतवा-नभू: करोषि स्म तहेतदिप ते पदुत्वं चातुर्ये विचारकारित्यमेयारित बसो-ऽनेत हुजैतनिर्माणकरणेन साधोर्न्न भाव: मतुष्यत्वं मफ्लोऽभूत् सर्व-साधारणानां टष्टी तस्य समादरणमभूत, तमपेक्सैय चित्रह तम ऋतेऽन्य-काराभावे देवेरिप प्रभाव: क तावरुपान ॥ १८ ॥

अनेकषाम्पेरिकत्याधि—स एय पिशुनो धूर्तस्य ब्यालोर्यू पकस्य सजातिः समान एव भाति, सूचकोऽनेकेषु धान्येषु विपत्तिकारी तथाऽ-यमप्यनेकधा बहुभकारेणान्येषु जनेषु विपत्तिं करोति। सूचको निष्कपटस्य बहुसृत्यस्य बक्कस्यारिर्वेनाज्ञकः पिशुनो निष्कपटस्य सरस्यसनुष्य- स्यारिर्भवति । मूषकरिछद्रं बिलं निरूप्य दृष्ट्वा स्थितिमाद्धाति पिशु-नरिल्रद्रं परयति दोषं समीक्षते तावत् ॥ १६ ॥

य इत्यादि —हे ईश ! काकारिलोक्तस्योल्कस्य सलस्य च परस्परं कोऽसी विशेषो भेदस्यादित्यहं न जाने यनोऽसी दोषायां रात्री दोषेषु बाऽनुरक्तः तथा दिने वा काव्यं वाशवदोऽत्रवार्षे । प्रतिभासमाने प्रकाश रूपे प्रतिभाव चा समाने सम्माननीयेऽसी मालिन्य सान्यकारतां हुष्पे-स्रवामेबाश्येति । ब्रह्मो काश्यवीभित्यकचेदात्र ॥ २० ।।

खलस्पेत्यादि – सलस्य हृद् हृद्यं तन्नकमिव गत्निवद्यवसुपाय-कारि भवति, तुपुतः सतः सभ्यस्य तदेव वासरबद् दिवसतुल्यं प्रकाश-छन् तयोद्धेयोर्भयं भायंकालमिवोरित्य गत्वा तदेतकाव्यं नाम बसु जनानामतुरजनाय प्रीट्ट्रवर्षये भववेव ॥ २१॥

रसायनिमः वादि — हे बुधा भवन्तः अरुवन्तु तावद् ये खलु वि-बुधा देवासे पीयूर्व नामाधनमीयुर्गच्छेपुर्वबुध्वाद् बुद्धिहीनलयदेव यतो यस्तेवनेनाशापि तेऽनिमेपभावादिनेयनामाऽरुव्याम् पिष्का-व्याम् तोऽरुवानित निवर्तनेन । ववन्तु पुरः काव्यमेव रसायनं रसानां रुक्कारादीनामयनं स्थानं वस्ते व। तदेव रसायन कायकरणकारि भेषजमाश्रयामो यतो दूर्वाय स्वयमास्मान मानवतां मा छक्ष्मी. शोभा च तथा तस्यां वा नवनां नवीननां नवामो देहसीन्दर्यमाश्रयासस्या मानवर्तां मानवर्तां गच्छानाः ॥ देर ॥

सार्रावरवादि—श्रहन्तु काव्यमेव त्रिविष्टपं स्वर्गसुपेमि यत इदं सारं कुतीष्टं सारं सर्वोपयोगि भवत् कृतिभिन्नुं द्विमङ्गिरिष्टमभिक्विषतं पत्ते रक्योरभेतान्-श्रक्तंकृतिमिक्पमाधकङ्कारेः सहित तत इन्दं च। सुराणां देवानां सार्थेन समृहेत रम्यं पत्ते सुरस्तो रससहितो थोऽर्जातेन रम्यं रमणीयं यतः विपदो विपनेयं वत्रा श्रवासियामभावो विनाहास्त- त्त्रया पक्षे विक्रतानां पदानां ये छवासे विपल्छवा पदस्य पदित्यादेशात् । तेषामभावतयाऽभिगम्यमनुमननीयम् । समुछ्तमनीनां कल्पछतानां पत्ते समुख्तमनो ये कल्या विचारास्त्रेषां परम्परास्तासामेकस्तन्तुर्यत्र तत् । श्लेषोपमाळङ्कारः ॥ २३ ॥

हारायत इत्यादि— ष्रय किन्तु उत्तमं च तत् वृत्यं छन्द एव मुक्ता मीफिकं सा कीदशी अवति या सुत्रस्य पूर्वेयरस्यरागतवृद्धवचनस्य सार वर्षयोगिभागत्मतृत्यञ्जित वर्षयोति सा। पक्षे सुत्रं दोरकं तस्य सारस-सुन्दरित सोऽधिकारो वस्यास्माऽनग्वीदरा ऽद्येकीणां तत्रक्ष सासुरुवैः करकीकृता करक्रस्यानं सारितोद्योगिताच साहारायते इारवदाचरित। नमन्ताद्वर कुकाल तर्मसं समस्तु अवतु हारपक्षे समन्तभद्राय एतज्ञा-नामाचार्यार्थेव समस्तु समर्वणसन्तु॥ २४॥

क्लित्या हि— अक्छकस्याचार्यस्यार्थम भित्रायम भिष्टुवस्ती ता-मान्त्रव्यवस्ता समान्त्रताः सर्वेत्र वी पृथिच्यामत्त्रव सुर्ह दर्षभेषस्त्रात्ते। मोऽस्पाक च निमित्यवानावस्यं नित्यव दृशिकृत्य सा प्रभाचन्द्रमहाज्ञय-स्व सुमच्छुर्य दुतमा याऽसी वाक् सा जीवान्। यहा वसं कृत्वा प्रभा-श्वदस्य विशेषण वतंत्र्य चन्द्रमहाज्ञस्य प्रभाणि अवस्वहार्थम भिष्टुव-ती कुमुदानां समृहं चंप्रयन्ती किस्तानाः। स्वकृतां स्वभिचािणी-नामयों स्वर्धार्वः, अकोऽपक्रश्वाती स्वरूषित सम्।। २४॥

नव्याक्रांतिरत्यादि – भो सुचित् शोभनचिद् धीर्यस्य तस्य सन्धो-धन त्वं श्रृग्रा तावत् वक्तव्यतो वचनमात्रादिष किं पुनरबात् खळंकु-विभ्यं चमाचळंतरेश्यो दूरा बृत्तित्वंद्या यस्य तस्य कृताधिकारेष्वपि च्छन्दःशास्त्रेचपि च न प्रश्नुत्तियंत्य तस्य मे मम व्याकृत्याकरणमिष् नामित कवित्वन्तु पुनः कुनः सन्धयतात्तर्वृबंकतानस्य । तथा च वक-व्यतोऽळं यतः कृतिश्यः सम्ययतात्तर्वृबंकतानस्य । तथा च वक-व्यतोऽळं यतः कृतिश्यः सम्ययत्रोश्यो दूरकृतः पगड्युस्तयः वृत्ताधि- कारेष्वाचरणज्ञास्त्रेष्वपि प्रवृत्तिहीतस्य से कृतिरचेष्ठा। नव्या वृद्ध-जनासम्मता, कवित्वमात्मविस्यं तु पुन. कुतः सम्भवतान्तेव सम्भ-वेदिति ॥ २६ ॥

सुवर्णपूर्तिरित्यादि — उय निवान आर्थेव कुळवधुसन्दशी यत स्थार्था प्रश्नानीया सद्धिः सुवर्णस्य मूर्तित्व सूर्तिः शारीर स्वयाः, पक्षे शोभनानां वर्णानी कन्नागदीनां मूर्तिः । कत्मन् शोभनः पद्योग्यासो गमनं येखाः पक्षे क्षमनां पदानां सुविष्टनानां न्यासः संकटनं वत्र सा तत्त्वया, तथा चाळंकागणां नुपुगदीनां पक्षे रूपकादीनां सम्भार-वतीति हेनोः कागणादयीतो भूवले जनस्य चेनो हृदयमनुगृहानि सम्मीह्यति ॥ २७ ॥

तम इत्याबि—कवे' कृतिरिन्दुरुचिरिव उयोक्तामहर्छी भवित यतोऽमो तभाऽज्ञानमस्यकार च घुनाना नहरन्ती किञ्च सुधाया ऋसृत-स्थाखत तिह्यानं यस्थाः कीसुदं यहा कीसुदसारधाना प्रसारयन्ती जना-नामाहादनाय सुखाया, किन्तु सैव जहजायाज्ञपुत्राय कमलाय च नाना-व्यवाकरी स्थादेव ॥ रेद ॥

सार्ह्यत्वादि--जाव प्रकृतिविषयं प्रतिपादिवनुमाह--जायदिनाहेत-स्तमयान् सार्व डिवर्षावृत्वे अर्घन्तीयमहत्ववपूर्वे समय प्रत्ये ह भुवस्ततेऽस्मिन् प्रविची-मण्डले म्लु या कापि कररेलाऽऽसीन् जनानां प्रवृत्तिदर्शिमन् प्रतिकृतिकानाहिताहनुविवन्त्रजानीयाज्ञतः।।१६॥

बनार्ष निर्धावि—रसाजिअयोजिङ्गागुर्ध न्द्रिययोर्बझगर्तरसीनेरस-एबाम्यसरप्रझसायोग्यस्तर्भू तैर्ह्होर्क, एतं दश्यमानाः पश्चरस्काराद्यो बनार्ष यत्र बिट्टामालेव वेषसा स्पृष्टास्तावनस्र तेपामन्यः कश्चिद्वयोग इत्येषंहरण अष्टा या काचिद्रक्तिः। सा बहुकोष्यनेकरूपेणाभितस्सर्वत्रेव प्राचाजि प्रचारमिता तदानीम् ॥ २०॥ कि छाग इत्यादि -- अधुनेति तत्काळीनविषयं स्वसंवेदनगोचरी-इत्योक्तमिल तनस्वतानी कि छागः कि महिषः किमकः कि गौरेवं नरोऽपि स्वरसेण यटच्छ्या क्षयद्वारं वार्र वेश्वानस्य बहुँ रिन्धनतामवाप पूर्वेस्तिमम हुत क्वासीन्। अहिंसाविधये तु पुनराप एव दला जला-श्विकरेव सम्पादितः॥ ३२॥

भूतिंग्त्यादि --जनस्य सर्वसाभारणस्य सा इक् बुढिभूँतेंबीचार्ळः समाच्छादि संवरणं नीता वेदस्य चार्यस्मादक् दिनापरक एव समबादि प्रमुक इतस्ततः सर्वेबंब पेजाच्य पराक्षकृषियासुस्यम्भूत् यतः कारणा-वियं मः स्वसापि रक्तमयी जाता। ऋही इत्याखर्यं॥ २२॥

पर इत्याबि—मर्व एव लो होऽप्यज्ञतस्यापकारे दुःश्रोत्यावृते पर-स्त्रक्कीतः समञ्जूत पुतः परोपकारः परस्मायतृत्रहबुद्धिः खर्व उत्तरोत्तरं श्लीणतामयातः वर्षो तृज्ञांन एव जनः सम्माननीयस्त्रमयाप स्वागतं लेसे। इस्यतोऽधिकमहं वो युष्माकं कि पुत्रवैच्मि॥ ३३॥

इनश्र्मिरवादि - लोकोऽयं सर्वोऽपि स्वकीयां रमश्र्ं कूर्वतितं बलयम् समर्थयम् व्यभावि दृष्ट आसीन्, यदास्माकारणादस्येद्द मस्स-दृशी नास्तिकोऽप्यनन्य श्रयनन्यतायाः स्वायपरताया अनिस शकटलपे सनसि द्रिकासम्बद्धाः स्वायपरतायाः स्वायपरताया अतिस शकटलपे सनसि स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्वायपरतायाः स्व

समझत इत्यादि--श्रपायान् पापाद्विश्यना भयमद्याता जनेन जगनां प्राणिनासम्बिका प्रतिपालिकेयमिति तस्या देव्या श्रपि ससञ्च-तस्तत्पुत्रकाणामजादीनां निगले किं पुनरस्यत्र, तेनासिस्थितिरङ्किराऽऽ-सीत्स्बङ्गाद्वारः कृत इत्यनेनेव कारऐपेनयं घरा दुराशीर्द्वंश्वन-प्रायाऽभृत्॥ २४॥ परस्परेत्यादि - जदानी परस्परस्थेतरेतरविषयको यो द्वेषस्तस्ययो प्रवृत्तिरभूत् यत एकः कश्चिद्ध्यन्यजीवाय समाचा समुखापिता क्रांचि-रक्कुरिका वैनेतावानेवासीत् यस्य कोपि कोपगुक्तं विश्तं नाभूदेतावा-कोऽपि जनो न स्थमादि, प्रस्युत कार्त्त्त सनुष्यं जनोऽपविद्यं दृश्द्रम-कर्तंस्थवीलं सन्यते स्म तदानीमिति ॥ ३६ ॥

भूग इत्यादि--स्वपुत्रकाणाभेतेषां देहिनां तत्ताष्टक् चिहसुदीक्ष्य सुवो इदा भूवो वार्ष वार्ष विभिन्नं सुद्धः भूकप्यनमभूदिति ता एता दिशोऽत्यकारानुगता इव वभूतु । किश्चै तस्रभो गगनमि वाधस्ता-द्वन्तुमित्रावाच्छदितः ॥ २०॥

मन इत्यादि—वकस्य भावो विक्रमा तस्य कल्पः समुत्पादातस्य हेतुः माध्यमहिवन सर्पयेव मनो वभूव, वाणी चान्यस्य मर्मे भेशूं इत्याणीव द्धुरिका मद्दशी तीक्ष्णा जाता, कायश्चाय जनस्य जगने सम्पूण-प्राणिवगीयाक्स्य दुः वस्यायः समागमो यतः म दुःस्वर एवाभून्, तदानीं कोऽपि जनः कस्यापि वस्य श्वाजाकारो नासीन्।। देन।।

इतीत्यादि – श्रवेवमुपर्यु कशकारेण दुरितमेवान्यकारः स एवा-रितक आत्मा यस्थ्रीतस्मिन् तथा क्षतात्त्रायन्ते ने अस्त्राः परपरिवाणकरा क्षत्रिया न भवन्ति, तेपामोबेनाथ च नश्चत्रीरण तारकासमृहेन संकुले व्याप्तेत्रन एव निजीध श्वाधमये पापबहुले तस्मिन् समये जानानामाहा-दनाय वीर स्थाह्ययो नाम यस्य म एव वरः सर्वोत्तमः सुधास्यस्थ्रन्द्र-मासेनाजनि जन्म रुध्यम् ॥ ३६ ॥

इति प्रथमः सर्गः ।

द्वितीयः सर्गः

द्वीय इत्यादि — श्रव जन्त्रूपपदो नाम द्वीप. समस्ति, श्रमावेवास-कावयमेव स च व्यव्याऽऽसनेन तु सर्वेयां द्वीपानां मध्ये गच्छतीति प्रश्नातः, मध्यातिर्यस्य स किन्तु नास्ति श्रम्या काचिदुपमा यस्यासत्य। व्यक्ष्म्या स्वकीयद्या शोभया चपविच्योऽप्राध्यन युजयने द्वीपा पार्यास्य व्यव्यवयमेवीयान्तरासेपामपि प्रतिष्ठा यस्त्रानस्य भ्राति ॥ १ ॥

सविदित्यादि — सुरादिः सुमेक्तित्वेताहक् दम्भोमिणसेनोदस्ता समुख्यापिता स्वहस्तस्याङ्कृ ल्यिन सोऽयं द्वीपोऽङ्गिनं प्रनीतीव कि बक्ति कथयति — भो महात्रम्, वरि द्वसं सदावरणमेव वस्तु पार्थयं मार्गोद-वीगिहृद्यं स्वयाऽऽमं लञ्जमित तदा तु पुत्ततः स्थानान् सिद्धं प्रक्तिनारी प्रगणं सरलं सहजाप्यामेव सीविद्ध जानीहि ॥ २ ॥

अधस्थित्वाचि—श्चधित्तर्जित सः च यो विस्कारी प्रलम्बमानस्य योऽमौ फणीन्द्रः शेषो लोकस्यात्वा म एव दरखो यस्य सोऽसी बुनतत्वा वर्तुं लत्याद्यरुष्टः मन क्रत्नमिवाचरित क्रायने प्रश्च सुरर्शन इत्येषं प्रकार वस्तोऽत्यन्तोत्रात्रो यः झीलस्तस्य दम्भो नियो यस्मिस्तं सुवर्णस्य क्रम्भमिर स्वयंग्व समाप्नोति ॥ ३ ॥

सुब्तजावेनेत्याह — झस्य द्वीपस्य सुब्तश्मावेन वर्तुं लाकारतया, पूर्णमास्यां भवति म पीर्णमास्यो योऽनी सुयांशुरचन्द्रसेन मार्थिमहो-पमा तुलना कर्तुं योग्या। यनो यदगि सुवांशुरचन्द्रसेन मार्थिमहो-पम्पा तुल्लाक्य क्ष्याया। यनो यदगि स्वामानः कुष्टिनवन् परिवेष-तुल्यो विलासो यस्य स तबाभूनोऽस्ति ॥ ४॥

तत्त्वानीत्वादि—श्रयसुपर्यु को द्वीपः सप्त क्षेत्राणि तस्त्राति जैना-गमवन् विभर्ति,जैनागमे यथा सप्त तस्त्रानि तथैवेह सप्त द्वेत्राणिः। तत्रापि सप्तसु पुनरसकी भारतनाम वर्षरनस्वेषु जीव इवाधवर्ती सर्वप्रधानः सदक्षिणो यमदिग्गनो बुद्धिमहितो वा अनश्चाप्तहर्षः प्रारब्धप्रमोद-भावः ॥ ४ ॥

श्रीभारतिमत्यादि — श्रस्य द्वीपस्य श्रीभारतं नाम तत्यमिद्धं इससं प्रशंमायोग्यं चेत्रं मन्निगरामि यस्तिक सुदेवानां वृषभादितीर्ष-कराणामागमः समुत्पादस्तस्य वारि जन्माभिषेकज्ञातं ततोऽयवा तैषा-मेबागमः सदुपदेशस्तस्य वारितो वचतनः स्वगरचापवर्गस्य द्वौ किला-विर्ययां चक्रवर्ति-बल्जभद्र-नारायणस्वानामभिधानमेव शस्य धान्यं पुण्य-विर्ययम्पात्यवद्वर्तते यन ॥ ६ ॥

हिमालयेत्याचि—भो: पाठका एव भारनवर्ष एतस्य हीपानामधि-पस्य जम्बूढीपस्य राज्ञ. क्षत्रस्येदं क्षात्रं यद्यक्षस्तदनुपततीत स' क्षत्रियस्व-प्रकाशक इत्यवं । धनुर्विशेष एवास्ति यत्तेऽसौ हिमालय एवोज्ञासी स्कीतिषयो गुण: अत्यञ्जापरिणामी यस्य तथा वाराजिर्लवरासमुद्र एव वंशस्वितिवर्षे गुण्सानीयो यस्य स एतावान् विभाति । हपकालङ्कारः ॥॥।

श्रीत्यादि - श्रीयुक्त। सिन्धुरव गङ्गा च तथोर्मध्येऽन्तरतस्त्र्यक् स्वितेन वर्तमानेन पूर्वश्रापरच पूर्वापनी यावन्भोनिधी ताध्यां सहितेन संखुष्टेन श्लेल वैताद्वत्रवान्ना भिन्नेऽत्र भारतवर्षे पट्खप्टके मित पुन्तस्त्रार्वश्रीतस्यंखप्डनामकोऽयं व्योतिःशास्त्रविहिते षड्वगंके स्वोज्ववर्गं इव सर्वश्रधानोऽहित ॥ = ॥

तिस्मिन्नित्यादि — तिमन्तितिमन् श्चार्येखरङे विदेहरेशे इत्येव-ग्रुचितसिभागं नाम यस्य सन्दंशक्षियसुसान्दं प्रधानवं द्रधान एको विषयो देशोऽस्ति, सच वपुषि शरीरे शिरःसमानः प्रतिभाति, स एवा-धुना नोऽस्माकं गिरा वाचा सक्रियते न्यावस्येते ॥ ॥। अनत्पेत्यादि—तिमन् विनेद्दरेरो प्रामान्तिदिवः सुराख्य एकोप-मानपुपमाधिषयो येपां ते रुक्ताता पीनमाजीद्रमम्बरं गामां शैरमानि च तानि धामानि, श्रनुरुपनि च पीनाम्बरधामानि ते रम्या मनोद्दरा प्रामा पर्य परिवाणि पद्मानि कमळानि यत्र ना आपो जळानि वेषु तानि सरासि येषु सनित ते। अनेकं कन्पा भेता येथां तेऽनेककल्पा-संपां द्वमाणां तहणां सविधानं सम्भादन येषु ते नत एवाद्याय दिमलुं पराभवितुमयोग्या प्रामा। सुराख्यक्ष पीताम्बरस्य इन्द्रस्य धानभिरतावद्वस्यो भवति, पद्मातवाऽप्सरसोऽपि वर्षदेशास्त्र भवन्ति, कल्पद्मा अपि सम्प्येविन। इत्योपमा॥ १०॥

शिक्षाबक्तीत्यादि - शिक्षया स्वचूलिकस्याऽवछीद स्युष्टमन्त्रं यनन यस्-स्वाराऽद्वरा ब्राव्यडक्षण विया नृतनस्य तस्त्राळोरसम्य धानस्य कृटा शायाये ये बहि स्थिता बामस्या बाखमीन्ति वर्तमानास्तऽपि पुनः प्राच्याः पूर्वदिद्यानः पत्तीचौ परिचमदिशा जनतो निरस्तरं पर्यद्योऽ-वजप्य मुख्य तस्य विशामदिला इत्र भानि । ११ ।।

पृथ्वीरवार्ध — अकुरुलित विकसन्ति यानि स्वलपद्मानि तान्येव मेत्राणि नेयां प्रान्तेऽप्रभागे निरन्तरमविच्छित्रनयऽऽद्यानां समागता-नामलीनां अमराणां कुलस्य प्रसक्ति समर्गमवादानीयः कडनलुळं स्थती श्लीकुर्वनीयसत्र प्रान्तस्य पृथ्वी हे सक्षे पाठक ! स्वास्मीयमास्य-सम्बन्धियानाग्यमेवाभित्रयन्तिः प्रकाशयति ॥ १२ ॥

धान्येश्यादि—धान्यस्वली अस्यभूमिस्तम्या थे पालकासंत्रय या बालिकाः क्षेत्ररक्षां कृतुं पुणीस्थतास्त्रामा विनोत्त्रकाष्ट्र गायन्तीना गीत-अनेरतिशयमायुर्वाद्धे तोर्नेरचलतां अवणमित्रहितिचित्राच्यात्रया तिष्क्रम्त्रभावं दथाना स्त्रीकुर्वन्तः कुन्द्रमञ्जाः अस्यस्त्राद्याव्यायाता दीना स्या अपि तत्राभ्यतीनस्य पथिकस्य चित्रे विलेप्यश्चर्कं अभी विलेपान् काष्ट-पाषाणादितः सम्भवा विलेप्या न तु साक्षादृष इति श्रान्ति- मुत्पादयन्ति । संशयालङ्कारः ॥ १३ ॥

सम्पत्कवत्वेतस्यावि —यस्मिन् देशे वृक्षाः समीचीनाः प्रक्षवाः पत्राणि सम्पत्कवास्या सम्पदां सम्पत्तीनां व्या अंशास्तत्त्वेन हेतुना जनानामागतकोकानां हायादिदानेन पत्ने भोजनादिना हितसुत्पादः यन्तो वीनां पिक्षणां नयं समागमनक्षणं नीतिप्रकारं द्यानाः पक्षे विनयं नमस्यं स्वीकृयाणः एव सुष्ठु पत्याः सुपयस्तस्येकशाणा अविद्यानाः सुपयस्तयेकशाणा अविद्यानाः सुपयस्तयेकशाणा अविद्यानाः सुपयस्तयेकशाणा स्विद्यानाः पत्रकृतेन वा सहितं कृतेन सक्तं कंटाप्रविद्याः सिहतं कृतेन सक्तंने वा सहितं कृताणाः प्रकटयन्तो क्षसन्ति ॥ १४ ॥

निशास्त्रियादि — हे नाथ प्रभो ! इह श्रास्मिन् देशे या श्रीसरितां नदीनां तितः परम्पराऽस्ति सा निदाधकाले ग्रीध्मसमयेऽपि कूलमति-क्रम्यातिकूलं यथा स्थानखा प्रतक्षरूपा सती बहति, वर्षाकाल द्वानल्य जलतयेथ प्रचरित । यशस्मात् कारणात् निशासु रात्रिषु चन्द्रोदये सति चन्द्रोपलिसिन्ध्यक्षन्द्रकान्धवितप्रदेशेच्यो नियंती निर्मान्छतो जलस्य च्ला प्रवाही यस्याः सा ताहत्ती भवति ॥ १४ ॥

यदीयेत्यादि--इयं भूः स्वयमपि विश्वस्य हितायोपकारायेका किलाऽ द्वितीया ऋत एव पूता पुनीता तामनन्यभूतामितरात्रासम्भविनी यदीयां सम्पत्ति वीक्षितुसेव विश्कालिताति समुम्मीलिताति क्यानाति यया सेव विभाति, यत उत्कुलानां विकस्तातां तीलान्युक्हाणामिनदीवरा-भियानामनुभावः प्रभावो यस्याः सा सदैव तिग्रति ॥ १६॥

विणक्यवेत्याद —वाणक्ययेषु विपाणस्थानेषु स्तृपिता बच्छिसी-कृता वस्तूनां पदार्थानां विक्रयार्थे जूटाः संमहास्ते चाऽऽपदं प्रतिस्थानमे-बोह्यस्पतिस्वादित, ते बहिष्कृतां निष्कासितामापदं विपत्ति इसस्तः सन्तितमां ते ह्रिसियायाः कसलायाश्च केलिकृटाः क्रीडापवैता इव वा सन्तिता । १७ ॥ यत इत्यादि — नरेकवंशा तहे असमुद्भवा सरिचितिनैदीनां पिक्कः सा सम्पाक्षवर दुं पूर्वेय च कंदुगादिविभूयणंक्यनक्यावरक्का, उक्कसन् सा सम्पाक्षवर दुं पूर्वेय च कंदुगादिविभूयणंक्यनक्यावरक्का, उक्कसन् स्वस्तिति वाद्यांभक्षवन नंन तक्तमभूदेत पक्षे उक्कसिद्धारक्ष्यवर सार्वेय समनुग्रहीतािष मती, अतिवृद्धं गुरुतर पक्षे व्यविद्यं ते जळधीचरं जळाश्यावासभीशा समुद्र पढ्यं मूर्विशिगमािष्णं याति प्राप्नोति,तनो निम्ननावस्य य प्रतिकोधो विश्वामा जायु वातस्त नुवित दुर्गकरोतियवं-शीक्षा न मनि । इत् इति हत्यकाशकर्ये ॥ १८ ॥

पद इत्यादि—इदानीमस्मिन् रेशे साम्प्रतम्पि नाल्यमनल्पं जलं येषु तेऽनल्पजलास्तादाद्वाः भरोनि सन्ति । नथा समीचीनानां फलानां पुष्पाचां च पाहः परिणाभी येषु तंऽनोकहा बुक्षाः सन्ति पदे पद एव तस्ताद्वां तोर्धनिनां श्रेष्टिनां मनस्य मदावतस्थानस्य प्रपायाः पानीयशान्वायाश्चार्याश्चार्यानि विषये यानि नाष्टिकाना तानि न्ययानि सवन्ति, तन्न नेष्णं प्रयोजनाश्चाविदि ॥ १६ ॥

विस्तारिकीत्यावि —यस्य देशस्य घेनुततिर्गोपरम्परा सा विस्ता-रिणी उत्तरोतरं विस्तरणशीला कीर्तिरिय तथा चेन्दोश्चन्द्रस्य रुचिवव-सृतस्रवा दुग्धदात्री यथा चन्द्रस्य दीप्तिः सुधामुत्यादयति तथा पुरवस्य परम्परेव सुदशना शोभनाऽऽङ्गतिः स्वभावादेव विश्वातते ॥ २० ॥

अस्मिन्नित्यादि — इयदिशाले पूर्वोक्तप्रकारवैभवविस्तारमुके श्ववः पृथिव्या भाले छछाट इव भाममानेऽस्मिन देशे विदेहनाम्नि हे खाले! मित्रवर! श्रीतिलक्खं समाद्यल्वीकुर्वाणमस्ति तिरुकं यथा छछाट-स्यालङ्करणं तर्थव यस्यु विदेहदेशस्याभूपणत्या प्रतीयने यक्व जनाः कुण्डिनित्येतरारं पूर्व विद्यते यस्य तन्नाम पुरं कुण्डिनपुरमित्याहुः भोचुस्तदेव समिद्वितुं वणिवतुं मदीयबाहुर्याति त्रवतेते साम्प्रत-मित्ति रोषः॥ २१॥

नाकसिरयादि — तत्पुरमहं नाकं स्वर्गे तर्धवाकेन दुःसन रहितं ताकं सम्प्रवहामि यनो यत्र वनन्तो निवसनक्षीका जनाः सुरक्षणाः सुराणां देवानां कण इव कृण उत्सवो सेपां तथा च रक्षणाम्मान्यणमितास्य-रुक्षणा भवनिन रामाः क्षियश्च सुरीत्येवंस्थां सम्बुद्धितासम्वर्णमितास्य-स्प्राप्तास्तवा शोभना रीतिः सुरीतिः समीचीना बुद्धिः सम्बुद्धिः सुरीतौ सम्बुद्धिमिताः सरमन्वेशवस्य इरथि , राजा च सुना परमपुरुषः शीरस्य सूर्यस्य पुनीतं शाम तेत इव शाम यत्य मरुष्या सुनाशीरस्यन्द्रस्य पुनीत्यामेव शाम यस्येनि सुनाशीरपुनीत्वामाऽस्ति ॥ २२ ॥

अहोतिखाडि—यरगुरमनन्तालयमङ्कुल्यन् मन्भवन् श्राननैरस्त-वर्जितरव चानन्तस्य शेपनागस्यालयं सकुल व्यामं सन् न हीना श्राहीना सद्गुणसम्पन्नासेषां सन्तानैयंद्वाऽद्वीनामिनः रेप्यतस्य सन्तानै; सर्पे समर्थिनस्वान् स्रय च पुलागानां पुरुषभे प्ठानां कन्याभिः साध्वीभित्तया नागकन्याभिरश्चितस्यान् नागलोकस्य समानहांसं तल्यक्षं यिभावि कोभने ॥ १३॥

समस्तीत्यादि — एप भोगीन्द्राणां सुविनां यहा नागानां निवास पवेव्यते वप्तस्य प्रकारस्य छलान् तस्य कुषिवनपुरस्य सप्दल्लं परिनः परिक्रन्य दोग पत्र समाधियनः । परिखामिषणः स्वातिकाबाइललेनाय पुनरन्तु तत्ममीपे निर्मोक एव तस्य कक्ष्रु कसेय बृष्टता त्रिषेण जलेन सहितः समाधिवा इति झायते । २४ ॥

लुरुमीभित्वादि—यस्येयं बदीया तां छङ्भीमनुभावयन्तो इहास्स्वी-कुक्नेतो जनाः पुनरिहागस्य वसन्तः सन्तीति रोषात् कोपववाात् क्रिके-तत्वरित उपरुद्धासौ बारिराशिः स्वयं समुद्धः एवः रियोऽप्ति स्व सायाः स्वातिकाया उपनारः प्रकारो यस्य सः इयन इन्यत्वयः ॥ २४ ॥ विणक्षय इत्यादि — यस्य पुरस्य विणक्ष्यको विपणि-प्रदेशोऽपि स इति तिन्तप्रकारण काव्यस्य कुळा स्थानानाग्रुपति, यदः श्रीमान् स्पर्याचानान् पर्द्वे रुक्कारादिरस्यक बोमावान् । असंक्षेणी पदानां वाद्वे विश्वपाणां प्रणीतिसांग्वसर्णियंत्र, पक्षे पदानां सुप्तिकन्तानां प्रणीतिः सुरवना। अनेकैरवांनां गुडादीनां गुणैः सुरिति सरुवां पञ्चेऽनेकैऽभी वाच्या येथां पदानां तेऽनेकाभांतेयां गुणैः ससादादिभिः शोभमां गौडी-वाच्यादिशीतं समाद्यन्त स्थिकुतीणः, तथा निक्चरनां त्रश्चेमतियक्षु- मृल्यवस्त्राणासीर्णनाभादिभभवाणां प्रतीति समुचितनीतिं, पञ्चे निदक- पटा कपटवर्णनाऽनीं या प्रनीतिच्यु त्राचितनी समस्वत्राचा निरस्कार्यं

रात्रावित्यादि — रात्रावन्यकार — बहुलायां यस्य वणिकपवस्या अं गगनप्रान्तं लिहित स्कृतनीत्यश्चं लिही योऽमी शालो वप्रस्तस्य शृङ्के प्रान्त-भागे समाधितो लग्न सन् भागी नञ्जवाणा गणः समूहः स चाभङ्को यावद् रात्रिः ऋषि न भ्रष्टताभेनिय स स्कृतगं मासुरवनाभावानां प्रदी-पानासुरस्यवतामनुपति स्वीकरोनीत्यनुपानी योऽसी सम्बादो जनाना-मं कमस्येन स्वीकारस्वमतयानन्यकरं प्रमन्नतीत्पादक द्वापित ॥ १७ ॥

अध कृत इत्यादि - यन्नगरं नस्य आलस्यामतो या स्वानिका तस्या ध्यम्भसि सुविशदे जले यान्छविः स्वकीयाऽडकृतिस्तस्या दम्य-जातिः कपटप्रयम्यो यस्य नन् कर्तु । नालाशेकोऽध-कृतोऽभाकमपे-श्र्या नीचैः स्थितिस्तरस्तृत हात वा सन् अवन्नपि, पुनाय मोऽस्यावदी-नानामुक्तमाङ्गश्रुतामोकः प्राणिनां स्थानं कृतः वस्मान् कारणाहस्तु यश्चा-हीनामङ्गश्रुतामोकः प्राणिनां स्थानं कृतः वस्मान् कारणाहस्तु यश्चा-हीनामङ्गश्रुतामो शाणिद्रसर्पमृख्यानां स्थानसस्येवीत किछाहो एवं कृतकोः पत्या नं नागछोकं जेतुमिव प्रयाति । स्लेषिश्रितोत्यक्षालङ्गारः ॥६८॥

सनुस्लसन्नित्यादि—समुद्धसन्तः प्रकटनामाश्रयन्तो ये नीलमण-यस्तेषां प्रभाभिः कान्तिभिः समङ्किते व्याप्ते यस्य नगरस्य वरणे प्राकारे राहोअभिने स करवाने स्विकासि कानेतेव तु हेनुना स्विरखं ख्रुवैः साचि सविकापरिणामं नवा स्वान्त्वा कदाचिदु हीचीमुन्तराशासक्वाऽपि पुत-रवार्ता दक्षिणिक्शां अवति, रवेः सहवसंब दक्षिणायनोत्तरायणतयाः नामसं भवति तदिहर राहुआनिकारणकं प्रतिपद्यतिऽनो आन्तिहेतुकोक्षे-झाळहुत्र: क्ष्यवाहारदी वर्णनान्तरार्थः ॥ २६ ॥

बरत्वातिकर गर्व शर्नेश्वरम्नो मन्दत्या चच्छन्तोऽपि च निमा-दिनो गर्जनशील। वसुदार। ऋचुद्वा व वारिमुचो मेघाको यरत्वातिका-वार्तिण बक्षगरस्य व्यातिकाथ निर्मले नीरं प्रतिभावनागर् स्वकीयप्रति-च्छविप्रदानाद् वागणानां जलाजानां सङ्ग्रसमुसन्दयाना छसन्ति ससुद्वाद्यनो वर्ननः। प्रान्तिसद्छ हार ॥ २०॥

त्त त्रवेख्यादि नत्र अवनीनि नत्रत्यो यो नारीणां जनः समृहस्तस्य धूतैः पुनीतेः पारंपनाणं कीटग्रीमिन चेद रतेः कामदेविश्वया अपि मूर्तिः समस्के क्रमिन शोभने प्रमादाऽनुम्बहुक्तरणं येयां तैस्नाटश्वरेस्माकं कुछा हुक्यान स्थादिनीयं यथाना कारणान् व्यक्तिन समस्या, यनोऽस्माकं कुछा हुक्यान स्थादिनीयं यथाना कारणान् व्यक्तिन समस्या, यनोऽस्माकं कुछा हुक्यान किल्यान कारणान् व्यक्तिन स्थादि जले कुछ- स्थानि किल्य प्रमादि या स्थानिकाया वापि जले कुछ- नित्र । यावादि क पर्योऽस्भोऽस्त्र । इति धन ज्योवस्यां वाः शब्दोऽपि जळ्ळाचको वर्षने यथा प्रमादेकवचनां वापि । ३१ ॥

एतस्पेरवादि---एतस्य नगरस्य वत्र प्राकारः सप्टक्काणां शिखा-राणाममस्य प्रान्तभागस्य रत्नेभ्यः प्रभवति ससुरवदाने वा रूचिः कान्ति-स्तस्याः क्रक्परस्परा यत्र स ताष्ट्रक हे प्रराख्य देवाचासः, त्वसेतस्या-स्माकं क्रमदातु सीचपदानि पनिनां स्वानानि वान्येवापृतस्यान् पद्य । सुधाया अधृतपयोव्यतासुधासञ्ज्ञातानि सुधोरायद्कानि वा सीधानि इति । त्वम् तु पृत्रः सुधाया अदिरादा आख्यः, पुनरिष कर्ष कस्मात् कारणादस्योर्ध्वं वर्तस इत्येवं प्रकारेणाजस्रं निरन्तरं यथा स्था-त्तथा प्रहसतीव किल । शब्दार्थपरावृत्तिमूलकोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ३२ ॥

सन्यूपेत्यादि —समीचीनस्य धूपस्थान्नौ प्रक्षितस्य यो धूमस्यस्था-द्वित्यनाः सम्पन्ना ये वारिदा नेमच अत्र तेषागतीयानां वादित्राज्यो पुजतस्वन्यनादी समर्पितानां नादैः इधदैः कुतं गर्तेतं यत्र तेषां, वाय् वादित्रमानोयां काहळादि किरूचत इति कोद्याः। युक्कामे शिखरमान्त्रमारी प्रतियो विक्रमान्त्रमारी वर्तमाना नावदिति द्रायाः। युक्कामे शिखरमान्त्रमारी प्रतियो ये हमारङ्कः स्वर्णकळका इत्येतस्यस्वियानं कथनं यस्याः सा इम्पेव विवादित्र सम्माति विगाजते।। ३३॥

सखेखाबि - द्वारोपरि श्रःक्षणभागः प्रतोडी कश्यते, तस्याः शि-खरामे छतन्य इन्दुकान्तेयश्चान्द्रकान्त्रसणिध्यो निर्येश्सप्रदुष्ट्रच्छाकार्छ तदापिपासुः पातुमिन्छ्युनिर्दाष्ट्र नेप्तन्त गराऽष्ठ पुनस्तवेवोहित्ता-दुक्तीरतान्त्रगेन्द्रात् सिहाद भीतो भयं शासः सन्नपि स क्याञ्च शीम्रमेन ज्ञळमपीखेर्य्य , प्रयायवाति प्रतिनिङ्गो भवति । सन्देशङ्क्षाः ॥३४॥

वक्तीत्यादि उच्चवित मुहुरुत्थितो भवित केतुरेव करो सम्याः मा जितो भगवान अङ्ग उटलङ्गे यस्था सा धवत कडी, कणव्यो निरम्तर-ख्वानक्ष्यो याः किं र्रुणिकास्तानामपरेकाम मिणाला धव्या तावदित्येषं विक वद्दि-बद्धो भव्यजना धार्मिककोका यदि भवतां सुकृतस्य पुण्या-ख्यस्य ग्रुभक्रमेणोऽजैन मस्यादेन उच्छा वर्तत्र तदारवेष कीवनयेहा-यान, अत्र समागन्छत स्वयमेव स्थमनसा। संस्थवा स्थादिच्छा-या विदेशवण्याः स्टारुक्तास्त्रुव्यव्याः ॥ १२ ॥

जितालया इयादि --तत्र नगरे रात्री स्कटिकस्यायं स्काटिकश्चासौ सौघदेशस्तरिमन्नशेषे सम्यूर्णेऽपि नैकस्मिन्नेव प्रदेशे ताराणाभवतारः प्रस्कुरणं तस्य छलतो मियान् सुपर्विमिर्देवेः पुष्पगणस्योचितः सम्पा- दित उपहारः सन्तर्पणं यत्र यस्मिन्नगरे ते तथाविधा इव भान्ति शोभन्ते जिनालयाः॥ ३६॥

नदीनेत्यादि—यत्र नगरे जना नदीनभावेनौदार्येण हेतुना लस-न्ति शोभन्ने सर्वेऽज्युदारचरिताः सन्ति । बनिताः क्षियो वा पुना रोचि-स्वं सीन्द्र्यं अयन्ति । एवं द्वयेषामुभयेषां गुणतो विशालः कालः स मुद्दस्तः इत्यं मोदपिणामकत्वमुपित । तथा सर्वे जना नदीनस्य भावेन समुद्रभावेन शोभन्ते, क्षियश्च वार इव रोचितत्वं जलहल्यतां नैर्मत्यं अयन्ति, कालश्च तरङ्गभावं विशालोऽपि याति शोशं प्रयाति । श्लेषा-लङ्गारः ॥ २७ ॥

मासाबित्यादि--वन्न नगरेऽभौ नशे मतुष्यो नास्ति यो भोगी न भवित, भोगोऽपीट्रियसुक्तमाशमोऽपि नाभी यो वृपप्रयोगी न भवित, किन्तु धर्मातुक्रुटमेव सुम्बातुम्बनसम्बित । वृणो धर्मापारोपि स ताहजो नास्ति य किन्नाम्बयसमर्थित स्थान सम्बन्धन परस्रप्रेषणा संयुक्तो न भवेन्। सस्यं मित्रद्वसमित नताहकः नात्र सम्भावने वस्कदापि नस्थान नद्धं भूयान् किन्दवासग्णस्थायि मित्रद्व भवित । अर्थोन् परस्रावित । धेन त्रिवासेब्यत कुर्वन्ति तत्रद्या इति । समन्वयाळड्डारः ।। देर ॥

निरोष्ट्ये ध्यादि — यत्रापवादवत्ता पकारोण्यारणवस्त्रं न अवसी-स्यपवादवत्ता । सा निरोष्ट्रणवान्येष्येव, न पुनः करिमन्नपि जनं अप-वादवत्ता निन्दायुक्तस्त्रम् । क्षयं च हेतुवादे न्यायशास्त्रः एव परमस्य निर्दाययोहस्य तकस्य सत्ता परस्तु न व चित्रपि जनं परसिम्पदार्थे मोहसत्ता ममस्वपरिणामः । अपाङ्गनामश्रवणं न वटाक्षे नेत्रवीक्षण एव विवाः किन्तु न कोऽपि किरुणाङ्गी विषठाङ्गः, छिद्राधिकारिस्यं विवस्युक्तस्यं गवाक्षं जालकः एव, किन्तु न कोऽपि जनो दोषान्येषी । परिसंक्ष्याळ्ड्रारः ॥ ३६ ॥ विरोधितीत—यत्र पञ्चरे पश्चिनिवास एव वे: पश्चिणो रोधिता अवरोधः, नात्यत्र विरोधो वेरमावो भाति। सरस्तराक्ष गण्डकीति अस्तोत्तराक्ष सरोगस्तरण भावः सरोगता तां मराकतातिह सर्पाक् क्तरेवित प्राम्तोति, न कोऽपि जनः सरोगः रोगवानितः। क्षीजनस्य मप्यरेशे कटि-प्रदेशे एव दरिद्वा। स्वरूपरिमाणता, किन्तु न कोऽपि जनो दरिद्वो। स्वरूपरिमाणता, किन्तु न कोऽपि जनो दरिद्वो। स्वरूपरिमाणता, विस्तु होन्तरा स्वरूपरिमाणता, विस्तु होन्तरा स्वरूपरा स्वर्णने स्वरूपरा स्वरूप

स्मेहस्थितिरस्यादि - यत्र जनेषु स्मेहस्थितिर्दीपकवस्, यथा स्मेहत किळ तेलेन बिना दीपकस्य जीवनं नास्ति, तथा मनुष्या ऋषि, यस्परस्य अम्णैव जीवन्ति । च पुनस्तेषु नदीनता वारिधिवत्, यथा समुद्रो नदीनाता याचककृत्यभाषो वतने । येथां चापगुणप्रणीतिषु उस्थळ एव रणाङ्ग्यण भनुषः प्रत्यक्काया प्रणीति प्रणयं कुर्वनिन, किन्तवन्यत्र जानुचिद्षिणं कदाचिद्षिणं चापगुणस्य प्रणीतिकु प्रत्यक्काया प्रणीति प्रणयं कुर्वनिन, किन्तवन्यत्र जानुचिद्षिणं कदाचिद्षिणं चापगुणस्य प्रणीतिकु पूर्णस्य प्रणीतिकु परिकास्य

सौन्वयीपत्यादि—एतस्य नगरस्य सौन्दर्यं द्रग्टुं ततश्च पुतः सक्स्यकायाः स्वांसम्भवाया ५वः होभायाः सर्य सरसद्यो होभा तर-छोके नासीरवेताद्दगर्वमपकर्युं दृशकर्युं निशासु सन्पूर्णास्यपि न केवल्येकस्थामेव देवतानां ट्रन्टप्टिबिकःसिना नक्षत्र गणस्यापदेशान्मि-याभ्रिनिमेषा नेत्रसम्बर्गहास्ता सती सम्पततीति वाक्यरोगः॥ ४२ ॥

प्रासादेत्यादि —प्रासादस्य राजसदनस्य शङ्कापे च्यहाजिकोपरि भागे निवासिनीनां समुपवर्तमानां जनीनां जीणां मुक्तदुमाजोक्य दृष्ट्या पुनरेष विधुव्यन्द्रमा योऽसीं संङ्घकळङ्कतातिः सद्दाकळङ्कतेत्वस्य सहितो वर्तते वतस्ततो द्वियेव छज्जयेव क्रिक ततोऽसं शङ्कापे मसी- भवन् प्रयाति गच्छति । तत्रत्याः स्त्रियः प्रसन्नमुख्यः प्रासादश्चातीवो-त्रत इति । वळेक्षाळङ्कारः ॥ ४३ ॥

पदार्षत्वादि—यस्मिकागरे वेश्या नाम स्वैरिणी सापि कवीश्वराणां सुकवीनां भाषेत् अतः परम्मं परार्ष्व या निष्ठा विवातिता मावयन्ती स्वी-क्वांती पक्षे परेषामुक्टानामात्र्यवामार्थीनां निष्ठां भावयन्ती नानार्धे-बत्तीस्वर्धः। कामत्यनिर्वचनीयां ससस्य रङ्काराज्यस्य पक्षे नवानामिष रमाणां व्विति नाटयन्ती पकटयन्ती, कोपर्यका प्रमित्वा बाल्का धना-र्बनाभिकाया ताम, पक्षे शन्दसंग्रहस्येन्द्वामनुसन्द्वानाऽन्वेपयन्ती। स्केलोपमालङ्कार ॥ ४४॥

सोधाप्रेत्यादि - इहाम्मिन्नगरे नामि. प्रसिद्धामि. मोधाप्रे छन्ना-नां बहुनामनल्पानां नीलमणीनां प्रभागि. कान्तिभि: दोणायितत्वं राजिक्त्यत्वं सत्तमेषत् , ततः खलु वापीनदे वर्तमाना सा वराकी चक्र-वाकि कान्त्यत्व वक्रवाकस्य प्रसङ्गेन रहिता सती नाम्यति संज्ञला भवति ॥ १४४ ॥

उत्कुत्लेत्यादि --- चत्कुल्हानि विकसितानि व्यवहानि नीलकमहा-नीव 'चक्कुंगि आसां ना उत्कुल्हात्यक्षच्च्युपतासां सुक्षांचवानामानन-श्रीद्वाव्योभा तथा बलाइठादाकृष्टाऽपद्वता तत प्रवायं नानानिम्कृत्य-रत्नानां स्कटिकोपलानां राजिभः परम्यराभिजेटिकस्य व्याप्तस्य प्रासा-द्वायं राजसद्तत्य भित्ती यस्य विभ्यावताग्रह्णविन्यातस्वच्छलाह्ना-राबद्धा ततुः शरीरं यस्य सः काग्यब्दततुः सन् पुनस्यं चन्द्रपद्व-स्वस्यैन प्रासादस्य चन्द्रारम्भ्यः यत्तां निर्मच्छतः प्रयसो जलस्य भरः प्रवाहरूनिमयद्वीविति विकर्णत ॥४६॥

एतस्येत्यादि—श्रक्षिलेपु पत्तनेषु नगरेपु यत्साम्राज्यमाधिपत्यं तस्य या सम्पत् समृद्धिस्तस्याः पत्युः स्वामिन एतस्य क्रुण्डिनपुरस्य सततं सबेदेव रात्रौ यहोपुरस्य पुरद्वारस्य मध्ये उपिर केन्द्रे बर्तते स मानी सुकसम् जोभागाजे योऽची चन्द्रः म गोपुरमध्यवनिसुक्तसम्बद्धः, स किरीटावने जिरोभूवणमिवाचरितः। तो चेन् खपरावा पुन: सम्मणि-मिहीरकादिस्तांचेंद्वा निर्मिता था भूमिरङ्कणं तस्या विसरे प्रसारे बोऽसी नाराणामवतारः प्रतिच्छाविस्तच्छलान् बेहाआदाकाशादापित-ता साञ्चञ्चला सच्छा सुमनमां कुसुमानां वृद्धिः सनी सम्बद्धन्ती सा कुन कारणान्। तस्मादिदं नगरं सक्तनगराणां सम्राडेवेति भावः। सहेत्वकोश्रेक्षालङ्कारः।। ४७॥

काडिन्यां-स्वाि काडिन्यं कडोरस्यं तिकलाबलानां कुचमण्डले स्तनप्रदेशे एव, नाचान्यत्र काडिन्य गाइमुच्टिर्स जनेतु । म्रथ तथेव दोषाकरस्य जन्द्रभावस्तामां सुद्धल एव पर केवल वर्तने, नान्यत्र मनुष्यािश्च दोण्युक्तवमाति । वक्त्यं तासां मृदुयु कुकामलेलु कुनतेत्वकु केरेलु वर्तने तस्य लासुविकापेश्वर्या सुरुष्ठ प्रकृताका कुक्तेत्वकु केरेलु वर्तने तस्य लासुविकापेश्वर्या सुरुष्ठ प्रकृताका नार्वाणान्यक-पेनु मन्यदंग्येश्वर्यः । दहन्तवालि च कुचना प्रतिभाति नान्यः कोडायि दुवंलः । नामामुवीजांनुस्यल एव विलोधना लोमाभावो नान्यः काडायि परियोग्यम् । नामां नियले करठदंशे एव शक्क्षलं श्राह्मकार-प्राप्ति न चान्यत्र कुजारि मृत्यंत्वम् । अध्यरना दन्तच्छद बोष्ट एव, नाम्यत्र अपार्थन सुवंतम् । अध्यरना दन्तच्छद बोष्ट एव, नाम्यत्र अपार्थन सुवंतम् । विलोधन क्रवरं वप्ताना क्ष्यां सुवंतम् । व्यवरना दन्तच्छद बोष्ट एव, नाम्यत्र व्यवराभा निकासिन । दवारेष्टकुणारेष केवलं च प्रकृतान्यत्र नित

वामानामित्यादि—वासानां जुनितां शोभने बिलत्रवे उदरस्व-रेखात्रये दिपमनाइमसम्बन्धात्वामित्, न च लोकेतु मियां वियम्यसम्हन-इतिक्षत्रम्, तासामकृत्री चरण एव इंधिल्यं मन्दगादसिन्दं, न तु जनानां चरित्रे, जनाव पुतः, सुदृशां शोभने दृशी चुश्ची यासां तासां स्त्रीणं नितम्बन्धये कटिपुष्ठभाग एवौद्धत्यं समुच्छायत्वं वर्तते, न तु जनेषु आविनीतत्वम् । नाम्यव्यव्यके दुव्हीयदेशे किल नीचता निम्नत्वं, न तु जनेषु नीचेषामित्वं वर्तते । निपालो व्यवक्रपाविद्वितनाम शब्देष्येव भवति, न तु जनसमुदाये निपाल आवरण-भ्रं शता, वाप्तिनां संयम्भवति, न तु जनसमुदाये निपाल आवरण-भ्रं शता, वाप्तिनां संयम्भवातिनामक्षेत्रित्वन्त्रित्वन्त्रितं निष्कृतं वर्ति वर्त्याच्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वक्ष्यात्वेवित्वक्ष्यात्वेवित्वक्ष्यात्वेवित्वक्ष्यात्वेवित्वव्यवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वेवित्वविद्यात्वित्वविद्यात्वित्वविद्यात्वित्वत्वत्वति । सम्प्रविद्यात्वित्वत्वति द्वार्वे द्वार्वेत्वत्वत्वति । सम्प्रविद्यात्ववित्वति द्वार्वे द्वार्वे प्रवर्तते । अवर्तित्वते व्यवद्यात्ववित्वति द्वार्वे व्यवद्यात्ववित्वति द्वार्वे व्यवद्यात्ववित्वति द्वार्वे व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वति द्वार्वे व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वति व्यवद्यात्ववित्वत्वे । ४६। ।

अभ्रमिरवादि—अभ्रं लेडि गगनं जुम्बस्यमभागो यस्या एताइशी या शिखराणामाविकः परस्या तया सङ्कृ क व्याप्तं यस्य नगरस्य बरणे प्राकारं मध्याङ्काले द्विष्टरसमये समञ्जन् प्राप्तुवन अयं सहस्र-रिमाः सुर्वे योऽसिन् सुवनं लोके प्रोत्तास्य विद्वनतापितस्य काञ्चनस्य रुप्तिः क्वियस्य स इह कत्याणकुम्भ इव स्वर्णकृत्वश्वद्व भाति ॥ १०॥

इति द्वितीयः सर्गः।



तृतीयः सर्गः

निःशेषेत्यादि —िनशेषाणामिवळानां नम्नाणां नमः कुनैतामविन् पाळानां राज्ञां या मौळिमाळाः किरोभूषणस्थाः पुष्पसन्ततदस्तासां रज्ञोभिः पिखरिता धृमरीकृताऽक् मुष्योश्वरणयोः पौळिः प्रान्तभागो यस्य सोऽस्य नगरस्य कुण्डिनपुरस्य ज्ञास्ता प्रतिपाळको बभूव, यस्य तास्ताः प्रसिद्धाः कीर्नीः यश्चांमि एवं च श्रियोः गुण-सम्पत्तीश्च वदामि कथ्यामि तावन ॥ १ ॥

सौबर्क्यामत्यादि—श्रस्य नुपस्य शोभनो वर्णो हसं यस्य स सुवर्ण-स्तस्य भावः सौवर्क्य तद्यवना काक्ष्रतस्यमेवं च घेंचं धीमभावं हृद्यसं श्रम्यलस्यं बोद्धीस्य हृष्ट्वा मेरः सुमेर्स्ट्रर्गरातो नाहमीहक् चैर्यवान् सुवर्णी चेति रुज्या किल वा । प्रत्नीधिं समुद्रोऽपि पतस्य मुक्तामय-त्यान्—सुक्तो निवृत्तिमितो नाशसयात् आमयो रोगो वस्मास्य सुक्ता-मयस्त्यान् श्रम्यना भीकिकसम्बन्धान् गभीरभावाद् गृहिषक्तवादत्त-रुस्पर्श्वताद्वा हेतोश्र सद्या स्वपितो द्रवत्वमित एव तिष्ठति। अहो— स्वागचर्यं। । ।

स्वेरित्यादि — एकेनेव करेण हसेन छोक्स्याशानामभिछापाणों स्वश्वतसंख्यात्वं समासास्यक्षेपान् श्रन्यश्चा त्वतोऽच्यिकमिति भावः । श्रम्यवा समिक्तीभावे समस्यतः इति समास्यत्कालस्तमाद् युग-पदिति, श्रापूर्यगरुप्तमान्यनोऽस्य नृपस्य समक्षमग्रतसादन्, च पुनः सहस्रः करें: स्वकोयैः किरणेईशानामाशानो दिशो परिपुरकस्य सप्रकाशकस्य श्रस्य यदेः सूर्यस्य महिमा महस्वं विभिन्नासित १ न किमपि किन्द्यतिशयेनाल्पन्नत्योवासित । श्लेशगर्भो वक्षांस्पर्कङ्कारः ॥ ३ ॥

भूमाबित्याबि – वीतो विनाशमितः कलङ्कस्य दूषणस्य लेशो यस्मास्य दोषवर्जितः । भव्यानां सभ्यजनानामेवाव्जानां कमलानां वृन्दस्य सम्प्रदायस्य पुनः सुद्दे प्रसस्यै जातोऽत्य च लसन्तीभिः सततं वर्तमानाभिः कलाभिः स्कृतिप्रशृतिभिग्राङ्गः सम्पन्नः, एताहको राजा सुप्रपन्नद्रस्य द्वितीयोऽपि निल्लाद्वितीयोऽपुर्वक्यो जात इतीय विचार्य सम्द्रोऽप्ययं समाहत्यो स्थभोनो नाह निष्कलक्को न च कमलप्रिया नाप्यक्षप्रकलावान् एवं वस्तोऽस्य च भया कान्य्याऽप्रद्यः संगुक्तो जातः स्वतु । एकं विकिष्टगुणं राष्ट्वाऽपरोऽपिगुणप्रकर्षमान्मनि समादातुं वत्तत् एवेति नासी चन्द्रः सिद्धार्थसम् इत्ययंः । श्रातिदेशालङ्कारः । 'श्रातिदेशः सजातीययदार्थस्यो । श्रावि

योग इत्यादि - विभेन्नक्षणो वेदनया ज्ञातंन योगः सम्बन्धः पराहृत्व पीडयेति यावन्। म चापराजितंन्नाऽपराजितायाःपार्वत्याः स्वामी महादेवः श्रूली विश्वलनामानुष्यभाशः श्रूलरोगवान्या । माधवः श्रीकृष्णः पुनर्गदानिवतो रोगयुक्तः। गदो रोगो नाम, गदा चापुधिक्रोप-स्वत्वितः। इत्यास्य निरामसस्य रोगरहिनक्षरीरस्य नृपस्य सम. समानः क १ किलामीनु न कोऽतीत्यर्थः॥ स ॥

यहिर्दार्थ- — पा जिल समारकारणाइताः माधारणो मनुष्यवर्ग. कृष्ण वर्स मार्गो नीनिष्ठक्षणोऽत्र च सानवन्नत्रे स्थान् स नस्य आवसन्दमनीनित्तामिरत शृतवन्दमि चर्न विनाइमुण्य राजोऽत्र प्रतार एव
बह्विः श्रीक्षः अञ्चलंदारग्रलाम् तं सदाभ्यवार, पुनरच लोकस्थक स्वापि
जनस्य विनर्कस्य प्रश्तामिषस्य चिन्नावार्श्य सन्दर्भ नो बभूव, ततोऽ
मुख्यानुसानमेवानुसालं श्रव्यपि चाद्व नर्लं अपूर्वत्य परधान्यदिमिति ।
बस्त्रनारानो न कोरबनीतिकर्नाऽपूरिद्यर्थः । मां लक्ष्मीमनुवर्तमानत्वमनुसारमिति चोक्किलेशः ॥ ६ ॥

मृत्त्वित्यादि—पृज्यपादो जॅनेन्द्रव्याकरणे संज्ञासु मनुष्यादिषु शब्देषु मृत्त्वं मृत्तिभ्रेयत्त्वसमुद्धदिति जगाद सूक्तवान् । किन्तु नृपोऽ- सकी राजा धालुप सुबर्णादिपु परस्य लोकस्योत्तरजन्मनो हेतोः कारणान् किं वा परेषां लोकानां हेतोरकारकारणाद् समल्वहीनो अवन् न तत्र रूपकारिषु समल्व कृतवान् । सुरते मुनिकाया भावं सुरवं म किंवतवान् यत्र पृत्यपादोऽपि मुनिबीतुषु भूवादिषु सुरवं न कवितवान् स्व संवरेत्रस्थान्यला कीर्मितं केतुः पताका वस्य तस्य राज्ञोऽस्ति भागते तत्र पत्र यावा । । ।।

सा बेखादि — हे मिलाराज, मित्रशिरोमणे, पर्य विचारय तावत्। यिक्व कुपनायस्य सिद्धार्थस्य सा विचा या लोकोत्तरव्यससायारण-भाविमनरजनेतु यथा न स्थान् नथात्वमाप सहपत्ते । यतः सार्थान् णानो मङ्गताना बाणानां चीचः समृदो स्थ्य सविध्य समीपभावमाप, गुणस्तु यस्य यशोनामा दिगन्तगामी बभूव, रानित्यात्। इतस्य जन-साधागण्य यनुर्धमस्य बाणगमृही दूरं गोति गुणः अवस्त्राभिधः समा-कृष्टो भवतीति विचित्रवस्तु समारचर्यस्थानयनत्। यस्माट् ईटजी चापविद्या कापि न हण्डा, याद्यी निद्धार्थस्यान्वित्। । ॥।

त्रिवर्गेत्यादि—प्रतिप्नेव्युंत्रसे. सारः सस्वभागो यत्र सोऽसी राजा त्रवाणा वर्गाणां ध्वाधंत्रसामध्यानां भाषान् परिणामान स्वयस्यानायाने स्वयस्यानायाने स्वयस्य वानायासेनंत्र वनुणां प्रणीनां प्रावणक्षित्रवंत्रस्यप्रदानम्त शिक्ष विस्तान स्वत्यस्य प्रवास्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य प्रवास्य स्वयस्य स्वयस्य प्रवास्य प्रवास्य स्वयस्य वास्य स्वयस्य विस्तान् स्वयस्य वास्य स्वयस्य वास्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य विस्तान स्वयस्य स्ययस्य स्वयस्य स्ययस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्यस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वयस्य स्वय

भुजङ्गत इत्यादि—अमुध्य राज्ञो भुजं कुटिलं गच्छतीति भुजङ्ग-स्ततोभुजङ्गतोऽसे: खङ्गादेव सर्पान् मन्त्रिणः सचिवा श्रव च गारुढि-नोऽपि त्रातु रक्षितुं इत्याः समयो न भवन्ति। यदि कदाचिन श्रवसरे स्त्रीऽसिः कोपी कोपगुक्तो भवेच्चेत् इत्येवं विकार्यवार्यस्यः कास्त्ररे सम्बन्धाकृत्योग्ररणयोग्रं नत्वा नत्वरा एव चन्द्रा दीप्तिमत्तान् तेषां कार्तित अवेरिसनामनुषानित स्त्रीकुर्वन्ति। श्लोषगुक्तो, स्पकालहुशरः ॥१०॥

हे तातेति — ममुद्रं प्रति हे तात पृज्यवर, तब तनुजा छक्ष्मीयों मा जानुजेङ्का तदुचितो छन्यो बाहुस्तप्रापको मुजो यस्य प्रसिद्धार्थे । न विदु-क्षमुण्यसाङ्कः द्वारीरं मभास्यपि किमुतायदेवपि प्रवस्यार्थः । न विदु-क्षमुण्यसाङ्कः व्यारहिता जानेशं गहितुं बक्कुं तस्य राजः कीर्तिः समुद्रस्थानं समीपमवाष । अहो-दस्याद्वयं ॥ ११ ॥

आकर्ष्यत्यादि —चेटादि भूपालस्थास्य सिद्धार्थस्य यदाःप्रशस्ति विस्तायिलं चारणादिगीतामाकयर्थे अस्वाऽऽरचर्यचिकतः सन् ज्ञिरोचुनेत् चुतुयान् कर्पं प्राप्त्याचत् भुवाऽरि स्थितिरेयं कथमेवं स्थान्तेव सम्भवित् न अस्तुयादिस्यतुमानज्ञातारिक्षानान् धाना पूर्वमेवाहिपतेः रोषस्य कर्णी न चकार। सर्पज्ञातः अवणज्ञक्तिसङ्गावेऽपि कर्णयोराकारामायसाम्रित्येल्यमुद्योद्वितमस्ति ॥ १२।॥

बिमूसितस्विमित्यादि—विमूसितस्वं सम्पत्तिगुक्तत्वसत् एव महेरवरत्वं प्रभुत्वञ्च दथना सुन्देः प्रजारूपायाः समुज्ञतत्वं हर्षपृर्वकं नम्रमावं च जजता स्वीकुर्वताप्यनेन जननायकेन राहा कुतोऽपि कवि-दिष प्रजावर्गे रुटवैषम्य नेतं वैपरीत्यं न प्राप्तं कस्सेचिद्रपि विराधकत्वं नाङ्गीकृतिमित । छोकाभिमतो महेद्यस्तु विमूतिमान् स्वाङ्गे अस्म-युकोऽपि भवन् त्रिलोचनत्वाद् रुटिवैषम्यमिति सृष्टेश्च संहारकरोऽपि भवतीति । श्रतिदेशालङ्कारः ॥ १२ ॥ एकेस्याबि—कस्य गाज एका प्रसिद्धा चॅकसंख्याका च सती विद्या अवसोगसादशां कर्णविद्योक्तस्य वस्तृधक्तरं सम्भाप्य तिद्वयां अव्यादस्यामस्य कर्णी वस्तुतस्य ठमेत इति । सम्भाप्याय च तस्य नाम समसंख्याकत्यस्याप्य समद्वयं चतुर्देशत्व लेसे समयापेति युक्तः किन्तु तस्येकापि शक्तिनीतेश्चहुण्डस्य मामदामदण्डसेदिमिन्नस्य सार-प्रपातात सम्भागा सती नवतां नित्यनुतत्ततां बमागा अय्य चनव संख्या कत्यस्यापेरवही आश्चर्यक्रीय । यत प्रकार चहुर्मिनिक्त्या प्रश्नत्यमेव स्थापिता । किर्च्यकापि विद्या कर्णब्रुयं प्राप्य जिल्लमेवां गीक्रयतां, न तु चतुर्देशत्वं चतु प्रकारत्वमित्यक्षां विशेषामासः ॥ १४ ॥

छामेत्वार्य-हे सुमन्त्रिन् मित्रदरः, श्रृगु तावत् इति योज्यम् । तस्य नृपस्य प्रियं करोनीति प्रियकारिणी इत्यवंशीका स्त्री वभूत्, या नास्तारि प्रियकारिणी आमीत् । या च मदा राज्ञोऽतुनन्त्री छन्दोऽतु-गामिनी सुर्यस्य छायेव, यहा विभविषानुमायेव प्रपक्करचनेव । सम्या राज्या प्रणयस्य प्रेम्णः प्रणीतिस्तावद्रीतिः पुनीता निर्दोषा समभूदिति ॥ १४ ॥

द्येरबादि—अभी प्रियकारिणी नाम्नी राजी तस्य राज्ञ. पद्यो-रचरणयोरधीना वशविनी ममबी चार्थक्रियाकारिणी सेवा वैय्याष्ट्रस्य क्रिया वस्स्या. मा महानतुआवः प्रभावो वस्याः मा, धर्मस्य समीचीना तुष्ठानस्य दया जीवरक्षाबृचितिव, वस्त तस्स इच्छानिरोधटक्षणस्य क्षान्तः सहिष्कृतेव, पुण्यस्य शुभक्रमणः कल्याणानामुस्सवानां परस्यरा पद्धतिरिव सदेवामुङ्जाता ॥ १६॥

हरेरिस्यादि – इने कृष्णस्य प्रिया टक्सी: सा चपलस्वभावाऽ नवस्थानशीला क्षणस्थितिमती सा, बाऽखवा मृहस्य महादेवस्य प्रिया पार्वती सा सततमेवालिङ्गनशीलऽऽतो निर्लङ्कतयाऽचं पापं कस्ट वा ददातीत्यघदा, स्त्रिया लज्जैव भूयणमित्युक्तं:। रतिः कामित्रया सा पुनरदृश्या द्रष्टुमयोग्या मूर्तिरहितत्वात् विरूपकत्याद्वेति बातः हे शस्य पाठकवहात्रय, परवात्र लाके शीलगुनः सहजनया निर्दोग्यनभाकाया। स्तर्माः प्रियकारिययाः समा समानकक्षा कथमस्तु तासु काचिद्व-पीति॥ १०।

बाणीत्यादि—या राजी परमस्य सर्वोत्कृष्टस्यार्थस्य मुक्तिमार्ग-स्रक्षणस्य दात्री वाणीव जिनवागिव। यद्वा परमस्याविसम्बाद्दस्य-स्यार्थस्य पदायजानस्य रात्री वाणी भविन, तथा जानन्दस्याऽऽहादस्य विधायाः प्रकारस्य विधात्री विधि-कर्जी कलेव चन्द्रमसः, विनक्षणा-चच्च परमोद्दात्री, यथा विनक्षणा परमस्य निर्दोषस्योद्दस्य व्याप्ति-ज्ञानस्य पात्री,नथव राजी परस्योरकृष्टस्य मोहस्य प्रमणः पात्री, सस्कौतुक-पूर्णनात्री माण्य यथा अद्भिः प्रकृत्योः कौतुकः कुमुन्ने पूर्णनात्रे साल्यासन्या मना समीचीनेन कौतुकेन विनोदेन पूर्णनात्रं यस्या एताहृजी राजी। माल्यापमाल द्वारः।। १९।।

इत इयादि —हे अम्ब, मातः ऋहमितः प्रश्नृति, ऋद्यारभ्यामुख्य तवाननस्य मुखस्य सुषमां क्षोभां न स्पर्धेयिष्येऽनुकर्तुं न प्रयतिष्ये इत्येवं स्पष्टीकरणार्थमिव सुघांशुरचन्द्रमाः स्वस्य कुलेन नक्ष्ट्रप्रस्यद्वलेन युक्तः सम् यस्या ठोकोन्तर-सौन्दर्ययुक्तायाः पादामं चरणपान्तभाग-पितः प्राप्तः स्वादिति सम्भावनायागुपात्तः। खयशब्दः क्रमेणावयववर्ण-नार्थमिति ॥ २०॥

वण्डाकृतिमित्वावि — या राज्ञी स्वित्तस्वदेशे किट्रिष्टभागे प्रश्नुरूप्त महत्त्रस्वस्य कठश्वरुप्तस्य मानादनुमानाञ्जानाद्यारसन्तान् स्वामेनेव कुनयोग्ननयोद्वयोः कुन्भोग्रमस्य कठशत्वर्यत् द्याना स्वीक् क्षणा मनी नर्यव लोसळनामु रोमावळीग्रदेशेषु दण्डस्थाकृति द्याना पुतः स्वयमेवात्मनेव कुलालस्य कुन्भकारस्य मन्त्रतं स्वत्रतं किञ्च कुळेऽ छनस्यं प्रमादित्यं स्वयमुक्तद्वार र शिक्षनवनी मत्तरक्षोऽदुस्ताक्षी कोऽपि नास्नीति किळानुसम्ब । स्वथा कुरिति पृत्वी स्वाधारं स्वाधेयारोप-स्वेत च प्रश्नावित्तस्या लालमा प्रेम यव सस्वम् ॥ ११॥

मेरोरिस्यावि—याऽमी राज्ञी मेरो: नाम्नः पर्वनादौढस्यमुक्रतन्त-माक्कव्य नित्रे नितम्बे तदिनाऽऽरोपितवती । स्रथया पुनरदज्ञान् कम-छादाक्कवाऽऽस्यविम्बे सुख्यसर्व्छनं, उन च पुनरच्ये: समुद्रादुढ्व् गाम्भीयमगाधमायं नामिकारामयो नवेत्रे घराया भूमेर्विज्ञासस्यं विस्तारं श्रीणी कटिपुरोभागे ममारोपिनवनीनि किछ । स्वतिश्रयोक्त-सन्द्रस्तुरः ॥ २२ ॥

चाज्रबस्यसिस्यादि – या स्त्तु चाव्यत्यं पञ्जलभावसस्योरच्यु-योरनुसन्यसाना स्त्रीकुर्वाणा, दोषाणामाकरत्वं द्रायमुल्सवस्य च बोचां रात्रिकरोतीति दोषाकर्यचन्त्रमास्यस्यं मुख द्रधाना समारोपित्यती। प्रकर्षेण बालभावं स्वृत्यत्वं प्रवालभावं वर्षे सृष्टुप्तस्यत्वं करयोहस्त्रशे-मेथ्ये जगाद् कथिनवती। यस्या सहिष्या उदरेऽप्रवादो निन्दापरि-ण्यारोऽयवा नास्त्रीति वादो लोकोक्तिर्वसृत्वः निन्दायां स्त्रव प्वा-लङ्कारः ॥ २२॥ महोपतेरित्यादि—महोपते: सिद्धार्थनराधिपस्य धान्नि गृहे सा महिषी निजस्येक्विनेन झरीरचेष्ट्या यतः कारणान् सुरोस्यो देवीप्योऽ पीते: सम्पतिकरी बाधा-सस्पादिका असून्, देवीभ्योऽप्यधिकसुन्दरी बस्मुवेर्थ्यः! नायेव हिनेन राझोऽप्यन्यस्य लोकस्यापि हितेन छुमचिन्त-नेन शोसनाथा रीते. सम्पत्तिकरी समसून्। पुनहें मित्र, असकौ राझी स्वक्रटिश्देशेन पवित्रा पवि वस्रं त्रायनेस्वीकरोति सा शकायुध-बदनसम्पयप्रदेशवनी। इदा हदयेनापि पवित्रा पुनीना अतीव निमंत्रमानसा धरायां सूसी न तु स्वगं अपिशस्त्रीरहरोऽनेवार्थकः। निश्च निजक्षिक्वेन राझी सानुरिवोक्वितशिलाऽसुरिद्युष्ट्यिक्विष्ठः। २४॥

मृगोहरा हत्यादि — मृगो हिंग्णी नत्या दशाविव दशौ नेत्रे यथा-स्तया भगीहर्त्तो महिष्या या स्वय महत्ता चापळना चपळ एव चापळ-हत्त्य भावश्चापळना हावभावादिचेट्टा या खतु रन्या रमणीया अतः संव स्तरेण कामदेवेन चापळनाऽऽिय चतुर्योट्यलेन अङ्गोक्कराद भूत्। अव च मनोजः कामदेव एव हारो हृदयाळहारो यथ्याः साइसी राक्षी निजेश्चरोत स्वचीयेनावळोठनन कटाश्चरूपेण श्चरोत तद्वाळमेवा-इन्ह्यतः शरीरथाणिण मनो हृदयं जहाराषह्ववतीति । यमकोऽ छहारः ॥ २४ ॥

अस्या द्वःशिवं - मृणालकं कमलनालमहमस्या महिष्या भुजस्य बाहुरएक्टसस्पर्द नं तुलनाकरणे गर्द न तृष्णापरिणामो यस्य तस्वास्कृतो-ऽपराघो दोषो येन तलेनाकरणे गर्द न तहस्तुतः। खन्तर्राभव्याप्याप्र-स्तो न पुनर्वहि: । उच्लिको गुणानां घयादीनां तन्तृतां च प्रपक्को यत्र तं स्कृटितकृदयमस्यवः। नीरे जले समागच्छित स्मति नीरसमागतं तमेव नीरसं रसरिहतजीवनमन एवाऽऽगतं विनष्टमायञ्च समुपैमि जानामि। परामृतरच जनो जले कृदित्वा विनस्यतीति रीति: ॥ २६॥ या पित्रणीत्यादि—याऽसौ भूगते सिद्धार्थस्य मानसं नाम जिस्तं तदेव मानसनामसरस्वस्य पश्चिणी तदादिणी प्रतिक्षणी च या िस्त करादितं पराचरं तटेबंकं हर्यमवस्त्रोकनस्थान तिमन् राजहसी राक्षः श्रिया श्चीरतीयिविविनी पश्चिमी चेत्रेविष्टानुमानिता, या स्त्रु वि-नयेन नम्नभावेन, श्र्य च बीनां पश्चिणा नयेनाऽऽवारेण युक्ता, चतः स्त्रु स्वयोदिदीनेव मुक्ता परित्यक्ता, श्र्मरूठा फल्यहिता स्थितिर चेटा यया सा सुक्ताफलस्थितिस्त्रथा सुक्ताफलसंभित्वस्था स्वात्रकरेव स्थितिः जीविका जीवनवृत्त्रवस्था सारि ॥ रूप ॥

प्रवालतेत्यादि — अस्या महिष्या मूर्णिन मस्तकं प्रकटा वाला केज्ञा यत्र स प्रवालतस्य भावः प्रवालता सपनकेशस्यभिति । अपरे अग्नोष्ट्रेरेडार्प प्रवालो विद्यस्तरस्य भावः प्रवालताऽमुद्, अस्त्रवर्षावान्, वर्षेष्व करे इस्ते च प्रवालता सर्याज्ञानपङ्गवानं कोमलतयेति । यस्या मुख्डेडज्ञता चन्द्रसस्यमाङ्गातकारित्वान्, चर्यो पदमरेटोऽप्यस्तता कमल्लरुपलमाकारेण कोमलत्वेन च, तथा गले करटेडप्यस्तता शङ्क-रूपल्यमभूदिति यस्या जान्वोजययोगुंगे हये सुकृत्तता समुचितवतुं ला-कारस्यम्, तथा चरित्रेडिप सुकृत्तता नियमितिङ्गित्वान् एक्वयोः स्तन्योः रसालताऽऽप्रमललुक्यताऽभूत्रं कटित्रेडपोवस्त्रीप स्सालता—स्तं काञ्चो लाति सीकरोति स्सालसस्य भावो रमालताऽभून् । ६ ॥।

पूर्वमित्याचि - एगोऽशील्छोकमान्यो विधिविधाता पूर्वे प्रथमत-रागदरध्यासार्थे विश्व नाम चन्द्रमसं विनिमांच पर्याव्यवा परवाद् वृद्धारचननर्य विश्व विरायन्तास्मावधानो भवन् तत्या पुरंख कुर्वेन सन् एव-मेताइसं सर्वाद्वसुन्दरं सम्पादयन् स तस्वैतद्वतान्तस्योल्लेखकरी तां विद्वामिधां लेखो तत्र चन्द्रमसि चकार क्रव्यानियुद्धारो महामनाः संज्ञायवे। छोकेऽपि ज्ञिन्वियुद्धति उत्तरां कृति कुर्वेन पूर्वी कृति लेखा-मिश्रद्वस्ति। १६॥ अशंतीरवादि - श्रभीतिरध्यवतं, शेघो ज्ञानम् श्रान्यत्व तद्गु-कृद्धा प्रवृत्तिः प्रवारोऽस्थाणियः सम्बद्धानमेत्रत्वृत्तिक्त्यारेः सर्व-सम्मतिः प्रकारस्या राज्ञ्या विद्या चतुर्वत्रत्वं चनन्नोत्तरा श्रवस्था वस्याः सत्याः भावस्यबृद्धेत्रत्व तदृमिता नीता, श्रतः कागणात्मकवा वा पुन-कृद्धा, कृज्ञा वृद्धाने भाग इति स्वभावदेव चतुःविञ्जाताः। श्रव च तस्या विद्या निरस्तरमधांत्यादिमि प्रकारण्यवृत्तव्यक्षात्वः आपिताः, कृत्वास्य स्कृत्यांत्रिक्तपायच्यान्त्रस्वाम्यानाः स्नीममात्रवोग्याताः परितृत्याः सञ्चाताः। पूर्णविद्युत्यो ना सम्बन्धनेति वावत् । २०

या सामेत्याचि या गांडी मामरूपस्य ज्ञान्तभावस्य स्थितिसारेसाना सनसाऽऽइ, सत्तत्मेव ज्ञान्तिच्वाऽऽदोन्, जा स्वीयाधरे क्षेष्ठदेवि विद्वमन्ते प्रवास्त्रमंत्रकारानापुर्वाह क्षारुणाध्याऽप्रदिति। यश्यास्त्रस्त्री द्वारीरे सु पुनरुपमानपुर्वाक्षमान्त्रवत्त्रप्रस्त्रस्त्र अस्योपमानत्त्रस्य
स्वस्यं न पुनरुपमेयत्वस्य। तच्छरीरादिषिक सुन्दर किञ्चिद्यि नारिः
वस्योपमा दीवताम् इति। धारणा स्तर्पण्ठाकिरिय सामिद्धा तस्या
सास्त्रस्त्र सरुप्रमुद्धातेराद्वस्यमानत्वमन्यभवन् स्थीकहारित। यस्या
स्वास्त्रम्त सरुतामा देशस्योपस्थित्ययं विद्वमता दुर्यविद्दीनता भवति,
अनुयो नाम जळबहुळो देशस्त्रद्वस्य सरीरे साधारणाय देशायानिथकजळगुळमादिक्षाय तु यत्र महस्त्रमिति समात्रीक्तिः, त्रिप्रकारस्य देशस्य
स्वामिनी सर्व्यकः।। ११।।

अध्योरिस्यादि - या युवतिनंवयीवनवती, अक्गोदींघंसन्दर्शितां विचारशीळ में दवती शीकुवंगी साज्यततो सदीणमावमवापेति विरोधः, किन्तु साउक्शोर्नेत्रयोद्देर्दर्शितं इपत्यिप साज्यत्वं सकज्जलसमाना पित परिहारः। या चोवोर्षिळोमतां वेपरीत्यमाप्यापि सुकृतीवर्षित सदाचारमावमवापेति विरोधः, तत्र पुतरिष सा वर्वोर्क्षयोर्थेळो-मनां छोमामावं दघत्यिप वर्तुं लमाव लेम इति परिहारः। या श्रासमः कुचयो: काठिग्यं कठोरस्य दचती समुजित सहयेनप्रस्थं सम्भावयम्ती बभी झुगुभं इति विरोध: । कुचकाठिन्वेऽपि समुजित समुज्द्रायस्यं स्त्रीकुनौरोति परिहार: । या कचानां केशानां समद्दे स्टब्स्यास्यं नम्नस्य स्वस्यपि समुदितं साकं वक्तस्यं सम्भावयन्ती वभाविति विरोध:, तक कचसंबदे मादंयं कुटिखलब्धं सार्धे विश्राणा वभाविति परिहार:। विरोधाभासंडळहुार: ॥ २२ ॥

अपीरवादि - या राङ्गी जिनपस्थाहंतो गिरा वाणीव समस्तालं प्राणिमामेकाऽदितीया वन्युः पालनकरी आसीदभवत् । श्राधपस्थ वन्द्रमसः सुप्या व्योतना वया त्येवाऽऽहादस्य प्रमक्तायाः सन्देश्चः किङाविन्छित्रप्रवाहस्य मिनपुर्वेती वसूव । नदीव यथा नदी तस्रेष्ठ सानुकुला कुलानुसारिणी नदी, राङ्गी वानुकुलचेष्टावती । सरसा पृङ्गारमाहिता सजला च मकला चेष्टा यस्याः मा, पृट्पदीव प्रमरीव तस्यतेः पदाचेव चरणावेव पद्मे । ते प्रेश्चत द्रस्वेवशीला नृपचरणकमळ-सेविकाऽस्रतित ॥ १३ ।।

रतिरिबेत्याबि — तस्य विभूतिमनः सम्पत्तिशालिनः अस्मयुक्तस्य चेत्रस्य राजो महेरवरस्येव सा राज्ञी भूमावस्यां पृथित्यां गुणतोऽपरा-जिता पार्वतीव कथापि परया क्षिया न जिता सवेरिक्या सती तस्य पृथस्य जनुषाः जन्मनः आधिकंव शुभाशसेव सन्याती पुण्यस्तृषः समस्य रतिरिव प्रियाऽसूर्तमपात्री स जाता ॥ २४ ॥

असुमाहेत्यादि - सा राझी सुरीति सुप्तझा, स्वसांख पति, इति जैनेन्द्रस्थाकरणोक्ता सेव वस्तु प्रयोजनदूतव्याक्तस्य स्थितिः प्रति-पाळिथित्री सा पुत. समबायाय सम्बग्धानाय पतिसिक्येन क्रव्यं नावदसुं सुसंझातो बहिसूँतमाहोक्तवती, तर्षव शोभना रीति प्रया सेव वस्तु सम्बादितस्याकार्यकर्त्रीत्यर्थः। सा पति अतौरससुसाह प्राणहरूपं निज्ञगाद । समर्थे क जल धरतीति समर्थकन्धरः पुनरप्यज्ञहो इ-ल्योर-मेदाज्ञलरित इति समनामपि ममता शानिनापि मोहपरिणामपुदाहर-दिति विरोधः, ततः समर्था विजयकरी कन्धरी वाहुमूलआगी यथः भूपोऽज्ञहो मूर्खंदरितः स राजा मम कवेमेना वर्णितप्रकारो तां राज्ञी-मुदाहरत्, मया वर्णिनस्वभावा तां राज्ञी स्वीचकारेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

नरप इत्यादि —नरपो राजा वृपभाव ब्लीवर्दनामामवान्। एत-कस्य पुनरियं महिपी र लाक्षिकाऽभूत, अनयोद्धयोः क्रिया चेष्टा सा अवि-कारिणी अवेर्षेभस्य करपादिका, सा च गुमानं देवानां प्रिया स्त्री मस्त्र भूत इति सर्व विरुद्धम्। अस्तो जुपो वृपभावं पर्मसङ्ख्यमाशवान् जाना-ति स्। एतकस्य पुनरियं महिपी पट्ठाक्षी या धर्ममाप्तवतीश्वनयोद्धि-काररहिता चेष्टा सुराणामपि मध्ये पित्राया ग्रीतसन्यादिका समभूदित। अहो इत्याक्षयेनिवेदने॥ १६ ॥

स्कुटसित्यादि—तयोर्गुपसिह्प्यो सर्वोऽपि समय स प्रसिद्धो तिका-बामस्योर्भध्य इतरेतरसानुकूत्वतः परस्यानुकूलाचरणतस्त्रधा स्पर्धः स्कुटसेव किल ऋनुनामिद्मातंव यस्तिस्वधानं यथतुं सुल-साधनं ततः स्वगेऽन्यसेसेव स्वमूल्यनः सदुपयोगेन समगच्छ-क्रिजेगाम ॥ २०॥

इति तृतीयः सर्गः।



चतुर्थः सर्गः

अस्या इत्यादि - अस्माकमानन्दिगराणां प्रसन्नतासन्पादिकानां वाणीनामुपद्वारः पारिनोपिकरूपो वीरो वर्द्धमानो भगवान् सवितु-महः। म कदाचिदेकदाऽस्याः श्रीसिद्धार्थस्य महिष्या वद्देर आरास्त-योगवशान्, गुक्ते गराष्ट्रवरूप्य मिकिकस्य प्रकार इव मौक्तिक-विशेष इव वद्देर स्वयमनन्यप्रेरणयेवावभार घृतवान् गर्भकल्याणं नाम । अमोऽन्यं गर्भन धरिष्वतीति यावन् ॥ १॥

बोरस्येति—मासंघ्वापाढमासः । पश्चयोद्धयोर्थः सारः शुवि-विंगुद्धतामा मः । निष्ठिष्य सम्बन्यवरोन यथ्या गर्भो जानः सा पद्मीति नाम्नी । ऋतुस्तु पुनः समारच्या पुनीता ष्टृष्टिर्यसिनन् स वर्षोरम्भ-समय इत्यर्थ । एव बीरस्य गर्भेऽभिगमस्य गर्भावतारस्य प्रकारो विषि काळनिर्देशः ॥ २ ॥

धरेत्यादि— गर्भमुपेयुव समायातवतः श्रभोर्भगततिश्वज्ञान-धारिणः कारणान्तु पुनः प्रजेव प्रजावद् इयं धरा भूमिरध्युल्लासेन ह्रवेण सहितस्य विवारस्य वस्तु बभूव जाता। यतस्त्वानी रोमाञ्चने-रङ्गरिताऽङ्करुरभाविमिनेवेरयन्तर्हितीपमा। सन्तापं शोकपरिणाममुज्य-भारतेति ॥ ३॥

नानेत्यादि — प्रसङ्गवशारु विस्तस्य वर्षाकालस्येव वर्णनं करोति । एव वर्षाभिषानः किल कालो रसायनाधीश्वर वेदा इब भाति । तवाहि-रसस्य जलस्यायनं प्रवर्तनं, पृक्षं रसस्य पारदाख्य-प्रातोर्यस्यं उपयोगकरणं तस्याधीश्वरोऽधिकारी । नानाऽनेकप्रकारा-णामीषधीनां कल्टालिकादीनां पद्योऽस्युन्त्यादिप्रयोगारूपाणां स्तूर्वि घरतीति सः। प्रशस्या प्रशंसायोग्या बृत्तिः, पत्त्रं प्रकृष्टानां शस्यानां मुद्रभात्यादीनां बृत्तिः समुत्यत्तिवंत्र सः इदं जात्त्रसमुष्णतायुक्तं ब्वर्दयुक्तं चावेस्य तस्य कौ दृबिन्यां र-क्योरभेवात् शर जळं, शरं वनं क्रुश्चं नीरं तोयं जीवनस्यव्तियामित धनत्वयः। पत्ते कौशळं कुश्चर्यामां प्रवर्तयन् कुर्वन्सावात्येवं स्पेणोवार उपकारकरः॥ ४॥

बसन्तरसाबि — वसन्त एव कुमुमप्रायर्तु रेव सन्नाट श्रीमत्वा-त्तर्स्य विरहो राहित्यं तस्मान् । अपगता ऋतुः कान्त्रियंस्यात्ताम् तथा वापकुच्टो वस्तूनां बळवीयोपहारको प्रीम्मास्यतु वेंस्यां तामेतां मही पूर्ण्यीभेव स्त्रीमिति यावत् । उपकर्तुमिव स्वास्त्यमानेतुमिव दिक्षा एव वयस्याः सस्यस्ताभिर्यनानां मेघानामपदेशो मियस्तस्मान् । नीळा-व्यानामुप्यळानां दळानि पत्राणि भूतानि समारोपितानि, अस्रोयान् सर्वत एव ॥ ४ ॥

बृद्धिरिस्यादि — अयं वर्षावसारः किल्तुं किलिकाल इवास्तु प्रतिमातु, यतोऽत्र जहानां इन्लयोरभेवान् जलानां पन्ने सुखीणां वृद्धिः। मिलंन श्वामवर्णवर्षने मेंकिः पन्ने बहुभिः पापिभिन्नतिल्या सम्प्राप्ता। कानो मतुष्टवर्गस्तु पुनस्थकपथोऽत्र अस्टरपथो जातः, जलप्तव्यवस्ति मिलंन सम्प्राप्ता। बर्षायां स्त्रत्ये च सम्प्राप्ताच्युतो भूत्वा पापपथरत इति यत्र च देशं देशं प्रति प्रतिदेशं सर्ववेशं द्विरे-काणां भ्रमराणां पन्ने पिश्रुगानां सन्नः प्रतिभारवेशंकारेण साम्यन्मितः॥ ६ ॥

मित्रस्येत्यादि – निर्जलमेघराच्छावित दिन दुर्दिनसित्याख्यायते, तच्च दुर्देवतां दुर्भाग्यस्य समानतामगात्, यत्र मित्रस्य सूर्यस्य पञ्च सहचरस्य वेक्षयां दर्भनं समागमनं च, दु:साध्यमसुलभम्, तु पुनः यूनां बरुणानामप्युचोगा न्यापारा यत्र विखय नाशमेच अञ्चतु सर्राक्रभावा- रकार्यं कर्तुं नोत्महन्ने जना इति । जीवनं जळमायुश्च यदुपाशं सक्कक्षं तद् व्यर्थं भवति ॥ ७ ॥

लोक इशयबि—श्रसिमन्तृती, श्रव छोक: समस्तमिप जगत् तथा व जतसमूही जडाअयलं जङ्ग्यायाः स्थानं वर्षेष जडो मन्द्रस्व-मिन श्राधायिश्चरपरिणामी यश्येति स्व । तस्त्रमाप्नोति वनामां मेस्य मेचकेनाम्यकारेणाथवा पनेन निविद्धेन मेचकेन पापपरिणामेन सर्ता मक्षत्राणां वर्सा गामां तथेब सरसमीचीनं वर्सा पुष्यं तल्लुम् भवति । यत्राशान्तरनरं प्छवङ्गा दर्दुरा बद्धा चञ्चळिचत्ताः प्छवं चापस्यं गच्छन्तीरथेव गोला जना एव बकारो प्यनिकराः पाठकाश्च भवन्तीति । श्रम्यपुष्टः कोकिळोऽषवान्येन पोषणमिन्छति स सीनी वाग्वियहितः सचिन्तरच भवनि, न कोऽपि परोपकारी सम्भवतीति यतः। भन्नेन कारणेन वर्षाकाळः स्वयमेव सहजभावेन कळितृत्य इति ॥ म ॥

रसेरिस्वादि—यद्या वर्णकालो जुरपालय इव भवति, यत्र मृदङ्गस्य बादिविविधित्य निस्वान झन्दं जवित तेन सुदिरस्य सेषस्य स्वतेन ध्विता सुरुक्तियतः समीचीनासुरुक्त्यतं सम्यातोऽयं कळापी मयूगे यो सुदु मञ्जु च लयतीति स मञ्जरसानन्दकरख्राळपित स स्रणेन तरकालमेव रसेजेलेः सृङ्गारादिरसँग्च जगदिदं प्लाविश्वं जलमयं कर्तुं जृत्य तनोति ॥ ६॥

वयोधरेत्यादि — ऋथनाऽमी प्रावृत् वर्षाकाळो नारीव भाति । यस्या पर्योधराणां मेघानां पद्ये स्तनबोरुत्तानता समुक्रतिस्तया कृत्या वाग्गर्जन पद्ये वाणी मा जनानां सुरे ग्रीनये भवित या च शृत्रां पुन-र्तृपितः कामरेवो यथा मा, नीळ स्थामळमम्बरं गगनं वस्त्रं वा यस्याः सा स्त्रीयस्य जळप्रवाहस्य मृक्षारानन्दसन्दोहस्य च दात्री विर्ताणकर्जी सुमनोभिः कुर्पुमरिमरामा मनोहरा, अथवा सुमनसे प्रसन्नचेतसेऽ-प्यमिरामा ॥ १०॥ बसुन्धराय। इत्वादि — श्रद्यास्मिन्समये वसुन्धराय। भूमेस्तन-यान् वृद्धान् विरय नाशियता श्रीकं वृद्धा विरोण भवन्तीति तं स्वरकार्ज प्रीक्पर्युः श्रारादिवराष्ट्रियोन्तं पळायमानममी द्राक् शीय-मेबान्तराद्वीः मजला मनिम व्यालवरचाम्बुप्युची मेघा परिणामे फल-स्वरूपेण वार्जेलमञ्जूष्यानं येषां यथा स्थानया शम्पा विद्युत ण्व दीपास्तैः साधनसूनीविलोकयन्ति ॥ ११ ॥

बृद्धस्येत्यादि—आशु शीधं निष्कारणमेव वृद्धस्य वृद्धिः निष्कारणमेव वृद्धस्य वृद्धिः निष्कारणमेव वृद्धस्य वृद्धस्य निष्कार्याः त्यानुस्य रसं जल सुवर्णान् दिकव्य इत्वाऽयद्धस्य नुपुनस्तनः शापाद् दुराशियः कारणादिवास्य स्वीयमुख्यस्यशेष्ठिकाचि अमर-सङ्काशस्य चृतिः परिहास्सस्य नितः क्रस्य पुनरेतस्य जागाने दूषणस्य इतिः परिहास्सस्य नितः सम्बद्धास्य सम्पूर्णस्य आगाने दूषणस्य इतिः परिहास्सस्य नितः सम्बद्धास्य सम्पूर्णस्य आगाने परिख्यति न समागण्यास्यास्य सम्पूर्णस्य समागण्यास्य सावः स्थानिकारिकार समागण्यास्य सावः स्थानिकार स्थानिकार समागण्यास्य सावः स्थानिकार स्थानिकार स्थानिकार स्थानिकार समागण्यास्य सावः स्थानिकार स्थानिका

दलोकिमित्यादि—हे विचारिन पाठक, गृगु तावन् इत्य-ध्याहारः। विद्यादा विद्यो शरदामभरहित। चेयं वर्षा लोकानामुन-कृतौ विश्वस्थापकारः स्थादिति विचारमधिकृत्येत्यर्थः। तु पुन. रखोक-मनुष्टुष्ट्रण्ये विधातुं कर्तुमयं च यशो ल्ड्युं तस्येव साधनभूताति पत्राणि पत्लवक्षपाणि कर्मळानि वलमं धान्यविशेषं लेखनी च लातुं संगृहीतुं यावरभ्यास्भते तावदयं भूतः पुन. पुनर्भयम् वादंळो मेघो मधीपात्रं वा स आशुकारी आशु नानाविधमन्त्रं करोति स सफलता-कारको वार्शन। समानोत्तिः ॥ १३॥

्णकाकितीनामित्यादि—श्रसौ नीरदो मेघो रदरहितो बृद्धश्र सोऽधुना किलैकाकिनीनां स्वामिविद्यीनानां वचूनां मांसानि यानि किल स्वभावत एव सृद्िन कोमलानि भवन्ति तानि श्वास्वाय भक्षयिस्वा हे श्वास्मसाक्षिन् विवेकिन शृणु स एव करकानां जलोपलानां प्रकाशात् समुद्भावनान् तामामस्थीनि एव काठिन्याद्धे नोर्निष्ठीवति शूकरोति । किमिति संप्रस्तविचारे ॥ १४ ॥

नितन्बिनोनामित्यादि — कुरोशयानि कमलानीदानी नित-न्विनोनां युवनीनां सुद्धीभः सुकोमळेः पार्देरव पद्मौदीः प्रतारितानि न यूयमसाकं तुल्यतां कर्नु महंयेनि निरस्कृतानि, ततो ह्विया लज्ज्ञयेव क्रिल स्वीवस्य अरोरस्य हाये विनाशार्थ विषयायय्य जलवेगस्यैव गरल-रूपस्य ग्यास्प्राङ्गाङ्गे नोरियं क्रिया तेषां प्रतिभानि ताबढ्यीयां कम-लानां विनाशो भवतीति समाजित्योक्तिरियम् ॥ १४॥

समुच्छलदिरवादि—उदानी वर्षनीं मध्नण्ळलिन सन्मिश्रणता-सनुभविन जीवला: शीकरा जलांजा खाङ्के सध्ये यस्य तस्मिन, नाहशि वायौ बहित मिति, मोडीमहाङ्के मुनिस्तृने भूनले किलँप प्रसिद्धोऽनङ्कः कास-सभियेव अयमवार्थेव व्यतु उत्तापन शोकवरान तमुद्धण्यतां नीतं विधवानां पतिहोनाना नारीणामन्तरङ्कः भूषः पुनः पुनर्येवा स्यातवा प्रविज्ञातं ॥ १६॥

प्येरवादि - इदानो अका दर्दुरा वृधेव कुकवीनां प्रवातं चेष्टितं क्षयनः श्योकुकेतः किर्ककाकितया स्वयमेवान्यप्रेरणं विनेव लपन्तः भारतं कुकंतः पङ्केत कर्दभेन पापेन वा खुताः मंत्रुकाः सन्तः, यद्वा पङ्के प्लास्तनस्या भवन्त उदान्तं कं महदपि जल कल्यतित दृषयन्ति यद्वाऽऽतन्दमगुकुवैन्ति, किन्तु महतामुदारचिरतानामन्त्रिक्शं निस्य-मेव तुदनित दुःखितं कुर्वन्ति । उत भङ्कथन्तरवर्णते ॥ १७ ॥

चित्ते शय इत्याबि – चित्ते रोतं समुत्यवते स चित्ते शयः कामः सोऽयं सर्वमान्यः संस्तु पुनर्जयताद् विजयी भूयादिति किल हृष्टाः रलाघापरायणत्वेन फुल्लतामिताः श्रीमन्तः कुटजा नाम बृक्षास्ते सुमेषु पुष्पेषु तिष्ठन्तीति सुमस्या वारो जनम्य विन्दर्बोऽशास्त्रेषां दलानि समुद्दा-स्त्रेषामपदेशो मिषः सम्भवनि यत्र तं तादृष्ठ' मुक्तामयं मौक्तिकख्छण-सुपद्दारतेशं पारितोषकांशं श्रयन्तु येऽञ्जना वर्षाकाले श्रयन्ति ॥ १८ ॥

कीष्टिगित्यादि — हे ब्यंशिंक्त , विचारकारिन् पश्य, तावरांन तु पुनराशुगेन बालुना कीष्ट्रयास्म्यादिसयावह चित्रं चिराम । चावकस्य चन्चमूनी विराहीचेकालादिय पत्यश्चार कलं तदस्यत्र नृते प्रसक्ते निवारितं दूरोस्मारितमास्त्र। व्यवीहीनवनस्य हसे कदाचिद् वस्तमायाति नदि दुर्देवेन विनयतीति। अम्योक्तिनामालङ्कारः॥१६॥

धर्निरिखादि — उडुवर्गो नक्षत्राणां समृद्दः स इह वर्षाकाले धर्न-मेंधेरेव धर्नेलॉइक्टुनायुधेः पराभूतो भवन् लघुत्वं ह्रस्वाकारतामासाश सम्प्राप्य विचित्रः पूर्वभगादाकारादम्यरूप एव सर्गो निर्माणो यस्य सोऽस्मिन् घराह्न भूतले समाकार्यादम्यरूप स्वचोत इत्येवं तुल्या समानरूपाऽस्थ्य वृत्तियंत्र म प्रचितः प्रसिद्धिमवाप्तः सन् तन्नाम्ना चर्रति तावरिरयहं प्रद्रियंत्र मन्त्रे ॥ २० ॥

गतागर्तरिस्यादि—इरानी वर्षाकाले योषा नाम स्त्रीजािनः मा दोलासम्बन्धिनी या केलिः कीडा तस्यां दौलिककेलिकायां स्वाधं किव-धानात्। कीडर्या तस्यां गुहुर्युहुः पीतःपुन्येन सम्प्राप्त परिश्रमोऽ स्थानो वस्यां तस्यां समीचीनस्तोशस्त्रप्तिमाचो वस्याः सा सुतोषा सती पुनस्च संल्यातेषु प्रसिद्धं पु पुरुषायिनेषु पुरुषव्यक्षं द्वितेषु निपुणस्य भावो नैपुष्यं कुत्रस्वसूर्यति ॥ २१॥

मुक्काश्रय इत्यादि - शोभनी बाहू यस्याः सा सुवाहुदेंस्टिनी दोळाकेळिभोकत्री सुर्खाश्रयः स्त्रेयिनं चौर्यकरम्, इन्दोरिदमेन्दवं विम्बं चन्द्रमण्डळं विम्बशन्दस्य पुंतपुसकत्वादिह पुंक्किक्को श्राद्धः। श्रहुतुं समुद् यथा स्थात्त्रया एति डपरि गच्छति, किन्तु नतापि ब्योग्नि सुचयो मद्दर्येगे राष्ट्रं नाम प्रदं समाद्वः कवयन्ति, योऽसम्मुखः चन्द्रसिति सन्ता कवळविष्यतीति सञ्जातस्थरणा जवादेवापैति नीर्चराधातीति पुतः पुतः करोति॥ २२॥

प्रौडिमिरयादि — प्रौडि गतानां वर्द्ध मानजलखेनो छतानां बहूनां वाहिनीनां नदीनां विभ्रमेण भ्रमऐन संग्रतानां सुहूर्वारवारं सम्पर्क मासायाधुना बर्पाकाले तेन रथेन समागमेनासी वराको जल्पिरिए इद्धो जातः साधिकजल्पनित इति सम्भाव्यते। बहूना विकासवतीनां युवतीनां सुदु: सम्पर्कमासाथ बुद्धो जनो जडबुद्धिरच भवनीति समासीकः॥ २३॥

रसिमत्यादि— कश्चिद्षि जाने मद्यं पीत्वा श्रमभावसुपैत्य यद्वा तद्वा प्रकपित निर्माक्तवेन, तथा च मुखे फेनपु जवानिष भवति तथेव हे सखे, मित्रवर पाठक, रसं जलं रसित्वा संगृद्ध अमैर्विअमैरिति अमतो विस्त्वा अमपूर्णी भूत्वा तथा चोद्धततां कशित्वा सम्प्राप्या-पजलपती व्यर्थे प्रकपतः शब्दं कुवैतोऽस्य समुद्रस्थाधुना पर जानां फेनानां पुरु जस्योहितः प्राद्भावतस्या पूर्णं व्याप्रमास्यं मुख्यस्तीति पर्य । समामोक्ति ॥ २८ ॥

अनारतेखादि—तथा बानारतं निरन्तरमाक्रान्ता सर्वतो ब्यापा ये धना मेघातेबामन्यकारे सित भूजलेऽस्मिन्निशाबामरयो रात्रि-दिव-सयोशिप भेदं भतुँश्वकवाकस्य युनिं सयोग पुनरयुनिं वियोगमि च सम्प्राप्य वराकी चक्रवाकी केवलमेव हि तनोति विस्तारयनि तत्सं-योगियोगवशैनेब जना दिनराज्योभेदं कुर्वन्तीति । रे सखेदसम्बोन्स्य । २४ ॥

नवाक्ट्ररीरत्यादि-मो सुदेह, यदा धरा तु नवैरङ्कुररक्कुरिता

व्याप्ताऽभृत् । व्योक्तो गगनस्यापि शोभना कन्दा मेघा यस्मिस्तद्वम-जातु बहुलनयाऽभृत । उद्द भूनलेऽसिम्त्यमये वास्तिक्विदासीध्जातं तत्मया निरूचये कथ्यते स्व शृगु तावदिति प्रजावगस्य तु वार्ता, भूरि किलाङ्कुरिता रोमाज्जिता व्योक्तोऽपि महर्यस्वमभूयहेति भाव ॥ २६॥

स्वर्गादित्यादि—या रमा लक्ष्मीरिव सा पूर्वोक्ता राङ्गी किल्र-कदा पश्चिमायां निश्चि राजेरन्तिमत्रह ने सुख्तोपसुष्रा महजनिद्रावती सतीत्यर्थः। श्रीयुक्तां शुभ्रम् चिकां पोडटास्यप्रानां तति परम्परां स्वरा-दिन्द्रादितिवासस्यानादिह भूतले आयातवतः समागच्छतो जिनस्य प्रस्तैतीर्थपवर्तकस्य मोपानानां पदिकानां सम्पन्तिमभ्युत्पत्तिमिवाभ्य-परवददशी। २७॥

तस्कालिमित्यादि — च पुनः स्वप्रदर्शनानन्तरं सुनष्टा सहजेना-प्यपाना निद्रा यथोसे तथाभूतं नयनं वस्याः सा वरन्तुसत्तमाङ्गी राह्मी युनरियि नियोगमाञ्जमेनदस्माकमवस्यं कर्तव्यमिति किलाभितः सर्वा-राम कल्याणमयानि मङ्गलस्यकानि वाक्यानि येषु तैः स्नवेर्गु गास्याने हेंतुभिमोगार्थस्वारणवन्दिकतः कर्त्तस्थानेत्रंथीभित्रच परिचारिकास्था-नीयाभिः श्रीप्रभृतिभिः सम्बोधिना सनीष्टोयः कोऽप्याचारः पञ्चपरसे-ष्ठिसरणाहनकस्तपुरस्करं यथा स्थात्तथा तल्यं क्रय्यां विहाय स्वक्त्या प्रातःकर्मे हारीरशोधनस्नानादि विधाय च द्रव्याणां जल्यदीनामष्टके-नाहृतां पुष्टयानामर्थनं पुननं च नत्रसिद्धमागनोक्तरोत्या हुनवती।।१५८॥

ताबिरवादि— तावन्तु पुनरहित्यूजनानन्तरं सत्तमः प्रशस्तिर्ध-मूर्पान् पुरादिभिभू पितमञ्जूजनमङ्गः यस्याः सा, नतानि नन्नता-मितानि—जङ्गानि यस्याः सा। परमा पूरा पावनी देवताभिरपि सेव-नीया तन्त्यस्याः सा। महन्ते महाशयमिज्ञ्जेती सा देवी प्रियकारिणी श्रास्त्रीनां सहचरीणा कुलैन समृहेन किलता परिपृरिता सती किमिर्दे मम मनसि मञ्जातीमिति बालुं कामग्यते तत्त्रया गुआयां समायां स्थितिमिति तं पृथ्वीगिर्ने सिद्धार्थनामानं निजस्त्रामिनं प्रतस्ये सञ्जगम ॥ ३६॥

नयनेत्याद —नयनं एवाम्बुजे कमले तथोः सम्प्रसादिनी यद्वी-अर्णेनव ने प्रमन्ते भवन इति तमसः छोकसन्तापरगान्यकारस्य चादिनी हार्जी दिनपरय सूर्यस्य अचि छविमित्र ता राज्ञी समुदीस्य हृद्वाड्य पुनः स राजापि नां निजस्यासनस्याङ्के भागे किछानके दोषवर्जिते वेष्ठयति स्मोपावेज्ञग्रविति ॥ ३०॥

विवारेत्यादि — विकारानां स्वच्छानामंग्यूनां किरणानां समूहाना-भितारव ने मणयर ने गां सण्डलेन समुरायेन सण्डितं संयुक्तं विवारित विस्ताय्युक्ते पुरुष्ताकारे शोभने समुक्तं महाविमले निर्मेष्ठलानिवोऽन एवावनी भूमी छिलतं हरिपीठे सिंहामने पर्वत इत्यनेन कैछासपर्वेत डब पाऐश्वरस्य पाश्वं सानच्छने समित पार्वसंगनाऽभी सनी महिषी पर्वाडी, यग्नुपर्ताहाद्वस्य पार्वगना पार्वतीत नदा बभी शृशुभे। अपि च पार्युक्ती। ११-२२॥

उद्योतक्तीस्यादि उदितानामुद्यमितानां दन्तानां विशुद्धें नि-देषि रोचिर्झार्दीमिलेझेन् पस्य स्त्रामितः कल्योमेनोह्रय्योः कुण्डलयोः कणीभूषणपीः करपस्य सस्यानस्य शोचिः कान्तिमुखोतयन्ती वर्षयन्ती सती सा चन्द्रवद्दना राझी समयानुसारं यथा स्यान्याऽवसरसवेत्ये-रवर्षः। तस्य नरएने कर्णशोर्मच्ये इति निम्नाङ्किनं वच एवामृतं प्रसक्ति-हेतुत्वान्, यच्चोदारमसंकीर्णं स्टब्टनयेत्यर्थः। तद्दिष पुनिश्च्यंव पूरितवती ॥ १६॥ श्रीस्पादित्रयम् –हे प्राफेस्वर, संस्तुगु, वा भगवरूवरणपयोज-श्रमरी या चौत किछ श्रीजनपद-प्रसादादवनी सदा कल्वाणमागिनी तथा भया निशादसानी दिशदाङ्का श्रम्टरूपा स्वप्नानां थोडशी तति. सह-साऽनायासैनेव हच्टा तस्या यत्किञ्चिदिष ग्राममञ्जे वा फळ ग्राभाव क्छ तद् हे सञ्चानेकविकोचन, श्रीमना भवता वक्तस्याहित यतः ख्रुल सानिनां निसगोरेव किञ्चिद्वयगोचरं न भवति ॥ ३४-३६॥

पुर्व्यक्षितास हृत्यादि - पूर्ण्योनास सिद्धार्श स प्रियतः स्थातस्वरूपः प्रमुख्यितारः प्रोयो नित्तनस्वरेशो स्वयात्या 'प्रोयः पान्येऽपवणेणाया-स्वर्णा ना नाम्येगो' इति तिवर्णेचनः । महिष्या प्रोकासुक्ता पृत्य-स्वित्यस्य स्वर्णाना स्वर्णाना पृत्यस्य प्राप्ता स्वर्ण्यस्य स्वर्णाना स्वर्यस्वर्णाना स्वर्णाना स्वर्यस्य स्वर्णाना स्वर्यस्वर्णाना स्वर्यस्वर्यस्वर्णाना स्वर्णाना स्वर्

खं ताबिदस्यावि — हे नन्दरि, तनु श्वल्यमुद्दरं वस्याः सा तस्त-म्बुद्धिः । त्वं ताबच्छ्यने मुख्यशयानापि पुनरन्येश्वोऽप्राधारणामनन्यां स्वप्नावित्मीश्चितवती द्विशेषिति हेतोस्त्वं धन्या पुरव्यशास्तिनी भास्ति राजसे । भो प्रसम्रवदने; हे कल्याणिन यथास्याः स्वप्रतनेमेञ्जुनसं जनसनोरच्छकं फल्लिमिइलोकं स्थाच्या ममास्यान्यवाच्छ्याः ॥३८ ॥

अकलकु त्यादि—हे सुभगे होभने त्वं भीमांसिनास्वाऽऽप्रमीमां-सेव वा विभासि राजसे यनस्वं सिकाकल्ड्या निर्दाण खल्ड्यार नृपुरादयो यस्या: सा, पनेऽकलङ्केन नामाव्यार्थण क्रनोऽल्ड्यागे नाम स्यास्थानं यस्या: सा। खनवर्षा निर्दोष देवस्य नाम तीयकतु रागमोऽ- बतारस्तस्यार्षं तमेव वार्षं प्रयोजनं, पक्षे देवागमस्य नाम श्रीसमन्त-भद्राचार्यकृतस्तोजस्यार्थं बाच्यं गमयन्ती प्रकटियजीत्यक्षं। सतां बृद्धार्णा नय आम्नायस्तस्मान्। पक्षे समीचीनो यो नयो न्यायनामा तत्ती इतो: । स्वेपोपमा।। ३६॥।

लोकेत्यादि — उत्कुत्ले निक्ष्ति कमले इव नयने यस्यास्तस्याः सम्बोधनम् । इद तबेङ्कितं चेप्टितं हीति निश्चयेनाय तबोदरे लोक-त्रयस्य त्रिमुत्रनस्यकोऽदिनीयस्तिलकः ल्लाटमूपणिनच यो बालकः स्रोडन्तरितः समायात इरोवं प्रकारेण सन्तनोति सप्टयति । क्रम-इस्तरेष वर्णयित्मारभते ॥ ४० :

वानिभवादि — प्रवममैरावतहित्तस्वप्नं स्पष्टयति — स किळ निश्चयेन द्वौ रदौ दन्तौ यस्य म ब्रिट्स इव हिन्तसमानो भवनवतरे-द्वतारसाप्तुयान्। यतः सोऽखिळासु दिखु मेदिनीचके पृथ्वीमरवके सुदुर्राण वारं वारं दानं सुक्रन् मदिनिच यागं कुर्वन् मन् पुनः समुक्त कारमा चेतनं झरीरं वा यस्य सः । विमलो मलेन पापेन रहितः शुक्र-वर्णस्य सुदिनो मोदिमतः शाप्त ईटल ऐरावत इव सम्भवेदिति ॥ ४९ ॥

मुळेत्यादि—मुळगुणा महात्रतादयः, श्वादिशस्तेनोत्तरगुणास्त-पर्वरणाद्रयस्तस्मिनिकोन रत्तत्रवेण सम्यदर्शनज्ञानचारिवासम्बेन पूर्ण भूतं धर्मनामात्रकटं च पुन दु[®]किरेव पुरी चिरनिवासयोग्यत्या-नागुपनेतुं प्रापितुं वृषस्य बळीबदेगथातस्य गुण स्वभावमञ्चन् श्रानुसरन् तस्य धुरस्यरो भवेदिति ॥ ४२ ॥

दुर्गमनिवेशेत्वादि — दुर्गभिनिवेशो विरुद्धाभिप्रायो वस्तुस्यरूपा-दन्यप्रकारः स एव मदस्तं उत्मद्धितुं समर्वत्वारोनोद्धुरा उत्वाधितम-सतका उद्धता वा कुत्रादिनः कुस्सिनं वदन्तीति ये तेषामेव दन्तिनां हस्तिनां तुल्यधर्मस्वारोषां च मदमुद्गेसुं परिहर्तुं मयं बालकः स्वतु निश्चयेन दक्षः समर्थो भवेददीनः कातरतारहित इत्यं केसरी सिंह इव भूयादिति । खद्यं यथा स्याचथेति निर्दयलेन कदाचिदःयरिमन् विषये द्यां न कुर्यादिति ॥ ४३ ॥

कत्याणेत्यादि—कमलाया लक्ष्मया आत्मनो यथाऽभिषयो गजै: क्रियते तथास्य कल्याणाभिषयः स्नानोत्मयः सुमेरो पर्वतस्य शीर्षे मस्तके पायङ्कशिलोपरि नाकपनिभिष्टिद्रेररं शीव्रं जन्मसमय एव विमलो निमीलनासम्पादकः स्याङ्ग्यान् । मोऽपीदशो वरः मर्बश्रेष्ठो बालकः स्थावित ॥ १४ ॥

सुयज्ञ इत्यादि—श्रय चोरियस्तुर्वोजकः सुयज्ञ एव सुरिभर्गन्ध-स्तस्य समुज्ययेन समूहेन विज्ञुन्धितं न्याप्तं च तदशेषं मन्यूर्णमपि विन्द्रपं जगये न सोऽत एव च अञ्चा धर्मात्मातस्त एव प्रमरास्तिरिह् रहोक योऽस्वाविमतः स्वीकृत इतः कारणान् पुनर्मोक्ययोमीले एव माल्ये तयोद्विक इव यगळबद्भवेतु ॥ ४४॥

निकेत्यादि — यश्च बालको विश्वरिव चन्द्रमा इव कलाधरत्वात् कलानां स्ववरीरस्य गोडआंशानां क्रमशो धारकरचन्द्रो भवति,बालकश्च पुतः सर्वोसां विद्याकलानां धारक इत्यनः । निज्ञाना शुचीनां पादना-नामुङ्ग्यलानां च गवां मुमीनां वाचां च प्रतिभयः पक्षिक्तभ्योऽपादान-रूपाभ्यः समुत्पन्नस्य वृषो धर्म एवामृत तस्योरभ्यार्था किलाविकलस्य-रूपया मिश्चन् की पृथिव्यां मुद्दं इर्षे चन्द्रपन्ने कुमुदानां समृद्दं विवर्धयेदिनि ॥ ४६ ॥

विकचितत्यादि —रिवदर्शनाद् यरच बालको रिविरिव विकचितानि प्रसम्रमार्व नीतानि भव्यास्मान एव पयोजानि कमळानि येन स । कञ्चानमेवान्यकारी आमकत्वान् तस्य सन्दोहः संस्कारस्य नद्यः प्रणाइं गतीऽज्ञानान्यकारी येन सः । स्वस्य महस्य जेवसाऽभिकलितो ज्यातो लोकः समस्तमपि बगद् येन सः । केवलनाम्नो ज्ञानस्यालोकः प्रकाशोऽय च केवलोऽन्यनिरपेक्ष ब्यालोको यत्र स सम्भवेदिति । रूपकालङ्कारः ॥ ४७ ॥

कलकोत्यादि — यश्च कलकायोर्मङ्गळकुन्भयोर्द्विक इत्र विमलो मलबर्जित इह् च भव्यजीवानां मङ्गळं पापनाशनं करोति सः। गृष्णया पिपासया विपयानामाशया चातुराव दु खितायाष्ट्रतस्य जलस्य मरणा-भावस्य च सिद्धि निष्पत्ति संसारेऽस्मिन् स्वार्षपूर्णेऽपि अणित ददाति ॥ ४८ ॥

केलिकलामित्यादि — स बाळको महीतले प्रथिज्यां प्रदितात्मा प्रुदितः समझ ख्रात्मा वस्य सः, भीतद्विकवनसत्स्युगलमिव केलीनां केला तामाकल्यन् कानुभवन् सकललोकं समस्तत्रीयलोक-मतुल्लत्या प्रमुद्ध प्रमुद्ध । ४६ ॥

अध्दाधिकिनित्यावि — यथा त्वया स्वप्ने कमलानां पङ्कणानाम-ष्टाधिकसहस्रं द्धानो हदस्तहागो हष्टः, तथैवायं बालकः स्वश्रारीरे सुलक्षणानां ग्रुभचिन्द्रानामप्टाधिकं सहस्रं धार्याच्यति, किन्न भविनां संसारिजीवानां सतनं क्रमनाशकः क्रमं परिश्रान्ति नाशयिति नक्ष्मीलो अविष्यति ॥ ४०॥

जलनिधिरित्यादि — यथा स्वप्ने जलनिधिर्दृष्टः, तर्षेवार्थं वालकः समुद्र इव गम्भीरः, पालिता स्थितियंन स सर्योदायालकः, क्रभीतां नवनिधीनां घारकः भविष्यति । वाऽयवा केवलजानां, केवल-ज्ञानोतस्या सह जातानां नवजन्नथीनां घारकः प्रभवेत् ॥ ११ ॥

सुवदिमस्यादि —सः शिशुः इहारिमंन्लोके सततं सदा समुज्ञते-स्टक्षेस्य पदं स्थानं स्थान्, तथा ज्ञिवराज्यपदानुरागः शिवस्य मोक्कस्य राज्यपदं प्रभुत्वस्थानं तस्मिन्ननुरागो यस्य मोक्षराज्यप्रीतिमान् स्यात् । किञ्च स्वप्ने सिंहासनदर्शनेन, चामीकरस्येव चार्ची रुचिः कान्तिर्यस्य तथाभृतः, वरिष्टः श्रेष्ठश्च स्यादिति ॥ ४२ ॥

सुरसार्षेरित्यादि—श्वसी बालकः सुरसार्थैः सुराणाः,देवानां सार्थाः समूद्रास्तेः सम्बक् सेत्रवा इति संतेष्टव सेवाहः स्वात् । संतर्ट-तेरतीतं सनो यस्य तस्से जगद्विरक्तिचताय पुरुषाय, श्वभीष्टः प्रदेश-स्तस्य संजिध्यसस्याः समीहितमुक्तिप्रापेः हेतुः विमानेन तुल्यं विमान-वत्तृ विमानमदृष्टः पूतः, पवित्रः स्यादित्ययः ॥ ४३ ॥

सत्तिमित्यादि — असी महीसण्डले पृथ्वीछोके, सत्तमनारतं सुगीत तीर्थे यद्यो यस्य सः महॉरवासी विसलः परमपित्रतः, पुनः धवलेत यहासा कीर्त्यो नागानां मन्दिरं पाताललोकस्तद्वत् पुनः सुष्ठु विश्रतः प्रसिद्धः स्थादिति ॥ ४४॥

सुगुर्कारस्यादि — सुगुर्णः शोभनगुर्णरमर्छर्निर्मर्छर्दया-दाक्षिरया-दिभिः सक्तजानां लोकानां जनानां अनन्तः असीमेर्मनसोऽनुकूछे-र्गाणः, रत्तः रतनसमूह इवाभिभायाच्छोमेतः ॥ ४४ ॥

अवीत्यादि—श्विष पुनरने यथा विशदो निर्भूमो बहिसमुहो दारुणा कार्डेनीदितानां सम्पन्नानां तबेव दारुणं अयंकरपुदितमुद्दर भावो येवां तेषां विरजानानामनादिपरम्परया प्राप्तानां कम्पा क्राणादीनां निवाहं समुद्दे स बाङको सस्त्रीभावं नयेद्वित ॥ ४६॥

उक्तार्थमेव पुनरुपसंहरति-

समुन्नतासेत्याबि हेदेवि, असौ तव पुत्रो गजानां राजा गज-राजस्तद्वत् समुन्नत उत्कृष्ट आल्मा यस्य स पवंभूतः स्यान्। अवनौ पृथिष्यां पुरन्वर इव कृषम इव घवलो निर्मलो घमेषुराधारकरच भवेत ! सिंहेन तुल्यं सिंहवद् ज्याप्रवत् स्वतन्त्रा पृत्तिव्यवहारो यस्य तयाभृतः प्रतिभातु शोभताम् । रमावल्ळक्ष्मीवत् शास्वदस्वरिद्धत उत्सवो वस्य तथाभृतः स्यात् । हे देवि, जव अवे ससारे तव सुतः हि-दामवत, द्वे दामनी तदस्यास्तीति द्विमाल्यवत् सुमनःस्थलं समनसां पुष्पाणां सञ्जनानाञ्च स्थानं स्थात् । शशिना तुल्यं शशिवचचन्द्रवन्नो-Sस्माकं प्रमादभुमिः प्रसन्नतास्पदं स्यात् । यो बालको दिनेशेन तस्यं सर्यवत प्यां मार्गाणां दर्शकः स्यात्, द्वयोः कुम्भयोः समाहारो दिक-स्म तद्दन मञ्जलकृत कल्याणकारी स्थान् । हे देवि, तव बालकः प्रापयो-र्यं मां मीनमिश्रुन सम्मितिर्यस्य सः, विनोदेन पूर्णः सततमनोर जकः स्यान, परोधेः समुद्रस्य समः परिपालिता स्थितिर्येन स मर्थोदापालकः म्यात । क्लमिक्छेर परिश्रान्तिनाशाय देहसूतां प्राणिनां तटाकवत सरोवरतत्त्यः स्थान् । गौरवं करोतीति गौरवकारिणी या संवित तस्यै गौरवज्ञालिज्ञानाय सुष्ठु पीठं सुपीठं तद्वत् सुन्दरसिंहासनमिव स्यात् । यो बालकः, विमाननेन तुल्यं विमानवद्, देवयानमिव, सरसार्थेन संस्तयते इति सुरसार्थसंस्तवो देवसमूहस्तुतः स्यात् । यो नागानां लोकस्तद्वन पाताललोक इव सुगीतं तीर्थं यशो यस्य वर्णितकीर्तिः स्यात । भवि पृथिव्यां रत्नराशिवत् रत्नसमूह इव गुणेर्द्यादाक्ष्टिएया-दिभिरुपेतो युक्त स्थात् । बह्निना तुन्यं बह्निवदिनवत् पुनीततां पवि-व्यतामभ्यपयात् प्राप्नोत् । हे देवि महाराज्ञि, इति किलोपयु कप्रकारेण तव गर्भे आगतः पुत्रः निश्चयेन निस्सन्देहमित्येवं प्रकारेण भूत्रया-धिपः त्रेलोक्यस्वामी भवितुमहैं , तीर्थस्य नायकः , एताहक पुत्रः इन्टो-Sस्माकं इच्छाविपयोऽस्ति । यत इह भूतले सतां सञ्जनानां स्वप्रवन्दं क्रचित्काप्यफलं निष्फलं न जायते । ब-इति निश्चये ॥ ४७-६१ ॥

बाणीमित्यादि — इत्ययुक्तप्रकारेणामोघा सत्यार्थक्रपा च सा मङ्गलमयी पापापेता चेति तामेवं मिष्टां श्रवणियामपि वाणीं स्वामिनो निजनायकस्य महीपतेस्तस्य मतिमतेषिंशिष्टबुद्धिशालिनः श्रीमुखा- न्निःस्तामाकर्ष्यं श्रुत्वा सा वागोरुवांमे मनोहरे-डक् जक्क वे वस्याः सा जत्मक्के श्रद्धे प्राप्तः सुतो यया सेव, करटकीः रोमाक्केयुं का ततु-वस्या सा हर्षाभूषां प्रमोदन्नलानां संवाहिनी नदी जाता बभूव । यदा-स्मारकारणान् सुतमात्र एव साधारणोऽपि पुत्रः सुतः सुखरो भवित स एव तीवेंश्वरः सर्वेजनसम्मान्यः स्वाच्चेतदा किं पुनर्वोच्य-मिति । ६२।

त्तिबहैत्याबि — तत्त्रस्मात्कारणान् सुराश्च सुरेशाश्च की दृक्षाले सन् समीचीनो धर्मश्च कर्तव्यनिर्वर्हणक्यो लेशो मनिस संस्कारो येथो है। इह कुरहनतान मगरे प्राप्य समागम्य सहुदयेन शुक्रकर्मण किलते समनुभावितमङ्क अगरे व्यवस्थातं तत एव वराङ्गी सुन्वराच्यवम् वस्था देवोपनीतस्य पटहस्य ग्ण शब्द स्थादः पूर्वतम्भवो यत्र तै: झल्ळरीमद्रेलवेगुप्रभृतिकार्वः किञ्चानिर्वचनीयप्रभावः शेष्ट- स्व तैः पार्थं रचरणयोगर्यणीयज्ञळेरिय नवं नवीनसपूर्वहरूदं नवस्त्रयन्मिति कुल्वा तस्यूर्वकं तां सुदृश्च नुःवा नमस्कृत्य ते पुनरिष्टं स्थानं अगमुः ॥ इस् ॥

इति चतुर्थः सर्गः।



पञ्चमः सर्गः ।

अथामविति— कथ इति शुभसम्वादे, व्योग्न क्याकारो सूर्य-मितरोते इति सूर्योतिशायी महाप्रकाशः महाश्र्वासौ प्रकाशः महाप्रकाशः समुख्योतः तदा तिमन् काले सहसा क्षकस्मादेव जनानां दशकानां हृदि हृदये किमेतन् इत्यं एवं प्रकारेण काकुभावं वितर्क कुर्वन् समु-त्यादयन् सन् प्रचळतामावः प्रचळति प्रसरित प्रभावो यस्य स उत्तरो-त्तरबर्द नशीलः इत्यर्थः स प्रसिद्धः क्षभवत् ॥ १ ॥

क्षणोत्तरिमत्यादि — स प्रसिद्धः श्रीदेवतानां श्रीद्वीप्रभृतीनां निवहः समृद्धः क्षणोत्तरं क्षणानन्तरं सम्भिष् समीपमाजगाम । तदा स नरेशः सिद्धार्थं खादरे सम्माने उद्यतस्तरगः सन्, तासां देवताना-मातिभ्यतिथौ खातिविसिन्हारे ऊर्व्वीवभूव, न ऊर्व्वोऽनृत्यः, खमूर्व्यं कश्वीवभूवे त्यूर्व्वीवभूव, उर्व्यास्त्रः सन् उत्तिष्टृतिसम् ॥ २ ॥

हेतुरित्यादि—नराणामीक्षो नरेक इति वाक्यं प्रयुक्तवाच् चवाच । तदेवाह—हे सुरश्रियो देवच्ध्रम्यः, तत्र भवतीनां नरहारि मानवगृद्दे समागमाय-द्यागमनाय को हेतुः किलेति सन्देहे । इतिकाय प्रवंहप-सर्क ऊहो मम चित्रं हृदयं दुनोति पीडयति ॥ ३ ॥

गुरोरित्यादि—हे विभो, हे राजन, गुरूणां श्रीमदर्हतां गुरो-इंनकस्य भवतः श्रीमतो निरीक्षा निरीक्षणं दर्शनमित्ययः। अस्माकं भाग्यविधेर्देवविधानस्य परीक्षारतीति रोषः। श्रीमदर्शनजन्यपुरया-र्जनमेवास्माकमागमनहेतुरित्ययः। तदयेमेव भवदर्शनार्थमेवेयमस्माक-मागमनस्या दीक्षा वर्तते। अन्या काचिद् भिक्षा न प्रतिभाति, न रोचते॥ ।। अन्तःपुर इत्यादि —तीर्षकृतो भगवतोऽवतारः अन्तःपुरे श्रीमद्रा-हीप्रासादे स्थान्, अतस्तस्य भगवतः सेवा परिचर्येव सुरीपु देवाङ्ग-नासु शोभनः सारसन्दवार्ये विद्यते । श्रक्रस्येन्द्रस्याङ्गया निर्देशन तवाङ्गा तां भवदनुङ्गां लच्छुभिन्द्रुर्लिन्सुरयं सुरीगणो देवलक्ष्मीसमृद्दो भाग्याह वान् सन्तलोऽपि स्यान् कृतार्थोऽपि स्यादिति । सम्भावनार्यां लिक् ॥ ४॥

इत्यमित्यादि — इयोखमनेन प्रकारेण स सुरीगणः कञ्जुकिना सनायः युक्तो भवन् मातुर्जनन्या निकटं समीपं समेत्य प्राप्य, प्रणम्य बन्दित्या तस्याः पदौ तयोस्तञ्चरणयोः सपर्यायां परः पूजातस्यरो बभू-वेति नृषु वयो नृवयो महापुरुषा जगुरवदन् ॥ ६ ॥

न जात्वित्यावि—रेटयो राष्ट्री प्रति कथयन्ति, हे राष्ट्रि, वयं जातु कदापि मनागिप ते दुःखदं कध्दप्रदं कार्यं नाचरामो न कुर्मः सदा तब सुक्तस्येव स्मरामाः, तब ज्ञानन्दाय एव वयं चिन्तयामः, ते तबानु-महं कुपामेव शुक्कं यामो जानीमः । स्विदङ्गतस्वरसंकेततोऽस्यङ्ग बदामो न कथ्यमः ॥ ७ ॥

बस्तेत्याबि--ता देव्यस्तस्ये राज्ञ्ये निजीयमास्मीयं हृदयं चित्त-मिन्नप्रायं वा दश्वा किञ्च शस्त्रैः श्रेष्टेः कार्येस्तस्या हृदि हृदये पदं स्थानं स्वय्या मुक्त्य्याः इतकृत्या देव्यो विनत्युपक्षैः प्रणतिपुरस्तर्रवेचनै-र्बनस्या मातुः सेवासु परिचर्णसु विवसुः श्रुशुभिरे ॥ ८ ॥

प्रेम इत्यादि — काचिर वी प्रगे प्रभाते राज्ये आदरेण दर्गणं सुक्रं रेण वेगेन मरूहको मनोझनेत्राया सुखं द्रष्टुं दरी। काचित् ररेषु दन्तेषु कर्तुं विधातुं सुद्र मुक्तं दरी, तथा काचित्वक्त्रं सुखं क्षाळ-यितुं धावितुं जलं पानीयं दरी।। ६।। तनुमित्यादि -- पराऽपरा जनन्यास्ततुं देहसुद्वर्तयितुमध्यङ्गार्थं गता, कथाचित् राज्या अभिषेकाय कक्छप्रिजंळसमृह आणि आनोतः। अत्रत जननीशरीरे जद्दश्मक्षे मूर्वसंगो उ-ळ्योरमेदाव्जळसम्झ्रो वा कुतः समस्तु तिष्ठतु, इति तर्कवस्तु चित्र केवा। पुन क्याचिह व्याः प्रशस्या अतिश्रेष्ठा गात्रतिरङ्गसमृदः प्रोच्छनकेन वश्रेण सन्मार्जितः अशिवतः । अन्या देवी तर्दे राज्ये, अयानन्तरं सुझातं निर्मलं दुक्कं पट्टबन्नं समदाद् ददी, अतोऽस्या गुणवस्सु पुरुषेषु पटेषु बा समाद्द आसीदितः। श्रित्यः ॥ १०-११॥

बबन्धेस्यादि--काचिह वी तस्या जनन्या निसर्गतः स्वभावतो विक्रमभावदृश्याम् कुटिलभावदृश्तीयाम् कवशै केशवन्यं ववन्य, वेणीगुम्फनं चकारेत्यवै: । तथा वदान्या चतुरा ख्रन्या देवी तस्याश्चछ- स्वयोदे शोनेंत्रयोर जानं चकार कञ्जलं चिश्लेष । कीदशमितिशतं ख्रति- कृष्णम् । कृष्णा अनेन चलुपो: शोभातिश्यदृश्चैनादिति भावः ॥ १२ ॥

श्रुतीःवादि—तस्याः श्रुती कर्णो सुशास्त्रश्रवणात् शोभनागमश्रव-णात् पुनीते पृते, श्रातएव कथाचिहे स्था पयोजपूजां कमलार्चनां नीते । तस्याः कर्णो कमलाध्यामलक् कृताविष्यशं । काचिहे वी. सर्वेष्वक्रे पु विशिष्टतां लातीति तस्मिन् विशिष्टताले परमशोभने भाले खळाटे तिलकं विशेषक च चकार। ॥ १३ ॥

अलञ्चकारेत्यादि--ज्यान्यसुरी कावित्परा देवी नूपुरयोर्द्वयन नूपुरयुगलेन स्थेण वेगेन तस्याश्चरणी भूषयाञ्चकार । इह तस्याः कुचयोररं शीव संछादयन्ती क्यानियमाणा करेठे सहुकोमलपुष्प-हारं पुष्पमालां चिक्षेप न्ययान् ॥ १४ ॥ काश्विवित—काचिद्दे वी, इहास्या जनन्या सुजे बाह्रौ बाहुवन्धं केयूरमदात्, बबन्धेत्यर्थः । पराऽपरा करे तस्या हस्ते कडूणं वस्त्य-माबबन्ध खबप्तात् । तानि प्रसिद्धानि वीरमापुस्तीयेकरजनन्या बस्त-यानि कडूणाभूषणानि, माणिक्यमुक्तादिविनिमतानि हीरकपद्मरा-गादिमणिभविदितान्यासन्तित भावः ॥ १४)

तन्नेत्यादि —तन्नाहृंतस्तीर्थकरस्य, अर्चासमये पूजाकाले तदा अर्चनाय पूजनाय योग्यान्गुचितानि वस्तृनि प्रदाय दस्ता, उत्साहयुता सोस्करठा: देव्य: सुदेव्य: श्रेष्ठदेवाङ्गनास्तास्तया जनन्या समं सार्थे जगत एक: सेव्य इति जगदेकसेव्यस्तं जगदेवनायं प्रभुमाभेजुः सेवितवस्य: 11 १६ 11

एकेत्यादि— तदैका देवी छृदङ्गं मर्दछवार्यः प्रद्रधार छृतवती, क्रम्या बीणां महत्ते द्यार, प्रवीणा चतुराऽत्या ग्रुम्कीरं वाद्यविशेषं द्यार । जिनमभोरहतो भक्तिरसेन युक्ता काविन्मातुः स्वरं गातुं प्रयुक्ता प्रदुक्ता क्रमूत्, गानं कर्तुं छग्ना गातुसारेसे ॥ १७ ॥

चकारेत्यादि -- काचिद युवितर्वेवी, स्वकीयसंस्तरसु निजसभासु कृतैकभाष्यम् , विद्दितेकविस्तारं, जगद्विजेतुः संसारजयशीळस्याहेतो दास्यं कैकुर्यं दघद्वारयत् काशु शीघ्रं पापस्य हास्यं तिरस्कारं कुर्वायां विद्यानं स्रकार्यं मनोहरूत्यं चकार ।। १८ ।।

अर्घोवसान इत्यादि — उन अध अर्घाया. पूजाया अवसाने अपने गुणक्रपयोश्चवीद्वागाईनो गुणक्रपवर्णनक्ष्मण्यान विनष्टवची: मति: समस्य सामस्त्यान नष्टपापमक्षा मित्रस्य मातुरिति इक्कितं चेष्टा-मेत्य झाला जातु कदाचिदिह नृत्यविषये जोपमि सौनमपि ययुः प्राप्ताः, नूर्णीष्माचेन स्थिता इत्यर्षः ॥ १६ ॥ सबुक्तय इत्याबि—रदाछिरिधमच्छलदीपवंशा, दन्तपिक्किया-जेन दीपसमूदतुल्या, या च झलसङ्गा न, झालस्यज्ञानरहिता सा श्रीमातुर्जनय्या रसज्ञा जिङ्का सदुक्तये, सती चासातुर्कितस्य, झयनं झवकाशं सार्गे वा दातुमिव एवं प्रकाराऽभूत्। वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रोवाचेर्स्ययः।। २०॥

धवेच्छिमित्याबि—मो सुदेश्यः हे देवलक्ष्म्यः, यथेच्छिमिच्छानु-रूपमाष्ट्रच्छत प्रश्तसमाधानं कुरुत, युष्माभिरेल प्रश्नुर्जेनः सैच्यः स्रेचनीयोऽसित । ब्रह्मपि प्रभोगद्दैत प्रवोधासिकाऽस्मीति होषः । खतः ब्रह्मप्रश्न-समाधानरूपया नाचा सह्रोचो वार्षिरिवेति सह्रोचवार्षि-कंब्रासागरः प्रतरेन तरीतुं अन्तुचादित्यः। । २१ ॥

न चातकीना[मत्यादि – यदि पयोदमाला मेघपङ्करचातकीनां चातककीणां पिपामां जलपानतृष्णां न प्रहरेन् न नाशयेत्तर्हिं जन्मना सा किंगु ? तस्या जन्मना कोऽर्थः ? न कोऽपीत्यवैः। तथैवाहमपि युष्माकमाशङ्कितं संत्रयमुद्धरेयम्, चपहरेयम्। किञ्च तकें सदसदृहं रुप्तिमल्छां किं कथं न समुद्धरेयं धारयेयमवश्यमेव धारयेय-

नैसर्गिकेत्यादि — वितर्के, उद्घापोहे सेऽभिरुचिः कामना नैसर्गिकी स्वाभाविकी क्रांति। यथेह कर्के ग्रुकावे दर्पेण वास्त्राभाविकी क्रन्छता स्वच्छता भवति। क्रय विश्वन्थरस्य जागराजकस्य प्रभोः साह सोभान कृपा दया, धुवेवास्त्रमिव से साहाय्यकरीं साहाय्यदान-शीखा विभातु राजताम्। अत्र स्थान्तः, उपमा चाळङ्कारः।। २३ ॥

इत्येविमत्यादि-- ऋषि बुद्धिथार हे बुद्धिमन् मातुरित्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण, ऋारवासनतः साहाय्यदानवचनतः सुरीणा देवीनां सङ्कोचनतिर्ळज्ञाभावविस्तरः सुरीणा विनष्टा बसूव। यद्या प्रभातो- द्यतः उदःकालागमान् , अञ्चकारसत्ता तमःस्थितिर्वेनस्येन्नस्यति तथैयेनि भावः । अत्रापि दृष्टान्तोऽलङ्कारः ॥ २४ ॥

शिर इत्यादि — तदेव तिसन्नेव काले तासां देवीनां मिकरेव तुला तत्र स्थितं शिरो मस्तकं गुरुवादादरगौरवात्रातं तस्रदभाप । सा कुछ मक्कोमला कलिकामृद्धी करहथी इस्तुगालं समुच्चवाल, नत्यमं मूर्ण्यमगमन् । नमस्काराषं पाणियुगालं शिरसा संयोजयामासुरित्ययैः। चेति समुच्चये । एषा यक्तियौजनीचितं । अत्र क्षकेऽङक्कारः।।रसा।

मातुरित्वादि —भो जिनराज, भो देव, कुमारिकाणां सरोज इव शस्तौ कमलसुन्दरौ इस्तौ करौ चन्द्रभिवेन्दुभिव मातुर्जनन्या सुखमा-ननमेस्य प्राप्येव तु सङ्कोचं कुरू मठीभावमातौ, यदेतद् युक्तभेव विभाति। यतो हि चन्द्रोदये कमलानि सङ्कृ चन्त्येव नियमात्। श्रव चपमालकादः॥ २६॥

स्त्रहामित्यादि — तासां देवीनां छलाटमिलकिमिन्दोक्वित-मिन्दूचितं चन्द्रतुल्यमेव, तथापि तन्मातुर्जनन्याः पादाववज इव पादाब्जे तयोश्वरणकमलयोरवाप प्राप्तम् । अयं भावः — लोके चन्द्रः कदाचिद्यि कमलं नाप्नीति, परं तासां भाव्यचन्द्रो मातुर्वरणकमलयोः प्राप्त इत्यक्ष्यप्तम् । सा पूर्वोकाकाऽऽभूतं अद्भुत्वेत्यवलोकनायाषुना तासां सकौतुका वाम्बाणी वदियाय प्रकटीयभूव, वस्पाणप्रकारेगोति जोषः । अत्र वरमा-व्यक्षप्ता पालङ्कारः ॥ रेण ॥

दुख:मिरवादि— तदेवाह-हे मातः, जनो लोको दुखं कथ्टं कुतः कस्तादभ्येति प्राफ्नोतीति प्रस्तः। पापादिति मातुरुत्तरम्। पापे करूनाये थोर्जु दिः कुत्त इति प्रस्तः। श्राविचेकस्य तापः प्रतापस्तसादिखु-स्तरम्। सोऽविचेकोऽज्ञानं कुत इति प्रस्तः। मोहस्याज्ञानस्य झापः चृदयस्तस्यादिखुत्तरम् । जगतां लोकानां मोहस्रुतिमोहिहानिः किं दुराषा दुष्प्रापेति प्रस्तः।। २८।। स्यास्तेत्यादि — इह संसारे सा मोहश्लानरपरागस्य विरक्तस्य पुरुषस्य हृदि चिते विशुद्धवा चित्तशुद्धवा स्थादित्युत्तरम् । श्रप्रागो रागाभावः कुत इति प्रस्तः । परमात्मित वृद्धिः परमात्मवृद्धिः, तथा रागाभाव इयुत्तरम् । इति परमात्मनीना परमात्मविषयिणी बृद्धिः कुतोऽस्तित्वित प्रस्तः । उपायात्परमात्मभक्ति-तप-संयमादिसाधना-स्मुतरामत्यन्तमहोना भेष्ठा परमात्मवृद्धिभैवतीत्युत्तरम् ॥ २६॥

राग इत्यादि — रागः कियान् किंपरिमाणोऽस्तीति प्रश्तः। स नेइस्य सेवा यस्मिन्निति नेइसेवः द्वारीरपोषणरूप इत्युत्तरम्। नेद्वः कीहितित प्रश्तः। एष नेद्वः कोठो धूर्तो जडो वेत्युत्तरम्। काठः कविमिति प्रश्तः। स्वयं नेद्वः पुष्टि पोषणमितः त्राप्तोऽपि नश्यिति विषयतेऽतः काठ इत्युत्तरम् । किन्तु, आयं सांसारिको जनस्तदीयवश्यस्तस्य नेद्दस्यै व वशीभतः॥ ३०।।

कुतोऽस्येत्यावि—श्रय जनोऽस्य देहस्य वस्योऽधीतः कुतः कस्मा-रक्तारणादस्तीति प्रस्तः । यतो हि जनस्य तस्वबुद्धिहॅथोपादेशज्ञातं नास्यनोऽय देहवस्यो भवती।खुनसम्। पुनस्तद्धीस्तनस्वबुद्धिः कुतः स्यात् कस्माद्धवेदिति प्रस्तः। यदि जनस्य विन्तयुद्धिः स्यानहि तस्वबुद्धिः स्यादिखुन्तरवाक्यम् । शुद्धे द्वीः द्वारं किमिति प्रस्तः । जिनस्य वाग्वाणी तस्याः प्रयोगस्तत्वृक्काचरणमेव चिनशुद्धं सीर्गं इत्युन्तरम् । यथा रोगोऽगदेन तदीयमेनेव निर्मेत दूरीभवति तथेवेति दिक्। श्रत्र रूपका-रुद्धारः ॥ ३१ ॥

मान्यमित्यादि – षार्हतो वचनमहृद्वचनं जिनवाक्यं मान्य कुतः समस्तु भवत्विति प्रश्तः । यतो यस्मान् कारणात्तन् श्रार्हद्वचनं मर्थ्यं यतः कारणात् तत्र वस्तु तस्वस्येव कथनं भवेदिखुत्तरम् । तस्मिन्नहृद्व-क्वेऽस्मत्यस्थाभावः कुत इति प्रश्तः । तदीये चक्तं कथने विरोधभावो नास्यतस्थनमान्यमस्तीस्यर्थः ॥ ३२ ॥ किप्तित्यादि—तत्रार्ह्यचने, न विरोघोऽविरोधस्तस्यः भावः किं कबं जीवाद्विद्यं तेति प्रस्तः । यतो हि नत्र विज्ञानतः सन्तुल्तिः प्रभावः कैवल्यविश्चिष्ट्यानेन यथोचितप्रभावोऽनोऽविरोध इत्युत्तस्य हेन्द्रसः, इह लोके या प्रणीतित्र्यवहारो गावागुग्त्येवान्योग्यानुकरुग्रैनैव भवति सा प्रणीतिः कल्याणकरी मङ्गलकरी न जायते ।। ३३ ॥

एषनित्यादि — एविमत्यं रुचिवेदने इच्छाज्ञाने विज्ञारचतुरास्ता-देव्य एतां मातरं सुविधान्ति विशाममभीप्तुं लच्छुमिच्छुं विज्ञाय विश्वश्रमुः मरताद्विरता जाताः । हि यतोऽत्र लोकेऽगदोऽपि मितः परिमित एव सेव्य साम्प्रतमुचितं भवतीति रोगः । अर्थोन्तरम्यासः स्रलङ्कारः ॥ २४ ॥

अवेत्येत्यादि—एका दंवी विवेकाद् भुक्ते भौजनस्य समयभवेत्य झात्या, मातुरमे नानाम्युड्य जानपूर्ण विविधमिष्टाहारसहितसमत्रं पात्रं प्रद्यार भृतवती। एवं निजं कौशलं चातुर्य प्रकटीचकार। क्लेखालङ्कारः।। ३४॥

मातित-माता तदीयं भोजनसम्बन्धि रस समाखाद्यानुभूव यावसुद्वप्तिं समगाज्याम तावदन्या देवी मृदीय कोमछं ताम्बूकं प्रदेवी। श्लकृतानुरक्ति प्रकृत्यनुकूछं वस्तु तत् प्रसत्तिप्रदं प्रसाद-वायकं भवति ॥ ३६॥

यदेखादि — भोजनान्ते यदाम्बा, उपसान्द्रे गृहोद्याने प्रविहर्तु-मारेभे तदा काचिह वी कुकरावलम्बा तथा सार्धसनुजगाम । सुगान्नी मनोब्रदेहा माता विनोदवार्ताम् अनुमंत्रिधात्री कुर्वती तथा समं झनकरगान् ॥ ३७ ॥

चकारेत्यावि--काचिइ वी तस्याः शयनाय खमितः पुष्पैः प्रशस्यां मनोहरां शय्यां चकार । अन्या पदयोः संवाहने निपीडने लम्रा बभूव, यतो निद्राभग्ना नास्तु ॥ ३८ ॥ एकान्वितस्यादि — एका देवी बीजनं कर्तुमेव व्यजनेन मात्रे वायुप्दानमेव कर्तुमन्विता प्रयुक्ता बसूब, श्र्यपरा देवा विकीणीन् विषयस्तान् केशान् कचान् प्रधर्तुं संबन्तुमन्वितस्य-बाहारः। एवं प्रस्वेककार्ये निष्प्रयासादरिश्रम विनवासां देवीनामपूर्वमङ्गुतं चातुर्यं पद्गस्वं बसूब खलु ॥ २६॥

श्रियमिरवादि— अम्बा जननी स्वकं स्वकीये मुखे बदने श्रियं शोभां समाद्याना सम्बन्धारयन्ती,नेत्रयोश्चलुपोहिंयं त्रपां समाद्याना, स्वके आस्मिन धृतिं धर्यं समाद्याना, उरोजराजयी: कुचयुगले कीर्ति-मंत्रपार्थाना, विधाने कार्यसम्पदने बुद्धिं थियं समाद्याना, बुषकमे धर्माचरणे रमां कक्ष्मी समाद्याना सती गृहात्रमं विवभी विशेषतः ग्रुशुमे । ४० ॥

सुपरूजवेद्यादि — यथा छताः सुपरूजवास्त्यानतया सुन्दर्शकस-छयशोभया सर्देवानुभावयत्था वसन्तभावनासनुभावयत्नि, ऋत एव कौतुकसम्बिधाना मनोविनोदमाचरन्त्यो भवन्ति, तथैव ता इरेक् जननीसुद्दे माद्दिचत्तविनोदाय सुपल्छवास्त्या कोमछपदकथावर्ण-नेन जननीसुखसनुभावयन्था निदानादिविधकारणान्सपुरा मञ्जु-रश्रभावां तां जननीमन्वगुरनुगना श्रभूवन्। टच्टान्तोऽछङ्कारः ॥४१॥

मातुरित्यादि — ता देश्यो मातुर्वनन्या मनोरथमनुप्रविधान-दक्षा इच्छानुकूळकार्याचरणिनपुणाः, च्यस्युपासनसमर्थनकारिपक्षाः सेवासमर्थनकरणचतुरा च्यासन् । च्यतः सा माता तदत्र तासां देशीनां कीक्षळं नेपुष्यमर्थयः झात्या निज्ञ गर्भक्षण प्रसृतिकाळं गुदा हर्षेणातीत-वती स्वतीवाय ॥ ४२ ॥

इति पठचमः सर्गः।

षष्ठः सर्गः

गर्भस्मेत्यादि — भो मो जना लोकाः! देव-देवः, देवानामिष्
पूज्यः स श्रीवर्धमानो महाबीरतीर्थकरो भुवि पूषिच्यां वो युष्माकं
मुदे हुगीय, अस्तुनमामितञ्चयेन भवतु, यस्य गर्भस्य वयमासमयस्त एव
परमास्यय प्रागेव कुवेरो धनोज्ञो रस्तानं पद्मरागादीनि ववषं, रस्तानां
वृष्टि चकारेत्यवः ॥ १॥

समुस्लसिंदयाबि — प्रयत्नीयितः प्रयत्नशीलो सर्व्यराट् तस्य पत्नी सा पूर्णमुदरं यस्या सा पूर्णोदरिणी वर्षेव रागज शुशुमे । कथ-म्मूता-समुल्लसस्पीनयधायरा, समुख्लसन्ती पीनी परोधरौ कुची यस्याः सा, पन्ने समुद्धितस्यूलमेया, पुनः कबम्भूता-मन्दर्श्व शिष्टिल्ल-मन्द्रानी पदावेव पङ्क्तो यस्याः सा, पक्षे मन्द्रत्वमञ्जनित पदानि येथा तथा मूनानि पङ्कनानि यस्यां सा, एवन्यूना वर्षेव राज ॥ २ ॥

गभाकंदयेवेत्यावि—एवा राज्ञी इहावसरे गुणानां सम्पदा सौन्दर्य-शीलादिगुणसम्पद्योगपुमा समावृता सनी स्वर्णेरहोभिः कतिपय-दिवसीर्गेमंडर्मको गभाभकंहसस्य वदाःसारीः कीर्तिकल्पोरिवाऽऽकिल्पर्व निर्मितं चनसासारीः कर्पूरतस्वेराकिल्पर्व देहं शरीरं समुवाह, गर्भ-प्रभावेण तस्या अरीरे शोकल्यमञ्जील्यवं ॥ ३ ॥

नीलाम्बुलेखादि — तस्या महिष्या तत्रयुगं तत्रयोहीय कर्तु, पुरा मया नीलाम्बुलाति नीलकमलाति जिताति, ख्रव्य पुराः मिनी-रखाति पुरस्रीकाणि जयामि, इतीव किल, कापदंकी योजसाबुरारोऽ-सङ्घीणों गुणस्य प्रकारो सेनः गुक्रवर्णस्य बसार द्वार ॥ ४ ॥

सतेत्यादि— सतां सज्जनानामईता पूज्येन सार्घं यत्किल विधेर्विधानं निवसनं सहवासमध्येत्य नाभिजातस्य तुरुढीनाम्नोऽव- यवस्य या प्रकृतिगभीरता तस्यास्तु मानमभून् गाम्भीर्यं स्वक्तोच्द्रयन्तमन्वभूवित्यर्थः । तत्तु युक्तमेच यत्तु किळ नाभिजाता ब्राकुळीना प्रकृतिवैस्य तस्य नीचजानेः कृतोऽपि महता संयोगेऽभिमानो भवस्येव । तथापि
महताद्वा समागमेऽपि पुना राज्ञस्वन्द्रमसः कुळमन्वयस्तदुचितेन राज्ञक्यायेयेन चा सृगीदशस्तस्या महिष्या मुखेन तत्रापि नतिरेव प्राप्तेत्यहो महत्वास्वयम् । राज्ञकुळीचितः छत्रियो महस्वेऽपि नमत्ये-वैस्यर्थः ।। १।।

गाम्भीयंभित्यादि — अयेरगुक्तिविशेषे । अही इत्यारचर्षे । मञ्जू मनोहरे हशी चचुणी यस्यास्तस्या हेज्या नाभिः, अन्तर्गभं तिष्ठतीत्यन्तः-स्यः स चामी शिशुस्तिमत् । त्रयाणां लोकानां समाहारिक्तिलोकी तस्या अप्यवित्त्यप्रमासं भागुं भगायेगाणमहत्त्वं सहजमनायाससम्भवं गाम्भीयं विलोक्य हियेव लङ्कवेव किल स्वगभीरभावं आसीय-गाम्भीयां जहीं मानेच ॥ ६ ॥

यथेत्यादि— तस्या इदं तदीयं यदुदर तस्य वृद्धिरुङङ्गायस्तस्य वीक्षाऽत्रलोकनम्नुत्तियंवा यथाऽभूत् तथा तथा वक्षोजयोः कुत्रयोः स्यामञ्ज तन्मुत्तं तस्य रीक्षोपलिकारभूत् तदिदमुन्तितसेव, यतो मध्य-स्थाऽतुर्तिकरुग केन्द्रधारणस्वरूप व वृत्तियंस्य तस्यापि, किं पुतिरितस्ये-स्विप शहरायं: । उन्नतसं महत्त्वं भोदुमङ्गोक्तुं कठिनेषु कठोरेषु सन्दं सामग्रयं कृतोऽस्तु १ कुती च तस्याः कठिनी तस्मान्त्यास्यं स्थादेव । स्वर्थान्तरम्यासः ॥ ७॥

तस्या इत्यादि — तस्या महाराज्या वदरप्रदेशो योऽत्यन्तं कृश इति कृशीयान् पुनरिष म बिलवयोज्केदी त्रिवलीनां विश्वसकोजातः । दुबंल एकस्यापि बलवतो विजेता न भवेत्, कि पुनर्बलित्रयस्येत्येताव-त्रया खलु तस्य भूरस्य सिद्धार्थस्य गुदे बभूव मस्त्रतां चकार । किन्ते-ताह्य् वदरे प्रभावः स सर्वोऽपि किलान्तर्भु वः प्रच्छकृतया तिष्ठतः विवेकस्य विचारस्य नौरिव भवतः श्रीतीश्वरूत एव ॥ मः॥ स्रोक्तेत्यादि — स भगवान् महावीरः, छोकत्रवमुणीतवित प्रका-शयतीति लोकत्रयोद्योति तत एव पवित्रं यद्वित्तीनां झानानां मतिकृता-विचानन्तां त्रयं तेन हेनुना गर्भेऽपि किलोपपत्या सहितः सोपपित्तर्ग-हात्स्यवानेवाऽऽसीदिति। श्रवत एव स घनानां सेघानां मध्ये आच्छनः समावृतो यः पयोजानां कमलानां बन्धुः सूर्यः स इव स्वाचिनस्य धान्न-स्तेज्ञसः सिन्धुः समुद्रोऽर्घोस्विनिरावभौ ह्युग्ने ॥ ह ॥

वयोधरेत्यादि—इह भुनि ससारे बन्धूनां धात्री भूरिवाधार-भूताऽन एवोत्तमस्य पुरुवस्य पात्री तस्याखिशलाया यद्या पयोधरयोः स्तनयोहल्लासः समुज्ञतिभाव श्चाविशारः मन्द्रभूवः, नद्या मुख्येबेन्दुः रचन्द्रः स च पुनीताया निर्दोगाया भासा दीर्जः स्थानमधिकरण बभूव-स्वेतद्विचित्रमभूतपूर्वेन, यतोऽत्र पयोधराणां भेषानामुल्लासे चन्द्रमसो दीप्रित्रहाणिरेव सम्भवतीति। विशेधाभासः । १०॥

कवित्वबुर्षेत्यादि - कवित्वस्य वृत्ति कवित्ववृत्तिस्तया कविव्य-वहारेण उदितः। वस्तुतस्तु जित्तराजमानुर्स्वजनन्या जातु कदाचिद्रिप कोऽपि विकार. रेहवियरिणामो नासीज बजूब। तत्राव्योन्तरेण हेतुमाह-महतः पवतस्यवीपिकायामिकारो निवायणादि स्यान्, किन्तु तथा विद्युत्तसहितोऽतिचारः क १ क्यांस्वनो दीपिकां निवायिषुः समर्थः, किन्तु विद्यु जिर्बापणे तस्य शक्तिमीनि भावः॥ ११॥

विज्ञम्मत इत्यादि--इदानी वमन्तकाले श्रीयुक्ती नमुचिः काम-देवः प्रचरकः सम्मनिवार्यतया विज्ञम्भतेऽष्यवा नमुचिनामा दृत्यो विजयते। श्रांगुः सूर्यः कुबेरिहरयुक्तस्थामवाप्रदरकः संलब्ध्यमार्गसर-णिरखवा सम्बद्धारापराधः। श्रादितः पुनः पृथ्वी देवमाता च लोकोस्या सा समन्तान सर्वेत प्यमचुना पुरुपरारोण मचुनाम दृश्येत च विद्धं व्याप्तं धाम स्थानं यस्या मा ममसीति किलायं कालः सुराभरीष्टक् नाम यस्य स वसन्तर्तु रेव सुरेभ्यो भीतिर्यत्र स सुरभीतिः किलेत्येवं-नामा सञ्जायत इति । समासोक्तिः ॥ १२ ॥

परागेत्यादि — अनङ्गस्य कामस्येकोऽनन्यः सखा हिनकती मधु-नीम वसन्ततुः स च मानी सम्मानयोग्यो भवन् यो धनी भती वन्य एव जन्यः रित्रयस्नामां मुखानि, अवलोक्तस्यानानि प्रमिद्धानि । पराग एव नीगं तेनोद्गरितः परिपूर्णैः प्रसूतैरेव स्ट्रङ्कैं बेलोक्षणवन्त्र-हेत्रभूनैसैह्यपूरेव करमेन प्रयोगणोक्षति सन्तर्पयत्यविश्वित्वतीर्यर्थः । अनुपासपूर्वको करकालङ्कारः । नाम वावयालङ्कार ॥ १२॥

बन्धेत्यादि—इदानी वन्या वनस्थल्या सार्थं मणेबंसन्तस्य पाणि-जृतिः पाणितहणं विवाहः सन्भवित नत्तम्यादेव कारणान् पुःकािकिः कीहर्दाविषु पक्षिषु प्रवर्षमुं स्थः मिटटमन्भापणत्वाचेरेव विश्ववरं-कोह्मणोत्तमः पुनिदिनाते यदुक्तं तत्युक्तं पाणिमहणकािकाणानृचां पठनमनः सुक्तं सुस्टूक्मिस्ति । स्मरः काम प्वाक्षीणो हविर्भुगिनः सत्ततं सन्तपकत्वादेव साक्षी प्रमाणभूतोऽत्र कार्ये । अछीनां अमराणां निनादस्य गुजनस्य देशो लेशः स एव भेरीनिवेद्यो मङ्गळवाद्यविरोदः

प्रसेतीस्यादि — मर्बसाधारणः पिकादिरयं कुक्षोऽशोकः शोकं न दद्गाति क्षित्तेव्यभिष्या नाम्ना प्रत्येति विश्वामं कशीत । अत्य पुत्रस्त रक्तानि छोहिनानि फुल्जानि प्रमुनाम्बेवाक्षीण यस्य तत्त्रविक्षतो रोषाकणिक्कालितजोपनंत्रवजोकितः सन् स एव जनः स्वतु दराणां पत्राणामेको धाता संधारकोऽयवा दरस्य भयस्यैकोऽनन्यो धाता सम्या-दक्त इत्वनुमन्यमानोऽनुमानिषयं कृष्णभारस्य कुक्रातिनां कोर्सू से-जोतिः सम्यूतिर्थस्य तत्तां किळाकुळीननां किमुत न परयति पर्यस्ये-वेति । अस्योक्तिरुक्कद्वारः ॥ १४ ॥ पृवाकुवर्षेत्वादि— गुरलं सूर्वं पौष्य्ये समये पुष्पप्रसवकाले वसन्तर्ती कुवेरकाष्ट्राया उत्तरिक्षाया आश्रयणे प्रयत्ने विद्याति, उत्तरायणो भवतीति, कुन इति चेन् प्रदाक्तव मर्पासेयां दर्पेण विषेणा-क्वितो योऽमौ चन्दनो नाम बृक्षसेनारक्तरिमस्पृट्येगेर्न्यद्क्षिणदिक्-सम्भवेः समीरेंवीयुमिसत्कालसः आतिसः प्रसिद्धं भीतिमान् भयस्तिकत इव यतः॥ १६॥

जनीत्यादि—जनीसमाजस्य स्त्रीवर्गस्यादरणं स्त्रीकारस्तस्य प्रसेतुः समादेशकतुः स्मर एव विश्वस्य जेताऽश्रीनकर्ता नस्यासौ वसन्तः सहाय सहयोगकारी। वनीविहार इय्येनेनोद्यानगमनं गृहते तस्योद्धरसे प्रकटीकरसे एक एव हेतुस्य तु पुनर्वियोगिवर्गायेकाकिजनाय धूमकेतु-रिपित्व मन्त्रापकः ॥ १७॥

साकन्देत्यादि — माकन्दानां रसालवृक्षाणां वृन्दस्य प्रसवं कारक-समिस्तरतीति तस्याञ्चुण्यासादकस्य पिकस्य कोकिलस्य मोदाभ्युदयं प्रकर्तुं प्रसन्नतां वर्षयितुं तर्यव स्मरभूमिभर्तुः कामदेवस्य तरपतेः सखाऽसी कुमुमोत्सवतुं वैस्मिन् पुष्पाणामुत्सवो भवति स एय ऋतुः मुखाय विषयसोगाय निमालनीयः ॥ १८॥

यत इत्यादि—यतः कारणाद् अभ्युपाचा नवपुष्पाणां तातिः समूहो येनेबेमूनः कन्युपं एव भूपो राजा विजयाय दिग्वजय कर्यु थाति गच्छति। पिकदिज्ञातिः कोक्तिवपक्षी कृहरिति यच्छत्द करोति स एव झन्दः बङ्काश्वनित्वातिकाति शोभने।। १६॥

नवप्रसङ्ग इत्यादि —यवा कामी जन परिद्वष्टचेताः प्रसङ्गचित्तः सन् नवप्रसङ्ग प्रथमसमागमे नवां नवपरिणीतां वर्ष् जनी सुदुर्ग दुरचु-स्वति तवेव चत्र्यरीको अमरः कोर्मस्या माकन्दजातामान्नवृश्लोद्भवां मच्चरी सुदुर्ग हुरचुन्वति ॥ २०॥ आम्नस्थेत्यावि — किलकाया श्वन्तो मध्येऽछिभ्रंमरो गुः अति यस्य तस्य गुः आत्कि किलानतराने, श्वाम्तस्य विशेष्यस्य सहकारस्य, एत-त्किछालीकं व्यर्थे न भवित, कुतो यतो दशोर्नेत्रयोर्वर्त्यं मार्गस्तिसम् कर्मश्लग एव नयनगोचरतां प्राप्तात्रेव पान्याङ्गिने पान्याय परासुखं प्राणरहितस्त्रं करोतीति तस्य नावदिति वयं बदामः ॥ २१ ॥

मुमोद्गम इत्यादि —स्मरस्य कामस्य वाणानां वेदाः स्वरूपं पञ्च-विध इत्याह —प्रवास्य सुमोद्गमः पुष्पोत्तन्तिः, द्वितीयस्ताबद् सृङ्गाना-मुर्वी गीतिन्त्रं मानुमुलगुज्जतं, तृनीयः अन्तकस्यायमन्तकीयो यम-सम्बन्धी, विरहिणामन्तकारित्वान् सम्त्मलयानिलः, चतुर्वो जनीनां स्वनीनिर्वेषतूषा, रोषः पञ्चम एष पिकस्वनः कोक्तिकशस्य इति ॥ २२ ॥

अनम्तताभित्यादि --साम्प्रतिमदानी स्मरस्यायुधैः पुष्पैरनन्तता-मसंस्थरवमवामविद्विरुपयुःजानेरनएव रकुरिद्विषैकसद्भिविद्यक्तया परि-त्यक्तया पञ्चऽसस्याकतया अत्युना वेति पञ्चतया, इतः समारभ्य कः समलिङ्कयेत वियोगिनां विरिह्णां वर्गास्समूहाद्वरो न कोऽपि, किन्तु स्त्रीविरहितजन एव प्रियेतेति ॥ २२ ॥

समन्तत इत्यादि — हे समक्ष्य, सम्युखं वर्तमानमहाशय, सहा सर्वदेव पिकस्य कोकित्रस्योदयमुत्तमकताकारकं विधान यत्र तिसम् माधान्माधानामादिनिवर्तमाने फालगुन्मासतः प्रारच्येऽसिम्नृतौ पुनी-तस्य पावनक्षस्य माकन्त्रस्यामृत्रक्षस्य विधानं करोतीति विधायि-वस्य ताहक् मुननस्व पुल्लपरिणामः समन्ततः एवास्तु । तथा माया छक्ष्म्याः कर्वस्य परिणामस्य विधायि सुमनस्व देवत्वसस्तु यतो हे सस-धुमः समाना श्रमा यस्य ताहक् मित्र, ष्ठपात्पाग्रह् त्वर्तिनि सदा कस्य मुख्यदेवयद्विधानं यत्र तस्मिन् सुखाधार इति ॥ २४ ॥ ऋतुष्ठिय इत्यादि—श्रत्र वसनेऽदो यत्यौष्णं रजः पुष्पपरागः श्रमत्य प्रचुरं प्रसरित तत्कीदश प्रतीयन इत्याइ—तद्रज्ञ ऋतुश्रियो वसन्तलक्ष्याः श्रीकरणं श्रोभाधायक पूर्णिय , तृणं तत्कालं वियोगिनां विदिश्यां भरमावन, श्रीमीनकेतोः कामस्य ध्वजवस्त्रकल्पं पताकायट-सदृशं प्रतीयन इति शेष ॥ २४॥

श्रेणीःवादि--ऋसिन्तृतौ समन्तात्परिनो थाऽछीनां द्विरेकाणां श्रेणी पिकृकविंछसित सा पान्योपरोधाय श्रोपितजनगमनवारणाया-दीना पुष्टा करोव विश्वकेष प्रतीयत इति रोषः । ऋसी वमन्तिश्रयो रम्या मनोज्ञा वेणीव संयतकेशापाश इव्, कामा गतेन्द्र १वेति काम-गतेन्द्र, कामगतेन्द्र गच्छिति बन्धनार्थं प्राप्नोतीति कामगतेन्द्रगम्या अञ्चलेष प्रतीयते ॥ २६ ॥

प्रत्येतोति—छोको बिट कामिनं पाति रक्षतीति विटपोऽयं च बिटपो वृक्ष इलुक्तः साराल्लेझारकारणात्तावरुवित विद्यामं करोति । ऋष च पुनरङ्गारतुल्यानां प्रसवानां पुर्पाणासुपद्दाराद्धे तोः पलमरना-ति मांसं स्वादतीति पलाद्योऽयमिति नाम्नः समरणाद्यमेव छोको भयभीतः सन् स्वां स्वकीयां महिलां त्रियं सहायं सहकारितया ममी-हतेऽभिवाञ्छति रन्तुकामो भवतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

मबनेत्यादि -- एव वसन्तास्यः क्षणः समय सुरतवार इव भी-पुरुषसङ्गम इव समझ्तः सन्नाविरसृज्जातः। यनो मदनस्य सहकार-तरोः पश्चे कामस्य समणा विकासः समिवतः कौरकेहांवादिभि-वो युक्तः। कुहुरितं कोकिल्यवः सङ्गमध्वनिर्वा तस्यायोऽभिवृद्धि-स्तव् कृतव्या कारणेन सविटपः पलाशादिनस्महितः कामिजनसिह-तर्म्य कृतुकल्ल्क्ष्मणः पुष्पपरस्पराचिह्नितो विनोदवोरचेति किलान्न तस्मान्॥ २८॥। कल्कुतामित्यादि — अत्र वसन्ते कल्कुतां मधुरं गायन्तीनां मृगस्य दशाविव दशौ यासां तासां हरिणाक्षीणां कामिनीनामित्येषं मृक्कुतानि तुपुराणि यसिम् यथा स्थानया नुपुरसङ्कारं कणितिकिङ्किणि-कक्कुतकङ्कुणं शन्दायमाननुद्रपण्टिकाकंकुतबल्यम् श्रुवेत्यस्याहारः । इतः सूर्येत्वासां मुल्यपद्मिददृश्या मुखकमलद्रष्टुकामनया । यं स्यन्दनं मन्यर मन्दर्गामिनं कुतवान् दिल्य। २६ ।। २६ ।।

निवःवादि—अस्मिन् वसन्ते रसाल्दल आन्नपल्लेबेऽलिपिका-बल्जि अमरकोकिल्पॉक्त विवलितां परितः सङ्गनां, कवस्मूनां लिलतां सनोहरामिमासदं मदनस्य कामस्य सुमाशये पुष्पाशो सुन्ति पू वक्यां अजीकरणोचितसन्त्रकस्थिति कामिजनवशीकरणमन्त्राक्षरतुल्यामित्यवे प्रत्येमि जानामीरथयेः। अव्यक्षालङ्कारः॥ ३०॥

नहीत्यादि - श्वत्र मधौ पलाशतरोः किंशुक्रवृक्षस्य मुकुलोद्गतिः कुड्सलोत्पत्तिः तर्हि किमित्याह-किन्तु सती समयोचिता पतिव्रता-ङ्गना यौवनकालोचिना मुरभिणा नायकेन कलिता रचिता श्विप श्रातिलोहिता रक्ता नत्वरक्षतसन्तर्तिर्मत्वाचातव्रणपिक् कर्लसति शो-भवे। श्रपह्वत्यलङ्कारः ॥ २१ ॥

अधोरादि - श्राय खबङ्गि, भवत्यप्यश शिशिर इव शेशवे बाल्ये विकल्लिने ज्यानी सति अमरसङ्ग्रवशाद द्विरेक्सपशांकिङ्गनादि-वशाद श्रातिश्योज्ञातिमन्तः स्तवका गुच्छा एव सन्ता यस्याः सैवस्भूता सभी मदनस्तव बामस्तुती राजते वतेनै हरुष्यः ॥ ३२ ॥

रिबरिस्यादि— यद्यं रविरुत्तरां दिशं गन्तुमुद्यतोऽभवत् तदासौ दक्षिणा दिगपि विप्रियनिःश्वसनं प्रियविरहिनःश्वासस्वरूपं गन्धवर्हं मळथानिळ नतु वहतितराम् श्वतिशयेन वहतीरयर्थः ॥ ३३॥ मुकुलेखादि—स्थलपयोजननेऽिजनी कमिलनी मुकुलपाणिपुटेन कोरकरूपहरतसम्पुटेन रुवाम्बुजजिद्दशां स्वकान्तिपराज्ञितकमल-नेत्राणां युवतीनां दिशे नेत्रे, नेत्रीध्वस्यर्थः । रजः परागं ददाति क्षिपती-स्थयः स्मरभूतराट् शठिशरोमणिः कामरूपः शठराजो रसारकौतुकात् तद्-हृदयभनं नासामम्बुजजिद्दशां कमलनयनानां हृदयरूपविशं हरति ॥ ३४ ॥

अमिसरन्तीःयादि — अत्र कुमुमक्रयो वसने सरसभावं विश्व-तीति वेषां सरसभावशूमां रसिकभावधारिणां कोकिलपिसतां पिकानां मधुरारवेः कल्कुजितैः समुचिताः शन्दायमानाः सहकाराज्ञा आग्न-वृक्षसमूदा रुचिरतां मनोज्ञतामभिसरन्ति प्राप्तुवन्ति ॥ ३४ ॥

बिरहिणीत्यादि — स्रथं चसन्तर्नुं विरहिणीनां परितापं सन्तापं करोतीति तथाभुतः सन् यदिहापरिहारभुद्दिनावार्षं पापमकरोत्, एप-को चसनते करादिकचपरदेशतथा संक्षप्रभ्रमर-क्याजतया यद्षं दथन् भारयन् सम्प्रति तत्परिणामेन विषयते नद्यतीरथ्यः ॥ ३६ ॥

ऋद्विसित्याहि — सेवा बती वारजती वेरवेवान्वहं प्रतिदिनं श्रीभुवं सम्यत्मित्राम्विद्धं परिवृद्धिं गच्छति । स्पेष्टका चौरण कृत्यो भवन् रागदः कामः खरेरतीक्ष्णः इग्रं: पान्थानं प्रतर्जति श्रीययति रसराजः प्रकृतरस्यः सोऽस्मिन् संसारे नित्यं निरन्तरमतिष्यात् प्रतिकाणनसेति, ऋतिधिरिवादनो भवति । सकलोऽपि नोऽस्माकं बन्धुर्मित्रवर्गः स ऋतुकतिक्षित्र ऋतुः झारीरिकश्चोभा तस्यां कीतुक्षित्र नम्भीविनोदवर्शनतः सन्मुदं याति हर्षितो भवति । यहरचक्रवन्यः ऋतुसन्वदननामा ॥ ३७॥॥

चेत्रेत्यादि - सा भूपतिजाया प्रियकारिणी चेत्रशुक्रपक्षस्य त्रिज -यायां त्रयोदस्यां तियौ, उत्तमोच्चसकलप्रहृतिष्ठे श्रेष्ठोच्चस्थानस्थित- प्रहे मौहूर्तिकोपदिष्टे ज्योतिर्विदादिष्टे समये सुतं पुत्रमसूत सुपुवे ॥ ३८ ॥

रिबणित्यादि— तदा सा गाही सता श्रे च्ठेन तेन सुतेन, रिबणा सूर्येण, इन्द्रशासिका ककुबिब पूर्णिदिगिब, रुद्धटपाधोजकुतेन प्रकुल्ड-कमलसम्हेन वापिके, नायपल्डवनो नृतनिकसलयैर्जेता यथा बझीब द्योग सनोहरेण पुरेणाऽऽशु सुद्धोग ऋशोगता । ३६॥

सदनेकेत्यादि असो महीभुजो जनी राज्ञी प्रियकारिणी रजनी राज्ञियित्वासीत्त्रदानीमित यावणतो छनत्त्रसातिवायप्रकंसनीया स्थिति-वंद्याः सा पन्ने जसित स्टूर्तिमेति तमोऽन्यकारो यस्यामेतादृशी स्थिति-वंद्याः सा पन्ने जसित स्टूर्तिमेति तमोऽन्यकारो यस्यामेतादृशी स्थित-वंद्याः । रुजः प्रतिकारिणी पुत्रजननेऽपि यस्यै किक्किद्रपि करूटं नासीत् पन्ने रुजो व्यापाराचायास्थ्याप्रखापिकाऽय च पुनः सन्ति प्रशंसा-योग्याति अत्रकान्ययोग्याति अत्रकान्ययोग्याति अत्रका्यप्रति प्रभूचक-चिन्द्रहाति तेपामन्त्रितिः स्थितियत्र ताद्योग तत्रयोग पन्ने सत्तां नाश्चत्राणा-मनेकपा सुराणां च क्षणस्थोरस्यस्थान्वितियत्र तेन तनयेन पन्ने सत्ता स्थाना चन्द्रससा राज्ञो पिशाचादीनां सञ्चारो भवतीति ॥ ४०॥ ॥ ४०॥

सौरभेत्यादि — तस्य बालकस्य वपुष्यङ्गे पद्मस्येव सौरभाव-गतिः सुगन्धानुभवोऽभूत् । याऽसौ समस्तलोकानां नेत्रालिप्रतिक-र्षिका चन्नुर्भ्रमराकर्षिकाऽभूत् ।। ४१ ॥

शुक्ते रिस्वादि — शुक्ते मींकिकवत्तस्या देव्या उद्भवतो जाय-मानस्य निर्मेशस्य सद्भिरादरणीयस्य वपुष्मतो बालकस्य पवित्रता शुद्धताऽऽसीत ॥ ४२ ॥

इति षष्ठः सर्गः।



(४२४) **श्लोकानुक्र**मणिका

श्लोक चरण	gg	श्लोक चरण	<u>রিপ্</u> ত
[अ]		श्चनन्यभावतस्तद्धि	₹8₺
अकलङ्कालङ्कारा	७१	श्चनल्पपीताम्बरधामरम्याः	२१
ष्प्रक्ष्णोः साञ्जनतामवाप	પ્રર	अन।दिनो भाति तथोहिं योग	:२१६
श्रगादपि पितुः पार्खे	828	अनारताकान्तधनान्धकारे	६६
अधस्यविस्कारिकणीन्द्रद्रह-	१८	श्रनित्यतेवास्ति न वस्तुभूता	939
श्रचित्पुनः पद्मविधत्वसेति	३०⊏	अनेकधान्येषु विपत्तिकारी	5
श्रजाय सम्माति द्धत्कृपाणं	२४३	अनेकशक्त यात्मकवस्तुत र वं	239
श्रजेन माना परितुष्यतीति	१३⊏	ऋन्यैः समं सम्भवतोऽप्यमुद्य	३०१
श्रज्ञोऽपि विज्ञो नृ पति:क दूत	: २४२	च्चन्त:पुरेतीर्थकृतोऽवतार.	50
अ त एव कियत्या स	२४०	श्रन्तनीस्याखिलं विश्वं	२३⊏
ञ्च तिवृद्धतयेव सन्निधि	११६	श्रन्तस्तले स्वामनुभावयन्तः	282
ञ नीत्य वाऽल्स्यभावं	१२७	श्रन्येऽग्निभूतिप्रमुखाश्च त स् य	2.5
श्चरयुद्धतस्यमिह वैदिकसम्प्र	33⊏	श्चन्येऽपि बहवो जानाः	१३४
अथ जन्मनि सन्मनीपिण:	११०	श्रपारसमारमहाम्बुराशेः	१७७
व्यथ प्रभोरित्यभवन्मनोधन	१३ ७	श्रगहरत् प्राभवभृच्छरीर-	939
श्रथानेके प्रसङ्गारने	१६३	श्रपि दाम्णोदितानां	ωĘ
अ थाभवदाज्ञविधानमेते	२१२	श्रिप सृदुभाव।धिष्ठशरीरः	३३१
श्रयाभवद् व्योम्नि महाप्रका	श: ७६	श्रभिद्रवरचन्द्रनचर्चिताङ्गः	१८३
अ धः कृतः सम्नपि नागलोक	: २८	श्रमियाञ्छमि चेदात्मन्	१७७
श्र धिकर्तुं मिदं देही	१४३	ऋभिसरन्तितरां कुसुमक्ष्णे	80%
अधीतिबोधाचरणप्रचारै:	¥₹	श्रभूच्चतुर्थः परमार्थे आर्थः	२१०
श्चनन्यजन्यां रुचिमाप चन्द्रः	३३०	त्रभृत्पुनः सन्मतिसम्प्रदाये	२३६
अनन्ततां साम्प्रतमाप्तवद्भिः	१०१	पभ्र लिहाप्रशिखरावलिसंकु	लं३७

ऋषि जिनपगिरेवाऽऽमीत्	¥₹	[आः]	
श्रवि मञ्जुलहर्यु पाश्रितं	११७	बाकर्य भूपालयशःप्रशस्ति	8\$
श्रवि छवङ्गि भवत्यपि राजते	१०४	श्राखुः प्रवृत्ती न कदापि तुल्यः	
ऋरविन्दिधिया दघद्रविं	११२		288
ऋर्चावसाने गुणरूपचर्चा	48		२०१ ३२१
श्रयीन्मनस्कारमये प्रधान-	२४४		२८१ २७१
श्चर्हस्याय न शक्तोऽभूत	२६७		
श्चलञ्चकारान्यसुरी रयेण	⊑ ३		8€1€
श्चवद्रुध्य जनुर्जिनेशिनः	888	श्राम्मस्य गुःजस्क्रिकान्तराये	
व्यविकल्पकतोत्साहे	१२६	त्रापन्नमन्यं समुदीक्ष्य मास्थाः	
अवेत्य भुक्तेः समयं विवेकात्		श्राराधनायां यदि कार्तिकेयः	
श्रष्टाधिक सहस्र	. હપ્ત	श्रालोचनीयः शिवनाम भर्ता	488
श्रमुमाह पनि स्थितिः पुनः	X8	[₹]	
श्रसूत माता विजयाथ पुत्र-	२११	इक्ष्वाकुवंशपद्मस्य	२३३
अस्माभिरदावधि मानवायः	२१८	इङ्गितेन निजस्याध	१२४
छास्मिन्नह न्तयाऽम्ब्य	१४४	इतेरब्वपि लोकेषु	२३७
श्राहेमन्त्रदेशेऽस्त्यखिलासु	२०१	इत: प्रभृत्यम्ब तवाननस्य	84
श्रास्मन्भुवोभाल इयद्विशाले	२४	इतः प्रमाद कुमुदोद्गमस्य	३२०
अस्या भुजस्पर्धनगद्धं नत्यान्	χo	इति दुरितान्धकारके समये	84
अस्या महिध्या उदरेऽत्रतार-	. Ko	इत्यं भवन् कब्चुकितासनाथ	50
श्रद्धिमा वर्त्म सत्यस्य	२०७	इदमिष्टमनिष्टं वेति	१७६
श्रहीनत्त्रं किमादायि	१४६	इत्येकदेहक समयो बभूव	२७१
अ हीनमन्तानसमर्थितत्वान	२६	इत्येवमनुसन्धान-	१४६
श्रहो जगसन्धकरोत्तरं. शरी	: २५७	इत्येवमाश्वासनतः सुरीणां	€8
श्रहो जिनोऽयं जितवान्	823	इत्येवमेतस्य सती विभूति	२०१
श्रहो निजीयामरताभिलापी	२१ ४	इत्येवं प्रतिपद्य यः स्वहृदया-	२६३
ऋहो पशुनां ध्रियते यतो बल्टि		इदानीमपि वीरस्य	38
		3.00	

	•		
इन्द्रियाणां तु यो दासः	१३३	एकाकी सिंहवद वीरो	१६३
[{ }		एकास्य विद्या श्रवसोश्च तस्व	
ईर्ष्यामदस्वार्थपदस्य लेशः	२७२	एकेऽमुना साकमहो प्रवृत्ताः	१६७
	(एको न सुचीमपि द्रष्टुमई:	383
[उ]		एकं विहायोद्वहतोऽन्यदङ्गं	२८१
डरचखान कचौषं सः	१६०	एकः सुरापानरतस्तथा बत	883
उच्छालितोऽकीय रजः समृह	: २४२	एणो बारयुपकारहकाधर-	१५१
उ त्कृल्लोत्पलचजुवां	3.8	एतद्धर्मानुरा गेण	२३२
उदियाय जिनाधीशान्	२२६	एतद्वचो हिमाकान्त-	१३०
उद्योतयस्युद्तितद्ग्तिवशुद्धरोषि	चः ६६	एतस्य व सीधपदानि पश्य	२६
उपद्रतः स्यात्स्वयमित्ययुक्तिः	838	एतस्याखिल्लपत्तनेषु	₹₩
उपस्थिते वस्तुनि वित्तिरस्तु	386	एताहज्ञीयं घरणौ व्यवस्था	8==
उपात्तजातिस्मृतिरित्यनेना-	१७२	एवं पर्यटतोऽमुख्य	२२६
चपास्त्योऽपि जिनो बाल-	१३४	एव पुरुमीनवधर्ममाह	२=६
चर्वीप्रफुल्लस्य लपद्मनेत्र-	२२	एवं विचार्याथ बभूव भूय-	38K
उ शीरसंशीरकुटीरमेके	१=२	एवं समुल्लासितलोकयात्रः	२८४
उदमापि भीदमेन जितं हि येन	989	एवं समुत्याननिपातपूर्णे	२४६
	1	एवं सुविश्रान्तिमभीप्सुमेतां	ςξ.
[湘]		एषोऽखिलज्ञः किमु येन सेवा	२१३
ऋतुश्रियः श्रीकरणङ्काचूर्णं	१०२	[क]	
ऋद्धि वारजनीव गच्छति	१०६		
[[[]		कथमस्तु ज्डप्रसङ्ग्ता	१२०
		कदाविच्चेद् भुवो माल-	१२४
एकस्य देहस्य युगेक एव	३०६	कन्दुः कुचाकारधरो युवत्या	88€
एकाकिनीनामधुना वधूनां	Ę۶	कन्याप्रसूतस्य धनुःप्रसङ्गतः	१४२
एकान्विता बीजनमेव कर्तुः	٤ę	कवरीव नभो नदीक्षिता	११२
एका मृदङ्गं प्रदेधन् प्रवीणा	= 3	करत्रमेकतस्तात	१३१

	100	,	
कर्णाटकस्थलमगात् स तु	३३४	कि तत्र जीयादविशोधभागः	Ęξ
कर्णेजपं यस्कृतवानभूस्त्वं	5	किं राजतुक्तोद्वाहेन	१३४
कलकृतामिति झंकृतन्पुरं	१०३	कीहकु चरित्रं चरित त्वनेत	६४
कलशद्विक इव विमलो	6 2	कुचं समुद्धात्यति प्रिये स्त्रिया	१४२
कलाकन्द्तयाऽऽह्यादि	३४८	कुनोऽपहारो द्रविणस्य दृश्यते	888
कल्याणाभिषवः स्थात्	७२	कुतोऽस्य वश्यः न हि तत्त्वबुद्धिः	-
कवित्ववृत्येत्युदितो न जातु	इ इ	कुर्यान्मनो यन्महतीयमञ्चे	२⊏३
कश्चित्त्वसिद्धमपि पत्रफला-	३३२	कुशीलवा गल्लकफुल्लकाः	१४४
कस्यापि नापत्तिकरं यथा स्यान्	२८०	कुमुमा अछिबद्वभूब साम्बु-	११६
कस्मे भवेत्क. सुखदु:खकर्ता	२४३	कृपादिसंखननमाह च कोऽपि	३४३
काचिद् भुजेऽदादिह बाहुबन्धं	i =३	कृत्वा जन्ममहोत्सवं	१२१
काठिन्यं कुचमग्डलेऽथ	३६	कृपावती पान्थनृपालनाय	१⊏६
कान्तालता वने यस्मान्	१४८	कृमिर्घुणोऽस्त्रिर्नर एवमादि-	३०७
कामारिता कामितसिद्धये नः	9	केलिकलामाकलयन्	હ
कारयामासतुर्लोक-	२३३	को नाम जानेश्च कुलस्य गर्वः	१५७
कालेन वैषम्यमिते नृवर्ग	१६६	कोपाकुलस्येव मुखं नृपस्य	१८०
काशीनरेश्वरः शंखो	२३०	कौमारमत्राधिगमय्य कालं	२८१
कॉश्चित्पटेन सहितान्समु-	३३४	कीशाम्ब्या नरनाथोऽपि	२३०
किन्तु वीरप्रभुर्वीरो	१६३	क्षणोत्तरं सन्निधिमाजगाम	હદ
किन्नानुगृह्याति जगवजनोऽपि	३१७	जुधादिकानां सहनेष्त्रशक्तान्	२७४
किमत्र नाज्ञोऽख्वति विद्विधा-	२४६	चुल्लि कात्वमगागत्र	२६४
किमन्येरहमप्यस्मि	१४४	चेत्रेभ्य श्राकृष्य फलं स तेपु	३२⊏
किमस्मदीयबाहुभ्यां	१३१	[स्त]	
किमेवमाश्चर्यनिमग्नचित्ताः	२१३		
किमु राजकुलोत्पन्नो	१३०	खङ्के नायसनिर्मितेन न हतो	२४१
किलाकलङ्कार्थमभिष्टुवन्ती	88	खलस्य हमक्तमिवाघवस्तु	٤
किं छाग एवं महिष: किमश्वः	88	खारवेळोऽस्य राह्मी च	२३ २

[η]		घूकाय चान्ध्यं दददेव भारवान्	२६=
		् [ज]	
गङ्गातरङ्गायितसस्वराणि	२०२		
गणी बभूवाचल एवमन्यः	२११	चकार काचिद् युवति: सुलास	
गतमनुगच्छति यतोऽधिकांशः	१६४	चकार शय्यां शयनाय तस्याः	
गतागतैदीं छिकके लिकायां	ĘX	चकास्ति वीकासजुपां वराणाम	1 8 X 0
गतानुगतिकत्वेन	१४७	चचाल द्रष्टुं तद्तिप्रसङ्ग-	२०४
गतेर्निमित्त स्वसु पुद्गलेभ्यः	३०⊏	चचाल यामिलामेपो	२२⊏
गतं न शोच्यं विदुषा समस्तु	२१⊏	चतुर्गुणस्तत्र तदाद्यसार-	રહર
गत्वान्तिकं धर्मसुधां पिपासुः	१७४	चतुष्पदेपूत खगेष्वगेषु	२६१
गत्त्रा पृथक्त्वस्य वितर्कमारा-	039	चन्द्रप्रभं नौमि यदङ्गमार-	૨
गत्वा प्रतोलीशिखराप्रलग्ने	₹0	चन्द्रमौलेस्तु या भार्या	२३४
गर्जनं वारिद्ख्येव	२२४	चम्पाया भूमिपालोऽपि	२२६
गर्भस्य षरमासमधस्त एव	٤3	चाक्रल्यमङ्गोरनुमन्यमाना	8=
गर्भार्भकस्येव यज्ञःप्रसारैः	દરૂ	चिन शयः कौ जयतादयन्तु	६३
गामभीर्थमन्त स्वशिशौ	٤٧	चिन्तिन्तं हृद्ये तेन	१६१
गाईस्थ्य एवाभ्युदितास्ति	१३८	चेत्कोऽपि कर्तति पुनर्यवार्थ	३१०
गुणो न कस्य स्त्रविधी प्रतीत	ा: २४२	चैत्रशुक्छपक्षत्रिजयायां	१०६
गुरुमध्युपगस्य गौरवे	११६	चौहानवंशभूत्कीर्ति-	२३६
गुरोगु हुणां भवतो निरीक्ष	50	[छ]	
गृहस्यस्य वृत्तोरभावो हाकृत्य	- २४६		१७४
गृहीतं वस्त्रमित्यादि	२०७	छत्राभिधे पुर्यमुकस्थलस्य	
गोऽजोब्ट्रका वेरदलं चरनि	न २६७	छाया तु मा यात्विति पादस्य	
ब्रीब्से गिरे: शृङ्गमधिष्टित:	१⊏६	छायेव सूर्यस्य सदानुगन्त्री	88
[a]		[ল]	
घटः पदार्थश्च पटः पदार्थः	339	जगत्त रवं स्कुटीकर्तु	१४७
घनैः पराभूत इवोडुवर्गः	६४	जगत्त्रयानन्ददशाममत्रं	२०३
"			

		,	
जनी जनं त्यक्तु मितामि-	१३६	ज्ञानेन चानन्द्मुपाश्रयन्तः	7
जनीसमाजादरणप्रसोतु-	33	ज्वाला हि लोलाच्छलतो	१८०
जनैर्जगयामपि वाञ्छयने रही	१३=		
जनोऽखिलो जन्मनि शुद्र एव	1358	[झ]	
जनोऽतियुक्तिर्गु रुभिश्व संस-	- ?3E	झपकर्कटनकनिर्णये	११२
जलनिधिरिव गम्भीर	68	[न]	
जलेऽव्जिनीपत्रवदत्र भिन्न	२२०	तःकालं च सुनष्टनिद्रनयना	ĘĿ
जलंपुरस्ताशहभूत् कृषे	१८७	ततः पुनद्वीदश कोष्ठकानि	२०१
जवादयः स्वर्णमित्रोपलेन	२३१	नतः पुनर्यो यावत्या	२३६
जाकियव्वे सत्तरस	238	तस्वानि जैनागमवद्विभान्ति	38
जाडचं पृथिवयाः परिहर्तुं मेव	१४२	ततो नृजन्मन्युचितं समस्ति	२८१
जाता गौतमसकाशाः	२२६	नतोऽपि वप्र स्फटिकस्य शेष-	२०१
जातीयन।मनुबभूव च जैन-	३४०	ततो मगलादिदशपकार-	339
जानाम्यनेकासुमितं शरीर	२१७	तत्रत्यधम्मिल्लधरासुरस्य	२१०
जायासुतार्थं भुवि विस्कुरन्मन	1 8 3=	तत्रत्यनारीजनपूतपार्द-	3,9
जिघांसुरप्येणगण शुभाना-	३२८	तत्रादिमश्चिकपुगौरवस्तुक	२८७
जिता जिताम्भोधरसारभासां	३२८	तत्राईतोऽर्चासमयेऽर्चनाय	=3
जितचन्द्रमसं प्रपश्य तं	888	तत्सम्प्रदायाश्रयिणो नरा ये	२६०
जिना जयन्तूत्तमसौख्यकूराः	3 83	तथाप्यहो स्त्रार्थपरः परस्य	२४३
जिनवन्दनवेदि हिस्हिमं	888	तदद्य दुष्टभावानां	१७७
जिनगजतनुस्वत शुचिः	११=	तदिह सुरसुरेशाः प्राप्य	ওল
जिनसद्मसमन्वयच्छळान्	992	नदीयरूपसीन्दर्श-	१३२
जिनालयस्फ।टिकसौघदेश	₹₹	तदेतदाकर्ष्य विशाखभूति-	१६६
जिनेन्द्रधर्मः प्रभवेत्	३४१	तदेवेन्द्रियाधीनवृक्तित्वमेरित	२४६
जुगुप्सेऽहं यतस्तत्कि	१४४	तनुं परोद्वर्तयिनुं गतापि	⊑ ₹
ज्ञात्वेति शको धरणीमुपेतः	X39	तमोधुनाना च सुधाविधाना	१३
ज्ञानाद्विनान सद्वा≉यं	३२३	तयोगीतोऽहं कुलसीधकेतु-	१७२

त्तयोस्त् संमिश्रणमस्ति यत्र २७६ [2] १२० तरलस्य ममाप्यपायनं दरहमापदाने मोही १२६ नल्लीनरोलम्बसमाजराजि-३२६ दएडाकृतिं लोमलतास्वयाऽरं 85 तस्मात्स्वपक्षपरिरक्षणवर्ध-349 =8 उच्चा निजीयं हृदयं तु तस्यै तस्मादनल्पाप्सरसङ्कतस्वाद १७२ दयेत्र धर्मस्य महानुभावा 88 तस्माद् राष्ट्रवतीर्षणशील-388 दलाद्यक्रिना सिद्धमशासकत्वं २४५ तस्मिन्वपुष्येव शिरःसमानः şş दशस्य-निर्भावणयोश्च 939 तस्याः क्रशीयानुदरप्रदेशः 83 दान द्विरद इवाखिल-۶ی तपोधनश्चाक्षज्ञयी विद्योकः २१६ वाम्पत्यमेक कलमाश्रितानां २७१ तावत्तु सत्तमविभूपणभूषिना- ६८ दिक्कुमारीगणस्यामे २८८ तारापदेशान्मणिमुहिटमारान् 376 दिगम्बरीभूय तपस्तपस्यम् १७४ तिष्ठेयमित्यत्र सुखेन भूतले 230 दिवानिशोर्यत्र न जात भेदः २२४ तरुकताभ्येति करानमारात ₹8.5 दिशि यस्यामनुगमः २२८ तल्यावस्था न सर्वेषाम २६६ दीपकोऽभ्यदियायाथ 850 तुषारसंहारकृतौ सुदक्षा 820 दीपेऽ अनं वार्युकुले तु शम्पा ३०२ ते शारदा गन्धवहाः सुवाहाः 398 दःखमेकस्त सम्पर्के 340 तेष्वन्तिमो नाभिरमुख्य देवी ₹७3 दुःखं जनोऽभ्येति कुतोऽथ 50 त्यक्तं कतौ पशुबलेः करणं 320 दरभिनिवेशमदोद्धुरωē त्यक्त्वा पयोजानि छताः 850 दुर्माचमोहस्य हतिः कुतस्तवा त्यागोऽपि मनसा श्रेयान 888 200 रहं कवाडं दयितानुशायित-त्रिमेखळावापिचतुष्कयुक्ताः १४४ १६७ हश्यमस्त्यभितो यद्वद-१४३ त्रिवर्गभावास्त्रतिपत्तिसार: 92 त्रेता पुनः काळ उपाजगाम हच्टा निशावसाने 33 २७२ त्रेता बभूव द्विगुणोऽप्ययन्तु देवतानां कराये त १२४ २=६ देवर्द्धिराप पुनरस्य हि सम्प्र-त्रैकालिकं चाक्षमतिश्च वैति 388 33× त्वं तावदीक्षितवती शयने देवि पुत्र इति भूत्रयाधिपो खं ब्राह्मणोऽसि स्वयमेव विद्धि २१८ रेवेनेरेरपि परस्परतः समेतै-332

दोर्बलगंगहेमारिड-	२३४	नदीनभावेन जना लसन्ति	38
दौरध्यं प्रकर्मानुचितक्रियत्वं	२४४	ननु रमालद्बेऽलिपिकावलिं	808
द्रव्यं द्विधैतिचिवद् चित्रभेदान्	३०३	नभोगृहे प्राग्त्रिपदै-	३२७
द्राक्षा गुडः खण्डमथो सिता-	२६६	नभोऽवकाशाय किलाखिले-	३०६
द्विजा वलभ्यामधुना लसन्ति	१८१	न मनागिह तेऽधिकारिता	११०
द्विजिह्नचित्तोपममन्युतप्तः	१=३	नमनोद्यमि देवेभ्यो	३४०
द्विदामवस्यात्सुमनःस्थलं	હફ	नयनाम्बुजप्रसादिनीं	ξĘ
द्वीपोऽथ जम्बूपपदः समस्ति	१८	नरत्वमाप्त्वा भुवि मोह-	३०४
[घ]		नरपो वृपभावमाप्तवान्	ሂሂ
धरा प्रभोर्गर्भसुपेयुवस्तु	ሂሪ	नरश्च नारी च पशुश्च पक्षी	२२३
धर्मः समस्तजनताहिनकारि-	382	नरस्य नारायणताप्रिहेनो-	२१⊏
धर्माधिकर्त्वममी द्धाना	२०५	नरस्य दृष्टौ विडमङ्यवस्तु	२६३
धर्मार्थकामासृतसम्मिद्स्तान्	988	नरो न शैतीति विपन्निपाते	२४४
धर्मेंऽथात्मविकासे	२६६	नर्तक्यां मुनिरुत्पाद्य सुनं	२६४
धान्यस्यळीपालकचालिकानां	22	नवप्रसङ्गे परिहृष्टचेताः	१००
धृतैं: समाच्छादि जनस्य सा	£8	नवाङ्कुरेरङ्कुरिताधरातु	६७
धूलि: पृथिव्या: कणशः	ЗoК	नवान्निधीनित्यभिधारयन्तं	98=
भ्रवांशमाख्यान्ति गुरोति-	३००	नवालकप्रसिद्धस्य	१२७
•	`	न वेदनाङ्गस्य च चेतनस्तु	१८६
[]	२७०	नव्याकृतिर्म शृशु भो सुचित्र	तं १२
न कोऽपि लोके बलवान्	383	न शाकस्य पाके पलस्येव पूर्व	:२४६
नकादिभिर्वकमथाम्बु		न सर्वथा तूलमुरेति जातु	308
न चातकीनां प्रहरेत पिपास		नहि किञ्चिदगन्धत्व-	१३२
न चौर्य पुनस्तस्कराया-	२४७	नहि पद्धशतीद्वयं दशा क्षमः	880
न जातु ते दुःखदम।चरामः	= ₹	नहि पळाशतरोमु कुलोद्गति	
नटतां तटतामेवं	१२४	नाकं पुरं सम्प्रवदाम्यहं तत्	२६
नतम्रुवो लब्धमहोत्सवेन	१४८	3. a	.,

नात्माम्भसाऽऽर्द्रत्वमसौ प्रया- १८८	निष्करटकादर्शमयी घरावा १६४
नाना कुयोनीः समवेत्य तेन १६८	नि:सङ्गतां वात इवाभ्युपेयान् २८०
नानाविधानेकविचित्रवस्तु २२०	निहस्यते यो हि परस्य हत्ना २४३
नानिष्टयोगेष्टवियोगरूपाः १६६	नीतिवींगोदयस्येयं ३४२
नानौपधिस्फूर्तिधरः प्रज्ञस्यः ४८	नीलाम्बुजानानि सु निर्जितानि ६४
नान्यत्र सम्मिश्रणकृत्प्रशस्त- ३०४	नंश्चल्यमाप्त्वा विलसेशदा ३१४
नाम्ना स्वकीयेन बभूव योग्य: २०२	नैसर्गिका मेऽभिन्चिर्वितर्के ८४
नाभिमानप्रसङ्गेन १२८	नो चेल्परोपकासय २६७
नालोकसापेक्ष्यमुल्कजानः ३२१	न्यगादि वेदं यदि सर्ववित्क ३१६
नासौ नरो यो न विभाति भोगी३१	न्यायाधिप प्राह्च पार्वनीयं २८८
निगोपयेन्मानसमात्मनीनं २८४	$\Gamma = 2$
निजनीतिचतुष्टयान्वयं ११५	[प]
निजशुचिगोप्रतिकथो ७३	पटहोऽनददद्रिशासिनां ११०
निजेङ्गितात्ताङ्गविशेषभावात् ३०४	पटं किमञ्चेद् घटमाप्रुमुक्तः २६=
नितम्बनीनां मृदुपादद्याः ६२	पनङ्गकं सम्मुखमीक्षमाणा- १८६
नितान्तमुच्यैः स्तनशैलमूल- १८४	पतङ्गतन्त्रायितचित्तवृत्ति- १८६
निरामया वीतभयाः ककुल्याः १६४	पतितोडारकस्यास्य े २२⊏
निरियाय स नाकिनायक: १११	पदे पदेऽनल्पजलास्तटाकाः २४
निरौष्ठयकाव्येष्वपवादवत्ता ३२	पयोधगोत्तानतया मुद्दे बाक् ६०
निर्गत्य तस्माद्धरिभूयमङ्गः १७१	पयोधरोल्छाम इहाविरास ६६
निर्माप्य जिनास्थानं २३४	परप्रयोगतो हच्टे १२७
निवार्थमाणा अपि गीतवन्तः २८६	परमारान्वयोत्थस्य २३६
निशम्य युक्तार्थघुरं पिता गिरः १३६	परस्परद्वेषमयी प्रवृत्तिः १६
निशम्य सम्यङ् महिमान- २२२	पराधिकारे त्वयनं यथाऽऽप २६०
निशाचरत्वं न कदापि याया- २२१	परार्थनिष्ठामपि भावयन्ती ३४
निशासु चन्द्रोपलभित्तिनिर्य- २३	परागनीरोद्धरितप्रमून- ६७
नि:शेषनम्रावनिपालमौलि- ३८	परित्यजेद्वारि अगालितं त २२१

	,	,	
परिनः प्रचलज्ञलच्छला-	399	पुरोदकं यद्विषदोद्भवत्वान्	३२४
परिस्फुरत्तारकता ययाऽऽपि	r ३२४	पुष्पाणि भूयो वर्षुर्नभरतः	२०२
परिस्कुटस्त्रोदिपुर्टे विंडिन्भ	i: १८४	पूर्वक्षगं चौरतयाऽतिनिन्यः	२४२
परिस्कुरत्वष्ठिशरद् घराऽसँ	३२४	पूर्व विनिर्माय विधु विशेष-	43
परोऽपकारेऽन्यजनस्य सर्वः	2.8	पृथ्वीनाथः पृथुलक्थनां	ەق
पर्वत इव हरिपीठे	६६	पृदाकुद्रपीङ्कितचन्द्रनाक्तै:	33
फलस्याशन चानकाङ्किपहार	e8ह :3	पौत्रोऽहमेतस्य तद्यगामी	१६७
पले वा दले वास्तु कोऽसौ	२४⊏	प्रकस्पिता कीशकुलोद्भवा	288
पल्ळवराट् काडुवेदी	२३४	प्रगे ददौ दर्पणमादरेण	=?
पल्लवाधिपते पुत्री	२३३	प्रजासु आजीवनिकाभ्युपाय-	१६७
पश्चनां पक्षिणां यद्वन्	२२६	प्रततानुमृतासगात्रके-	११२
पात्रोपसन्तर्पणपूर्वभोजी	१७३	प्रनताबलिमन्ततिस्थिनि-	280
पादैः खरैः पूर्णदिनं जगुः	१८४	प्रत्युवाच वचस्तातो	१३०
पापं विमुच्येव भवेत्पुनीतः	२४४	प्रत्येकसाधारणभेदभिन्न'	.३०इ
पावानगरोपवने	३३१	प्रत्येति छोको विटपोक्तिसारा-	१०३
पार्श्वप्रभोः सन्निधये सदाः	ब: २	प्रत्येत्यशोकाभिषयाथ	€=
पार्श्वस्थसगमवशेन	३३६	प्रसुम्नवृत्ते गीदतं भविन्नः	२६३
पितापि नावदावाञ्छीत्	१२३	प्रद्योतन उउज्जयिन्याः	२३१
पिता पुत्रश्चायं भवति गृहिण	२६⊏	प्रभुराह् निजम्बेदं	355
पिबन्तीक्ष्वादयो वारि	२२६	प्रभोः प्रभामरडलमत्युदान'	२०३
पीडा ममान्यस्य तथेति जन्तु	389	प्रभोरभूत्सम्प्रति दिव्यबोधः	838
पुन प्रवज्ञाज स लोकधाना	२७४	प्रमादतोऽसुब्यपरोपणं	288
पुत्रप्रेमोद्भवं मोहं	१३१	प्रयात्यरातिश्च रविहिंमस्य	१८४
पुनरेत्य च कुण्डिनं पुरा-	११३	प्रवर्धते चेत्पयमाऽऽत्मशक्ति-	₹8
पुरतो वह्निः पृष्ठे भानुः	8 78 8	प्रवालता मूध्न्यंधरे करेच	¥?
पुरापि श्रूयने पुत्री	१३४	प्रविवेश च मातुरालयं	६११
पुरुदिनं नाम पुनः प्रसाद्या-	२⊏६	प्रसादयि तुम स्येतां	१३३

प्राग्धातकीये सरसे विदेहे	१७४	मूत्वा कुमारः प्रियमित्रनामा	१७४
प्राप्रपमुञ्ज्ञित्य समेत्य पूर्व-	२६२	मूला परित्राट् स गतो महेन्द्र	-१६=
प्रापाय तादगनुबन्धनिवद्ध-	३३१	मूपाळाः पालयन्तु	३ ×३
प्रायोऽस्मिन्भूतले पुंसो	१३१	मुमावहो वीतकलङ्कलेशः	3.5
प्रासादशृङ्काप्रनिवासिनीनां	3×	भूमिदानं चकारापि	२३४
प्रास्कायिकोऽङ्गान्तरितं यथेति	38%	भूमिपालेष्विवामीपु	२३७
प्रीतिमात्रावगस्यत्वात्	१२१	भूयो भुवो यत्र हृदा विभिन्न	रं १६
प्रोद्घाटयेन्तैव परं दोषं	२ ४ ४	भो भो प्रपश्यत पुनीतपुराण-	333
प्रीढिं गतानामपि वाहिनीनां	ξX	[申]	
[4]		मक्षिकावज्जना येषां	३४६
बबन्ध काचित्कबरी च तस्या	: =२	मदनमर्मविकाससमन्वितः	१०३
बभूव कस्यैव बलेन युक्त	838	मद्याङ्गवद्भृतसमागमेभ्य-	३०३
बभूब तच्चेतसि एष तर्कः	२१४	मध्येसभं गन्धकुटीमुपेतः	२०२
बल्लः पिताम्बास्य च	२१२	मनुष्यता ह्यात्महितानुवर्ति	२४३
बहुकृत्वः किलोपात्तो	१७६	मनोऽङ्गिनां यत्पद्चिन्तनेन	8
बिम्बार्चनव्र गृहिणोऽपि	३४२	मनोऽधिकुर्याञ्चतु बाह्यवर्गः	२८४
बीजादगोऽगाद् द्रुतबीज एव	३१०	मनोरथारूढतयाऽयवेतः	039
बृहदुन्नतवंशशालिनः	888	मनोवचःकायविनिप्रहे	२७६
[भ]		मनोवचोऽङ्गैः प्रकृतात्मशुद्धि-	२२०
भर्ताऽहमित्येष वृथाभिमानः	२४७	मनोऽहिवद्वक्रिमकल्पहेतुः	१६
भवन्ति ताः सम्प्रति नाटय-	२००	मन्दत्वमेवसभवत्तु यतीश्व-	३३७
भविष्यतामत्र सतां गतानां	388	ममाऽमृदुगुरङ्कोऽय	३४७
भवेच्च कुर्याद्वधमत्र भेदः	२४४	मयाऽम्बुधेर्मध्यमतीत्व	२०४
भाष्ये निजीये जिनवाक्यसार	339-	मल्लिका महिषी चासीत्	२३२
भुजङ्गतोऽमुष्य न मन्त्रिणोऽ		महात्मनां संश्रुतपादपानां	१४८
भुवने लब्धजनुष:	१४३	महीपतेर्धाम्नि निजेक्नितेन	88
भूत तथा भावि खपुष्पवद्वा	₹ १४	महीमहाङ्के मधुविन्दुवृन्दैः	३२६

महीशूराधिपास्तेषां	२३३	मेरोर्यदौद्धत्यमिता नितम्बे	8=
माकन्दवृन्दप्रसवाभिसर्तुः	3.5	मोहप्रभावप्रसम्प्रवर्ज	२०३
माऽगा विषादं पुनरप्युदार-	१७१	मौर्यस्थले मरिहकसंज्ञयान्यः	२१०
माचिकव्वेऽपि जैनाऽभू-	२३४	मौर्यस्य पुत्रमथ पौत्रमुपत्य	३३८
माता जयन्ती च पिता च देव	-288		
माता समास्वाद्य रसं तदीयं	0.3	[य]	
मातुर्मनोरथमनुप्रविधानदक्षा	६२	यज्ज्ञानमस्तसकलप्रतिवन्धि-	३२३
मातुर्भु सं चन्द्रमिवेत्य हस्तौ	===	यज्ञार्थमेते पशवो हि सृष्टाः	१४
मानोन्नता गृहा यत्र	१२३	यत्कृष्णवर्त्मत्वमृते प्रताप-	80
मान्यं कुतोऽहेंद्वचनं समस्तु	58	यत्खानिकावारिणि वारणानां	२⊏
मार्गशीर्षस्य मासस्य	१६०	यतस्त आशीतलतीर्थमापु-	२८७
मार्तरहतेजः परितः श्रचरहं	१=१	यत्सम्प्रदाय उदितो वसन-	३३४
मासं चतुर्मासमयायनं वा	१८६	यतोऽतिषृद्धं जहधीश्वरं सा	२४
मितम्पचेषुत किछाध्वगेषु	309	यतोऽभ्युपात्ता नवपुष्पतातिः	१००
मित्रस्य दुःसाध्यमवेक्षणं तु	3%	यतो मातुरादौ पयो मुक्तवान्	२४⊏
मुकुलपाणिपुटेन रजोऽब्जिनी	१०४	यत्र श्राद्धे ऽपि गोमांस-	२३८
मुखश्रियःस्तेयिनमैन्दवन्तु	६४	यत्राप्यहो लोचनमेमि वंशे	२६४
मुद्रे चु कङ्कोडुकमीक्षमाण-	२६३	क्त्रानुरागार्थमुपैति चेतो	Ę
मुग्धेश्वरस्य प्रतिपत्तिहेतवे	888	यथा तदीयोदरवृद्धिवीक्षा	£k
मुद्दुस्त्वया सम्पठितः किला-	२०४	यथा दुरन्तोच्चयमभ्युपेता	२⊏६
मूलगुणादिसमन्वित-	७२	वया रवेरुद्रमनेन नाशो	२१४
मृगीदृशरचापलता स्वयं या	χo	यथा सुख स्यादिह छोकयात्रा	२७४
मृदुपल् लवरीतिधारिणी	११८	यथा स्वयं वाष्छति तत्ररेभ्यः	२४२
मृदुपल्छवतां वाचः	१२८	यथेच्छमापृच्छत भो सुदेव्यः	디
मृत्युं गतो इन्त जरत्कुमारे-	२७०	यवैति दूरेक्षणयंत्रशक्तया	३१ई
मृस्वं तु संज्ञास्विति पूज्यपाद	: 88	यदग्निसिद्धं फलपश्रकादि	ફેંગંહ
मेतार्यवाक तुङ्गितसन्निवेशः	288	यदभावे यन भवितुमेति	388

यद्स्ति वस्तृदितनामधेयं	३२०	[₹]	
यदाऽवतरितो मातु-	२०६	रङ्गप्रतिष्ठा यदि वर्णभङ्गी	२६१
यदा समवयस्त्रेषु	१०६	रजो यथा पुरुषसमाश्रयेण	×
यदीयसम्पत्तिमनन्यभूनां	२३	रतिरिव च पुष्पधनुषः	*8
यदेतदीक्षे जगनः कुरूसं	80%	रस्तानि तानि समयत्रय-	१०इ
यहे शवासिनां पुरुषं	२२⊏	रत्नोशकैः पश्चविधीर्वेचित्रः	98=
यदोपसान्द्रे प्रविहर्तु मम्बा	80	स्याङ्गिन बाहुबलिः स एकः	२्७०
यद्वा सर्वेऽपि राजानो	२३⊏	रमयन् गमयत्वेष	388
यद्वा स्मृतेः साम्प्रतमर्थजातिः	388	रमा समामाद्य भुजेन सह्या	३३०
यन्मार्द्वोपदानायो-	१३२	रगाज मातुरत्मङ्ग	१२४
यस्यानुकम्पा हृदि सृदियाय	३७३	रविणा ककुबिन्द्रशासिका	१०७
यस्यानु तद्विप्रसनामनीक	२१४	रविरयं खलु गन्तुमिहोद्यतः	१०४
या पक्षिणी भूपतिमानसस्य	χo	रविर्धनुप्राप्य जनीमनांसि	888
या पत्नी कदम्बराज-	२३४	रवेर्दशाशापरिपूरकस्य	38
यास।मरूपस्थितिमात्मनाऽऽ		रसायनं काव्यमिदं श्रयामः	3
यां वीक्ष्य वैनतेयस्य	१६२	रसंजीगत्प्छावयितुं क्षरोगन	Ęo
युतोऽग्निनाभूतिगिति प्रसिद	द्र: २०६	रसंरमित्वाभ्रमतो वसित्व	। ६ ६
युवत्वसासाद्य विवाहितोऽि	ने १३७	राग. कियानस्ति स देहसेव	: ==
ये केऽपि सम्प्रति विरुद्धिः	यो १६४	राजगृहाधिराजो यः	ગ્રહ
येषां विभिन्नविपणित्वमनन्य	4- 38x	राजपुर्वा अधीशानो	२३१
ये स्पष्टजासनविदः खलु	३३४	राजवर्गमिहेत्येवं	२३७
योऽकस्माद्भयमेत्ययु सकत्य	॥ ३४७	शजा तुजेऽदात्तदहो निरस्य	१इह
योगः सदा वेदनया विधेः		राज्यमेतदनर्थाय	१३४
योऽभ्येति मालिन्यमतो न	जाने ६	राज्यं भुवि स्थिरं काऽऽमी	न् १३४
बो वाऽन्तरङ्गे निजकल्मप	स्य २२३	रात्री यदश्र लिह्हालशृङ्ग-	₹.0
यः क्षत्रियेश्वरवरेः परिधार	- ३४४	रुचा कचानाकलयञ्जनी-	888

रूपं प्रभोरप्रतिमं वदन्ति	१६२	वस्तुता नैकपक्षान्तः	१४=
रेखें किका नेव लघुर्नगृथीं	२६३	वस्तुतो यदि चिन्त्येत	१६१
रेभे पुनश्चिन्तयितुं संएप	२०४	वस्त्रेण वेष्टितः कस्माद्	१४६
[छ]		वहावशिष्टं समयं न कार्यं	२८३
	_	वाचां रुचामेघमधिक्षिपन्तं	२०४
छक्ष्मीं मदीयामनुभावयन्तः 	२७	बाढं क्षणे चोपनिष्त्समर्थे	२६०
लतेत्र सम्पल्लबभावयुक्ता	४७	वाणीव यासीत्परमार्थदात्री	४६
लब्ध्वेमं सुभगं बीरो	२०६	वाणीमित्यममोघमङ्गलमयी	৩৩
लभेत मुक्ति परमात्मबुद्धिः	२१६	वाणीं द्वादशभागेषु	२२७
छछाटमिन्दू चितमेव ्तासां	=0	वानवसनना साधुत्वायेति	२०६
लमन्ति सन्तोऽप्युपयोजनाय	×	वानोऽप्यथानोऽतनुमत्तनूना-	(मध्
लुप्रंसमन्वेषयितुं प्रदाव-	२७७	वातं तथा तं सहजप्रयातं	300
लोकत्रयंक्तिलको	७१	बात्युच्चलत्केतुकरा जिनाङ्का	30
लोकत्रयोद्योति-पवित्रवित्ति-	દ ફ	वामानां सुविख्त्रिये विषमता	3,5
लोकोपकारीणि बहूनि कत्वा	२७४	वाहद्विपन् स्वामवगाहमान-	१८३
लोकोऽयमाप्नोति जहाशयत्वं	Xε	विक चित्र भव्यपयोजी	v 3
लोकोऽयं सम्प्रदायस्य	680	विजनंस विरक्तात्मा	१४६
वि		विज्नभते श्रीनमुचिः प्रचएडः	٤٧
वणिक्पयः काव्यतुलामपीति	२७	विद्यं च्चौरोऽप्यनः पश्च	२३१
		विनयेन मानहीनं	340
वणिक्पथस्तूपितरस्नजूटा	ર૪	विनापि वाञ्छां जगतोऽखिल	- २०
वदत्यपि जनस्तस्मे	१३३	विनोदपूर्णो झष्युग्मसम्मितिः	: 10
वनगजचतुष्टयेन	887	विपदे पुनरेतस्मिन्	84
वन्या मधोः पाणिष्टृतिस्तदुक्त		विपन्निशेवाऽनुमिता भुवीतः	221
वर्धमानादनभ्राज-	२०७		8
वसन्तसम्राह्विरहाद्पुर्दुं	ሂፍ	विभूतिमत्त्वं दधताप्यनेन	
बसुन्धरायास्तनयान् विपद्य	Ę٥	विभेति मरणाद् दीनो	१६

(४३८)

	विमलाङ्गजः सुदृष्टिचरोऽवि	r २६४	वीरस्य वर्त्मान तकैः समक	रि ३३६
	विमानवद्यः सुरसार्थसंस्तव	: ৩६		
	वियोगिनामस्ति च चित्तर्श	त्तः १७६		२३७
	विरहिणी परितापकरोऽकर	रे १०६		२०५
	विरोधिता पञ्जर एव भारि	तं ३२	वीरेण यत्प्रोक्तमहच्टपार-	₹₹
	विलोक्यते हंमरवः समन्त	त् ३२६	Arrest felt	२२७ २२७
	विलोक्य वीरस्य विचारवरि	B- 80=		
	विवर्णनामेव दिशस्त्रजास्वय	१४३	नारायम च ।चद्वातुसव-	. 4
	विवाहितो भ्रातृजयाङ्गभाज	1 345	वृत्तं तथा योजनमात्रमञ्ज	88.0
	विश्ववांशुसमूहाश्रितमणि-	٤٣	वृथाभिमानं व्रजतो विरुद्धं	३२२
	विशाखनन्दी समभूद् श्रमिः	बा १७०	वृथा अयन्तः कुक्तविप्रयातं	६३
	विशासभूतिर्नभमोऽत्र जातः	१७०	वृद्धस्य मिन्धो रसमाशु हृत्व	ा ६१
	विश्वस्य रक्षा प्रभवेदिनीय-	રે ૪	वृद्धानुपेयादनुवृत्त बुद्धथा	२४४
	विशाखभूतेस्तनयो विशाख	१३६	वृद्धिर्जडानां मल्लिनधैनेवी	¥ς
	विष्णु चन्द्रनरेशस्या-	२३६	वेदाम्बुधेः पारमिताय सह्य	२०४
	विष्णुवर्धनभूपस्य	₹ ₹ <i>¥</i>	वेश्यासुता भातृविवाहितापि	245
	विस्तारिणी कीर्तिरिवाध	2.8	वेषः पुनश्चाङ्कुरयत्यनङ्गः	१=३
	विहाय मनसा वाचा	3 % 8	वेमुख्यमप्यस्त्वभिमानिनीनां	
	वीक्षेदशीमङ्गभृतामवस्थां	२७३		88€
	बीणायाः स्वरसम्पत्ति	222	वेशास्त्रगुक्तान्त्रविधूदितायां	१६०
	वीतभयपुराधीश-	२३०	वेशाल्या भूमिपालस्य	२३०
	वीरचामु रहराज श्च	238	वोढा नवोढामिव भूमिजात-	308
	नीरता शिक्षभावश्चेद	858	वोढार एवं तव थूलकमेते	288
ē	ीर त्वमानन्द्रभुवामवीरः	3	वंशरच जातिर्जनकस्य मातुः	२६०
ě	रिस्तु धर्ममिति यं परितो	३ ३३	बंश्योऽहमित्याचिभमान-	२६०
ā	रिस्य गर्भेऽभिगमप्रकार-	X/w	- N 1 a	
þ	रिस्य पद्मायुतबुद्धिमत्सु	२२२	व्यासोपसंगृहीतत्व'	
	5 6 - 1 6		-नाचानचपुरु।तस्य	१२=

[श]	श्रीधातकीये रजताचलेऽहं १७२
शकोऽथबाऽइंभविता ४	श्रीभद्रबाहुपद्पद्ममिलिन्द- ३३७
शपन्ति जुद्रजन्मानो १६२	श्रीभारतं सम्प्रवद्।मि शस्त- १६
शरीरतोऽसौ ममताविंहीनः १८८	श्रीमङ्ग्लावत्यभिधप्रदेश- १७२
शशिनाऽऽप विभुस्तु काख्रन- १२०	श्रीमतो वर्धमानस्य १४३
शस्त्रोपयोगिने शस्त्र- १६२	श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज- प्रत्येकस
शास्त्रियु विपल्छवत्वमथेतत् १४१	के अन्तः
शिखावलीढाभ्रतयाऽप्यदूटा २२	श्रीविश्वनन्दार्यम्वेत्य १६६
शिरो गुरुत्वान्नतिमाप भक्ति- =६	श्रीवीरदेवस्य यशोऽभिरामं २०८
शिवद्विषः शासनवत्पतङ्गः १५४	श्रीवीरदेवेन तमामवादि २६२
शिवश्रियं यः परिगोतुमिद्धः ३२४	श्री वीरसन्देशसमर्थनेयं २०६
शीतातुरः साम्प्रतमाशरीरं १४०	श्रीवीरादासहस्राब्दी- २३२
शीतातुरीऽसौ तरणिर्निशायां १४७	श्री सिन्धुगङ्गान्तरतः स्थितेन २०
शीतं वरीवर्ति विचारलोपि १४८	श्रुताधिगम्यं प्रतिपद्य वस्तु ३२०
शक्त मीं किकवत्तस्याः १०=	श्रुती सुशास्त्रश्रवणात्पुनीते ६२
शुश्रुपूणाभनेका वाक् २२७	श्रुतं विगाल्याम्बु इवाधिकुर्या- २८४
शुर्यु प्रवित् सिंहसमीक्षणेन १६४	श्रेणी समन्ताद्विलसत्यलीनां १०२
रमश्रं स्वकीयां वलयन् व्यभावि १४	श्रेष्ठिनोऽप्यईहासस्य ४३१
श्यामास्ति शीताकुछितेति १४६	श्लोकन्तु लोकोपकृतौ विधातुं ६१
श्रिया सम्बर्धमानन्त- १२४	श्वभं रुषा लुब्धकतावलेन २१६
	श्रोत्रवद्विरलो लोके १४४
	[-1
श्रियं मुखेऽम्बा ह्रियमत्र नेत्रयोः ६१	[स]
भीगेन्दुकेली विभवन्ति तासां १४६	स बाह भी भन्य पुरुखाङ्ग-१७१
भीगोवरप्रामिवसूपयुक्त- २०६	समन्बिकन्याविवरात्तमारुतै- १४४
भीजिनपद्प्रसादादवनी ६६	
श्रीतास्रवृन्तभ्रमणं यदायुः १८२	सगरं नगरं त्यक्त्वा १४८

स चात्मनोऽभीष्टमनिष्ट- ३१२	समन्ततोऽस्मिन् सुमनस्त्व- १०२
सचेतन।चेतनभेदभिन्नं २१४	समभ्यवाञ्चि यदोन १२३
सञ्ज्ञानैकविलोचन ६६	समवशरणमेतन्सामतो २२४
सतामहो सा सहनेन शुद्धिः 🗶	समस्तसस्वैकहितप्रकारि १७४
सनाऽर्हताऽभ्येत्य विधेर्विधानं ६४	समस्ति निस्यं पुनरप्यनित्यं ३०१
सत्यसन्देशसंज्ञप्ये २०६	समस्ति भोगीन्द्रनिवास एष- २६
सस्यानुकूलं मतमास्मनीनं २४६	समस्ति वस्तुत्वमकाटन्यमेत- ३०६
सत्त्रेषु मैत्रा गुणिषु प्रमोदं २८२	समस्तविद्यं कविभूतिपाता २७४
सत्त्वेषु सन्निगदता करुणा- ३४४	समस्ति यष्टन्यमजैरमुख्य २८८
सदनेकसुलक्षणान्विति- १०७	समानायुष्कदेवीघ- १२६
सदाऽऽत्मनश्चिन्तनमेव वस्तु २१६	समाश्रिता मानवताऽस्तु तेन २४४
सदुक्तये दातुमिवायनं स। ८४	समीक्य नानाप्रकृतीन्मनुष्यान्२८२
सदंदुराणां समुपायने नु ७	समीहमानः स्वयमेष पायसं १४०
सद्भिः परँ रातुलितं स्वभावं ३००	समुच्छलच्छीतलशीकराङ्के ६३
सद्योऽपि वज्ञमायान्ति १३४	समुत्थितः स्नेहम्डादिदोषः ३१३
सनाभयस्ते त्रय एव यज्ञा- २०६	समुजनात्मा गजराजवत्तथा ७६
सन्तः सदा समा भान्ति ३५०	समुद।राकुचाञ्चिनां हिनां ११७
सन्तापितः संस्तपनस्य पादैः १८१	समुल्लसत्वीनपयोधग ६३
सन्ति स्वभावात्परतो न भावा-२६४	सम्पह्नवत्वेन हितं जनानां २३
सन्धूपधूमोत्यितवारिदानां ३०	सम्मानयत्यस्यसनस्तु वर्ति २४३
सन्मार्जिता प्रोव्छनकेन तस्याः पर	सम्मानयामास स यज्ञसूत्र २८७
सप्तच्छदाऽऽम्रोरुकचम्पकाप- २००	सम्बोधयामास स चेनि २८४
सप्तद्वयोदारकुळ हुराणां १६६	सम्बुद्धिमन्वेति पराङ्गनासु २८२
सप्तप्रकारत्वमुशन्ति भोक्तः २६४	सम्बद्धि सिद्धि प्रगुणामितस्तु १८
स मङ्गलद्रव्यगणं द्धान १६६	समागमः क्षत्रियविप्रबुद्धयो २२२
समक्षतो वा जगदम्बिकाया- १४	समाययुः किन्तुय एव देवा २१३
समन्ततो जीवचितेऽत्र छोके २४४	समासजन् स्नातकतां स वीर:१६३

(888)

समुह्नमञ्जीलमणित्रभाभिः	२=	सुताभुतः किञ्च नराशिनोऽपि	२६३
समेति नैष्कर्म्यमुतात्मनेयं	२१७	सुधर्मस्वामिनः पार्श्व	२३ः
समेति भोज्यं युगपन्मनस्तु	३१⊏	सुधाश्रयतया ख्यानं	१२३
समेत्य नत्राऽप्यनुकूलभावं	२१७	सुपदं समुन्नते स्या-	હ
सम्भोक्ता भगवानमेयमहिमा	१६६	सुपञ्जवाख्यानतया सद्देव	33
मस्बिभ्रती सम्प्रति नृतनं तम	१४३	सुमोइमः स प्रथमो द्वितीयः	१८१
सराजिनीमीर भसारगन्धि	१⊏४	सुयशः सुरभिसमुच्चय-	ত
सर्वज्ञतामाप च वर्धमानः	३२२	सुरदन्तिशिर स्थिनोऽभवन्	888
सर्पस्य निर्मोक्तिवाथ कोश-	१८८	सुरपेण सहस्रमंभुजैः	१११
सर्वेऽप्यमी विषकुलप्रजाता	२१२	सुरसार्थपति तमात्मनः	११ः
सर्वेर्मनुष्येरिह सूपितब्यं	339	सुरमार्थेः संसेव्यो	ঙ
सर्वोऽपि चेद् ज्ञानगुणप्रशस्ति	345	सुरशैलमुपेत्य ते पुन-	888
सहस्रधा संगुणितत्विडन्धौ	१८०	सुवर्णमूर्तिः कवितेयमार्या	8:
साकेतनामा नगरी सुधामा	१७३	सुवृत्तभावेन च पौर्णमास्य	81
मा चापविद्या नृपनायकस्य	88	सुवृत्ताभावेन समुक्कसन्तः	9
साधुर्गुणग्राहक एव ऋ।स्तां	₍₉	स्चीक्रमादञ्जिति कौतुकानि	38
माधार्विनिर्माणविधौ विधातुः	Ę	सूपकार इवाहं यं	38
माम्यमहिमा स्याद्वादस्तु	₹80	सूर्य इंशीयभूपालो	२३
सारं कृतीष्टं सुरसार्थरम्यं	१०	सूर्यस्य धर्मत इहोस्थितमस्ति	38
सार्धद्रयाद्दाय्तपूर्वभद्य	88	सूर्योदये सम्बन्धरेत् पुरोहक्	२७
सिद्धिः प्रिया यस्य गुणप्रमातुः	२७७	सेनापतिर्गङ्गराज-	२३
सिद्धिमिच्छन् भजेदेवा-	१७६	सेनावनादीन् गदतो निरापद्	३०
सिद्धिस्तुविश्लेपणमेतयो स्यान	२७६	संवन्त एवन्तपनोष्मतुल्य-	१४
सिंहो गजेनाखुम्थौतुकेन	२२३	सोऽसौ त्रिखण्डाधिपतामुपेतो	१७
सुखं सन्दातुमन्येभ्यः	३४६	सोऽसौ स्वशिष्यगुरुगौतम-	33
सुगुणेरमञ्जू णितो	৬১	सौधावलम्नबहुनौलमणि-	3
सुनहृपस्थिति दृष्ट्वा	१२६	सौन्दर्भमेतस्य निशासु द्रष्टु	3
- a			

(888) सौरभावगतिस्तस्य स्वर्गं गतोऽप्येत्य पुनर्द्विजत्वं 800 १६८ सौबर्ण्यमद्वीक्ष्य च धर्यमस्य स्त्रवाध्यितं सिध्यति येन 35 880 संगालिते वारिणि जीवनन्त स्वस्त्रान्तेन्द्रियनिप्रहैकविभवो ₹¥0 304 संरक्षित्ं प्राणभृतां महीं स स्वस्थितं नाञ्जनं वेसिः-388 888 संविदन्निप संसारी स्वाकृतस्योत्तरं सर्व-888 २२६ स्तम्भा इतः सम्प्रति खातिका 228 स्वामी दयानन्दरवस्तदीय-210 स्तनं पिबन् वा तनुजोऽ-स्त्रार्थाच्च्युतिः स्वस्य विनाश-२४४ २४६ स्यानं श्रीपुरुषाख्येन 233 स्त्रीयां पिपासां ज्ञमयेत्परा-230 स्नाता इवाभः कक्रभः प्रसन्नाः १६४ हन्तास्मि रे त्वामिति भाव -स्नानाऽऽचमादिविधिमभ्यूप- ३३६ 8000 स्नेहस्थितिदीपकवज्जनेषु 33 हरियव्बरसिः पुत्री ३२४ हरये समदाज्जिनं यथा स्फटिकाभकपोले विभो-१२० 883 हरिषेणरचितबृहद।ख्याने र्क्रटमार्तवसम्बिधानतः २६६ 22 स्करत्ययोजातमुखी समन्ताः ३२६ हरे: प्रिया सा चपलस्वजावा ४६ स्मरः शरद्यस्ति जनेष कोपी ३२= हारायनेऽयोत्तमवृत्तमुक्ता-88 स्यारसापरागस्य हृदीह शुद्धन्या हिमारिणा विग्रहमभ्युपेतः 880 == हिमालयोल्लासिगुणः स एष स्युतिः पराभूतिरिव ध्रुवत्वं २० 229 स्वचेष्टितं स्वयं भुंको हिसायाः समुपेत्य शासनविधि२४६ १४६ स्वतो हि संजृम्भितजात-हिंसा स दूपयति हिन्दुरियं 335 १७८ हपीकाणि समस्तानि स्त्रप्रेऽपि यस्य न करोति १३२ 339 स्वमात्रामतिकस्य-हे गौतमान्तस्तव की हगेष २४६ २१४ स्वमुत्तमं सम्प्रति मन्यमानो हे तात जानूचितलम्बबाही 83 283 हेत्र्नरद्वारि समागमाय स्वयं कारच्चामरपूष्पिणीयं 330 30 स्वराज्यप्राप्तये श्रीमान हेनाथ केनाथ कुतार्थिनस्तु १७६ २६६ स्वरोटिकां मोटयितुं हि शिक्षते १३६ हे पितोऽयमितोऽस्माकं १३४ स्वर्गप्रयाणश्चण एव पुत्र-२७२ हे साधवस्तावदबाधवस्त २७४ स्वर्गादिहायातवतो जिनस्य हंसस्त शुक्तोऽसृगम्ब्य २६८

(४४३)

ः कतिपय क्रिष्ट शब्दों का अर्थः

W

হাৰৰ	ऋर्य	ăā	शब्द	श्रर्थ	ãã
भ क	दु:ख	३४२	अध्वतीन	पथिक	२२
ध काण	चन्नुष्मान्	२६३	अनक	दोष-रहित	२४६
ब्रक्ष	इन्द्रिय	{ २.४० { ३२१	খ্যনঙ্গ अন হ ন্ত	काम मलिन	६३ २ ⊏ ¥
अ ग	पर्वत,बृक्ष	३१०	श्चनन्त	शेषनाग	२६
ध गद्	ऋौषधि	4 5	अनभाज	मेघराज	२०७
खड खङ्गसार	गोद,चिह्न शरीरवल	१२१ २	श्रनिश	निरन्तर	{ २४६ २६१
अङ्गा रिका	श्रंगीठी	१४४	श्रनीक	सेना	२१ ४
অ জিূ্ল	चरण	३६	श्चनुपभ	उत्तम	४२
अ चित्	जङ्	३०⊑	श्रनुमा	श्रनुमान	₹१६
श्र चित्त	जीव-रहित	३४२	अनूचान	ब्रह्मचारी	१३४
भ ज	वकरा	१३८	श्रनोकह	वृक्ष	२४
अ जस्र	निरन्तर	₹€	श्चन्यपुष्ट	कोकिल	9€
घणु	परमागु	३०८	श्चन्वय	वंश	२३०
श्र दन	भक्षण	१८६	श्रप्	जल	३०२
छ दिति	देव-माता	દ્ય	अपराग	विरक्त	55
व्यद्रिशासिन्	देव	११०	ऋपर्तु	निष्प्रभ	ሂፍ
अ धीति	अध्ययन	४२	अपाङ्ग	कटाक्ष	३२
छा ध्यक्ष	प्रत्यक्ष	३२०	স্থা ত্য	कमल,चन्द्र	8=
ध ध्वग	यात्री	309	श्रद्भप	सूर्य	२२

शब्द	श्चर्थ	बेट्ट	शब्द	श्चर्थ	पृष्ठ
अ ब्जिनी	कमलिनी	२२०	श्चवस्याय	हिम	१४०
श्रव्धितुक्	चन्द्र	°०३	अवाची	दक्षिणदिशा	२=
श्रभिजात	એ છ	8	श्रविनाभू	श्रविनाभावी	388
श्रभिधा	नाम	8	श्रवीर े	एकरंग, गुरु।	ल ३
श्रभ्यसूया	ईच्या	२⊏३	श्रशन	भोजन	280
श्रभ्र लिड्	आकाशव्यापी	३७	असु	प्राण	288
श्रमत्र	पात्र 🜡	६० २०३	असुभृत्	प्राणी	१००
			त्रमृज	₹ क	१३७
ज्यमन्द् कर्मन्द	नेज	३३०	श्चस्तिकाय	बहुप्रदेशी द्रव	य ६२
अमीर	धनवान्	3	ऋहस्कर	सूर्य	२१३
अमृताशन	देव	१७२	छ ।हिपति	सर्पराज	83
श्रम्बर	त्राकाश	३२४	त्रहीन	शेषनाग	१४६
श्रम्बुरुह	कमल	३३१	त्र्यं शकिन	विचारशील	ξ¥
श्चयुन	हजार	88	ज्ञागार 🐪	गृह	380
अ युति	वियोग	६६			२२३,
श्चयन	स्थान, मार्ग	-8	द्याखु	चूहा { ५,	२६२
अर	शीघ	5 3	श्राचमन	जलपान	388
श्ररम्	शीब	939	आण	नाम	१६६
श्चर्क	सूर्य	२४२	श्रातपत्र	छत्र	२०३
সা ন	पीड़ा	२=२	श्रातोद्य	वाजा	३०
ऋर्यमन्	सूर्य	१३८	त्रात्मनीन	श्रात्माका हि	(त२१७
	,	ৼঽ	श्रारात्	दूर, सपीप	२७२
अ लि	भ्रमर	१०३	त्रालबाल	क्यारी	१८१
श्रवट	कूप₁ख डु ।	१४६	श्राली	सखी	ξĘ
श्रवनिपाल	राजा	३⊏	त्राशुकारिन्	शीवकर्ता	Ę۶

शब्द	અર્થ	åεg	সহর্	श्रर्थ	ās
ऋाशुग	वाण, वाष्ट	688	उर्वी	पुछ्बी	ا موء
श्रास्य	मुख { ४	i, 60 133	उल् क	उल्लू	३२४ ३२४
इङ्गित	चेष्टा	હશ	उल् <i>क</i> उल्का	विजली विजली	२२१ २२६
इक्रिनी	चेष्टावाली	३३२	उझीर	ग्वस	१=२
इन	स्वामी, सूर्य	१०३	3.E	तर्कर्	३२,३२६
इद्ध	ममृद्ध	२०६			ંચ્છર
इन्दिरा	लक्ष्मी	११३	ए ज	सृग	३२८
इन्द्र	चन्द्र	32,0	एनस्		३४०
इला	भूमि	२२८	श्रोकम्	स्थान	२१६
इंडिट	यज्ञ	३०६	श्रोतुक	बिलाव	२२३
ईरण	प्रेरणा	822	क	जल	३१४
ईशायिता	ईसाईपन	२६६	ककुभ	दिशा	1 85%
उच्चय	समृह	8 2 2			,
विस्छ ब्ह	जुठा	२०२	ककुल्य	सुखी	१६४
उक्कर	उ उइब्रह्म	२०≒	क <i>द्व</i> ोडुक	नहीं सीझने	गला२६३
ब डु	नक्षत्र	६४	कच	केश	1 23
उत्मङ्ग	गोद	१२४			१६०
उत्से क	गर्व	2 X X	कञ्ज	कमल	558
उद्क	जल	३२४	कवरी	केश∙कल	ाप ⊏२
उदीची	उत्तरदिशा	२८		श्रोता	। इस
उपायन	भेंट, नजरा	ग१२०	करक	31/01	1 388
उरग	सर्प	११०	करग्हक	पिटारी	३१७
उ रु	जंघा	×γ	क∢त्र (कलः	त्र) स्त्री	१३१

शब्द	अ र्थ	वृष्ठ	शब्द	ऋर्थ	ā8
करिन्	हाथी	१७६	कुङ् मल	कली	= 3
कर्क	एक राशि	Ξ¥	कुन्तिन्	भाले वाळा	२४७
कर्कट	केंकड़ा	११२	कुवेरकाष्ठा	उत्तर दिशा	33
कर्णेजप	चुगलखोर	5	कुमारश्रमण	बालब्रह्मचारी	
कर्तरी	कें ची	२४२	कुमुद	श्वेत कमल	320
कलकृत	कोयल	१०३	<i>उ</i> खर कुरङ्ग	मृग	२२
कलम	भान्य	६१	-		-
कलाधर	चन्द्र	888	कुरान	मुस्लिम-प्रन्थ	२६६
कलापि न्	मोर	Ę٥	कुलाल	कुम्हार	8=
कल्डि	कलिकाल	XΞ	कुवल	मोती { ११	4, XG
कवरस्थली	कत्रिस्तान	१४०	~~	चारण,भाट,ऊंट	
कवल	प्रास	838	कुशीलव		
कशा	चाबुक	१०२	कुशेशय	कमल	६२
काकु	प्रश्न	288	कुसुम	पुष्प	१२४
कापर्दक	कौड़ी	83	कुहर	कोहरा	१=१
काकारिलोक	उल्लू	3	कृत्ति	शस्त्र, छुरी	8.6
कासार	तालाब {	१२=	कुपाण	तलवार	२४३
	t	१=१	कुपाणी	छुरी	१६
किङ्किणिका	जुद्रघंटिका	३०	कुपीट	अग्रि	१८६
किङ्किणी	59	१०३	कृष्णवर्त्मन्	अग्नि	80
किरि	सूकर	२६३	केकिन्	मोर	२०८
कीशकुळोद्भव	वानर	887	केतु	ध्वज	१६७
कुच	स्तन	११७	केशरिन्	.सिंह	७२
कुजाति	नीच जाति,	٤5	कोक	चकवा	२६८
3	भूमिज वृक्ष		कोटर	खोखल	१८४

शब्द	જાર્ય	бã	হাত্ত্	श्चर्य	वृष्ठ
कोष	खजाना	₹४	चकवाकी	चकवी	38
कौतुक	पुष्प, तमाशा {	93 239	चख्ररीक	भ्रमर	१००, ३२६
कौमुद	कुमुद समूह	११, १३	चन्द्राश्म चीर	चन्द्रकान्त वस्त्र	३४ १४०
कौशल	चातुर्य	Xς	चेतस	चित्त	२४२
क्रम	श्रम	७४	चॅत्यद्रम	मृर्तियुक्त-वृष्ट	स २००
क्लेद	गलन, सङ्न		छगल	वकरा	२६७
चेम	{ कल्याण, प्राप्त वस्तु रक्षण	-२७४	छ।ग	वकरा	{ १४, २८८
खट्टिक	खटीक	२४४	जडज	(जलज)कम	ाल १३
खद्योत	जुगन्	६४	जनी	स्त्री	શ્હ
खर्ब	नाश	१४	जनुष्	जन्म	१४३
खल	दुष्ट	v	जम्पती	स्त्री-पुरुष	३२६
खातिका	खाई	२=	जलद	सेघ	₹૪૬
गन्धकुटी	समवसरण	२०२	जलौकस्	जलवर	२४७
गन्धवाह गर	वायु विष	१४=	जव	वेग	{ ₹¥,
गवाक्ष गुण	झरोखा स्वभाव, डोरी	3 २ 30	जब अब	संसार	{ १४१
गोपुर	नगर-द्वार	₹. ११३	जातिस्मृति जायु	पूर्व जन्म-झ श्रोषधि	गन १७२ २१⊏
घनसार	कपूर	६३ २६⊏	जोष	मौन	{ 58,
घूक घूर्ण	उल्लू घूमना, कांपन		झ ब्झा	आंधी	१४४

शब्द	ষ্মৰ্থ	άä	शब्द	श्चर्थ	ã8
झलझला	झञ्झात्रायु	१४६	दन्तच्छद	श्रोष्ठ	3,5
झप		•६,१३२	दन्तिन्	हाथी	७२
श्च	म≂छ {	११२	दरी	गुफा	१=४
डम्बर	श्राहम्बर	३४२	दल	पत्र	ર੪≒
डि म्भ	बालक	१=४	दस्यु	चोर	१६०
तटाक	तालाब	Į ₹ £ ,	दाम	माला	৬૬
(1C14)	तालाब	ે હફે	दार	स्त्री	३३७
तनय	पुत्र	१५०	दिनप	सूर्य	ş=
तनुजा	पुत्री	83	दिनश	सूर्व	৬६
तति	समूह	399	दिव्	श्राकाश	३२४
तमस्	अन्धकार	₹84	दिशा	दिशा	
तरणि	सूर्य	१४७	दुकूल	वस्त्र	==?
ताति	पंक्ति	3,23	दुरन्त	असीम	२४७
नाक्ष्य	गरुड	३ १३	दुर्दिन	मेघ-युक्त-	दिन ४६
ताक्ष्यंकेतु	गमङ्ख्यज	१७१	दुरित	पाप	₽⊏X
तिमिर	अन्धकार	. 88	दम	उ द्धत	309
-		१३४,	दश्	नेत्र	३३
तुक्	पुत्र {	१४३	दूरेक्षणयन्त्र	दूरवीन	३१६
नुरु क क	यवन	285	दोर्बली	बाहुबलि	२६७
नूर्ण -	शीव	१०२	दो:शक्ति	बाहुबलि	१३४
् रूख	रुई, विस्तार {	१५१, २४२	दोपाकर	चन्द्र	{ ३६, १ ४८
त्रेदिव	स्वर्ग		द्शन	काटना	820
त्रीयम् त्रेविष्टप	स्त्रग स्त्रग	₹१			
त्रावण्डव श्रेता		ξο 	द्रविण	धन	1 80x,
441	तीमरा युग	रमइ	द्रह	सरोवर	હ

ভাই	શ્ચર્થ	ā8	शब्द	अर्थ [ः]	ãB
द्वय	दो	3,8	नाद्	शब्द	३०
द्राक्षा	दाख	8	निकृत्तिन्	काटने वाला	
द्वापर	दूसरे युगका	नामर⊏६	निगड़	जजीर	१७७
द्विज	पक्षी	१४१	निगल	गला	87
द्विजिह्न	सर्पं, निरु	इक १⊏३	नितम्बि <u>नी</u>	स्त्री	२३२
द्विरद	हाथी	५ १	निपात	पतन	3,83
चुमद्	देवता	११०	निमेषभाव	पलक गिरान	₩ €
धरा	प्रध्वी	×39	निम्तगा	नदी	ર૪
धरासुर	त्राह्मण	२१०	निरम्बर	वस्र-रहिन	१४३
-		1888,	निरेनस्	पाप-रहित	३३४
ধৰ	पति	1 २७२	निर्घण	निर्दय	११६
धुरन्धर	भार-धा	क बेलफर	निर्निमप	पलक-रहित	33
धूमकेतु	पुच्छलता	रा,अग्निध्ध	निर्भीपण	विभीषण	२६१
धेनु	गौ	₹.₩	निर्मोक	कां बली	8==
ध्याति	ध्यान	२७६	निव [°] ति	मुक्ति	२३१
ঘূৰ	निश्चित,	नित्य २६६	निलय	निवास	288
ध्वान्त	अन्ध का	288	निवह	समृह	હદ
नक	मगर	११२, ३१३	निशा	रात्रि	33, 1 58
नमुचि	एक राक्ष मोह-रहि		निशाचर	राक्षस, रात्रिभोजी	{ २२१, २८३
नमोह	जलाश्य		निष्क	बहुमूल्य	328
नलाशय	जलाशय नवविवा		मिश्रा	भद्धा	२६३
नबोढा	नवाववा		निस्तुङ	अनुपम	808
नाक	स्वर्ग	₹ ₹ ₹¥₹	नि:स्त्र	निर्धन	688

शब्द	अर्थ	<i>র</i> ম্ভ	शब्द	অর্থ	āā
नि:सङ्गता	अपरिमहता	かにっ	पल्छव	किशलय	१२४
नीर	जल	११७	पाणि	हाथ	२४१
नीरद	मेघ	६२	पाथेय	मार्गका भोज	न १८
नूत्न	नवीन	308	पाथोज	कमल	હ૦
नूपुर	पायजेब, विछु	ड़ी=३	पाद	किरण, चरण	१८४
नेक	भद्र	3	पादप	बृक्ष	३४६
पञ्चानन पट	सिह वस्त्र	२६२ ३३४	पामर	{ दीन, नीच, किसान	२६४
		۶⊊۷,	पायस	स्त्रीर	१४०
पतङ्ग	पतंग,चंग 🕇	388	पिक	कोयल	33
पत्तन	नगर	१११	पिच्छिल	कीचड़ वाला	३२६
पयोदमाला	मेघपंक्ति	27	पित्सन्	शिशुपक्षी	80%
पयोमुच्	मेघ	२२६	पीयूष	असृत	. 8
पराग	पुष्पराग	20	पुरु	ऋषभदेव	२=६
पराभूति	तिरस्कार	339	पुलोमजा	डन्द्राणी	१२१
परिकर्म	्रप्रसाधन,	१६४	पु स्कोकिल	नर कोचल	23
41544	समारम	110	पूत	पवित्र	ωX
->	(अविशद और { इन्द्रिय-जनित	३२१	वूनना	एक राक्ष्मसी	359
परोक्षज्ञान	इन्द्रय-जानत	441	पूपन्	सूर्य	939
पर्यट	धूमने वाला	२२८	पृथ्वीसुत	मङ्गल, वृक्ष	२७१
पर्वन	पहाड	388	ष्ट्रदाकु	सर्प	33
444		१०३	সভ্তন	गुप्त, छिपा हुच	¥१हा
पलाश		२८३	प्रजरति	वृद्धा	११२
पळ	क्षण, मांस	28₽	प्रणय	प्रेम	२४६
पश्चित	वृद्धताकी सफेर्द	1१३६	प्रतति	विस्तार	υ₹

शब्द	स्रर्थ	āB	शब्द	श्चर्य	वृष्ठ
प्रतिरूपक	प्रतिबिम्ब	२०७	भगण	नक्षत्र-समूह	२७
प्रतीची	पश्चिमदिशा	22	भसद्	भयंकर	१४२
	(विशद् और		भामिनी	स्त्री	२३४
प्रत्यक्ष ज्ञान	र् साक्षात्कारी	३२१	भावन	भवनवासी देव	१००
	(ज्ञान		भावबन्ध	निदान	१७०
प्रत्यभिज्ञा	प्रत्यभिज्ञान	३०१	भाल	ल्ला ट	= 2
प्रपा	प्याऊ	२४	भास्वत्	सूर्य	२६८
प्रमदा	स्त्री	१३२	भुजङ्ग	सर्प	४२
सवङ्ग	व।नर	ΧE	भूमिरुह	बृक्ष	१८६
प्रवित्	ज्ञानी	१६४	भेक	मेंडक	Ę ₹
प्रमत्ति	प्रसन्नता	03		∫ भोगी, सर्प-	
प्रसव	मञ्जरी	33	भोगभुक्	र भक्षी मयूर	३२६
प्रसून	d_{ed}	હ છ	मधवन्	इन्द्र	२०६
प्राची	पूर्वदिशा	२२	म आ ल	सुन्दर	१३६
प्रावरण	आच्छादन,कोट	8€=	मंजुलापिन्	मधुरभाषी	Ęo
प्रावृष्	वर्षाऋतु	६०	मण्ड	मांड, कृत्य	२४६
प्रासाद	महल	३४	मण्डल	कुत्ता	१८०
प्रास्कायिक	्झंग-निरीक्षक	38%	मतल्ल	प्रख्यात	१६३
भारकाषिक	ऐक्स रे		मधु	वसन्त, शहद	8=x
प्रोच्छनक	श्रंगोछा	= 2	मनाक्	बोड़ा, श्ररूप	२४७
प्रोध	नितम्ब प्रदेश		TESTS	¦ वृक्ष विशेष,	28.0
फिरङ्गी	अ मंत्रेज	२६१	मन्दार	ब्याकड़ा	160
बलाहक	मेघ	२०म	मयुख	किरण	१८४
बाम्बूल	बबूल वृत्त	२६७	मराळ	इंस	३२७
बाहु-बन्ध	भुज-बन्ध	⊑ ३	मर्जू	क्रपा	₹¥o
बोध	ह ीन	¥γ	मर्त्व	मानव	₹₹

शब्द	श्चर्थ	ĀS	शस्द	ष्ठर्थ	ā8
महिष	मेंस।	88	रध्या	गली	१ ≈ ×
महिषी	रानी या भैंस	२३४	रद	दांन	28
माकन्द भितंपच	द्याम कावृक्ष कृपण	308 308	रय	वेग -	। =३ ३२३
मित्र मित्र	सुद्धत् सूर्य	ያደየ የ	ग्स	जलस्वाद, पारदश्रादि	40,48 44
मिलिन्द	भ्रमर	३३७	रसज्ञ	रस ज्ञाता	28
मीन	मछली दर्पण	७४ ७४	रमा	पुण्त्री, जिह्ना	१८६
मुक्रुर मृह	शिव	88	रमायनाघी	श्वर वैद्य, वर्षाक	(ক ধ্ৰ
मृणाल मृणाल	कमल-दरह	308	रसाल	श्राम	K
मृत्य मृत्य	प्रातिपदिका		कव	क्रोध	३१३
मेथा	बुद्धि	३०२	गोचिष्	कान्ति	६६
मेवा	मेत्रा, सूखे	कल १	रोटिका	रोटी	१३६
मौका	अवसर	२८१	रास्त्रम्ब	भ्रमर	३२६
मौढय	छात्र, शिष्य	२४६	शेष	क्रोध	4XX
मीहर्तिक	ज्योतिषी	१०६	रीस्व	एक नरक	१७१
यामिनी	रात्रि	१४०	लास्य	नृत्य	=8
युति	संयोग	६६	लोचन	नेत्र	२३
योग	अप्राप्त की प्रा	प्रि २ ∙४	वक्षोज	स्तन	EX
₹	दरिद्र	₹¥	वठर	मूर्ख	१३७
रजस्त्रला	ऋतुमती	888	वणिक्पथ	वाजार	₹હ
रणन	হাৰ্	२२४	वतंस	भूषण	२४२
रत्नाकर	समुद्र	२३६ ११६८	वद्तांवर	(श्रच्छाबोल {वालाश्राच	ने गर्य१७३
रश्राङ्गन	चक्वा	R 36		/ श्रेष्ठ	

शबद	ऋर्ष	<i>বিশ্ব</i>	शब्द	श्चर्य	Ži.
वदान्य	उदार	{ = ₹ { ₹¥8	वारिमुच	मेघ	₹⊏
वधूटी	स्त्री	१००	वारिवाह	मेघ	२२८
वन्ध्या	वांझ	१२३	वार्द्	मेघ	₹०₹
वप्त	योने वाछा	₹₹0	वार्दल	मेघ	Ę ę
-		ξ, 2 ος,	वाविल	ईसाई धर	प्रन्थ २६६
वप्र	परकोटा 🖁 🖁	££,₹£,	बाहुज	क्षत्रिय	२२२
विम	वसन	388	वासर	दिन	3
वयस्या	मखी	¥=	वाहद्विषन्	र्भैंसा	१=२
		135	वाहिनी	सेना	ĘŁ
वरण	परकोटा	{ 3,0	विचित्	∫ अचित्त,	_ રેંગ્ય
वर्सन		1880	,	जीव-रहि	त २०७
`	मार्ग	1 ३३१	विटप	ुबृक्ष	१०३
वर्व	धूर्त	12	विड्	बैश्य	२६३
वलभी	श्रदारी	१८१	त्रित्ति	ज्ञान	શ્ક
वलय	कङ्कण	३३⊏	विधु	चन्द्र (१४३
वल्ली	लता	१२४		(३४,३४=
वसन	वस्त्र	३३४	विपणि	बाजार	₹8¥
वसु	धन	२२⊏	विभावसु	अग्नि	88⊏
वाचना	पढ़ना	280	विश्	वैश्य	२७३
वाढव	समुद्र की अ		विशारदा	सरस्वती	६१
वातवसनता	दिगम्बरता	२०६	विशांपति	राजा	१२४
वान	व्यन्तरदेव	200	विष	जल	३२४
		(२५	वीजन	पंखा	g.o
वारण	हाथी	१२३	वीनना	गरुडता	१४६
वारिद	मेघ	२२ ×	वृत्त	चरित्र	{ %=
			-		ी १६६

शब्द	श्चर्य	पुष्ट	शब्द	अर्थ	प्रव्ड
	a 1	६१ १७≒	शशधर	चन्द्र	¥₹
वृष	बैल, धर्म	१७८	शात	सुख	=3
वृषभ	बैल	७२	शान	गौरव, प्रतिष्ठ	ग २४७
बचल	शूद्र	२४७	शाप	दुष्कृत्य,बददुश्र	। ३४३
वेरदछ	वेरी का पत्ता	२६७	হািৰাৰভ	मोर	१=१
वेला	तट	१६३	शिवद्विष्	शिव-शत्रु का	म१⊏४
वैनतेय	गरुड	१६२	शिश्न	पुरुषलिङ्ग	68
वैश्वानर	अग्नि	१८०	शीकर	जलकण	६३
		į Ęu	શુની	कुतिया	२६३
व्योमन्	আকাহা	१६४	शुल्क	कर, मूल्य	= ₹
शकट	गाडी	· ७२	शूळिन्	दाव े	80
शकुनि	पक्षी	२२६	शेष	सर्पराज	२६
शकुनी	হাকুন-হাাংস-	वेत्ताः,	शोणित	₹ क	१३८
शकुन्त	पक्षी	રહ=	श्मश्रू	दादी मूं छ	8%
হাক	इन्द्र	50	श्रवस	कान	१३३
शची	इन्द्राणी	₹ ११३	रलक्ष्ण	चिकना	४३
सामा			रवभ्र	नरक	२१६
शस्पा	विजली (ै	३०, ३०	श्वश्र	सास	१३०
		२०२ ३२६	श्रोणि	जघन	85
शय	हाथ		षट्पदी	भ्रमरी	88
शयान	सोता हुन्ना	HYTOE		/ज्योतिष के	२०
शर	बाण	(११=	षड्वर्गक	(ज्योतिष के (६ वर्ग	40
शरधि	तरकस,तूर्ण		सकाश	∶समीप	२११
शर्मन्	सुख	380	C		1300
शलाका	सळाई, अ	क २८६	सचित्त	सजीव	(३४२

शब्द	ऋर्थ	āā	शब्द	कर्य	gg.
सटा	केशर	१४१	सुचित्	सुहृद्य, वि	enar 99
सदारता	सस्त्रीकता	१२६	सुदामन	उत्तममाला-धा	
सद्मन्	घर	(११४ ११७	सुधा सुधाकर	श्रमृत चन्द्र	६, १३ ३२ <i>४</i>
सत्तम	શ્રેષ્ટ	ξĘ	सुधांशु		१६,४७
सत्र	अन्नेत्र,सदा	वर्त २४	सुनाशीर	इन्द्र	₹ ₹
सत्रा	साथ	२२३	सुभा स	र x गिद्ध पक्षी	388
सत्वर	शीब	348		. /	999
सधर्मिणी	स्त्री	२३४	सुपर्वन्	देव (_:	११,११=
सप्तच्छद	(सन्नपर्ण, सा परो बाला बुः	त भ	सुपर्व भू	स्वर्ग	२७१
समक्ष	प्रत्यक्ष	१४	सुपीठ	सुन्दर आर	
समिद्धि	प्रकाशमान	२७६	मुम	वुडव	(^{६३}
समीर	वायु	₹::¥	सुमाशय	वसन्त	१०४
समीरण	वायु	१४८	सुरप	इन्द्र	388
सरित्	नदी	રજ	सुराद्रि	समेरु	86
सव	ऋभिषेक	388	सुरी ण	श्लीण	= \$
सवितृ	सुर्य	१८४	सूची	सुई	242
सहकार	श्राम	१ ००	सूपकार	रसोईदार	38⊏
सहस्ररश्मि	सूर्य	ર્ઉ	सेतु	पुल	208
साकम्	साथ	१६७	सोम	चन्द्र	320
सान्द्र	घन।	१४=	3111	(सुंघकरभू	•
सायम्	सन्ध्या काल		सौगन्धिक	र गत वस्तु के	१ ३१४
सित	शुक्त	३२४		(जानने बाल	ī
सिन्धु	समुद्र	६१	सौध	महरू	१४८
सुकन्दत्व	सुन्याप्त	ξo	संगर	युद्ध, वाद	२८८

(४४६)

হাতব্	श्रय	às	হা ভ্র	श्रथं	âs
संविधा	समृह	Ę	स्यूति	उत्पत्ति	२६६
संसद्	सभा	२२४	स्नाक्	शीव	१३६
स्कन्ध	(अपनेक परम् { गुआर्थेका समूह	{ - ₹0¤	स्नुति स्रोतस्	टपकना स्रोताः झ रना	
स्तबक	गुच्छा	१०४	स्वान्तस्	चित्त	२४०
स्तेयिन	चोर	ξ¥	स्वेद	पसीना	१८२
स्तोम	समृह	· 2	हरि	सिंह	१७१
स्मय	बारवर्य	२०४	इंग्विष्टर	सिंहामन	११०
स्मर	काम	ξξ. (335)	हिमारि हृपीक	सूर्य इन्द्रिय	१४७ १३२



तीर्थङ्कर नाम-सूची			श्व	धर नाम-स	ची		
नाम	परिच	व	वृष्ठ	नाम	परिच	य	ā8
श्र जित	द्वितीय र्त	र्थङ्कर	२⊏६	श्रकस्पित	अष्टम ग		288
त्रादीश	प्रथम तीः			श्रम्भिन्ति	द्वितीय	99	२०६
				अचल	नवम	19	२११
ऋषभ	"	"	१६७ २७३	त्रार्यव्यक्त	चतुर्थ	11	२१०
वृषभ	57	57	8	इन्द्रभूतिगौ	तम प्रथम	-1	२०४
चन्द्रप्रभ	अष्टम ती	र्थञ्च	2	प्रभास	ग्यारहवें	33	२१२
पार्श्व प्रभू	नेईसवें	19	2	मरिडक	बङ	55	२१०
_				मेनाये	दशम	57	२११
वीर	चौशीसवे	39	3	मौर्य पुत्र	सप्तम	55	२११
श्री वर्धमान	77	57	१२४	वायुभूति	तृतीय	"	२०१
सन्मति	99	59	३३६	सुधर्म	पंचम	57	२१०
		अ	ाचार्यः	नाम-सूची			
नाम			Ч	रिचय			वृष्ठ
अ कलङ्कदे	व	प्र	सिद्ध वि	(गम्बर)चार्य		88	, 68
देवर्द्धिगणी		प्र	सिद्ध श	वेताम्बराचार्य			३३४
नेभिचन्द्र ।	सद्धान्ती	1	ोम्मटस	।र-कर्ता			२६४
पद्मनन्दि (द	क्षिण वे	एक आरचा	र्य		२३४
पूज्य पाद		জ	नेन्द्र क	पाकरण-कर्ता			88
प्रभाचन्द्र		Я	मेय कम	ाल मार्तग ड- व	ती		११
भद्रबाहु				अंतकेवली			३३४
शुभचन्द्र				ँएक आरचार	î		२३४
श्रुतसागर		Q	क पर्व	कालीन ऋषाच	ार्य		१७३
समन्तभद्र				प्रस्थापक स्तु			११
स्थूलभद्र		ŧ	वेताम्बर	-मत-प्रस्थाप	6		३३४

(왕석)

प्रनथ-नाम-सूची

प्रन्थ-नाम		रचयिता	68
चान्नमीमांसा		तमन्तभद्र ः	७१
आराधना (भगवती)	f	शेवार्य	२४⊏
पातञ्जल महाभाष्य	,	ात जिल्ल	२६६
प्रयुम्न चरित	Ħ	हासेन	२६३
मीमांसा-ऋोकवार्तिक	ą) नारिल	339
बृहत्कथा कोष	8	विषेण	२६४
	विद्वज्ज	न-नःस-स्रची	
(व०) ज्ञानानन्द	सुनि	ज्ञान सागरजी के विद्यागुरु	ą
(पं०) दरबारीलाल	सत्य	समाज के संस्थापक	१४८
(स्वामी) द्यानन्द्	ऋार्य	समाज के संस्थापक	280
ट्या म ऋषि	वेद-स	कलिया	२८६
(३०) शीतलप्रसाद	विधव	। विवाह के पोषक ब्रह्मचारी	१४३
	वंध न	(म- स् ची	
इक्वाकु वंश	२३६	परमार वंश	२३६
चौद्दान वंश	99	सूर्य वंश	२३१

(8%£)

विशिष्ट व्यक्ति-नाम-सूची

	-	
नाम	परिचय	āā
श्चचल देव	मंत्री चन्द्रमौिल की स्त्री	२३४
व्यतिमञ्बे	राजा नागदेव की स्त्री	२३४
अभया	राजा दार्फवाहन की स्त्री	२३ २
अभिनन्दन	छत्रपुरी के राजा	8 27
अ भरसिंह	राणौली के राजा	888
अ र्हहास	मधुग के एक सेठ	२३१
व्यश्वप्रीव	प्रथम प्रतिनारायण	१७०
उद्दायन	वीतभयपुर का राजा	२३०
कद्म्बराज	एक कदम्ब बंझी नरेश	₽ રૂ ૪
कद।व्छी	राजामक वर्माकी रानी	२३३
कनकमाला	राजाकनक की रानी	१७२
काडुवेदी	पल्लव देश काराजा	¥.₹.¥
कार्त्तिकेय	एक प्रसिद्ध अधाचार्य	२४८
कीर्त्तिदेव	एक कदम्ब वंशीराजा	₹38
कीत्तिपाळ	एक चौडान वंशी नरेश	२३६
क टवा	नवम नाग्यण	२४म
खारवेल	कलिंग-सरेश	२३२
गङ्गराज	एक प्रसिद्ध सेनापनि	२३६
गङ्ग हेमारिह	दक्षिण देश काएक नरेश	२३४
गौतम	प्रथम गणधर	२२६
घृतवरी देवी	कवि की माता	१७
चट्टला	काडुबेदी की रानी	२३४
चतुर्भु ज श्रेष्ठी	कवि के पिता	१५

(840)

नाम	पश्चिय	बंदर
चन्द्रगुप्त मौर्य	एक प्रसिद्ध नरेश	२३३
चन्द्रमौिछ	राजा वीरवल्लाल के मन्त्री	२३४
चामुग्डराज	एक प्रसिद्ध जैन सेनापति	२३४
चिछ।ति	कोटि वर्ष देश का स्वामी	₹३०
चेटक	वैशाली का एक नरेश	२३०
जम्बू कुमार	श्रन्तिम केवली	२३१
जयकेणि	राजा विष्णुचन्द्र की भावज	२३६
जयन्ती	ऋ।ठवें गणधर ऋकंपित की माता	२ १ १
जरत्कुमार	एक यदुवंशी राजकुमार	२६७
जरासन्ध	नवम प्रतिनारायण	२६७
जाकियञ्चे	राजा नागार्जुन की स्त्री	२३४
जीवक	जीवन्धर स्वामी	₽ ३१
जैनी	विश्वनन्दीकी माता	१६८
तथागत	बुद्ध	३२२
त्रिपृष्ठ	प्रथम नारायण	१७०
दत्त विप्र	दसवें गणधर मेतार्थ के पिता	268
दिवाहन	एक चम्पानरेश	२२६
दशस्य	एक सूर्यवंज्ञीनरेश	२३१
दशास्य	रावण (श्रष्टम पतिनारायण)	२६१
दार्फशहन	एक दक्षिणीनरेश	२३२
देवकी	कुष्ण की माना	२६४
देव प्रिय	श्चकंपित गणवर के पिता	२११
दोर्बलि	बाहुबली	२६७
धनदेव	छठेगणधर मंहित के पिता	२१०
वनमित्र	चौथे गणधर आर्थ व्यक्त के पिता	२१०

(859)

नाम	परिचय	áā
वनवती	उष्ट्रदेश के राजायम की रानी	२३२
धिमल्ल द्विज	पांचलें गणधर सुधर्मके पिता	२१.
घरावंशराज	एक परमार बंझी राजा	२३६
सेन्द् कुमार	भगवान् महावीर का ३१ वां पूर्वभव	80K
मन्दादेवी	नवें गणधर श्राचल की माता	₹ १ १
नागदेव	एक दक्षिणी नरेश	२३४
मागार्जु न	59 33	२३४
नाभिराज	श्रन्तिम कुलकर	१६६
निर्भीपण	विभीषण	२६१
नीलंयशा	अप्रविश्वीव की माना	१७०
पद्मावती	गजा द्धिवाहन की रानी	२२६
परंस्र	निर्गुन्द देश के एक राजा	२,३३
पल्लवराज	पल्ले ब देश के एक नरेश	२३४
पागशस्का	शास्टिलय बाह्मण की स्त्री	१६८
पुरूरवा	भगवान् भहाबीर का प्रथम पूर्वभव	१७१
पुरुषराज	एक दक्षिणीनरेश	२३३
पृथिवी देवी	गौतम गणधर की माता	308
प्रजापति	प्रथम नागयण के पिना	१७०
प्रयोनन	एक उज्जयिनी नरेश	२३१
प्रभावती	राजा उद्दायन की रानी	२३०
प्रसेनजित	एक दक्षिणी नरेज	२३२
प्रियकारिणी	वीर भगवान की माना	88
वियंमित्र	भ० महावीर के २६ वे भव का नाम	१७४
গ ভিনিম	ग्यारहवें गणधर प्रभाम के पिता	999
बाहुंबली	ऋषभदेव के पुत्र	२७०

(४६२)

पछ

नाम	परिचय	88
भहिला	पांचवें सुधर्म गणधर की माता	२१०
भद्रा देवी	प्रभास गणधर की माता	२१२
भरत चकी	ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र	२८७
भीष्म	पांडवां के दादा	१३४
भूरामल	प्रस्तुन काञ्य-कर्ता	१७
मयूरराज मयूरराज	प्रथम प्रतिनारायण के पिता	१७०
मधूरराज मरीचि	भरत का पुत्र	१६७
मस्तेवी मस्देवी	ऋषभदेव की माता	१६६
मरुद्या मल्लिका	राजा श्रसेनजित की रानी	२३२
भारकका माचिकव्वे	राजा मारसिंगय्य की स्त्री	२३४
	एक दक्षिणी नरेश	२३४
मान्धाता मारसिंगय्य	एक दक्षिणी नरेश	२३४
	श्रीकृष्ण	२६७
मुरारि	प्रथम नारायण की माता	१७०
सृगावती सौर्य	सातवें गणधर के पिता	२११
	चारडाल	२६१
यमपाश	एक पौराणिक मुनि	२६।
राजमुनि	सेनापति गंगराज की पत्नी	२३
छक्ष्मीमती	भ० महावीर के २७ वें भव के पिता	१७
वज्रपेम	श्रीकृष्ण के पिता	2.2
वसुरेव	गौतम गणधर के पिता	२०
वसुभूति	नवें गणधर के पिता	28
बसुविप्र	चौथे गणधर की माता	28
वारुणी	साथ गणवर का नाया राजा विक्रमादित्य	२३
विक्रमराज	राजा ।वक्रमाप्ट्य छठे गणभर की माता	२१
विजया	छठ शंभवर का गाया	",

(883)

नाम	परिचय	ā8
विद्यु च्चर	एक प्रसिद्ध चोर	२४२
विद्युषीर	22	२३१
विमला	सुदृष्टि सुनार की स्त्री	२६४
विशाखनन्दी	भ० महावीर के १७ वें भव का चचेराभा	ई १६६
विशाखभूति	विशाखनन्दी के पिता	339
विश्वनन्दी	भ० महाबीर के १७ वें भव का नाम	१६=
विश्वभू ति	विश्वनन्दी के पिता	१६⊏
बिष्णुचन्द्र	एक दक्षिणी नरेश	२३६
विष्णु वर्धन	21 21	२३४
वीरमती	भ० महावीर के ३१ वें भव की माता	१७४
वीर बल्लाल	एक दक्षिणी नरेश	२३४
शङ्खराजा	एक काशी नरेश	२३०
शास्टिहल्य	भ० महावीर के १४ वें भव के पिता	१६=
शान्तला	एक दक्षिणी नरेश की परनी	२३४
হািৰ	एक हस्तिनापुर नरेश	२३०
शिव	महादे व	२४६
शिवादेवी	राजा प्रयोत की रानी	२३१
शृङ्गारदेवी	राजा धारावंश की रानी	२३६
श्री पट्टदमहादेवी	मान्धाता की पत्नी	२३४
श्री विजय	प्रयम बलभद्र	१७०
श्रेणिक	मगध नरेश विश्वसार	२२६
सर्वानिक	एक कौशम्बीनरेश	२३०
सतरस	एक दक्षिणी नरेश	२३४
सिद्धार्थ	बीर भगवान के पिता	3=
सिंहयशा	सम्राट् सारवेल की रानी	२३२

(४६४)

न 1म	परिचय	ā s
स र िट	एक सुनार	२६४
समित्र राजा	भ० महाबीर के २६ वें भव के पिता	१७४
पुत्रमा	राजा दशस्य की रानी	२६१
सुब्रसारानी	भ० महावीर कं २६ वें भव की माता	१७१
सौग त	बौद्ध	688
हरिय व्वरसि	एक दक्षिणी रानी	२३४
	भौगोलिक नाम-सूची	
अ ळकापुरी	एक विद्याधरपुरी	१५०
उ ज्जयिनी	मालव राजधानी	२३१
उष्ट्रदेश	एक प्राचीन देश	२३३
कद्म्बद्श	एक दक्षिणी देश	२३५
कनकपुर	एक पौराणिक नगर	१७३
काशी	वाराणसी	२३०
कुरहपुर	वीर-जन्म भूमि	ર ક
कोटि वर्ष	लाड़ देश की राजधानी	२३०
कोल्लाग प्राम	मगध देश का एक ग्राम	२१०
कौशास्त्री	एक प्राचीन नगरी	२३०
गङ्गा	भारत की प्रसिद्ध नदी	२०
गोवर प्राम	मगध देश का एक श्राम	२०६
चम्पा	इयंग देश की राजधानी	२२६
छत्रपुरी	एक पौराणिक नगरी	१७५
जम्बुद्धीप	मध्य लोकस्थ प्रथम द्वीप्	१=
तुङ्गिक सन्निवेश	मगध देश काएक प्राम	२११

(४६४)

नाम	परिचय	ট 8
दशार्ण	मध्य प्रदेश का एक देश	२३०
धातकी खरह	मध्य लोकस्थ द्वितीय द्वीप	१७२
निर्गुन्द देश	एक दक्षिणी दंश	२३३
पल्छव देश	39 39	2,3,3
पुरहरीकिणी नगरी	एक पौराणिक नगरी	१७४
पुरकल देश	एक पौराणिक देश	१७४
पूनल्छि ग्राम	एक दक्षिणी माम	233
भारतवर्ष	हिन्दुस्तान	35
मथुरा	प्रसिद्धपुरी	379
महीशूर	म सूर	२३३
मिथिलापुरी	जनकपुरी	२११
मौर्ययाम	मगध देश काएक प्राम	२१०
मंगलावती	एक पौराणिक नगरी	१७२
रजताचळ	विजयार्धपर्वत	१७२
राजगृह	विदार का प्रसिद्ध नगर	२१२
राजपुरी	हेमांगद देश की राजधानी	२२६
वीतभयपुर	सिन्धुदेश की राजधानी	२३०
विदेहदेश	विद्यागान्त काएक देश	{ ^{स्} १ १७२
वैशाली	वङ्जी जनपद् की राजधानी	२३०
साकेत	श्चयोध्यापुरी कोसल की राजधानी	१७३
मिन्धु	प्रसिद्ध नदी	२०
हस्तिनागपुर	प्रसिद्ध नगर	२३०

(844)

ः वीरोदय-गत-सूक्तयः :

सूक्तयः	āi.
श्चमदेनैव निरेति रोगः।	===
अनेकशक्यात्मकवस्तु नरवम् ।	283
श्चन्यस्य दोषे स्विद्वाग्विसर्ग ।	२≒४
व्यर्थिकयाकारितयाऽस्तु वस्तु ।	२६२
व्यस्तित्वमेकत्र च नास्तितापि ।	₹85
अहो निशायामपि अर्यमोदिनः।	830
षक्को मरीमर्ति किलाकलत्रः ।	885
श्वाचार एवाभ्युदयप्रदेशः ।	२६१
श्वास्मा यथा स्वस्य तथा परस्य ।	₹.¥३
इन्द्रियाणां तु यो दासः स दासो जगतां भवेत्।	933
इन्द्रियाणि विजित्येव जगन्जेतृत्वमाप्रुयात्।	१ ३३
उच्छा लितोऽकीय रजःसमृहः पतेच्छिरस्येव तथायमृहः।	
कृतं परस्मै फलति स्वयं तित्रजात्मनीत्येव वदन्ति सन्तः !।	२४३
सन्धार्गगामी निपतेद्नच्छे ।	25K
एपद्र तोऽप्येष तरू रसालं फलं शृणत्यङ्गभृते त्रिकालम् ।	, k
ऋते तमः स्यात्क रवेः प्रभावः ।	5
ऋद्धिं बारजनीव गच्छति वनी ।	१०६
एवं तु षहुद्रव्यमयीयमिष्टिर्यतः समुत्था स्वयमेव सृष्टिः।	308
एषाऽमृतोक्तिः स्फुटमस्य पेया ।	200
किन्नाम मूल्यं बलविकमस्य ।	२७०
कर्मी जकाराहिपतेर्ने भाता ।	8.8
कर्तव्यमष्टचेत्सततं प्रसन्नः ।	244
किंतर्जु वर्षावसरोऽयमस्तु ।	45

सूक्तयः	as.
कस्में भवेत्कः सुखदुःखकर्ता स्वकर्मतोऽङ्गी परिपाकभर्ता ।	२४३
किं कदैतन्मयाऽबोधि की हक्षी मिय बीरता।	158
किमु सम्भवतान्मोदो मोदके परमक्षिते।	१२३
कोषैकवाब्छामनुसन्द्धाना वेश्यापि भाषेव कवीश्वराणाम्।	38
गतं न शोच्यं विदुषा समस्तु गन्तव्यमेवाश्रयणीयवस्तु ।	₹१5
को नाम बाञ्छेच्च निशाचरत्वम्।	₹
गन्तुं नभोऽवाञ्छदितोऽप्यधस्तात्।	95
गायक एव जानाति रागोऽत्रायं भवेदिति ।	₹₹
गुणभूमिहिं भवेद्विनीतता	888
गुणं जनस्यानुभवन्ति सन्तः ।	8
गुणं सदेवानुसरेदरोषम् ।	RAK
यामा लसन्ति त्रिद्वोपमानाः ।	28
जलेऽन्जिनीपत्रवदत्र भिन्नः सर्वत्र स ब्राह्मणसम्पदङ्गः।	२२०
जित्वाऽक्षाणि समावसेदिह जगन्जेता स आस्मप्रियः।	220
जीयादनेकान्तपदस्य जातिः।	३०२
झब्झा निलोऽपि किं तावत् कम्पयेन्मेरुपर्वतम् ?	?43
तच्चन्द्राश्मपतत्पयोधरभिषाच्चन्द्रग्रहो रोदिति ।	3.8
तपोधनश्चाक्षजयी विशोकः न कामकोपन्छछविस्मयौकः।	
शान्त्रेश्तथा संयमनस्य नेता स त्राह्मणः स्यादिह शुद्धचेताः ॥	२१€
तर्के रुचि किन्न समुद्धरेयम् ?	⊏X.
तुल्यावस्था न सर्वेषाम् ।	266
त्रयास्मिकाऽतः खलु वस्तुजातिः ।	₹.₹
त्रिविष्टपं काव्यमुपैम्यइन्तु ।	80
दत्ता श्रहिंसाविधये किछापः	88
दघाम्यहं सम्प्रति बाळसस्वं वहिन्नदानीं जलगेन्दुतस्वम् ।	3,

(४६८)

सूक्तय:	ā
हुम्देवतानामपि निर्निमेषा ।	3
देवं निहत्य यो विजयते तस्यात्र संहारकः कः स्यान् ?	२४
दोषानुरक्तस्य खलस्य चेश काकारिलोकस्य च को विशेषः	8
द्वाचेव याऽऽसीन्मृदुता-प्रयुक्ता ।	8
धर्मानुकूला जगतोऽस्तु नीतिः ।	34
धर्मेऽयात्मविकासे नेकस्यैवास्ति नियतमधिकारः।	•
योऽनुष्ठातुं यतते सम्भाल्यतमस्तु स उदारः॥	२६
न काचिद्न्या प्रतिभाति भिक्षा ।	5
न कोऽपि कस्यापि बभूव वश्यः ।	81
न नामलेशोऽपि च साधुतायाः।	8
नम्रीभवन्नेष ततः प्रयाति हियेव संल्लब्धकलङ्कजातिः।	3,
न यामिनीयं यमभामिनीति ।	820
नरो नरीतर्ति कुचोष्मतन्त्रः ।	१४६
नव्यां न मोक्त महाकत्सहसात्र पृतः।	333
नानाविधानेकविचित्रयस्तु स शहाणो बुद्धिविधानिधानः।	२२
नारी विना क नुश्छाया निःशाखस्य तरोरिव।	१३१
नार्धस्य दासो यशसरच भूयात्।	२८३
नित्यं य पुरुषायतामदश्वान् वीरोऽसकौ सन्प्रति ।	380
निनादिनो वारिमुचो <i>ऽ</i> प्युदाराः ।	25
निमित्तनेमित्तिकभावतस्तु रूपान्तरं सन्दधदस्ति बस्तु।	३०६
निम्बादयरचन्दनतां लभन्ते श्रीचन्दनद्रोः प्रभवन्तु श्रन्ते।	222
निक्साचरत्व न कदापि यायात् ।	
निहन्यते यो हि परस्य हन्ता पातास्तु पूज्यो जगनां समस्तु ।	२२१
किमक्क न ज्ञातमहो त्वयेव हमजानायाङ मुलिरज्जितेव ॥	282
नीलाम्बरा प्रावृद्धियं च रामा रसौघदात्री समनोभिरामा।	Ęo

(४६६)

सूक्तयः	রূম
नृलोकमेषा प्रसते हि पूतना	१३६
परस्य जोषाय कृतप्रयत्ने काकप्रहाराय यथैव रत्नम् ।	
परस्याचात एव स्याहिगान्ध्यमिति गच्छत:।	१२७
पराधिकारे स्वयनं यथाऽऽपन्निजाधिकाराच्च्यवनं च पापम	२६०
परित्यजेद्वारि श्रगालितन्तु श्रीब्राह्मणोऽन्तः प्रभुभक्तितन्तुः ।	२२१
पापप्रवृत्तिः खलु गर्हणीया ।	२४६
पापाद् घृणा किन्तु न पापिवर्गात् ।	288
पापादपेतं विद्धीत चित्तं ।	२४६
पापं विमुच्येव भवेत्पुनीतः स्वर्णं च किट्टिप्रतिपाति हीतः।	२४४
पितुर्विलव्धाङ् गुलिमूलनानियंथेष्टदेश शिशुकोऽपि वाति ।	8
पीडा ममान्यस्य तथेति ।	398
प्रायोऽस्मिन् भृतते पुंसी बन्धनं स्त्रीनिबन्धनम् ।	
कल्याणकुम्भ इव भाति सहस्ररिमः।	
बलीयमी सङ्गतिरेव जाते: ।	३ २ <i>४</i>
भुवने लब्धजनुषः कमलस्येव माद्याः ।	
क्षणादेव विपत्तिः स्यात्सम्पत्तिमधिगच्छतः ॥	१४३
मनस्वी मनसि स्वीये न सहायमपेक्षते ।	१६३
मनुष्यता ह्यात्महितानुवृत्तिर्न केवलं स्वस्य मुखे प्रवृत्तिः।	२४३
मितो हि भूयादगदोऽपि सेन्यः।	=£
मुख्ने दहन्तां परतां समद्भेत्।	२८४
मूळोच्छेदं विना वृक्षः पुनर्भवितुमर्हति ।	२०७
मृदङ्किनि:स्वानजिता कलापी।	६०
यरकथा खलु धीराणामपि रोमाद्भकारिणी ।	१६३
यदभावे यज्ञ भवितुमेति तत्कारणकं तत्सुकथेति ।	388
यस्मात् कठिना समस्या ।	₹₹

(800)

सूक्तय:	£8
रसायनं काव्यमिदं श्रयामः।	Ł
रसोडगद: स्नागिव पारदेन ।	२२१
राजा सुनाशीरपुनीतथामा।	२६
रात्रौ गोपुरमध्यवर्ति सुखसक्त्वन्द्रः किरीटायते ।	٩x
रुपेव वर्षातु छतप्रयाणा।	३२७
लता यथा कौतुकसंविधाना ।	8.9
लोकोऽय' सम्प्रदायस्य मोहमङ्गीकरोति यत् ।	१५७
वर्षेक पूर्णोद्रिणी रराज ।	£3
वाञ्छावन्थ्यामतांन हि।	१२३
काणीव याऽऽसीरपरमार्थदात्री ।	४६
विकीर्यते स्वोदरपूर्तये सटा ।	888
विष्रोऽपि चेन्मांसभूगस्ति निन्दाः सद्व तभावाद् वृषलोऽपि व	न्यः २४४
विमूषणत्वेन चतुष्पयस्य हिमे बभावाऽऽत्मपर्देकशस्यः ।	329
विभेति मरणाद्दीनो च दीनोऽयामृतस्थितिः।	१६१
विश्वम्भरस्याच सती कृपा तु सुधेव साहाय्यकरी विभातु।	SΚ
विस्फालिताञ्चीव विभाति घात्री।	३२६
वीरता शिक्षभावश्चेद्वीरुता कि पुनर्भवेत् ?	949
शपन्ति जुदूजन्मानी व्यर्थमेव विरोधकान्।	
सत्यागहप्रभावेण महात्मा त्वनुकूछयेन् ॥	१६२
शरीरमेतत्परमीक्षमाणः वीरो बभावात्मपदैकशाणः।	8==
शरीरहानिर्भवतीति भूयात्।	200
शक्षवरसुषमेत्राऽऽहादसन्दोहसिन्धः।	×3
शान्तेस्तथा संयमनस्य नेता म ब्राह्मणः स्थादिह शुक्कचेताः ।	385
श्रोत्रवद्विरलो लोके लिद्रं स्वस्य प्रकाशयेत् ।	
शृषोति सुखतोऽन्येषासुचितानुचितं वचः ॥	१४४
- 5 5 10	

(808)

स्कतय:	वृष्ठ	
सख्चरेदेव सर्वत्र विहायोच्चयमीरणः ।	822	
सस्यानुयायिना तस्मात्संत्राह्यस्त्याग एव हि ।	200	
स भाति द्याखोः पिञ्चन. सजातिः ।	5	
समीहते स्वां महिलां सहायम् ।	१०३	
समुज्ज्ञिताञ्चेषपरिच्छदोऽपि अमुत्र सिद्धचौ दुरितैकछोपी।	25%	
सम्बादमानन्दकरं द्धाति ।	२७	
सरसंसकलचेष्टा सानुकूला नदीव ।	¥8	
सरोजल व्योमतलं समानम् ।	३२७	
सुतमात्र एव सुखदस्तीर्थेश्वरे किम्पुनः ।	9	
सुदर्शना पुरुषपरम्परा वा विश्राजते घेनुतति. स्वभावान्।	२४	
सुधेव साथो रुचिराऽय सुक्तिः।	Ę	
सुवर्णमृर्तिः कविनेयमार्था लसत्पदन्यासतयेव भार्या ।	१२	
मविद्रप्रेपि संमारी स नष्टो नश्यतीतरः।		
नावेत्यहो तथाप्येवं स्त्रयं यममुखे स्थितम् ॥	१४४	
स्मरस्तु साम्राज्यपदे नियुक्तः ।	३३०	
स्यात्सफळोऽपि भाग्यात् ।	=0	
स्वप्नवृत्दमफलं न जायने ।	GO	
स्वस्थितं नाश्वनं वेत्ति वीक्षतेऽन्यस्य लाव्छनम् ।		
चक्षर्यंथा तथा लोकः परदोपपरीक्षकः ॥	888	
स्वार्धाच्च्युतिः स्वस्य विनाशनाय ।	222	
हा शीताऽऽक्रमरोन यात्यपि दशां संशोचनीयां जनः।	828	
हिंसामुपेक्येव चरेतिकलार्थः ।	२६०	
हिंसां स दूषयति हिन्दुरियं निरुक्तिः।		
इषीकाणि समस्तानि माद्यन्ति प्रमदाऽऽश्रयात् ।		

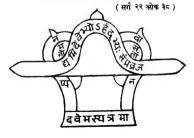
गोमुन्निक बन्ध रचना-

रमयन् गमयत्वेष वाङ्मये समयं मनः । न मनागनयं द्वेष-धाम वा समयं जनः ॥ (सर्ग २२ ऋोक ३७)



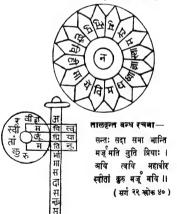
यान बन्ध रचना---

न मनोधिम देवेस्थोऽईद्स्यः संव्रजतां सदा। दासतां जनमात्रस्य भवेदप्यथ नो मनः।।



पद्म बन्ध रचना-

विनयेन मानर्हानं विनष्टेनः पुनस्तु नः । युनये नमनस्थानं ज्ञानध्यानधनं मनः ॥ (सर्ग२२ ऋोक ३६)



शुद्धि-पत्र

पत्र	पंक्ति	चशुद्ध	शुद्ध
ą	82	शरीरिक	शारीरिक
২	२०	जन:	जनाः
8	₹		करते
88	१२	स्वरसेण	स्वरसेन
१६	ঽ	इस	इन
१६	×		कोपि चित्तं
१७	×	दुरितान्धारके	दुरितान्धकार
38	२१		वारितस्तत्
२०	5	लासि गुणः	लासिगुणः
२४	१=	को व्यक्त	ब्य क्त
ąχ	२१	गोपु	गोपुर
88	२०	गुर्णां	गुणों के
8%	२०		तत्पदाधीन
¥8	₹=	निनिर्माय	विनिर्माय
78	१६	समनां	स मतां
६६	(g)	वसित्त्राऽप्य	वसित्वाऽप
90	२०	तथा स्याः	तथाऽस्याः
二支	8	सुद्रेज्या	सुदेव्यः
55	१७	चश्य:	वश्यो
80	88	तदा	स्तदा
દ રૂ	3	भो भोजनाः	भो भो जनाः
દ૪	१४	नर्तिमुखेन	नतिं मुस्तेन
१०३	×	'विपट'	'विटप'

(808)

११०	88	सरिनाम	सारिताम
११०	१७	कि अपवे	कि हेहरें! भ्रव
285	38		क्वलप्रकरान्वये
883	5	जिनभक्तिसत्तुगः	जिनभक्तिमत्त राः
१२४	¥	नदता	सटना
१२ =	ą	की वासना से	वासना से
389	¥	संसेजन्	संमजेन्
१४३	8	नूतन तमः	नूतनं वयः
88×	१४	होने	होने से
१४०	१८	कोरकारणाम्	कोरकाणाम्
822	y		ताहक्ष
१६०	२	जा क	जाकर
१६४	१२	देती है,	देने हैं,
१६४	82	ककुल्पाः	ककुल्याः
8€=	5		नि:सारतात्राली
860)	3	वशाख	विशास
१७१	5	करिखन्	कश्चिन
१७४	88		क्षितकारिणी
१८०	१३	लगाकर	लगातार
१⊏२	२०	शीतलं	सुजीनलं
१८३	२	करता है। तथा	ऋयोन् श्रीष्म कालमें लोगों लोगों के द्वारा बगबर पंखे की हवा ली जाती है। तथा
१६४	ŧ	श्चाकाश	आकाश में

,,,,	Ì	उस श्रेष्ठ खाई से उधर पुष्प-बाटिका थी।	मानस्तंभ थे और खाई के भीतरी भाग पर पुष्प- वाटिकाथी।
२०४	88	मयाऽबुधं	मयाऽम्बुधे-
२०⊏	१४		च निरेति तेन
२२२			अ शदिक
२२२	38		तनूभृत्त-
२२२	२०		नामी-
२२३	3	धर्म जिसमें	जिममें
२४६	85	ū	एंब
२६०	१७		रेकरूपा
२७२		सत्याख्योः	मत्याख्ययो:
२७२	5	श्रवसार्पिणी	श्र वसर्पिणी
२=२		प्रचेता	प्रचेता
		मन्वेति	म स्वेति
२=२	१७	में	मे माना की
र≂४	२२	नारकीय या	नाग्कीय
२⊏६	१०	तन्तु	तन्तु:
२८७	Ę	पुरोरबाह्यः	पुरोरबाह्य'
२⊏७	Ę	भृताऽवगाह्यः	भृताऽत्रगाह्य`
२८७	१०	रूप सूत्र	स्त्र
? ==		हुए से	हुए दो
	१०	वाढ	वाढं
२६०	१३	मंत्रों के	मंत्रों के अपर्थ के
२६१	8	अपेक्षा	उपेक्षा

(800)

२६२	२०	मानने	मानते
२६६	२२	नतास्त	नयोस <u>्</u> त्
339	२३ त	माममीमां सकनाम कोऽपि	तमां स भीमांसकतामकोऽपि
300	१३	सा ान्यमूर्ध्व	मामान्यमूर्ध्व
३०२	Ę	बहवानल	बहवानल
३०२	२१	'श्रप्'	'ऋापः'
३०६	१=	जिस एक वनस्पति रूप	जिस वनस्पनि में एक
३०६	39	उसे	उसे संसार के दुःख नष्ट करने वाले
३०६	२०	जिस एक बनस्पति रूप	जिस वनस्पति में एक
300	११		इन सभी स्थावर कायिक
		यह वायुभी	ये मभो
300	१२	हो जाती है	हो जाने हैं
३१⊏	8	भेद्मुवेमि	भेदमवैति
38⊏	60		ज्ञान में दुःखातीत स र्वज्ञ ने कहा है, ऐसा जानना चाहिए
३२४	88	विस्कृत-	परिस्कुर-
328		ला श यं	जलाशयं
320		मुध्डिमारात्	मुष्ठिनारात्
332			करने
334		उ नसे	जो विक्रम से
389			दम्बर
320	१७	त्यि	त्वयि

वीरोदय के प्रकाशनार्थ दातारों की सूची



६००) श्री दि० जैन समाज	मद्नगंज	(किशनगढ़)
१०१) पं० महेन्द्र कुमारजी जैन	11	13
१०१) पं० लादूळाळजी जैन	"	**
१०१) भी महीपाल कस्तूरचन्द वैद	"	"
१६८) फुटकर प्राप्त	23	77
४६) मं हाव रिया देवालाल मांगीलाल रांवा	FI ,,	"
६०२) भी जैन समाज दादिया	91	"
१६४) श्री जैन पंचायत छोटा लाम्बा	"	"
२४१) श्री रामस्वरूपजी कवाड़ी	केशरगंज	अजमेर
१४१) श्री केलाशचन्द्रजी कपड़े वाले	"	1)
१०१) श्री फन्हैयालालजी कवाड़ी	"	"
१०१) श्री शान्तिलालजी विलाला की		
धर्म पत्नी विमलाबाई	"	33
६६) श्री मधुरालालजी बज अजमेर		
१०१) श्री छगनमळजी रतनमलजी दोसी	केशरयंज	श्रजमेर
७२) श्री चमेली बाई नागर वाली	"	17
४१) श्री किशनगोपालजी प्रेस वाले,	**	22
४१) भी प्रेमचन्दजी महावीरजी कवाड़ी	**	21
४१) श्री नत्थीलालर्जाटेन्ट वाले	11	"
४२) श्रीस्त्रीसमाज	"	"
२२) श्रीमगनवाई	11	"
२६) श्रीस्त्रीसमाज	"	"

१४२) श्री रतनलालजी टीकमचन्दजी गदिय					
१२२) श्री नेमचन्दजी प्रवीणचन्दजी सर्राफ	।, नसाराबाद				
	"				
१०१) श्री गम्भीरमलजी सेठी	"				
१०१) श्री सुमेरमलजी ठेकेदार	51				
१०१) श्री संबरलालजी मोनी	33				
१०१) श्री छगनलालजी गदिया	17				
१०१) श्रीकस्त्रमलजी हुक्मचन्दजी बिलाल	51 ,,				
४२) श्री मानकचन्द्जी भवरलालजी	11				
४१) श्री दुलीचन्दजी बाकलीवाल	,1				
५१) श्री जैन महिला	"				
२१) श्री जीवनलालजी	"				
२१) श्री बात्रू शान्तिलालजी	"				
	सनोद				
१०१) श्री मानमलजी भागवन्दजी सेठी	સનાવ				
१⊏३) श्री घीसालालजी सेठी एएड सन्म	*1				
२१) श्री कुःजीमलजी सुजानमलजी	11				
२१) श्री मूलचन्दजी	11				
२१) श्री मिश्रीलालजी छीतरमलजी	नसीराबाद				
२१) श्री चांदमलजी पाटोदी	11				
२२) श्रीस्त्रीसमाज	17				
११) श्री नेमी बन्दजी कपूरचन्दजी वे	क्शरगंज, अजमेर				
४६४६) रू०					
उपर्युक्त दातारों को श्री ज्ञानसागर प्रन्थमाला की स्रोर से					

उपर्युक्त दातारों को श्री ज्ञानसागर प्रन्थमाला की आरे से कोटिश: धन्यवाद है।

-: ग्रन्थमाला से प्रकाशित ग्रन्थ :-

वयोवय सम्यू—इसमें मृगसेन थीवर की कथा का सुन्दर वर्शन कर बतलाया गया है कि निरन्तर मललियों को मारन वाला भी एक धीवर 'जाल में प्रथम बार कसी हुई मल्ली को नहीं मारू गां' इतने मात्र खाईसास्तुत्रत को धारण करने के पुरुष से किस प्रकार आगामी भव में एक भाग्यशाली कुल में जन्म लेता है, तो जो जीव मन वपन काय से प्राणिमात्र की हिसा का त्याग करेंगे उनके माहाल्य का क्या कहना है। प्रसगवज्ञ इनमें बेदों और हिन्दू पुराणों के खनेक उदरण देकर यह बतलाया गया है कि खाईसा ही परम धर्म है। प्रायेक पुरुष के पढ़ने और मनन करने योग्य है। युक्त संख्या १९४। मूल्य १.४०।

सुदर्शनोदय काथ्य — इसमें स्वदार सन्तोष-मत के घारक सुदर्शन सेठ का महान् चित्रव चित्रण किया गया है। प्रकरण-वश व्यनेक राग-रागिणियों में प्रभाती, भजन, पूजन व्यादि का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। व्यन्त में बतलाया गया है कि गृहस्थी में रहते हुए भी केवल स्वदार-सन्तोष प्रत के प्रभाव से मनुष्य स्पृत्तु जैसी यातनाव्यों से सुहन् कारा पाता है और पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मुक्ति के महान् सुन्ने कारा पाता है और पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मुक्ति के महान् सुन्ने बिना छोड़ने की इच्छा नहीं होती है। विस्तृत प्रस्तावना के साथ सुन्दर सम्पादन किया गया है। पृष्ट मं० २७२ ब्लीर सजिल्द होने पर भी मूल्य लागत मात्र २,४०।

वीरोदय--पाठकों के हाथों में उपस्थित है। मृल्य ६,००।

